राहुल यात्रावली

प्रथम भाग

•

राहुल सांकृत्यायन

किताब महल
इलाहाबाद

विषय-सूची

मेरी लद्दाख यात्रा (१)

लंका (२)

तिब्बतमें सवा बरस (३)

पहली मंजिल—भारतके बौद्ध खंडहरोंमें

दूसरी मंजिल—नेपाल

तीसरी मंजिल—सरहदके पार

दसवीं मंजिल—वापसी

मेरी लद्दाख-यात्रा

(१६२६)

१--मेरठ

मेरठमें मैं जनवरीके प्रथम सप्ताह हीमें आ गया। यह ज़िला गङ्गा और यमुनाके बीचमें है। दिल्ली और गाज़ियाबादके बीचमें यमुना ही इस ज़िलेकी सीमा है। यमुनाके पश्चिम तरफ रोहतकका ज़िला पड़ता है।

युक्त-प्रान्तके सभी भागोंसे मेरठ-कमिश्नरीके लोग खुशहाल हैं। इसका एक कारण तो गङ्गा और यमुनाकी नाहरोंका सर्वत्र बिछा हुआ ताँता है दूसरे यहाँके किसानभी बडे मेहनती हैं, तीसरे यहाँ बिहार-बंगालकी तरहके बडे बड़े ज़मींदार नहीं हैं।

प्राचीन कुरु देश यही है। हस्तिनापुर गङ्गासे ५, ६ मील हटकर गङ्गाकी एक पुरानी धार बूढ़ी गङ्गाके शुष्कप्राय स्रोतपर अब भी यात्रियोंके आने जानेका एक खासा स्थान है। आजकल यह भाग बिलकुल ऊजड़ है। बहुत दूर तक पुरानी बस्तियोंके ऊँचे ऊँचे ध्वंसावशेष बिखरे पड़े हैं। लोगोंने इन्हीमेंसे किसीको बिदुरटीला, किसी को कोई टीला मशहूर कर रक्खा है। पटवारियोके कागज़ोंमें अब भी कुछ भाग को 'पट्टी कौरवान' और कुछके लिए 'पट्टी पाण्डवान' लिखा पाया जाता है। यहाँसे गङ्गा तककी भूमिको खदर (दियारा) कहा जाता है। इसमें झुण्डके झुण्ड गायें और भैंसें चरती रहती हैं। हस्तिनापुरके नामसे कोई एक ग्राम नहीं है। जैन-धर्मके दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायोंके यहाँ दो बडे मन्दिर हैं। कई वर्षों तक

यहाँ ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रमके नामसे उनका एक गुरुकुल भी चलता रहा, किन्तु आज (१६२६ ई० में) दो तीन वर्षसे वह जयपुर चला गया है। मन्दिरोंके एकान्तवासी पुजारी यात्राके समयोंके अतिरिक्त बड़ी नीरसता अनुभव करते हैं। उनमेंसे एकने बडे करुण स्वरसे कहा था—"उस समय बहुत अच्छा था। सौके क़रीब ब्रह्मचारी और बीसों परिवार अध्यापकोंके रहते थे। रातको आज सूनी पड़ी कोठरियाँ रोशनीसे जगमगाती रहती थीं।" अध्यापकोके कितने ही घर अब गिर रहे हैं। पासके एक टीलेपर रघुनाथराव का महल है। कहा जाता है, कोढ़ी होकर मराठा पेशवा वशज यहीं रहता था। अब उसकी एक दीवारमें सगमर्मरकी पट्टी पर एक नग्न मूर्ति बनी हुई है, साथ ही नये ईंटों चूने-की कुछ मरम्मत दीख पड़ती है। कहा जाता है कि जैनगुरुकुलवालोंने अपना दखल जमाने हीके लिए ऐसा किया था। मन्दिरसे थोड़ा पूर्व कर्णघाट है।

मेरठसे १६,१७ मीलपर मवाना क़स्वा है। यहाँ तहसील, मिडिल वर्नाक्यूलर स्कूलके अतिरिक्त मिडिल इँग्लिश स्कूल तथा अस्पताल भी हैं। मवानेसे प्रायः ५,६ मीलपर हस्तिनापुर है, और ८, ६ मीलपर परीक्षितगढ़। परीक्षितगढ दिनपर दिन अवनतिपर है। एक टूटी-फूटी दूकानमे हुक्का पीते हुए एक बूढा आदमी बोल रहा था— 'किसी समय यह कस्वा वड़ी रौनकपर था। उस समय हर चीज के कारीगर यहाँ मौजूद थे। ग़दरमें सरकारने कस्वेकी बाहरी दीवरको उड़वा दिया। आपने राजाका किला जो देखा है, वह किसी समय वड़ा ही सुन्दर था, आजकी तरह रुडमुड नहीं।"

इधर सवा मीलका कोस होता है। परीक्षितगढसे प्रायः तीन कोस-पर ईसाइयोंकी कन्या-पाठशाला है। हम लोग बेल ताँगे पर जा रहे थे। एक गाँव में एक कच्चे मकानकी मिट्टीकी छतपर लकड़ीका एक "क्रास" लगा हुआ देखा। पूछनेपर मालूम हुआ, यहाँके सभी भगी ईसाई हो गये हैं, उन्हींका यह गिर्जा है। पादरी पादरनी बाहर प्रचार

करने गये हैं। यह गाँव तगोंका है। इन तगोंकी स्थिति वही है जो पूर्वमें भूमिहारोंकी। ये लोग पुरोहितीका काम नहीं करते। एक तगा बड़े गर्वसे कह रहा था—सबकी ज़मींदारी बिकते देखी होगी, लेकिन तगों की नहीं। तगोंको जाट गूजरोंकी भाँति इधर चौधरी कहकर पुकारते हैं। इन लोगों को चालीस भंगियोंके क्रिस्तान हो जाने-का कोई अफ़सोस नहीं। चमारोंके लड़कोंको अपने लड़कोंके साथ ये नहीं पढ़ने देते। डिस्ट्रिक्ट बोर्डने अछूत पाठशाला अलग क़ायम की है, लेकिन उसके लिए यहाँवाले ज़मीन भी नहीं देते। कहते हैं कि चमार पढ जायँगे, तो काम कौन करेगा?

गाँवसे थोड़ी ही दूरपर ईसाइयोंकी पाठशाला है। वह बस्तीसे दूर खेतोंमें बनी है। मकान बिलकुल देहाती ढंगके कच्चे हैं। एक अँगरेज महिला प्रधान अध्यापिका हैं। पाठशाला मिडिल-वर्नाक्यूलर तक है, साथ ही ट्रेनिंगकी सीढ़ियाँ भी हैं। ट्रेनिंग-क्लासको छोड़कर सत्तर लड़कियाँ मिडिल तकमें पढ रही हैं। ये सभी लड़कियाँ सिर्फ दो जातियों मेहतर और चमारकी हैं। हिन्दू-जातिकी इन उपेक्षित और घृणासे देखी जाती हुई जातियोंकी इन लड़कियोंकी शरीर-वस्त्र-सम्बन्धी सफ़ाई देखकर मेरे एक साथीने कहा, 'ऐसी सफ़ाई तो ऊँचे तबकेके शिक्षित हिन्दुओंकी लड़कियोंमे भी मिलनी मुश्किल है, साथ ही हर जगह हर एक चीज़में सादगी और कमखर्च को सामने रक्खा गया है। भोजन जो शुद्ध, सादा हिन्दुस्तानी होता है—लड़कियाँ स्वयं पकाती हैं। कपड़ा बुनना, टोकरी बनाना, मोजे बुनना, सिलाई आदि कितनी ही स्त्रियोंके उपयुक्त हस्तशिल्पकी भी उन्हें शिक्षा दी जाती है। अछूत जातियोंको पशुतासे उठाकर इस प्रकार देवता बनाने का प्रयास ईसाई भाइयोंकी ओरसे देखकर हृदय उनके प्रति कृतज्ञतासे भर जाता है। वे ही लड़कियाँ जब हिन्दू थीं तो उनकी अवस्था क्या थी और अब क्यासे क्या हो गई? शहर (मेरठ) से ९, १० मील दूर, बस्तियोंसे भी दूर यह सरस्वती-मन्दिर एक बड़ा

ही सुन्दर और मनोरंजक स्थान है। अछूत जातियोंकी बात तो दूर रही, छूत जातियोंकी लड़कियोंकी शिक्षाके लिये भी इस तरह शिक्षाका प्रबन्ध बिहारके हिन्दुओंकी ओरसे कहाँ देखनेमें आता है? यह और मेरठ शहरके पासके कोढ़ीखाने जैसी संस्थायें ही हैं, जिनके देखने से दर्शकको समझमें आ जाता है, कि ईसाई क्यों इतनी शीघ्रता से बढ़ रहे हैं। जहाँ हिन्दुओंमें इन लोगोंके प्रति इतनी घृणा है, वहाँ ईसाइयों ने उनके साथ कार्यरूपसे कितनी सहानुभूति और प्रेम दिखलाया है।

२—पंजाब

अम्बालासे असली पंजाब शुरू हो जाता है। ऐसे प्रबन्धके तौरपर तो कर्नाल, रोहतक, हिसार, गुड़गांवके ज़िले भी पंजाब-प्रान्त हीमें शामिल हैं, लेकिन उनकी भाषा, भेष आदि मेरठ कमिश्नरीके लोगोंसे अधिक मिलते हैं। सबसे बडे आश्चर्यकी बात अम्बालाके इन कई जिलों तथा मेरठ कमिश्नरीकी यह है कि यहाँ हिन्दू सत्तर और अस्सी फीसदीसे ज्यादा हैं, यद्यपि ये जिले दिल्लीके पड़ोसी हैं, जहाँ पर कितने ही अलाउद्दीन, मुहम्मद तुगलक, औरङ्गजेब जैसे मदान्ध बादशाह सैकड़ों वर्षों तक राज्य करते रहे। इसके भीतर रहस्य क्या है? मालूम होता है, इन जगहोंके हिन्दू पूर्वी बंगालके हिन्दुओंकी तरह खोखले न थे। यही जगहें हैं जहाँ राजपूतोंके अतिरिक्त जाट, गूजर, अहीर जैसी वीर क्षत्रिय-गुण-सम्पन्न जातियाँ बसती हैं। ब्राह्मणोंमें तगा या दानत्यागी (जो बिहार के भूमिहार ब्राह्मणोंकी तरह हैं) जैसी जाति भी यहाँ कसरतसे है, जिसको कि देशकालकी परिस्थितिकी पहिचान मशहूर है। खेती, जमींदारी आदि सभी व्यवसायों मे जहाँ यह जाति बहुत बढ़ी-चढ़ी है, वहाँ सामाजिक सुधारमें भी अपने पड़ोसी जाट आदि जातियोंसे कुछ पीछे नहीं है। सुना जाता है-मेरठ और अम्बाला कमिश्नरियोंके ज़िलोंको मिलाकर दिल्लीका प्रान्त

बड़ा किया जानेवाला है। यह स्पष्ट है कि ऐसे प्रान्तमें सबसे अधिक संख्या जिस जातिकी होगी वह जाट है। दूसरा नम्बर दानत्यागियोंका है। लेकिन यद्यपि जाटोंके सीधेपनके बारेमें इन प्रान्तोंमें वैसी ही कहानियाँ मशहूर हैं, जैसी कि विहारमें अहीरोंके बारेमें (जो कि विहारमे भी संख्याके हिसाब से अधिक सर्वाधिक जाति अर्थात् बाकी किसी भी तीन बहु-संख्यक जातियोंसे अधिक प्रायः ३२ लाख) है। तथापि अब यह वीर जाट जाति वैसी भोली-भाली नहीं है। इन पचीस तीस सालोंमें इनमे बहुत भारी परिवर्तन हो गया है। यों भी तो यह जाति उस हरियाना प्रान्तमें बसती है जहाँ पहले दूध घीकी नदियाँ बहा करती थीं। और अब भी उसमें यह अन्य प्रान्तोसे अधिक है। गायों, भैंसोंके लिए प्रसिद्ध हासी हिसारके ज़िले यही हैं। विचारोंमे परिवर्तन करनेवाली संस्था आर्यसमाजका इनमें अच्छा प्रभाव है। आप यहाँ कितने ही जाट वैदिक हाई स्कूल पावेंगे जो कि इस बातकी पहचान हैं कि जाटोंमें आर्यसमाज कितना घर कर गया है। इन स्कूलो तथा कुरुक्षेत्र मटिंडू आदि गुरुकुलोंने आर्यसमाजके विचारो-को फैलानेमें बड़ा काम किया है। एक तो यह जाति ऐसे ही निर्भीक है, दूसरे इस पर क्षात्र-गुण प्रधान आर्यसमाजकी शिक्षाकी छाप पड़ गई है।

विद्यामें जहाँ अब इस जातिमे संस्कृतके शास्त्रियोंकी कमी नहीं है वहाँ अँगरेज़ीके उच्चशिक्षाप्राप्त भी बहुतायतसे हैं और उनकी संख्या दिन-ब-दिन बढ़ रही है। प्रत्येक जाटमें अपनी सन्तानकी शिक्षा का व्यसन-सा हो गया है। इस अवस्थाका अनुमान पाठक तभी कर सकते हैं यदि वे थोड़ी देरके लिए विहारकी बत्तीस लाख वीर अहीर-जाति में कायस्थ-जाति की-सी विद्या चातुरी भी देखनेमें समर्थ हो। अस्तु, दिल्ली प्रान्त के भविष्य में इस वीर जाट-जातिका बहुत हाथ होगा।

अम्बालासे पश्चिम चलने पर लुधियाना, जालन्धर, अमृतसर शेखपूरा, लायलपुर, स्यालकोट, झेलम, रावलपिंडी, कटक आदि ज़िलो-

में हिन्दुओंकी संख्या इस तरह कम होती चली गई है कि अन्तके ज़िलोंमें तो वह सिर्फ शहरों हीमें रह गई है। रावलपिंडीके जिलेमें सिर्फ कहुटा और कोहमरीकी ही दो तहसीलें हैं जिनमें हिन्दू किसान भी कुछ गाँवोंमें बसे हुए हैं। और यह सभी ब्राह्मण सारस्वत और भूमिहार हैं। इनमें शिक्षाका अभाव है। आम तौरसे हल जोतते हैं, गदहे पालते हैं। सैकड़ों ऐसे भी मिलते हैं जो आजन्म बिना जनेऊके रह जाते हैं। वेष भूषा बिलकुल वही है जो कि मुसलमानों की। मांस और मुर्ग प्रायः ये सभी ब्राह्मण खाते हैं। बाल-विवाह बहुत कम होते हैं। पर्दा का नामोनिशान नहीं। आम तौरसे लोगोंके सामने भी स्त्रियाँ नंगी नहानेसे परहेज नहीं करतीं। नंगी कपड़े धोया करती हैं। इन ज़िलोंके डिस्ट्रिक्ट बोर्डोंमें प्रायः सभी सभासद मुसलमान ही हैं। शिक्षा आदि किसी बातमें हिन्दुओंका वे ख्याल नहीं रखते।

अटक—यह सिन्धुके किनारेका पार्वत्य जिला है। सिन्धुकी धारा अटक बस्तीके पास बहुत ही पतली है। जिस समय एक आदमी अटकके किलेके नीचे सिन्धुके किनारेवाली चट्टानोंपर बैठकर उस पारकी दूर तक फैली हुई पहाड़ियोंपर नजर डालता है तो वह उसे भूतकालके उस स्वप्न-जगत्की ओर संकेत करती है; जब कि सहस्रों हूण, यवन, शक, तुर्क, मुगल जातियाँ इन्हीं पहाड़ियोंको फांदकर पूतसलिला सिन्धुके तटपर पहुँचती थीं। न जाने कितनी बार माता सिन्धुने भारतकी पत रखनेके लिए उनके मार्गमें रुकावट डाली होगी। लेकिन हर बार उसे असफलता ही रही। भारतकी विशृंखलित जनताने चन्द्रगुप्तके बाद कब माता सिन्धुके काममें मदद दी। आज वह अटकनगर भी नहीं है, अब उसकी जगह थोड़े से घर रह गये हैं। रेलने उसे श्रीहत कर दिया। सात सौ हिन्दुओंके घरोंमें अब बारह चौदह ही बाकी रह गये हैं। जहाँ काबुल विजेता मानसिंहने सैकड़ों घर राजपूतोंके बसाये थे, उस मलाही टोलामें आज एक भी हिन्दू नहीं। नदीके किनारेवाले साधुने बतलाया कि पहले यहाँ दो चार

राजपूत हिन्दू थे।

तक्षशिला—तक्षशिला-जकशन के पास यह स्थान रावलपिंडी और हज़ारा ज़िलों की सीमा पर है। यहाँके सभी निवासी मुसलमान हैं। किसी समय प्राचीन गान्धार देशकी यही राजधानी थी। यहींके राजाने महावीर सिकन्दर की आवभगत की थी। लेकिन तक्षशिला का माहात्म्य राजधानी होने में नहीं है। यह प्राचीन भारतके उन ज्योतिस्तंभोंमें थी, जहाँसे विद्याका प्रकाश सुदूर देशों तक फैलता था। गान्धार सन्तान शालातुरेय दाक्षीपुत्र महावैयाकरण पाणिनि को पैदा करनेवाली यही तक्षशिला थी। गोनर्दीय पातंजलि की विद्याभूमि भी यही बतलाई जाती है। भगवान् बुद्धके मुखारविन्दसे अनेक बार तक्षशिला विद्यालयका जिस प्रकार नाम आया है, उससे भी उसका प्राचीन वैभव सिद्ध है। वैसाली (बनिया बसाढ़ ज़िला मुज़फ्फ़रपुर)की अम्बापाली तथा मगधराज बिम्बिसारके पुत्र प्रख्यात चिकित्सक जीवकने इसी विद्यालयमें शिक्षा प्राप्त की थी। कोई समय था जब कि काशिराज ब्रह्मदत्तका पुत्र भी बनारस से चलकर यहाँ पढ़नेके लिए आया था। लेकिन आज यह स्थान उजाड़ और वीरान है। दूर तक जगह जगह भीट मिलते हैं। इन्हे खोद कर पुरातत्त्व-विभागने बहुत-सी चीज़ प्राप्त की है। ये खुदाइयाँ भिड़, सिरसुख, सिरकप, जौलियाँ, माडा-मुरादू आदि स्थानों में हुई हैं। सम्राट् कनिष्क का धर्मराजिका स्तूप अब भी चिडतोपके नामसे मौजूद है। वृद्ध मुसलमान चौकीदारने बड़े चावसे कहा "बुतोंका तोड़ना तो सवाल है। लेकिन हम तो नौकर हैं। इन निकली हुई मूर्तियोंको तोड़नेपर हमारी नौकरी ही चली जायगी।" कितना अफसोस है। जिनके पूर्वजों हीने किसी समय इन सारे सभ्यता-केन्द्रोंको स्थापित किया था। आज वे अज्ञानान्धकारमें पड़े हुए इन चिह्नोंपर कुछ भी गर्व नहीं करते। तक्षशिलाके इन बिखरे हुए विस्मृत चिह्नोंको देखते दर्शकके मनमें अद्भुत भाव पैदा होने लगते हैं।

३--मुलतान

लायलपुर—यह एक नया जिला है, साथ ही इस इलाकेकी आबादी भी बिलकुल तीस साल की है। सारे जिलेमें ओरसे छोर तक नहरोंका ताँता लगा है। जब नहरें न थीं, तो यहाँ या तो जगह जगह बालूके ढेर थे, अथवा जहाँ तहाँ बबूल या दूसरे ऐसे दरख्तोंकी झाड़ियाँ थीं। सचमुच यहाँके गाँववालोंको यह सुनकर बड़ा आश्चर्य होगा, कि बिना नहरोंके भी कोई देश हरा-भरा रह सकता है। इस इलाकेके कुएँ आम तौरसे खारी होते हैं। लोग पीनेके लिए भी नहरों-का ही पानी इस्तेमाल करते हैं; पंजाब-प्रान्तका कृषि-कालेज लायलपुर हीमे है। देहाती किसानोंमें सिक्ख, जाटोंकी संख्या अधिक है। नये अकाली आन्दोलनका भी इनपर बड़ा असर हुआ है, लेकिन इनमें कई एक ऐसे दोष हैं, जिनके हटानेके लिए इस आन्दोलनने कुछ भी नही किया है। ये लोग शराबमें बड़ा रुपया बर्बाद करते हैं। शादियों-में, मेलोंमें इस शराबखोरीके कारण कितनी ही बार खून-खराबी तककी नौबत आती है। अकाली आन्दोलनने वस्तुतः अपने आदमियों-के भीतर घर कर गये इस तरहके कितने ही दोषोंसे जानबूझ आँखें मीची हैं। इससे तो उनका सूर्य मध्याह्नसे नीचेकी ओर जा रहा मा-लूम होता है। अभीसे इनमें भयंकर फूट पड़नी शुरू हो गई है। अस्तु। यह शराबखोरीकी भयकर आदत इस जिलेके किसानोंमें बहुत ज्यादा है। खेती अधिकतर गेहूँकी होती है। पजाबमें जितना मोटर-का रवाज हो गया है, उतना तो भारतके शायद ही किसी प्रान्तमें हो। लायलपुर जैसे तीस सालवाले शहरमें भी इसकी तादात सैकड़ों तक पहुँच गई है। मोटरवाले मामूली फोर्ड की बाडी में घटा-बढ़ाकर बारह सीटकी जगह बना लेते हैं। इनके कारण इक्के ताँगेवालोंकी हालत खराब हो रही है। लक्षण तो बतला रहे हैं कि वह समय दूर नहीं जब वहाँ सिर्फ मोटरें ही मोटरें रह जायँगी।

मुलतान—सिन्ध और सतलजके बीचमे पाँच तहसीलोंका ज़िला है। मुलतानकी गरमी मशहूर है? क्यों न हो? एक समय यहाँके सबसे बडे देवता सूर्य रहे हैं, और यहाँके मुसलमानोके पीर, शम्स (सूर्य) अब भी मशहूर हैं। आधे मार्च हींमें जब कि पजाबके अन्य भागोंमें दिनमें भी सर्दी देखनेमें आती है, यहाँ गर्मीकी मात्रा बढ चली है। ज़िला पहाड़ी भी नहीं है। लेखकने एक मकानकी सरकंडोंकी बनी छत देखी। उसपर बहुत पतलीसी मिट्टी पड़ी हुई थी। उसने अनजाने एक आदमी से पूछ डाला—"यह बरसातके पानीको कैसे रोकती होगी?" "यहाँ उतनी वृष्टि कभी होती ही नहीं। यहाँ तो बूँदाबाँदी होकर रह जाती है।"

मैंने कहा—"ये हरे भरे खेत और बाग़ कैसे हैं?"

उत्तर मिला—"सब नहरों और कुओं की बदौलत।"

यद्यपि वृष्टि इतनी कम है तो भी कुओंमें पानी बहुत नीचे नहीं होता। यहाँके लोग पानीकी क़दर खूब जानते हैं। कुएँ बारहों महीने चलते ही रहते हैं। मुलतान, सिन्ध और पंजाब प्रान्तोंकी सन्धि पर है। इसीलिए यह दोनों से विलक्षण है। यहाँकी पोशाकमें सिंधियोंकी घाघरी, जहाँ एक तरफ़ शामिल है, वहाँ सलवारका भी बिलकुल अत्यन्ताभाव नहीं है। देहाती लोग अधिकाश मुसलमान हैं। कहीं कहीं कुछ हिन्दू खेती करनेवाले मिलते हैं। हिन्दू ज़्यादातर शहरोंमें रहते हैं, और व्यापार तथा नौकरी करते हैं। भाषा न तो पजाबी है, और न सिन्धी। यद्यपि यह सर्दी-गर्मी दोनोंमें हदसे बढ़ा हुआ है, लेकिन लोग अधिकतर अच्छे खासे गोरे होते हैं। शहरोंमें तो अब सभी जगह समीकरण होता जा रहा है; लेकिन देहाती स्त्री-पुरुष खूब लम्बे-चौडे होते हैं। यहाँ के खेती करनेवाले ब्राह्मण, खत्री आदि सभी हिन्दू आमतौर से गदहे पालते हैं।

ऐतिहासिक दृष्टिसे मुलतान एक ख़ास दर्जा रखता है। यहाँ का

सूर्य-मन्दिर एक बड़ा तीर्थ-स्थान था। जैसे और मन्दिरोंके ऐश्वर्य ने मुसलमानोंको बुलाकर अपना सत्यानाश कराया, इसी तरह इसने भी खैवरपारके लुटेरोंको दावत दी। आज मुश्किलसे उस मन्दिर-का निशान मिलता है। इस समय प्रह्लादजीका मन्दिर अधिक प्रसिद्ध है। मन्दिर देखनेसे तो पुराना नहीं मालूम होता, लेकिन उससे लगी हुई गौसपीरकी दर्गाह वह स्थान है, जहाँ शायद पुराना मन्दिर था। दर्गाहकी ईंटें पुरानी हैं। ये दोनों इमारतें उस किले पर हैं, जिसके साथ दीवान सावनमलका अमर नाम सम्बद्ध है। सिक्खोंके राज्यकी बागडोर अँगरेजोंके हाथमें जानेके बाद भी इस वीर हिन्दूने कुछ दिनों तक मुलतानकी स्वतन्त्रता कायम रक्खी। आज इस किले-की ईंटें नहीं हैं, खाइयाँ भी सूख गई हैं। बीच-बीचमें फरास (झाऊ-सा बड़ा वृक्ष) तथा दूसरे वृक्ष उगे हुए हैं।

मुलतानमें हिन्दुओंकी कई अच्छी संस्थायें हैं। भला हो, आर्य-समाजका जिसने एक नई लहर पैदाकर दी। आज पंजाबका शायद ही कोई ऐसा शहर हो जहाँ आर्यसमाजका कोई डी० ए० वी० हाई-स्कूल न हो। यही अवस्था कन्या पाठशालाओंके बारेमें भी है। बल्कि पुत्री-पाठशालायें तो आर्यसमाजका एक आवश्यक अंग-सी बन गई हैं। मुलतानका डी० ए० वी० स्कूल एक प्रसिद्ध संस्था है। अनाथ बालक-बालिकाओंके लिए पास ही एक आर्य अनाथालय भी है। शहरसे चार मीलपर गुरुकुल है, जिसमें १३० लड़के पढते हैं। शहरमें एक सनातन-धर्म स्कूल भी है।

पीछे मुलतानमें जो दंगा हुआ था, उसकी खबर सभीने सुनी है। यद्यपि आज (१९२६ ई०) उस बातको हुए प्रायः तीन साल हो गये, परन्तु अब भी कितने ही मकान हैं, जो जलकर फिर नहीं बने। जली हुई लकड़ियाँ और दीवारें अब भी दिखाई देती हैं। कई एक मन्दिर भी उस समय जला दिये गये थे, जिनमें अधिकांश-का पुनरुद्धार होगया है। अन्य जगहोंकी भाँति, यहाँके भी हिन्दू

स्वभावतः सौम्य हैं। उसपर भी यहाँके हिन्दू ज़्यादा व्यापार या क़लम का व्यवसाय करते हैं। इन सबके ऊपर है फूटका मेवा तथा ऊँच-नीचका भाव। इनकी अपेक्षा मुसलमान अधिक मज़बूत हैं। उनमें धर्मान्धता भी है, और उसपर उन्हें हिन्दुओं जैसी धनी और भीरु जातिसे पाला पड़ा है। लेकिन हिन्दुओंका भी अब समय बदल रहा है। फूट तो यद्यपि उतनी कम नहीं हुई, किन्तु ज़नानापन निकलकर मर्दानगी ज़रूर आरही है, यद्यपि उसकी चाल मन्द है। पिछले दंगे-की एक घटना है। जिस वक्त मुसलमान गुन्डे हिन्दू-मुहल्लोंको जला रहे थे, उसकी खबर सुनकर आर्यसमाजियों ने समझा—वे हमारे मन्दिरको भी जला देंगे—इसलिए लाठियोंके साथ उनमेंसे कितने ही उस गलीमें जमा होगये। गुन्डे आये, लेकिन प्रतिपक्षियोंको देख-कर उनकी हिम्मत आगे बढ़नेको न हुई। गवर्नमेंटने पीछे हिन्दू-मुसलमान प्रत्येक व्यक्तिपर १) (।।।-) + ≋) दो बार) लगाकर वसूल किया, और इस रुपये को क्षतिपूर्ति के तौर पर उन हिन्दुओं को दिया जिनके घर जला दिये गये थे। अब ये बातें पुरानी होती जा रही हैं।

—मुल्तान १९-३-२६

४—देरागाज़ीखाँ

भाषाके विचारसे मुलतान, मुजफ़्फ़रगढ़ और देरागाज़ीखाँ एक प्रान्त है। इनमेंसे मुजफ़्फ़रगढ़ और मुलतानके जिले सिन्धु नदके पूर्व-की तरफ़ हैं, और देरागाज़ीखाँ सिन्धुके पश्चिमकी तरफ़। मुजफ़्फ़र-गढ़ बिलकुल वैसा ही है, जैसा कि मुलतानका ज़िला। शहरोंको छोड़ बाकी सब जगह मुसलमानोंकी आबादी है। गर्मी-सर्दी दोनों ही कड़ाके की पड़ती हैं। सिन्धुके किनारेकी तरफ़ मीलों तक बालूके ऊँचे-नीचे टीले तथा कटीली झाड़ियाँ मिलती हैं, जिनमें जगह-जगह ऊँट चरते हुए दिखाई पड़ते हैं। मकान कच्चे, और उनकी छतें भी

कच्ची होती हैं। पानीके तालाव या झील इस तरफ बिलकुल ही दिखाई नहीं पड़ते।

देरागाजीखाँ—सिन्धुनद और सुलेमान पर्वतके बीचमें यह जिला कोई दो सौ मील तक लम्बा चला गया है। चौड़ाई इसकी ५०-६० मीलसे कहीं भी अधिक नहीं है। सिन्धुकी धार यहाँ बड़ी ही अनिश्चित-सी है। इसके किनारे दस दस मील दूरके लोग भी अपनेको सुरक्षित नहीं समझते। पुराना देरागाजीखाँ एक बहुत ही रम्य तथा समृद्धशाली नगर था। उसे सिन्धुने एक ही बारमें भूतलसे नाममात्रावशेष बना दिया। नया देरागाजीखाँ उससे दस मील और पश्चिमकी तरफ हटकर बसा है। शहर अभी नया है। वृक्षोंकी छायाका अभाव है। मकानोंपर धूल उड़ती-सी मालूम होती है। शहरमें हिन्दुओंकी तादाद काफी है। हिन्दू हाईस्कूल तथा ऐंग्लो संस्कृत (आर्यसमाज) हाईस्कूलके नामसे दो हिन्दुओंके हाईस्कूल भी हैं, साथ ही एक गवर्नमेंट हाईस्कूल भी है। गन्दगी तो पंजाबका खास्सा है। जिन मकानोंके रहनेवाले कपडे लत्तोंमें बडे साफ दिखलाई देंगे, उनके मकानोंकी भी सारी खुली छत पायखानाका काम देती है। शहरोंकी गलियाँ भी गन्दी रहती है। लोग इसकी तरफ बिलकुल ध्यान नहीं देते। वकील, डाक्टर, मोटरवाले तथा दूसरी तरहके व्यापारियोंमें हिन्दू अधिक हैं। हिन्दू अधिक अवस्थामें मुसलमानोंसे श्रेष्ठ हैं। मजदूर पेशा हिन्दू इधर बहुत कम मिलते हैं।

इस जिलेमें भी हिन्दू शहरों हीमें मिलते हैं। वहाँका व्यापार इनके हाथों में है। अब मुसलमानोंका भी ध्यान आकृष्ट होने लगा है। पंजाबमें कृषि कानून बन चुका है, जिसकी वजहसे हिन्दुओंकी कुछ जातियाँ ग़ैर जरायत-पेशा मानी गई हैं और उन्हें जमीन खरीदनेके हक़से वंचित कर दिया गया हैं। पंजाबमें इस तरहके हथियार हिन्दुओं पर बराबर चल रहे हैं। जो क़ानून केनिया और अफ्रीकाके गोरों द्वारा हिन्दुस्तानियोंके लिए बनाये गये हैं, उनकी कोई न

कोई छोटी छोटी शकल यहाँ भी हिन्दुओंके लिए दी गई है। ज़मीन से इस तरह हिन्दू महरूम हुए। अब एक नया क़ानून साहूकारा के बारे में पेश हुआ है। इसके अनुसार हिन्दू—जो रुपयों का लेन-देन बहुत करते हैं—उससे भी हाथ धोयेंगे। स्कूलों में उनके लड़कोंको ज्यादा फ़ीस देनी पड़ती है, ज़मीन वे ख़रीद नहीं सकते। साहूकारों के लिए भी नया अस्त्र तैयार हो रहा है। मुलतान-ऐसे उपद्रवोंमें हिन्दू ही बर्बाद होते हैं, और फिर तावान (क्षतिपूर्ति) का अधिक रुपया भी उन्हींसे वसूल किया जाता है। ये कतिपय उदाहरण हैं, जिनसे विहारी पाठक यहाँकी अवस्थाका अनुमान कर सकते हैं।

हिन्दुओंमें आपसकी फूट भी कम नहीं है।

पंजाबके हिन्दुओंमें शिक्षाका जो प्रचार हुआ है उसमें आर्य-समाजका हाथ प्रधान है। उसने लोगोंकी रुचि हीमें एक भारी परिवर्तन पैदा कर दिया है। दान आदिमें लोग जातीय हितका बड़ा ध्यान रखने लगे हैं। बिहारियोंकी तरह शादी और श्राद्धमें यहाँके लोग उजड़ नहीं जाते हैं। इनकी वजहसे पुरोहित-समाजके लाभमें कमी होनी आवश्यक है। पुरोहित बिहारी पुरोहितोंसे भी अधिक गिरे हुए हैं। यह पुरोहित समाज आर्यसमाजियोंपर भीतर ही भीतर खार खाये हुए बैठा था। आजकल इन लोगों का प्रधान काम आर्य-समाजियोंके खिलाफ़ आग लगाना है। यद्यपि समझदार आदमी इन चालाकियोंको समझते हैं, किन्तु तब भी बहुतसे ऐसे मिल जाते है, जिनपर हिन्दुओंको रसातल भेजनेवाले इस पुरोहित-समाजका जादू चल जाता है। इससे हिन्दुओंकी संघ-शक्ति कमज़ोर हो रही है। बडे अफ़ोसकी बात तो यह है कि जो लोग यहाँ अपने आपको सनातन-धर्मी पुरोहित कहते हैं उनके आचार-विचार, वेष-भूषा ऐसे हैं कि उधर बिहारमें तो कोई अपना लोटा भी उन्हें पानी पीने के लिए नहीं देगा। उदाहरणार्थ यहाँ मुर्ग़ीका मास और अंडा आमतौर पर खाते हैं। जूता पहने हुए वे एक जगहसे रोटी-दाल ले जाकर २० कोस

पर खा सकते हैं। शादी-विवाहोंमें रसोई बननेका भार नाई राजा और उसकी रानी पर रहता है। कहार और नाई आमतौर पर रोटी बनाने वाले बाबाजी इधर हैं। खेती-पेशा ब्राह्मण गदहे और खच्चर आमतौरसे पालते हैं और उनपर चढ़ते हैं। हल चलानेकी तो कोई बात ही नहीं। मुसलमानोंकी तरह हिन्दू भी मूँछकटी हुई दाढ़ी रखते तथा पक जाने पर मेंहदीसे रँगते हैं। हिन्दू औरतें भी मुसलमान स्त्रियोंकी भाँति कितनी ही चाँदी की बालियाँ कानोंमें पहनती हैं, सलवार (एक तरहका पायजामा) और घंघरी भी पहनती हैं। दर असल इधर हिन्दू-मुसलमानकी वेषसे पहचान बहुत मुश्किल है। इन अवस्थाओंमें पाठक स्वयं समझ सकते हैं कि एक बिहारी कट्टर सनातनी इन्हें देखकर कब सनातनी मान सकता है। वह तो साफ कह देगा, तुम तो आर्यसमाजियोंसे भी बदतर हो लेकिन तब भी सनातन धर्मके नामपर ये पुरोहित लोग हिन्दुओंमें फूट डाल रहे हैं। टका तेरा बुरा हो, तू ही इन सब ख़ुराफ़ातोंकी जड़ है। यदि आज आर्य-समाजियोंने लोगोंमें पाठशाला, अनाथालय, स्कूल और कालिजोंके लिये रुपये दान लेनेका न प्रचार किया होता और यह सारा दान पुरोहितों हीकी जेबोंमें जाता तो आज इस विरोधका कहीं पता भी नहीं होता। लेकिन अच्छा यही है कि सभी सनातन धर्मी इस बहकावेमें नहीं आये हैं। अँगुलियों पर नाचने वाले लोग बहुत ही थोड़े हैं।

यद्यपि हिन्दू अब भूमि खरीद नहीं सकते, लेकिन पहलेकी भूमियाँ इनके पास काफ़ी हैं, तो भी ये स्वयं खेती नहीं करते, और लाचार होकर मुसलमान काश्तकारोंको देना पड़ता है। ज़मीनकी पैदावारमें दो तिहाई काश्तकारका होता है, और एक-तिहाई खेतके मालिकका। सरकारी लगान, कुएँकी मरम्मत, सिंचाईका सामान काश्तकारके रहनेके लिए घर — यह सब ख़र्च ज़मींदार के ज़िम्मे है। खेतके मालिकको एक-तिहाई भी नहीं मिलता। एकाध बीघा खेत

काश्तकार को मुफ्त भी देना पड़ता है। इसमें वह तरकारी-भाजी पैदा करता है तथा बैलोंके चारेका इन्तजाम करता है। मजदूर रखकर काम करवानेके लिए गाँवोंमें भी १०-१२ रुपये महीने देने पड़ते हैं। घर जलानेकी लकड़ी तथा तरकारी मुफ्त और जलपानके लिए रोटी भी। इन सारे कामोंके लिए हिन्दू मुसलमानोंपर निर्भर हैं।

इस ज़िलेमें दो अछूत (ओड, और एक और) जातियाँ भी हैं, जिनकी संख्या २०-२५ हज़ार है। आर्यसमाजी उनकी दशा सुधारना चाहते हैं, लेकिन पुराने दकियानूसी ख़यालवाले न सिर्फ़ यही कि कार्यमें सहानुभूति नहीं प्रकट करते, बल्कि उल्टा रोड़ा अटकाते हैं। इन जिलोंके हिन्दू प्रायः सभी महाजनी या दूकानका काम करते हैं। हिन्दुओंमें खत्री, दखिनी (रोडा या अराडो), उत्तराधी (कायस्थ), मोहियाल (भूमिहार ब्राह्मण) ब्राह्मण ही अधिक हैं। वे सभी जातियाँ 'कराल'का काम करती हैं। कराल यहाँ दूकानदारको कहते हैं। बड़े बड़े गाँवोंमे भी एकाध कराल होता है, जिसका अस्तित्व वहाँके नम्बरदारकी कृपापर निर्भर है। एक हिन्दू डाक्टर मुझे एक दिनकी घटना बतलाने लगे। वे किसी रोगीको देखने एक गाँव गये थे। वहाँके मुसलमान नम्बरदारके घरमे कोई बीमार था। नम्बरदारने हिन्दू दूकानदारके पास आदमी भेजा कि जल्दी लोटेमें पानी और मीठा लेकर आओ। दूकानमें गाहकोंकी भीड़ थी और दूकानदार जल्दी न आ सका। इसके लिए नम्बरदारने उसको जूते लगाये और गालियाँ दीं। तारीफ़ तो यह कि दूकानदारका उसके ऊपर हजार-बारह सौका कर्ज भी था।

कब्र-पूजा यहाँ बडे ज़ोरों पर है। मुसलमान औरत मर्द तो करते ही हैं, हिन्दू भी इसमें उनसे कम नहीं हैं। वैशाखी (मेषसंक्रान्ति)-के समय सखी-सख़र पीरकी क़ब्रपर कई हज़ार हिन्दू स्त्री-पुरुष पहुँचते हैं। कोई लड़केके लिए, तो कोई बीमारीसे मुक्त होनेके लिए पहुँचता है। मुसलमान मुजावर (पंडे) सैकड़ोंकी तादादमें वहाँ

पर रहते हैं। हिन्दुओंकी बड़ी दुर्गति होती है। पानीकी कमीकी वजहसे यहाँ पानी बिकता है। भिस्तीके घड़ोंका जूठा पानी पीना यहाँके पुरोहित सनातन-धर्म कहते हैं। हिन्दुओंके मुण्डन और जनेऊ आदि भी ऐसी ही क़ब्रों पर होते हैं।

५—सीमान्त की सैर

भारत मे 'सिन्धु' और 'ब्रह्मपुत्र'—ये दोनों सबसे बडे नद हैं। यद्यपि ये दोनों ही तिब्बतमें पास ही पाससे निकलते हैं, तथापि जहाँ हिमालयके नीचे उतरते ही ब्रह्मपुत्रको आसाम जैसा प्रदेश मिलता है (जहाँ प्रतिवर्ष सैकड़ों इंच वर्षा होती है), वहाँ सिन्धुको हिमालय छोड़नेपर हजारा-जिलासे लेकर सिन्धु-प्रान्त तक (जहाँ कि वह समुद्र से मिलता है) ऐसे देशोंसे होकर गुज़रना पड़ता है, जहाँ कि प्रतिवर्ष एक डेढ़ इंचसे ज्यादा वर्षा शायद ही कभी होती हो। वहाँ वर्षाका जल इतना कम होता है कि छतसे नीचे कभी ही टपकता हो। देहातमें लोगोंके मकान या तो फूसके होते हैं या कच्ची मिट्टीकी छतोंवाले। मुलतानसे मुजफ्फरगढ़ तक, देरागाजीखाँसे देरा इस्माइलखाँ तक, आदमी जिधर देखता है, उधर बालुओं की ढेर वाली भूमि, गर्मीके दिनोंमें, गोंडा ज़िले (यू० पी०) के सरयूके किसी दियारेका स्मरण दिलाती है। बीच-बीच में 'झाऊ' की शकल का 'फराश' वृक्ष भी उसी तरह होता है। इन मरु जंगलोंमें जगह-जगह कितने ही ऊँट भी खुले हुए चरते दिखाई पड़ते हैं। इनके खानेके लिए काँटोंवाले वृक्ष भी मिलते हैं। यद्यपि वृष्टि इतनी कम होती है, तथापि सिन्धु नदकी दयासे दस-पन्द्रह हाथ खोदते ही कुँओंमें पानी निकल आता है। बहुत-से भू-भागोंको सालके छः (गर्मीवाले) महीने नहरें भी सिंचित करती हैं। इन कुओंपर रहट (घटी-यन्त्र) लगे रहते हैं। तेलीके कोल्हूकी तरह जितनी दूरमें चलानेवाले बैलों की जोड़ी घूमती है, उसके ऊपर अकसर फूसकी छत पड़ी रहती है,

जिससे बैलों और आदमियोंको धूपका कष्ट नहीं होता। तेलीके कोल्हूकी तरह इसमें भी हाँकनेवाले आदमीके बैठनेके लिए जगह रहती है। कुएँ प्राय: रात-दिन चलते रहते हैं। इस प्रकार प्रत्येक कुएँके आस पास कई बीघे ज़मीन हरी-भरी दिखाई पड़ती है।

१०० मील चौड़े हिमालयके चरणसे समुद्र-तट तक फैले हुए सिन्धुके आस-पासका भूभाग एक बड़ा ही विचित्र देश है। किसी समय यहाँ आर्योंकी सभ्यताके गढ़ थे। ऋषि लोग पूत-सलिला सिन्धुके तटपर अपने यज्ञ-यागादिका अनुष्ठान करते, वेदोंका गान करते थे।

लेकिन कालचक्र भी कितना प्रबल है। यद्यपि आज भी इस प्रदेश में उन प्राचीन आर्योंकी सन्तान ही बस रही है, तथापि उन्होंने एक ऐसे धर्मका स्वीकार किया है जिसकी वजहसे वे अपने पूर्वजोंको स्वीकार करनेसे इनकार करते हैं। उनके लिए वे आर्य-पूर्वज और उनकी सभ्यताके प्रत्येक चिह्न घृणाकी वस्तु हैं। वे स्वप्नमें भी यह खयाल नहीं करते कि हमारे पूर्वज एक ऐसी सभ्यताके धनी थे— एक ऐसे साहित्यके स्वामी थे, जिसको देखकर सभी निष्पक्ष समालोचक हृदयसे उनका सम्मान करनेको तैयार हैं। यूरोपकी जातियाँ भी तो हैं, जिनके पूर्वज पूर्वकालमें जंगली जीवन व्यतीत करते थे; किन्तु आज भी उनकी सन्तान उन्हें इनकार नहीं करती। लेकिन क्या इस धर्म परिवर्त्तनने, लाखोंके इस्लाम स्वीकार करने पर, इनके जीवनमे किसी प्रकारका सौन्दर्य पैदा कर दिया? नहीं। यह बात तो बिलकुल स्पष्ट ही हो जाती है, अगर कोई आदमी फ़ाहियान और ह्वेनसांगके यात्रा विवरणोंमें इन प्रान्तोंका वृत्तान्त एक बार पढ़कर फिर इन लोगोंको ध्यानसे देखे। जहाँ पाँचवीं-सातवीं शताब्दियोंमें इन प्रान्तोंके निवासी सभ्य, अत्यन्त कोमलस्वभाव, सत्यवादी, विद्याव्यसनी और कलाकौशल-प्रवीण थे, वहाँ आज उनकी सन्तान क्रूर, झूठी, मूर्ख और दुर्व्यसनी देखनेमे आती हैं। इस्लामको शायद गर्व हो कि वह मूर्तिपूजा

जैसी बुद्धि-हीनतापूर्ण पापमयी प्रथाकी जड़ काटनेमें समर्थ हुआ; लेकिन इन प्रान्तोंको एक बार भी देखनेवाला कह सकता है कि इस्लामने कम-से-कम यहांके लोगोंसे मूर्तिपूजा कदापि नहीं छुड़वाई। फ़र्क सिर्फ़ मूर्तियोंके आकारका है। जहाँ हिन्दुओंकी मूर्तियाँ कलापूर्ण, भिन-भिन्न मनुष्यों और जानवरोंकी शकल की थीं, वहाँ इनकी मूर्ति चौकोर, ऊपर स्तूपाकार, तीन-चार-पाँच हाथ लम्बी क़ब्रों का हैं। इनके ऊपर वस्त्र और मिठाइयाँ भी चढ़ती हैं। लोग हाथ भी जोड़ते हैं, प्रार्थनायें भी करते हैं, लड़के-लड़कियाँ भी माँगते हैं, मुंडन भी कराते हैं। काशी-गयाकी तरह सखी-सर्वर आदि क़ब्र-तीर्थों पर भी सैकड़ों मुसलमान पंडे मुजावरके रूपमें हैं, जिनके पास बही-खाते भी हैं और यात्रियोंकी छीना-झपटी भी होती है। ऊँटोंकी तरफ लटकती हुई काठीपर चार-चार स्त्री-पुरुष इन दूर-दूरके तीर्थोंकी यात्रा करते हैं। इनके कण्ठमें विन्ध्येश्वरीदेवीकी भाँति हरे कपड़ेकी चीर बँधी रहती है। इन मुसलमानी तीर्थोंमें हिन्दू भी बड़ी उदारतासे सम्मिलित होते हैं। इनके जनेऊ, मुंडन आदि संस्कार भी अकसर पीरोंके पास सम्पन्न होते हैं।

इधर रेलोंमें यात्रा करते वक़्त अकसर रातको सिपाही आकर आपसे कहता रहेगा—होशियार रहना। चोरी होनेका डर है। मुलतानके पास महमूद-कोटसे रेल सिन्धुका साथ पकड़ती है और तब तक साथ नहीं छोड़ती, जब तक अटकमें पुलसे वह उसके पार नहीं जाती। मियाँवालीके दक्खिन, रेलपरसे, सिन्धुके पश्चिमी तटके पहाड़, क्षितिजपर छोटे काले बादलोंकी तरह, दिखाई देते हैं। मियाँवाली-के बाद पूरबकी तरफ़ भी पहाड़ शुरू हो जाते हैं। इन प्रदेशोंमें शहरोंमें सिर्फ थोडे से हिन्दू रहते और तिजारत करते हैं। देखनेमें भी ये लोग मुसलमानोंसे निर्बल मालूम होते हैं; लेकिन आर्थिक अवस्था इनकी अच्छी है।

पेशावर प्रायः एक लाखकी बस्तीका शहर है, जिसमें सिर्फ नौ

हज़ार हिन्दू हैं। कहने को इधर अँगरेज़ी राज्य है; लेकिन हिन्दुओंके लिए तो यहाँ बिलकुल मुसलमानी राज्य ही है। ऐसेम्बली में सीमा-प्रान्तके सुधार-सम्बन्धी प्रस्तावके पास हो जानेपर तो कितनेही मुसलमान कहने लगे हैं कि हिन्दुओं और सिक्खोंको यहाँसे बोरिया बँधना समेटकर चल देना होगा।

अटकपर सिन्धु नदी पार करके रेल सीमा-प्रान्तमें घुसती है। यहाँ चारों तरफ़ वनस्पति-शून्य पहाड़ ही दिखलाई पड़ते हैं। कई सुरंगोंको पारकर रेल पेशावर-उपत्यकामें पहुँचती है। यह प्रदेश जाड़ेमें बहुत सर्द रहता है। रातके वक्त छतपर थाली में यदि पानी रख दिया जाय तो वह जम जाता है। मिट्टी अधिकतर लाल है। नहरें भी जगह-जगह बहती हैं। अप्रैलके प्रथम सप्ताहमें यहाँकी फसलकी दशा वैसी होती है, जैसी विहारमें जनवरीके प्रथम सप्ताहमें। देहातोंके मकान कच्ची मिट्टीके होते हैं, छतें भी कच्ची मिट्टीकी होती हैं। गाँवोंमें एकाध ऊँची अट्टालिकायें होती हैं, जो अधिकतर मोर्चाबन्दीके खयालसे हैं। वैसे तो यहाँ भी हथियारोंका क़ानून है, लेकिन उनसे सिर्फ़ प्रकट हथियार रखना ही रुक सका है। नहीं तो आग्नेय अस्त्र यहाँ प्रायः सबके पास होते हैं। पेशावरके पासकी भूमि उर्वरा मालूम पड़ती है। इधर बग़ीचे लगानेका बड़ा शौक़ है। दूर-दूर तक बग़ीचे लगे चले गये हैं। इनमें तरह तरहके अंगूर, अनार, नाकँन स-पाती, नारंगी, खूबानी, बादाम, शहतूत आदिके लता-वृक्ष लगे हुए हैं। पेशावरका गन्ना भी बहुत मशहूर है। आमतौरपर दिल्लीसे पश्चिम गँडेरियोंका देश है। पंजाबके सभी शहरोंमें गँडेरियाँ बेचनेवाले वैसी ही अधिकता से मिलते हैं, जैसे पूर्वमें पानवाले। गँडेरियोंके चूसनेका रवाज़ स्त्री-पुरुष सभीमें है। पेशावरमें तो किसान फ़सलके बाद भी अपने-अपने खेतोंमें मिट्टीके नीचे गन्नेको ढँककर उसी तरह हिफ़ाज़तसे रखते हैं, जैसे तम्बोली पानको।

पेशावर शहर स्टेशनसे दूर है। स्टेशनपर उतरते ही पुलिस

पीछे पड़ जाती है और बिना वल्दियत-सकूनत बताये जान नहीं छोड़ती। यात्रीको यही मालूम होता है कि हम एक दूसरे लोकमें चले आये हैं। रातके वक्त स्टेशनसे शहर जाना बहुत खतरनाक है। रात-वाले यात्री पेशावर-छावनीपर उतरा करते हैं। कितनी ही बार ताँगों-के घोड़ोंको गोलीसे मारकर मुसाफिर लूट या पकड़ लिये गये हैं। शहरमें प्रवेश करनेके लिए दरवाज़े हैं, जो रातको बन्द हो जाया करते हैं। हर एक दरवाजेपर पुलिसकी सशस्त्र चौकी है। कईमें एम्बूलेंसका भी इन्तजाम है। सिपाहियोंकी वर्दियाँ पंजाब की सी हैं। सुरक्षाके लिए शहरसे जानेवाली सड़कोंपर भी कँटीले फाटक लगे हुए हैं। रास्तोंकी बगलमें कँटीले तारोंका घेरा है। ये कँटीले तार तीन चार हाथके अन्तरसे दुहरी पंक्तियोंमें हैं, जिनकी बीचवाली फाँक में भी कँटीले तार उलझाये हुए हैं। यह किस लिये? लुटेरे पठानोंसे बचनेके लिए।

पेशावरकी एक लाखकी आवादीमें दस हज़ारसे ज्यादा हिन्दू न होंगे, लेकिन हैं ये बड़े-वडे व्यापारी, साहूकार, ठीकेदार। कुछ दफ़्तरों-मे भी नौकर हैं। सनातन-धर्म-स्कूल और नेशनल (आर्य) स्कूल के अतिरिक्त तीन-चार और भी स्कूल हैं। लेकिन पढ़नेका शौक शहरों ही तक परिसीमित है।

कोहाट—पेशावरसे कोहाट ४० मीलसे कुछ ही ऊपर होगा। दिनके वक्त लारियाँ तथा मोटरें बराबर किरायेपर जाया करती हैं। पेशावरसे दस-बारह मीलके बाद ही खेतोंमें फसल दुर्बल मालूम होने लगती है। बीच-बीचमें सड़कपर मोर्चाबन्द सरकारी सशस्त्र पुलिस-चौकियाँ हैं। सड़क अच्छी है। बीचमें कितने ही गाँव पड़ते हैं। लड़के अच्छे, गोरे तथा हट्टे-कट्टे होते हैं, लेकिन कपडे बहुत ही मैले कुचैले। स्त्रियोंके कपडे रंग-विरंगी गुदरियों के से होते हैं। इन पठानियोंमें बुर्क़ाका पता नहीं। नीचे पायजामा, ऊपर घुटनों तक का घाँघरेदार-सा जामा या कुर्ता होता है और सिरपर ओढ़नी। स्नानकी तरह ही

इनके बाल भी शायद साल भरमे एकाध बार ही धोये-गूँथे जाते होंगे। इन गाँवोंमें गदहे, मुर्गे, कुत्ते ही अधिक दिखलाई पड़ते हैं।

गै॰ इलाका—१६ २० मीलके बाद अन्तिम चौकी मिलती है, जहाँका साइनबोर्ड बतलाता है—

"Trible territory go caretully" यहाँसे स्वतन्त्र सरहदी जातियोंका प्रदेश शुरू होता है। सड़क ऊँचे-नीचे नालोंको पार करती हुई आगे बढ़ती है। खेतोंकी फ़सलकी अवस्था यह है कि जहाँ पेशावर-के पास कमर और छाती तकके गेहूँ थे, वहाँ यहाँ एक बालिस्तके छोटे-छोटे दूर-दूर उगे पौधे हैं। एक बीघेमें मुश्किलसे एक मन अनाज होता होगा। लेकिन साथ ही आबादी कम नहीं। मील भरके भीतर ही सड़कपर दो-दो, तीन-तीन तक छोटे छोटे गाँव मिले। इस प्रदेशमें घुसते ही आदमी बिना बतलाये ही समझ जाता है कि हम किसी दूसरे देशमें आ गये हैं। प्रत्येक गाँवमें सड़कके किनारे पचीसों पठान अपनी-अपनी बन्दूकें लिये रमज़ानके महीनोंमें मिलेंगे। अपनी खेती देखनके वक्त भी पठानके पीठपर बन्दूक ज़रूर रहेगी। बन्दूकोंकी अधिकता इतनी है, जितना लठधर क़ौमोंमें लाठियोंकी भी नहीं। सड़कके पास भी बन्दूकोंके बनानेके कारखाने हैं। मैंने अपन साथीसे पूछा—"ये बन्दूकोंको इतनी अनिवार्यताके साथ क्यों रखते हैं?" उसने मुझे बतलाया—"इनमे आपसमें भी बड़ी दुश्मनी रहती है, जिसकी वजहसे कोई अपनेको सुरक्षित नहीं समझता। देखते नहीं प्रत्येक गाँव में क़िलेबन्दी है; दरवाज़े बडे मज़बूत हैं। जगह-जगह (दीवारोंमें) बन्दूक चलानेके सूराख बने हैं।"

ये जातियाँ बराबर एक दूसरेसे लड़ती रहती हैं। इसीलिए कोई भी आदमी अपनी जानकी ख़ैरियत नहीं समझता। ये लोग लूट-मार करना अपना कर्तव्य समझते हैं, यह बात बड़ी आसानीसे समझमें आ जाती है, यदि इनकी धार्मिक शिक्षा और ऐतिहासिक भावोंके अतिरिक्त हम इनके गाँवोंकी आस-पासकी भूमिको देखें, जिनमें एक

बीघेमें एक मन भी अन्न पैदा होना कठिन है। लूट-मारसे मिले मुफ़्तके मालके कारण परिश्रम करनेमें शायद इनकी तबीअत भी नहीं लगती। यही वजह है, जहाँ इसी उपत्यकामें पेशावरके पास १० मील तक खेती बहुत ही ज़ोरदार दिखाई पड़ती है, वहाँ इधरकी दशा इतनी बुरी है।

कोहाट—ग़ैर इलाक़ेके अन्तमें सड़क पहाड़ियोंपर साँपकी तरह चढ़ती मालूम होती है। इन पहाड़ियोंसे उतरकर थोड़ी ही दूरपर कोहाटका शहर है। इसके पश्चिम और उत्तरकी दिशाओंमें कुछ दूर पर नंगी पहाड़ियाँ हैं। कोहाटमें रेलवे स्टेशन भी है और फ़ौजकी छावनी भी। इस नगरमें आबादी अधिकतर मुसलमानोंकी है। कोई चार हजारके क़रीब हिन्दू होंगे। शहरके भीतर घुसनेके लिए दरवाज़े हैं। पानीके लिए नल लगे हुए हैं। मुख्य बाजारमें हिन्दुओंकी दूकानें अधिक हैं। लेकिन पिछले उपद्रवके बाद अब हिन्दुओंकी वह समृद्धि जाती रही। आज उन भीषण घटनाओंको हुए वर्षों हुए; किन्तु अब भी उसके चिह्न बिलकुल कल से प्रतीत होते हैं—ख़ासकर गदुम-मंडी के आस-पासके महल्ले तथा कराड (हिन्दू) महल्लेकी, जहाँपर अब भी अधिकाश मकान जलकर गिरे हुए हैं। मकानवालोंके पास इतना रुपया नहीं कि उन्हें बनवावें। जो थोड़ा-सा रुपया गवर्नमेंट ने ऋण-के तौरपर उन्हें दिया है उससे उन्हें पहले रोटीका सवाल हल करना है। बिसातख़ाना, मनिहारी, हलवाई, अनाज, कपड़ा आदि की ही दूकानें अधिकतर हिन्दू करते हैं। दो वर्ष ही पूर्व जो हिन्दू लाखोंके मालिक थे, आज वे दूसरोंकी कृपापर निर्भर हैं। जगह-जगह मकानों-के जगलोंमें जली हुई काली लकड़ियोंका टुकड़ा दिखाई पड़ता है। इधर पजाबमें ईंटके मकानोंमें भी लकड़ी बहुत लगाते हैं। केवल लकड़ीकी कड़ियाँ और दरवाज़ोंपर ही सन्तोष न कर छतोंके पाटने तथा मकानके अनावश्यक शृंगारोंके लिए भी बहुत-सी लकड़ी लगाते

पिछले अवतरणमें मैंने पंजाबके पश्चिमी ज़िलों तथा सीमा-प्रान्तके हिन्दुओंकी दुर्दशाका वर्णन किया था। किन्तु वस्तुतः वहाँकी अवस्था इतनी शोचनीय है कि बिहारी पाठक शायद उसका अनुमान भी न कर सकेंगे। यह तो पहले ही बतला चुका हूँ कि इधर हिन्दू अधिकतर शहरों और क़स्बोंमें रहते हैं। और, वहाँ भी वे दस-पन्द्रह सैकड़ेसे ज़्यादा नहीं हैं। हिन्दुओंको सर्वत्र मुसलमानोंकी दयापर ही आश्रित रहना पड़ता है। पेशावर शहरमें भी मुसलमान ताँगेवाले हिन्दुओंको "हिन्दू काफ़िर" कहकर ही साधारणतया सम्बोधन करते हैं।

पेशावरसे रेलकी एक लाइन दर्रा ख़ैबर पार करती हुई काबुलकी सीमाके पास लंडीखाना तक चली गई है। लेकिन अभी गाड़ी लंडी-कोतल तक ही जाती है। वहाँसे सीमा ४-५ मील रह जाती है। पेशावर-छावनीसे दूसरा स्टेशन इस्लामिया कालेज है। मुसलमानी शिक्षा प्रचारके उद्देश्यसे इस कालेजको गवर्नमेंटने स्थापित किया है। शहरसे दूर, बस्तियोंसे दूर, इस कालेज और इसके बोर्डिङ्गकी भव्य और विशाल इमारतें दिखाई पड़ती हैं। यहाँसे दूसरा स्टेशन जमरूद है।

जमरूदमें फ़ौजी छावनी और राजा हरिसिंह नलवाका क़िला है। राजा हरिसिंह, महाराजा रणजीतसिंहके सेनापति थे। सीमा-प्रान्तीय पठान इतने निर्भीक हैं कि उनका लोहा एक तरहसे अँगरेज़ी गवर्नमेंट भी मानती है। वह भी हरिसिंह नलवासे कितना भय खाते थे, यह पठानी माताओंके एक वाक्यसे स्पष्ट होता है। वे कहती हैं, "चुपशो, हरिया रागलें!" (चुप रह, हरि आ रहा है)। सच बात तो यह है कि पठान जितने सिक्खोंके शासनमें शान्तप्रकृतिके थे, उतने अब नहीं हैं। गवर्नमेंटकी पालसी उन्हें कुछ दे-दिवाकर राज़ी रखनेकी है, जिससे उनका उत्साह और बढ़ जाता है। एक मर्मज्ञ पुरुष बतला रहे थे, किस तरह एक पठान मालिक या खान (पठानों

का मतलब) एक तरफ, गवर्नमेंट-कर्मचारीको अपनी खैरख्वाही दिखलाना रहता है और दूसरी तरफ, किसी पर्वतकी आड़में कितने ही सशस्त्र पठानोंको जमा कर रखता है। पीछे साहबसे कहता है—"हुजूर साहब, यही दुष्ट लोग लड़ाई, लूट-पाटके लिए इकट्ठे हो रहे हैं। अब मेरे बसकी नहीं।" साहब किसी तरह अनुनय विनय कर उन्हें शान्त करनेके लिए कहते हैं। अन्तमें कुछ रुपया देकर उन्हें चुपचाप बैठे रहनेका प्रयत्न किया जाता है। आधा रुपया खान की जेबमें जाता है और आधेमें दस-दस, बीस-बीस रुपये औरोंको। इस तरह मुफ्तका रुपया मिले तो कौन परिश्रमका काम करे। इन लोगों-में मर्द सिर्फ शिकार और लड़ाईके काम करते हैं। ये हर वक्त कन्धे पर बन्दूक लटकाये, कारतूसोंकी माला पहने, इधर-उधर घूमते अथवा सोते रहते हैं। घर बाहरका सारा काम स्त्रियोंको करना पड़ता है। वही खेतीका काम करती हैं, लकड़ी काट लाती हैं, पानी भरती हैं, जानवरोंके लिए घास-पात आदि का प्रबन्ध करती हैं।

जमरूदसे थोड़ी ही दूरसे पहाड़ और दर्रा खैबर शुरू होता है। ये सारी पहाड़ियाँ सूखी हैं। वृक्ष कहीं-कहीं, वह भी सूखी कँटीली झाड़ियोंके एक छोटेसे झुरमुट-से दिखाई पड़ते हैं। पत्थरोंमें पुर ने लगानेवाली चट्टान कदाचित् ही दिखलाई पड़ती है। प्रायः १० मीलकी इस खैबर लाइन पर गवर्नमेंट ने, सुना है, साढ़े चार करोड़ रुपया खर्च किया है। ठेकेका काम भी पठानों हीके हाथोंमें दिया गया था। प्रत्येक पठान मज़दूर १) रोज पाता था। इस प्रकार सब मन आनेके बहाने यह छोटी-सी लाइन तैयार की गई है। जगह-जगह पहाड़ी सुरंगोंसे लाइन गई है। कई जगह यह चक्कर काटती हुई समतलपृष्ठ पर पहुँचती है। रास्तेमें खैबरके अन्दर एक पीली मस्जिद है, जिसे अलीमस्जिद कहते हैं। मुसलमानोंमें किंवदन्ती है कि खैबर फ़तह करते हुए हज़रत मुहम्मद साहबके दामाद अलीने यहीं आकर नमाज़ पढ़ी थी। इन पहाड़ियोंमें जगह जगह फ़ौजी चौकियाँ हैं।

लडीकोतलकी छावनीमें गोरखा, राजपूत, गोरा और पंजाबी ये चार पल्टनें रहती हैं। बस्ती अभी नई-सी है। जल कल और बिजलीका प्रवन्ध है। यहाँ बीचमें लम्बी-चौडी मैदानी भूमि भी है। काबुलकी सीमा बिलकुल चार-पाँच मीलके फ़ासले पर है। यह कहनेकी जरूरत नहीं कि धीरे धीरे यहाँकी छावनी एक मज़बूत रूप धारण करेगी। अभी इमारतें अस्थायी हैं। छावनीकी सीमाके चारों ओर कँटीले तारोंकी दोहरी पंक्ति है, जिसके बीचमें उलझाये तारोंकी छोटी-सी दीवार-सी चली गई है। प्रत्येक सडकपर ऐसे ही कँटीले तारोंवाले फाटक लगे हुए हैं। रातको वे बन्द कर दिये जाते हैं। यह सारा प्रवन्ध उपद्रवी पठानोंके डरसे किया गया है। लडीकोतल एक तरह की पहाड़ों-सी घिरी समान भूमिके ऊपर है। इन पहाड़ियोंपर हर जगह फ़ौजी चौकियाँ हैं। लडीकोतलमें पहले सिर्फ़ एक छोटा-सा क़िला ही था, लेकिन पिछली लड़ाईके बाद एक अच्छी छावनी बन गई है। यहाँसे आगे सीमा तटवर्ती लडीखाने तक भी रेलवे-लाइन चली गई है। किन्तु सुरंगें कुछ खराब हो गई थीं, इसलिए अभी रेल वहाँ तक नहीं जाती।

लडीकोतल से चार पाँच मील पहले ही से, सड़क के किनारे, एक छोटी-सी पहाड़ीपर पत्थरका एक बौद्ध-स्तूप है। अभी इसका कोई-कोई भाग सुरक्षित है। किसी समय यह—जो अब दूरसे ईंटों का ढेर सा मालूम होता है—हजारों यात्रियोंका पूज्य स्थान था। दर्रा ख़ैबर पार करते हुए चीनी यात्री फाहियान और ह्यूनचाँग भी यहाँ ठहरे होंगे। अवश्य ही उस समय यहाँ एक संघाराम भी रहा होगा, जिसमें अनेक तपस्वी विद्वान् बौद्ध भिक्षु रहते होंगे। वे अह-र्निश अपने चारों ओर अहिंसा, भूतदया और प्रेमके साथ विद्याकी किरणें फैलाते रहे होंगे। किन्तु कालकी गति भी कैसी विचित्र है! आज उनके वंशज जो किसी समय भारतीय संस्कृतिके गौरवस्तंभ थे, मूर्खता और क्रूरताकी मूर्ति बन गये हैं। जगह-जगह गाँव हैं, उनके आस-पास गेहूँके खेत हैं। गाँवोंमें अलग-अलग घर नहीं दिखाई पड़ते। सभी

एक चहारदीवारीके घेरेके अन्दर हैं। इस चहारदीवारीमें भीतरसे गोली चलानेके लिए छिद्र बने हुए हैं। प्रत्येक बस्तीमें एक या दो ऊँचे-गोले, छोटे कुओंके से मीनार हैं। ये सभी इमारतें कच्ची हैं। मकानोंकी छतें भी कच्ची मिट्टीकी हैं। मीनारों पर खासतौरसे मोर्चे-बन्दी शत्रुओंसे बचनेके लिए की गई है।

ये पठान हर वक्त एक दूसरे से लड़ते रहते हैं। जब इन्हें आपस-में लड़नेका काम नहीं रहता तब इधर-उधर जाकर लूटमार करते हैं, इक्के-दुक्के आदमियोंको पकड़कर ले जाते हैं, उनके हाथोंपर चारपाईका पैर रखकर सोते हैं, नखोंमें फाँस ठोंक देते हैं, सर्दीके दिनोंमें रातों ठंडे पानीमें रखते हैं, इसी तरहके और भी नाना भाँति-के दुख देते हैं। सम्बन्धियोंके नाम पूछते हैं। फिर उनके पास लिख भेजते हैं—'इतने रुपये हमारे पास भेज दो तो हम तुम्हारे आदमीको छोड़ देंगे!' सीमाप्रान्तीय अँगरेजी, गैर-अँग्रेजी दोनों ही पठान सामान्यतः यही लूट-मारका जीवन व्यतीत करते हैं। हिन्दुओंको ही अधिकतर इनका लक्ष्य होना पड़ता है। कोई दस-ग्यारह वर्षका वृत्तान्त है, एक मालदार हिन्दू (जो पेशावर शहरमें रहता था)के घरके सामनेवाली मस्जिदमें बहुत-से खच्चरों और घोड़ोंवाले बाराती आगये। थोड़ी ही देर बाद साहूकारका मजबूत दरवाज़ा तोड़ा जाने लगा। उसमें सफलता न हुई तब सीढी लगाकर ऊपर चढ गये। मकानवाले अपना बही-खाता लेकर छतके ऊपरसे ऊपर ही दूसरे मकानमें चले गये। गलियोंमें डाकुओंका पहरा था। थोड़ी ही देर-में घरका सब माल-धन खच्चरों पर लादकर डाकू रवाना हो गये! पठान वस्तुत. खेती करनेमें मन नहीं लगाते। जो खेती होती भी है उसमें भी उनकी स्त्रियोंका हाथ अधिक है। अधिकतर लूटमार और गवर्नमेंटकी भेंटपर ही गुजर करते हैं। पिछले दिनों जब खैबर-लाइनपर प्रत्येक पठान रोज़, कमसे कम, एक रुपया कमाता था, तब यह लूट-मार बहुत हद तक कम हो गई थी। मैंने एक आदमीसे

कहा—"इन पठानोंके पास साढ़े चार करोड़मेंसे दो करोड़ रुपया जरूर चला गया होगा। वे इससे बहुत दिनों तक सुखी रह सकेंगे।" उन्होंने बतलाया—"यह रुपया अधिकतर तो बड़े-बडे मालिकों-के पास पहुँचा है। वही लाइन बनवानेके ठेकेदार रहे हैं। लेकिन रुपया क्या बहुत दिनों तक रह सकता है? उसको किसी व्यवसायमें तो वे लगावेंगे नहीं। बस, सिर्फ फ़िज़ूल ख़र्च करेंगे। देखते नहीं, ये लोग कितनी मोटरें उड़ा रहे हैं! बराबर कवाब और दावतें उड़ रही हैं। बरस-छः महीने में सब ले-दे बराबर हो जायगा। उसके बाद फिर वही गुदड़ी!"

पिछले दिनों जमरूदके पास दो फ़िर्क़ों में लड़ाई हो पड़ी। मोर्चों से एक-दूसरे पर गोली बरसाने लगे। यह युद्ध कितने ही समय तक जारी रहा। पास ही सरकारी छावनी थी। उनकी गोलियाँ वहाँ तक पहुँचने लगीं। एक-दो सिपाहियोंकी टाँगें भी टूटीं। इसपर ब्रिटिश गवर्नमेंटने दोनों पक्षवालोंमें सुलह करानेका प्रयत्न आरम्भ किया और अन्तमें उनकी प्रथाके अनुसार मुल्लाने दोनोंके बीच-में, सात वर्षके लिए, पत्थर लाकर रख दिया। अब लड़ाई, सात वर्ष-के लिए, बन्द हो गई है। सात वर्ष बाद यह सेतु फिर टूटेगा!

लडीकोतलसे चार मील और आगे, लंडीख़ानेके पास, 'काफ़िर कोट' है। यह जगह एक पहाड़ीपर है। यहाँ बौद्ध कालके पत्थर-मे कटे हुए मनोहर ध्वंसावशेष हैं। आज ऐसी पवित्र जगहोंको जो कभी शत शत यात्रियोंके लिए श्रद्धाका स्थान थीं, उनके ही वंशज मुसलमान "क़ाफ़िरकोट"के समान घृणास्पद शब्दसे स्मरण करते हैं! लेकिन क्या इनकी अवस्था अपने पूर्वज "क़ाफ़िरों" से अच्छी है? इस्लामने इन्हें क्या प्रदान किया है! क्या इस्लामने इनसे बुत-परस्ती (मूर्तिपूजा) हटा दी? वह तो अब भी वैसी ही है। अन्तर इतना ही है कि जहाँ वे पहले छोटी-छोटी मूर्तियोंको पूजते थे, अब चार-चार छः-छः हाथ लम्बी क़ब्रोंको पूजते हैं। भारतमें किसी भी

जगह इतनी क़ब्र-पूजा नहीं है। प्रत्येक गाँवके पास एकाध क़ब्र ऐसी ज़रूर है, जिस पर बहुत-सी लाल, पीली, हरी झंडियाँ फहराती रहती हैं, जहाँ एकाध मलंग (फ़क़ीर) या मुजाविर रहता है। उसका काम भूत, जिन्न दूर करना, गन्डे तावीज़ बाँधना और लड़का-लड़की देना है! सच तो यह है कि अज्ञान और मिथ्या विश्वास यहाँ षोडश-कला-से विराजमान है!

रेलकी सड़क या पक्की सड़कके पास कितनी ही जगहोंमें पानीघर बने हुए हैं। पानीकी इधर कमी है, सड़कोंपर पठान कुलियोंको, बन्दूक पीठपर लटकाये देखकर, आपको आश्चर्य होगा। बन्दूकका जितना रवाज इनमें है, उतना तो कहीं डन्डे सोंटेका भी न होगा! प्रत्येक आदमीके हाथ या पीठपर बन्दूक और गलेमें कारतूसोंका यज्ञोपवीत दिखाई देगा! लंडीकोतलसे पेशावर छावनी तककी रेल मानो इनकी अपनी है! विना टिकटके पठान ड्योढे दर्जेमें बैठे रहते हैं! किस टिकट कलक्टर या स्टेशन मास्टरको अपने प्राणोंसे वैर है जो इन्हें छेड़े! वरावर मौजसे ये सोये-बैठे चले जाते हैं। सड़क छोड़कर बाकी आसपास इन पठानोंका राज्य है। वे कब गवारा करेंगे कि अँगरेज़ उनकी भूमिमें रेल चलावे और उनसे किरायाभी वसूल करें! पहले लंडीकोतलसे पेशावर छावनीका किराया शायद डेढ़ रुपया रक्खा गया था, अब वह नौ आनेकर दिया गया है। लेकिन ये नौ आनेभी पंजाबी या दूसरे देशीही देते हैं। पठानोंकी तो अपने घरकी रेल है!

जमरूदसे थोड़ा आगे चलकर दर्रा खैबर शुरू होता है। उसका मुख्य भाग लंडीकोतलसे कुछ पहले ही समाप्त हो जाता है। यह फ़ासिला १० मीलका होगा। इसके दोनों ओरकी वृक्ष और जलसे हीन पथरीली पहाड़ियाँ अतीतकी कहानियोंको अब भी, गुप्त रूपसे, अपने अन्दर छिपाये हुए हैं। इसी रास्तेसे अशोकके प्रचारक भारत-से पश्चिमकी ओर जाते रहे होंगे। अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित सेनायें, सूर्य-वंश और चन्द्र वंशकी ध्वजायें फहरातीं, इसी चिर-परिचित

मार्गसे निकलकर कम्बोज, गान्धार, पारसीक, वाह्लीकमें फैलती रही होगी। दारा, सिकन्दर, कनिष्क, महमूद, चगेज़, तैमूर, नादिर और अहमदकी सेनाओंने इसी रास्तेसे होकर भारतपर आक्रमण किया था। इसमें भी शक नहीं कि उस समय इन पर्वत-मालाओं-ने हमारी मदद करनेमें कोई भी कसर उठा न रक्खी होगी। किन्तु वे अकेली क्या करतीं, जब कि भारतीय आपसमें कट-मर रहे थे। एक समय था, जब पटनाके चन्द्रगुप्त और अशोकका झंडा "काफ़िर-कोट"की पहाड़ियोंपर लहरा रहा था। उस समय यह भूमि देवताओं-की भूमि थी। हर जगह प्रेम और भूतदया, ज्ञान और विज्ञानका साम्राज्य था; लेकिन अभागे गन्धार! अब तू लुटेरों, हत्यारों, मूर्खों और मिथ्या विश्वासियोंका निवास-स्थान है!

पेशावरसे काबुल मोटर जाती है। लंडीखाना तक अँगरेज़ी सड़कें हैं जो बहुत ही सुन्दर और पक्की हैं। उसके बाद अमीरका राज्य है, जहाँ सड़कें कच्ची और ऊवड़ खाबड़ हैं। अभी मोटरोंसे इस ७०-८० मीलकी यात्राको पूरा करनेमें दो दिन लगते हैं। लेकिन अब अमीरका तरफ़से सड़ककी सर्वे हो रही है। कुछ ही वर्षों में आगेकी सड़क भी पक्की और प्रशस्त हो जायगी। फिर पेशावरसे काबुल सात-आठ घंटेका रास्ता रह जायगा। लोग बडे आरामसे पहुँच जाया करेंगे। पहले काबुलके लिए पासपोर्टकी आवश्यकता न होती थी, किन्तु जबसे काबुल स्वतन्त्र हुआ, तबसे उसका लेना ज़रूरी है और वह मिलता भी बड़ी कठिनाईसे है।

अमीर अमानुल्ला वस्तुतः मुस्तफा कमालके समान काम करनेमें सफल हुए होते, यदि उन्हें भी तुर्कों की सी क़ौम मिली होती। वे बराबर इसी प्रयत्नमे थे कि अफ़ग़ानिस्तानमें विद्या और विज्ञानका खूब प्रचार हो जाय। लोगोंका मिथ्याविश्वास और धर्मान्धता दूर हो जाय। स्त्रियाँ विदुषी हों। सारे अफ़ग़ानिस्तान-निवासी चाहे वे मुसलमान हों या हिन्दू, प्रेमके एक सूत्रमें बँध जायँ।

अफ़ग़ानिस्तानमें पहले जो हिन्दू मुसलमान होता था, उसे राज-कोषसे कुछ पारितोषिक मिलता था, उसकी जज़िया माफ़ हो जाती थी, उसे किसी ख़ास प्रकारकी पोशाक पहननेकी आवश्यकता न रह जाती थी, लेकिन अब तो बात ही दूसरी है। अब हर एक अपने लिए अफ़ग़ान लिखाता है, हिन्दू या मुसलमान नहीं। सबकी एक पोशाक और एक भाषा पश्तो है। जज़िया आदिका नाम नहीं। हिन्दू-मुसलमानोंके पृथक् स्कूल नहीं है, सब एक ही जगह पढ़ते हैं। जर्मनी पढ़नेके लिए गये लड़कोंमें अनेक हिन्दू अफ़ग़ान भी हैं। अमीर हर तरह अपनी हिन्दू प्रजाको समान अधिकार देनेके पक्षमें हैं। फ़ौजी, मुल्की, सभी पदों पर वे हिन्दुओंको भी देखना चाहते हैं। किन्तु अफ़ग़ानिस्तानके हिन्दू अभागे हैं। मूर्खतावश तरह तरहके ढंगोंसे अपने लड़कोंको उन स्थानोंसे हटानेकी कोशिश करते हैं। उधर मुल्ला लोगभी हर वक्त कुफ़्रका फ़तवा देनेके लिए तैयार बैठे रहते हैं। इसी-लिए अमीरको प्रत्येक सुधारमें फूँक-फूँककर पैर रखना पड़ता है। अभी समयकी आवश्यकता है। नई पीढ़ीके सयानी हो जाने भरकी देर है। फिर मौलवियोंका भूत अफ़ग़ानोंके सिरसे दूर हो जायगा। यूरोपसे पहली टोली उधर लौट आवे, इधर स्कूलोंसे नई युवक-श्रेणी निकल जाय, फिर अमीरका हाथ मज़बूत हो जायगा। आज मौलवियों-के विरोधसे, जो कुछ दिनोंके लिए उन्हें कन्या पाठशाला बन्द कर देनी पड़ी, यह नौबत तब न आयेगी। सुशिक्षित और स्वतन्त्र अफ़ग़ानिस्तान एशियाकी बड़ी शक्तियोंमें होगा।

उस तरफ़ काबुलकी तो यह दशा है, लेकिन इधर पंजाब और सीमाप्रान्तकी अवस्था देखें तो आकाश-पातालका-सा अन्तर मालूम होगा। इन प्रान्तोंमें मुसलमानोंका आधिक्य है। वे सब तरहसे हिन्दुओंको कुचलने और अपना ग़ुलाम बनानेका प्रयत्न कर रहे हैं। पंजाबमें ६० फ़ी सदी इन्कमटैक्सकी आमदनी हिन्दुओंकी जेबोंसे आती है। सर फ़ज़ली हुसेनके मिनिस्टर होते ही हिन्दुओं पर विपत्ति-

के पहाड़ टूटने लगे। स्कूलोंमे इन्कमटैक्सके अनुसार पढनेवाले विद्यार्थियोंसे फ़ीस लेनेका नियम बना, जिससे हिन्दुओंको अधिक फ़ीस देनी पड़ने लगी। स्कूलोंकी ग्रांट पहले तो हिन्दू-स्कूलोंको मिलती ही मुश्किलसे है और जो मिलती भी है उसमें उनकी फीस मुजरा कर दी जाती है, जिससे सरकारसे हिन्दू-स्कूलोंको बहुत कम रुपया मिलता है। उधर मुसलमानी स्कूलोंके लिए ख़ज़ाना खोल दिया गया। ग्राट भी आसान और अधिक, फ़ीस कम! शिक्षा-विभागके सभी पदोंसे हिन्दू पृथक् किये जा रहे हैं।

शिक्षामें ही नहीं हिन्दुओंको भूमिसे भी वंचित करनेके लिए पंजाबमें क़ानून है, जिसके अनुसार पंजाबके भिन्न भिन्न ज़िलोंमें कितनी ही जातियाँ ग़ैर-जरायत पेशा (अकृषि-व्यवसायी) मानी गई हैं। ये जातियाँ अपनी जगहोंमें जमीन नहीं खरीद सकतीं। यद्यपि हिन्दू धीरे-धीरे भूमिसे वञ्चित होरहे हैं; वे गाँवोंसे शहरोंमें भागे जा रहे हैं; लेकिन यहाँ भी क्या उन्हें चैनकी नींद नसीब होगी! आज-कल एक नये साहूकारी क़ानूनकी भी बात है। इसके द्वारा हिन्दुओंके इस व्यवसायको भी नष्टकर दिया जायगा! कितने ही हलवाई आदिके व्यवसाय — जो हिन्दुओंके हाथमें चले आते थे—का बायकाट करके अब मुसलमानों ने अपना चलाना शुरू किया है, और उसमें वह काफ़ी सफलता भी पा चुके हैं। सरकारी नौकरियोंसे भी हिन्दू निकाले और मुसलमान रक्खे जा रहे हैं! प्रतिष्ठित मुसलमान मुस्लिम एशोशियेशनों के डेपुटेशन बड़े अधिकारियों तक ले जाकर इस तरह की कोशिशेंकर रहे हैं। हरएक बातमें मुसलमान हिन्दू-मुस्लिम सवाल उठा रहे हैं। बस्तीसे बाहरवाले हिन्दू-मन्दिरों और देव-स्थानोंकी कब ख़ैरियत होगी, जबकि भीतरवाले अक्सर भ्रष्ट कर दिये जाते हैं! हिन्दू स्त्रियों और बच्चोंको बहकानेकी घटनायें सामान्य हो गई हैं। सरकारी, ग़ैर-सरकारी, सभी जगहोंमें उन्हींकी तूती बोल रही है! हिन्दुओंकी जगहोंको क़ब्र या पूजा-स्थानके बहानेसे ज़बरदस्ती दख़लकर लिया

जाता है। अभी हाल हीमें पेशावरमें एक हिन्दूके बागमें रातोरात मस्जिद तैयार हुई थी। ऐसी घटनायें हजारों मिलेंगी। खुले बाजारों-में, पेशावरकी तरफ़, गोमास बेचा जाता है। नौकरी, भूमि, व्यापार सभीसे जिस प्रकार हिन्दू निकाले जा रहे हैं, उससे पता लग रहा है कि हिन्दुओंका भविष्य अन्धकारमय है।

६—पुणछ (पूँछ) राज्य

पुणछ—कश्मीरराज्यके अधीन कई छोटे-छोटे राज्य हैं, जिनमें एक यह रियासत भी है। पुणछका राज परिवार कश्मीर-राज परिवार की शाखा है। भूमि बिलकुल पहाड़ी है। ऊपरी भागकी पर्वत-शृखला सदा तुषाराच्छादित रहती है। पहाड़ अधिकांश हरे-भरे हैं। राजधानी पुणछ (पूँछ) है, जो पर्वतोंकी जड़में पुणछ नदीके तटपर समुद्रतल से ३,३०० फ़ुट ऊपर है। जाडेके दिनोंमें यहाँ बर्फ़ पड़ जाया करती है, लेकिन नदीका स्रोत नहीं रुकता। पैदावार अधिकतर चावलोंकी है, लोगोंका प्रधान खाद्य भी चावलही है। गेहूँ, मक्की आदि अन्न भी होते हैं। जिस तरह कश्मीरमें केसर पैदा होती है, उसी तरह पुणछ गुच्छियोंके लिए मशहूर है। यह कुकुरमुत्ते (छत्ते) की जातिका पदार्थ है। सुखाकर इसे दूर-दूर तक भेजा जाता है। पुणछमें भी सूखी गुच्छियाँ साढे तीन रुपये सेर मिलती है। लाहौर आदि शहरोंमें इनकी दर पाँच छः रुपये सेर तक होती है। पंजाबी तथा कश्मीरी लोगोंकी दृष्टिमें गुच्छियोंकी तरकारी एक खास नियामत है।

लम्बे बालोंवाली बकरियाँ तथा भेड़ें वहाँ बहुत पाली जाती हैं। देश शीतप्रधान है, अत' गर्म ऊनी कपडेकी आवश्यकता पड़ती है। पुणछके किसी-किसी स्थानकी लोइयाँ खासतौरसे प्रसिद्ध हैं। कश्मीर-की भाँति यहाँ भी हिन्दुओंकी सख्या बहुत कम सिर्फ़ ५ फ़ी सदी है। देहातोंमे सिर्फ़ मुसलमानोंकी ही बस्ती देखनेमें आती है। हिन्दू सिर्फ शहरों और बाजारोंमें रहते हैं, और दूकानदारी या नौकरी करते हैं।

पुणछ राज्यकी आबादी ४ लाख है, और क्षेत्रफल प्रायः १ हज़ार वर्गमील। मालगुज़ारीसे आमदनी साढे चार लाख, चुंगीसे ढाई लाख, जंगलोंसे तीन लाख और स्टाम्पसे ६० हज़ार है। वर्त्तमान राजवंश तभीसे स्थापित है, जब महाराज गुलाबसिंहने पंजाबके सिक्खोंके हाथसे निकल जाते वक्त अँगरेजोंके हाथसे कश्मीरको खरीदा। पहले पुणछको जागीरके तौरपर कश्मीरके महाराजने अपने भाईको दिया था, किन्तु अब यह एक अधीन रियासतके रूपमें परिणत हो गया है। जिस प्रकार ब्रिटिश गवर्नमेंट देशी रियासतोंपर निगाह रखती है, वैसे ही कश्मीर-राज्य इसपर निगाह रखता है। इसके अतिरिक्त राजाका प्राइवेट सेक्रटरी तथा एडवाइज़र (परामर्शदाता) एक अँगरेज़ है, जो ब्रिटिश गवर्नमेंटके पोलिटिकल विभागका आदमी है।

उपज—फ़सल अधिकतर चावल और मक्कीपर अवलंबित है। गेहूँ, माठ आदि भी उत्पन्न होता है। गुच्छियाँ खासकर प्रसिद्ध हैं। देवदार, दयार और चीड़की लकड़ियाँ बहुत पाई जाती हैं। मकानोंमें लकड़ी और पत्थरका इस्तेमाल होता है। पुणछ शहरमें राजमहल तथा दूसरे मकानोंकी छतें भी टीनकी हैं। गर्मीके दिनोंमे भी ठंडा होनेके कारण टीनके तपनेका डर नहीं है। पहले यहाँ लोहा निकाला जाता था, किन्तु अब यह व्यवसाय बन्द हो गया है। कोयले, सीसे, ताँबेके भी होनेका पता मिलता है, किन्तु उनपर काम नहीं होता।

भाषा, वेष-भूषा—भाषा जम्बूवाली डोंगरी, वेष-भूषा प्रायः पंजाबी है। पुरुषोंकी पोशाक पायजामा (सलवार नहीं), कमीज़, कोट, साफा है। स्त्रियाँ चूड़ीदार पायजामा, कमीज़ और ओढनी पहना करती हैं। स्त्री-पुरुष दोनो ही समानभावसे जूता पहनते हैं। पंजाबकी भाँति यहाँ भी गलियों, छतों, वर्तनों आदिकी सफ़ाईपर बहुत कम ध्यान दिया जाता है। देहाती लोग बडे गन्दे कपड़े पहनते हैं।

पुणछ-राज्यमें हिन्दुओं और सिक्खों दोनोंकी संख्या प्रायः बराबर है। सिक्ख अधिकतर ब्राह्मण-जातिके हैं, और खेतीका काम

करते हैं। कहीं-कहीं नौकरीके लिए आये हुए कश्मीरी ब्राह्मण भी पाये जाते हैं। मुसलमानोंमें अधिक सख्या सुद्धन (जो ब्राह्मण थे), मंगराल (राजपूत), चिव (राजपूत), गूजर आदि की है। ये कट्टर मुसलमान हो गये हैं, किन्तु तो भी अभी जातिपाँति मानते हैं, और अपनेसे नीची जातिको लड़की नहीं देते। गूजरोंमें स्त्रियोंके नाम कहीं-कहीं लक्ष्मी आदि भी पाये जाते हैं।

७—कश्मीर

(क)

भारतवर्षका स्वर्ग कश्मीर हिमालयकी पर्वतमालाओंके मध्यमें अवस्थित है। कश्मीरकी आबादीमें ९५ फ़ी सदी मुसलमान और ५ फी सदी हिन्दू हैं। हिन्दुओंमें वे हिन्दू भी शामिल हैं जो महाराज रणजीत-सिंहकी कश्मीरविजयके बादसे अब तक आकर बसते रहे हैं। ये आगन्तुक लोग सैकड़ों वर्षसे यहाँ आ बसे हैं, तो भी भाषा और वेष-के विचारसे अभी तक कश्मीरी नहीं हुए। कश्मीरमें पंजाबसे आकर बसनेवाले सिक्खोंमें मोहिपालो (भूमि-हारो)की संख्या पर्याप्त है। ये लोग साधारणत ग्रामोंमें रहते हैं और खेतीका काम करते हैं। मुसलमान १३ लाख हैं, और कश्मीरी ब्राह्मण ५५ हजार के करीब। मुसलमानोंमें थोड़ोंको छोड़कर बाकी सभी उन कश्मीरी हिन्दुओंकी सन्तान हैं जो मुसलमानी शासन कालमें जबरदस्ती मुसलमान बनाये गये थे। कश्मीरी हिन्दू मुसलमान दोनोंकी पोशाक एक लम्बा चोगा है, जो कुर्तेकी तरहका होता है। बाँह कुछ चौड़ी और ज़रूरत से अधिक लम्बी होती है। सर्दीसे बचनेके लिए हाथोंको इसके भीतर किया जा सकता है। स्त्रियों और पुरुषोंके चोगेमें कोई भेद नहीं। पुरुष सिरपर कुलाहके साथ पगड़ी (साफा) बाँधते हैं। स्त्रियाँ भेड़के बालोंको साथ मिलाकर केशोंकी अलग-अलग रस्सियाँ बटकर पीठ पर छोड़ देती हैं। सिरपर साधारणतया एक छोटी सी चादर रखती हैं, जो

पीठपर लटकती रहती है। कोई-कोई चादरके नीचे टोपी भी रखती हैं। पंडिताइनोंकी चादरके नीचे सिरसे पैरोंके पास तक कपड़ेकी पतली चिट-सी लटकती है, तथा ये लाल या किसी और रंगके कमरबन्दसे कमर भी बाँधे रहती हैं। पैरोंमें जूता या चप्पल होती है।

कश्मीरी मकान नैपाली मकानसे बहुत कुछ मिलते हैं। ये तीन तल्ले चौतल्ले होते हैं। ग्रामोंमें इनकी छतें फूसकी भी होती हैं, किन्तु शहरों और कस्बोंमें लकड़ीकी टाइलें इस्तेमाल की जाती हैं, नीचे भोजपत्रकी तहें भी अकसर दी जाती हैं। इन छतोंपर प्रायः लम्बी-लम्बी घास सी उगी हुई देखनेमें आती है। शहरोंमें धनिक लोग अब टीनका भी प्रयोग करने लगे हैं। देवदार, दयार, चीड़ आदि लकड़ियोंकी यहाँ इफ़रात है। मकानोंमें भी लकड़ीका काम अधिक है। दीवारोंके ढाँचेमें भी लकड़ीका भाग अधिक होता है। छतें और पटाव केवल लकड़ियोंके होते हैं। लकड़ियोंमें खुदाई और फूल पत्ती-का काम भी अच्छा देखनेमें आता है। कश्मीरी गलियाँ बड़ी गन्दी होती हैं। कश्मीरी लोग गन्दगीमें तिब्बती या चीनी लोगोंसे शायद थोड़े ही कम होंगे। इनकी गलियोंमें नाकपर कपड़ा दिये विना जाना बहुत ही कठिन है। कश्मीरी पंडितोंमें शिक्षा अधिक है, किन्तु वे भी घरोंमें पायखाने बनानेकी आवश्यकता नहीं समझते। गलियाँ और आँगन ही पायखानेका काम देते हैं।

कश्मीरी ब्राह्मण—जैसा कि ऊपर कहा गया, इनकी संख्या ५५ हजार है। शिक्षामें ये बहुत बढे-चढे हैं। ग्रेजुएटों की संख्या भी अधिक है। बंगालियों की भाँति कश्मीरी ब्राह्मण क्लर्की तथा दूसरी नौकरियोंके पीछे मरते हैं, व्यापार और दूसरे श्रमवाले व्यवसायोंकी ओर प्रयत्न नहीं करते। यही कारण है, जो अब इनमें बेकारी बहुत बढ़ चली है। ग्रेजुएट बीस-तीस रुपयेकी नौकरियोंके लिए मारे मारे फिरते हैं। छोटी अवस्थाकी लड़कियोंकी शादीका रवाज है, इसकी

वजहसे विधवाओंकी संख्या भी बढ़ रही है, और विधवा विवाहकी प्रथा न होनेसे गर्भपात आदिकी संख्या भी बढ़ रही है। शहरके बाहर रहनेवाले कितने ही ब्राह्मण विवाहके बिना भी रहने पर बाध्य हो रहे हैं, जिसके फलस्वरूप कुछ केवल विवाहके लिए मुसलमान भी हो गये हैं। युवती विधवाओंके कारण समाजमें गन्दगी बहुत फैल रही है। युवक कश्मीरी ब्राह्मणोंमें कुछ विधवा विवाहके भी पक्षपाती हैं, किन्तु अभी विरोधियों की संख्या अधिक है। ब्राह्मण पिछली मनुष्य गणनामें बड़ी कठिनाईसे अपनी संख्या यथा-पूर्व कायम रख सके हैं। एक शिक्षित ब्राह्मणका कहना है कि विधवाओं और अविवाहितोंमें असन्तोष तथा इस्लामकी ओरका प्रलोभन अगली मनुष्य-गणनासे हमारी संख्या घटाना शुरू करेगा। अपनी जातिकी अवस्थापर अफसोस करते हुए उन्होंने कहा था—हमारे लोग न आदिम जातिके हैं, न आधुनिक जातिके, न ईमानदार, न बेईमान, न धर्मात्मा, न अधर्मी अर्थात् यह जाति ही बिलकुल अनिर्वचनीय है। उनको यह बड़ी शिकायत है कि हमारी जातिमें विश्वासघात का अंश बहुत अधिक है, उन्होंने इसका उदाहरण दिया। एक पंडितने लिखकर एक पतित ब्राह्मणको शुद्धिकी व्यवस्था दी, किन्तु अब कह रहा है कि यह मेरी व्यवस्था नहीं। कश्मीरी ब्राह्मणके लिए खतरेका घंटा बज चुका है।

लोगोंका प्रधान खाद्य चावल (भत्ता) और मूँगकी दाल है। मैथिल ब्राह्मणोंसे आहार और विद्या-बुद्धिमें ये लोग बहुत अधिक मिलते हैं। इनमें भी शक्ति-उपासनाके साथ-साथ पंचमकारी वाममार्गी भी पाये जाते हैं। यद्यपि ये लोग एकान्तमें स्वयं मद्यसेवन करते हैं, किन्तु बाहर समाजके चौधरी भी हैं। चौका-धर्म यहाँ भी है, किन्तु बिहारसे यहाँ कुछ अन्तर है। भात दालको बनाकर एक टोकरीमें रखके ऊनी कपडेसे लपेट उसे लकड़ीमें लटकाकर मुसलमान नौकर-के हाथ भेजा जा सकता है। पानी भी मुसलमानका भरा पिया जाता है। बर्तन भी मुसलमान नौकर साफ कर सकता है। ध्यान इस बात-

पर दिया जाता है कि उसका हाथ स्पर्श न करे। ऊनी कपड़ेको लपेट कर छूनेमें कोई हर्ज़ नहीं।

आप किसी कश्मीरी ब्राह्मण मित्रके पास जायें तो आपकी चाय-से खातिर की जायगी। इस तरहके उष्ण पेय पदार्थोंके तैयार करने-के लिए कश्मीरियोंने एक नये प्रकार के बर्तनका आविष्कार किया है, जिसे समावर कहते हैं। आजकल समावरके नामसे यह यूरोप तक के सर्द प्रदेशोंमें फैल गया है। इसके बीचमें एक नली कोयला डालने की होती है, जिसमें निचले भागके छोटे छोटे सुराखोंसे हवा आनेका रास्ता होता है। नलीके चारों तरफ़के बर्तनमें पानी और चायकी पत्तियाँ डालकर बन्द कर दिया जाता है। पीनेसे पूर्व चीनी और इलायची, सोंठ, दालचीनीका चूर्ण डाल दिया जाता है। दूध डालने तथा चायको छानकर पीनेकी प्रथा नहीं है। छोटी छोटी फूलकी कटोरियाँ आपके सामने आयेंगी किन्तु खबरदार आप नंगे हाथोंसे मत उठावें, अन्यथा आपके आचारपर सन्देह किया जायगा। आप उसे कपड़ेसे पकड़ें! खानेके लिए यदि कुलचोंकी टिकियाँ आवें तो उसे भी कपड़ेसे पकड़कर खायें। कपड़ा चाहे साल भरसे धोबीके घर न गया हो, कोई परवा नहीं; हाथका साक्षात् स्पर्श सर्वथा निषिद्ध है। उसी फ़र्श पर यदि मुसलमान भी बैठा हो तो भी चाय या पानी पिया जा सकता है। वस्तुतः यदि कश्मीरी ब्राह्मणोंके धर्मको चौका-धर्म न कहकर वस्त्र-टोकन-धर्म कहा जाय तो अच्छा।

(ख)

कश्मीरके पुराने इतिहासकी कुछ कहावतें भी सुननेमें आती हैं। पुराने समयमें श्रीनगरमें एक हिन्दू राजा था। उसकी रानी बहुत ही सुन्दर तथा प्राणोंसे प्यारी थी। किसी समय उनके देशपर हिन्दुस्तानकी तरफ़से चढ़ाई हुई। राजा स्वयं सेनाको लेकर मुक़ाबिलेके लिए गया। रानी नित्य देव मन्दिरमें अपने व्याससे कथा सुना करती थी। एक दिन व्यासका शरीर कुछ अस्वस्थ हो गया। उनको सिर्फ़ एक ही

मन्त्रीसे पूछनेपर ज्ञात हुआ कि उसके वियोगको न सहकर रानीने अपने शरीर को छोड़ दिया । राजा यह सुनकर बहुत ही शोकाकुल हुआ। किन्तु धीरे-धीरे वह शोक भी जाता रहा। एक समय जब भेस बदलकर राजा नगरमें घूम रहा था तब उसने रुष्ट हुई धोबिनके मुँहसे अपने पतिके लिए यह शब्द सुने—"जाओ, परवा क्या है! तुम न रहोगे तो दूसरेके साथ आनन्द करूँगी और फिर आगमें जल-कर स्वर्ग चली जाऊँगी।"

राजा उस दिन यह बात सुनकर चला आया। दूसरे दिन उसने धोबिन-धोबीको दरबारमें बुलाया। भय दिखानेपर उन्होंने रानी-की सच्ची कथा कह सुनाई। उसकी तसदीक मंत्री और दूसरोंको भी करनी पड़ी। कहते हैं, इस पर राजाने दोनों पंडितों को बुलाया। दोनों शास्त्रोंकी दुहाई देकर अब भी अपनी बातोंपर अडे थे। राजाने असली तत्त्व पा लिया, और तबसे वह शास्त्रोंसे घृणा करने लगा। उसने अपनी सेनाके साथ छापा मारकर नगरके सभी पंडितोंके घरोंसे पुस्तकें निकाल लीं। जब जलमें उन्हें फेंकते फेंकते उसने समझा कि उसका पानी ख़राब हो जायगा तब कहते हैं, उसने रैनावाडीसे निशान तक एक खन्दक खुदवाई और उसीमें सारे ग्रन्थोंको दफन करा दिया।

अन्तिम हिन्दू राजाके समयमे लद्दाखसे एक आदमी कश्मीर आया। वह अपनी प्रतिभा और वीरतासे धीरे-धीरे प्रधान सेनापति हो गया। उसी समय बाहरके किसी शत्रुने कश्मीरपर आक्रमण किया। उधर तो सेनापति सेनाके साथ मुक़ाबिलेके लिए गया, इधर ज्योतिषियों-से अनिष्ट-फलकी व्यवस्था सुनकर राजा वैरागी हो महलोंसे निकल गया। सेनापति रिन्‌चन्‌ने लडकर शत्रुको परास्त किया। जब लौटकर राजधानीमें आया तब देखता है, राजा नदारद। पीछे वह स्वयं गद्दी-पर बैठा। अब तक रिन्‌चन्‌ने कोई धर्म नहीं माना था। अब उसने पंडितोंको बुलाकर कहा कि हमको अपने धर्ममें लो। धर्मभीरु पंडितों-

ने कहा कि गदहा घोड़ा नहीं हो सकता। आप हिन्दूके घरमें पैदा नहीं हुए, अत. हिन्दू नहीं हो सकते। राजा बहुत दिनों तक अनुनय विनय करता रहा, किन्तु ब्राह्मणोंने एक भी न सुनी। अन्तमें राजा ने एक दिन कह दिया—"कल सवेरे जिस आदमीको मैं पहले देखूँगा उसीका मजहब स्वीकार करूँगा।" दूसरे दिन राजाके सम्मुख सबसे पहले जो आदमी गया वह बुल्बुलशाह था। रिन्चन् ने इस्लाम स्वीकार किया। बुल्बुल ने सिखलाया और ब्राह्मणोंके बुरे बर्तावका स्मरण हो आया। फिर क्या था रिंचनशाह ग़ाजी बन गया। उसने एक एक करके कश्मीरके सभी पुराने मन्दिरोंको तोड़वाया। हिन्दुओं-को जबरदस्ती मुसलमान बनाना आरम्भ किया। यह बात उसकी सन्तान ने भी जारी रक्खी। इसका फल यह हुआ कि अधिकाश हिन्दू मुसलमान हो गये, उनकी सन्तानें आज भी पूछनेपर अपनेको वट (भट्ट), गूजर, जाट, राजपूत कहती हैं।

१३३९ ई०मे कश्मीरमें इस्लाम-धर्मकी दृढ पताका स्थापित हो गई। ब्राह्मणोंमें सिर्फ ग्यारह परिवार बाकी बच गये थे। उसके बाद सुल्तान जैनुल-आबेदीन (१४२०–७० ई०)के प्रशान्त शासन काल मे कुछ ब्राह्मण बाहरसे भी आये, जिनमें कौल-वश मिथिला (दरभंगा) से आया। इसके प्रमुख महेश्वरनाथ कौल थे। दरबारके प्रमुख गिरिजा दत्त एलिचपुर (बरार)से आये। नवागतोंका नाम बानमासी पड़ा, और पूर्वनिवासी मलमासी हुए। मलमासी लोग चान्द्र मासके मानने वाले थे, और बानमासी सौर मासके। किन्तु दोनों प्रकारके परिवारों-का आपसमे खाना पीना, शादी विवाह होता रहा। इसी सुल्तानके समय ब्राह्मणोंने फ़ारसी पढना शुरू किया और उन्हे राजपद भी मिलने लगे। कश्मीरी पडितों (ब्राह्मणों)में १३३ गोत्र हैं। प्रथम सिर्फ ६ ही थे अर्थात् दत्तात्रेय, भारद्वाज, गौतम, मौद्गल्य, उपमन्यु और धौम्य। कुछ लोगोंका कथन है कि कश्मीरी पडित यवन (यूनानी) और पारसी हैं, और कश्मीरमें आकर बस गये हैं।

मुसलमानी समयमे बड़शाह नामक कश्मीरका एक बादशाह था। आरम्भमें उसनेभी हिन्दुओंपर ब त्याचार किया, किन्तु पीछे उसके विचारोंमें भारी शान्ति आ। लोग कहते हैं कि शान्ति नहीं आई, बल्कि बडशाहके मुर्दा शरीरमें एक हिन्दू योगी प्रविष्ट हो गया। उस समय हिन्दुओंके साथ बहुत अच्छा बर्ताव होने लगा। उसीके समय शुभकार्यमें ब्राह्मणोंको मुसलमानका मुख देखने का नियम बना। अब कश्मीरी पंडित उसे अपने धर्ममें गिनने लगे हैं। मुसलमान भी यज्ञ-यज्ञोपवीत सुनते ही ब्राह्मणके दरवाज़े पर पहुँच जाते हैं। मूर्तिरहित बड़शाहका मन्दिर आज भी श्रीनगरमे मौजूद है।

(ग)

कश्मीरकी राजधानी श्रीनगर है। इसकी जन संख्या सव लाखके क ीब है। यह समुद्र तलसे पाँच हज़ार फुट ऊपर है। गर्मीके दिनोंमे भी ऊँचाईके कारण यहाँ गर्मी नहीं मालूम होती। बल्कि वर्षा—जो कि यहाँ बराबर होती ही रहती है—के समय तो काफी सर्दी पड़ने लगती है। जाडेमें छत, आँगन, सड़कें सभीपर बर्फ़ पड़ जाती है। चारों तरफ़ देशी चीनीके ढेरकी तरह सफ़ेद ही सफ़ेद बर्फ़ दिखलाई देती है। उस समय सर्दी बहुत बढ़ जाती है। उ से रक्षा पानेके लिये लोगोंको अधिक गर्म कपड़ोंकी ज़रूरत पड़ती है। इसके लिये प्रत्येक कश्मीरी अँगीठी (काँगड़ी) अपने पाससे पृथक् नहीं करता। दूकानदार अपनी दूकानमें, नाविक अपनी नावमें, बाबू अपने आफ़िस-में अमी अपने सोफेमें, काँगड़ी लिये बैठे रहते हैं। यह काँगड़ी बड़ी हलकी और सुन्दर बनी रहती है। बीचमें एक छोटा-सा मिट्टीका बर्तन और उसके चारों तरफ़ ल्विङ्, बीरी, या तूतकी पतली शाखाओं की बुनावट होती है, जिसमें हैंडिल भी लगा रहता है कश्मीरी पुरुष और स्त्री, हिन्दू मुसलमान सभी लम्बे चोगे पहनते हैं। सर्दीके वक्त आम रास्तोंमे स्त्री पुरुषोंको चोगेके अन्दर काँगड़ी लिये हुए जाते देखेंगे। जाडेके दिनोंमें डल (झील)के किनारे कुछ जल जम जाया करता

है। कभी-कभी झीलपर बर्फकी मोटी तह जम जाती है, जिसपर शौकीन लोग स्केटिंग भी करते हैं। श्रीनगरमें आगन्तुकोंको कुछ विचित्र वृक्ष दिखाई देंगे। ये हैं सफेदा, चनार और वीरी। मीलों तक सड़कके किनारे लम्बे-लम्बे सफेद छालवाले वृक्षोंकी पंक्ति दिखाई पडेगी। यही सफेदे हैं। इनमें शाखायें मोटी मोटी नहीं फूटतीं। जो फूटती भी हैं, वे तनेके साथ बहुत छोटे-से कोणपर फूटती हैं, जिसकी वजहसे जड़ हीमें नहीं, ऊपर भी वृक्ष एक पंक्तिमें दिखाई पड़ते हैं। इस वृक्षमें सिर्फ यही गुण नहीं है कि इससे सड़ककी शोभा बढ़ जाती है, बल्कि यह लगता भी बड़ी आसानीसे है। किसी भी छोटी-सी हरी शाखको गीली भूमिमें लगा दीजिये लग जायगी। लकड़ी भी मैदानी कई वृक्षों से अच्छी होती है, यद्यपि वह दियार या देवदारका मुकाबिला नहीं कर सकती।

कश्मीर यदि भारतवर्षका स्वर्ग है, तो चिनार यहाँका कल्पवृक्ष है। यदि कहीं इसमें फल लगता तो सोने में सुगन्धि हो जाती। यह वृक्ष सैकड़ों फुट ऊँचा, और दूर तक अपनी शाखाओंको फैलाये बहुत ही सुन्दर मालूम होता है। इसके पत्ते और फूल दोनोंही पेड़में मिलते हैं। सरोंकी भाँति इसकी शाखायें नीचेसे ऊपरकी तरफ कम लम्बी हो जाती है। ऐसी सुन्दर छाया भारतवर्षमें और किसी वृक्षकी नहीं होती। लकड़ी भी इसकी बहुत अच्छी होती है, किन्तु कश्मीरमें यह राजवृक्ष है। कोई चिनार वृक्षको काट नहीं सकता। सूख या टूटकर गिर जानेपर भी वह लकड़ी महाराजके लिये जाती है। चिनारका कोयला धधक जानेपर आग कई घण्टों बनी रहती है। सार्वसाधारणके भाग्यमें उसका कोयला कहाँ बदा है? जाडेके पहले जब वृक्षोंके पत्ते गिर जाते हैं तब लोग जाडेके लिये पत्तोंको इकट्ठा करके घरोंमें रख लेते हैं। कहते हैं, चिनारके पत्तोंकी आग भी देर तक ठहरती है। चिनारकी भाँति ही तूत भी राजवृक्ष है। इसे रेशमके व्यवसायके लिये सुरक्षित किया गया है। वीरीके वृक्ष कश्मीरियोंके बडे

कामके हैं। कश्मीरी कहते सुने गये हैं कि यदि कोई आदमी इस वृक्षके नीचे सोये तथा उसकी दातुन करे तो बीमारी उसके पास नहीं आ सकती। खैर, यह तो उसका रोचक माहात्म्य है, लेकिन इसमें शक नहीं कि यह बडे कामका वृक्ष है। कश्मीरी उपत्यकामें श्रीनगरके पास दूर तक पानी ही पानी दिखाई देता है, कश्मीरी लोग इस सबको डल कहते हैं। इस पानीका भी ये लोग कई तरहसे उपयोग करते हैं। एक तरफ़ इसमें उगी हुई घासोंके ऊपर सिवार डालकर पतले-पतले खेत बनाते हैं, जिनपर मिट्टी डालकर तरह-तरहकी साग सब्जी बोते हैं। दूसरी तरफ़ डलसे उन्हें हजारों मन सिंघाडा और कमलकी जड़ें मिलती हैं। भसिंड या कमलकी जड़के कई तरहके साग बनाये जाते हैं। इनके साथ ही थोडे-थोडे पानीमे हज़ारों बीघे वीरीके वृक्ष लगे हुए हैं। सफ़ेदेकी भाँति इसकी भी शाखायें आसानीसे लग जाती हैं। इसकी नई निकली हुई पतली शाखायें प्रतिवर्ष काट ली जाती हैं, इससे तरह-तरहके खूबसूरत कुर्सियाँ, मेज़, टोकरियाँ आदि बनाई जाती हैं। इसकी लकड़ीके क्रिकिट बैट आदि भी बनते हैं।

बादशाही ज़मानेमें यह सिर्फ़ शाही परिवारके ही भाग्यमे था। गर्मियोंके दिनमें कश्मीरकी स्वर्गभूमिमें उसके चश्मों, उसकी झीलों, उसके सेब, अंगूर खुबानीके बगीचोंमें वे स्वर्गीय आनन्द लूटते थे। किन्तु आज उस आनन्दको बहुत आदमी भोगनेमें समर्थ हुए हैं। जबसे रावलपिंडीसे श्रीनगर तक मोटर हो गई है तबसे और आसानी हो गई है। प्रतिवर्ष हज़ारों आदमी गर्मियोंमें भारतवर्षके ही भिन्न भिन्न भागोंसे ही नहीं, बल्कि यूरोप अमेरिकासे भी कश्मीर देखनेके लिये आया करते हैं। पंजाब और दूसरे प्रांतोंके कितने ही धनी लोग श्रीनगरमें अपने मकान और बगीचे भी रखते हैं। दूसरे लोग या तो किसी बॅगलेको—जिनकी संख्या हज़ारों है—किराया पर लेते हैं या उन नौकागृहोंमेंसे एकको किराया करते हैं जो हज़ारोंकी संख्यामें श्रीनगरमें पाई जाती हैं। इन नौकाओंको चलता-फिरता घर समझना

चाहिये। इनमें शयनगृह, स्नानगृह, बैठकखाना, पाठगृह आदि सबका प्रवन्ध रहता है। झेलम (वितस्ता) के किनारे किनारे बिजलीके खम्भे चले गये हैं, जिनसे इन नावोंमें बिजली लगी रहती है। बिजली श्रीनगरमें बड़ी सस्ती है। साधारण लट्टूके लिये प्रतिमास ६ आने देने पड़ते हैं। मीटर घरमें नहीं लगा रहता, इसीसे लोग दिनमें भी बत्तियोंको जलते ही छोड़ देते हैं। प्रत्येक नौकागृहके साथ एक छोटी नाव रसोईखाना और नौकरोंके रहनेका काम देती है। इसके अतिरिक्त किश्तीमें एक या अधिक 'शिकारा' (छोटी डोंगियाँ) भी रहते हैं दिनमें लोग शिकारापर सवार दूर दूर तक झेलम तथा उसकी नहरों या डल झीलमें सैरके लिए जाया करते हैं। कभी-कभी वे सारे घरके साथ एक स्थानसे दूसरे स्थान चले जाया करते हैं। कितनी ही बार लोग शहरसे दूर डलमें—जहाँ पानीपर तैरते खेत हैं, जिनके लिये कश्मीरकी खेतोंकी चारी प्रसिद्ध है—भी लगर डाले लोग दिखाई पड़ते हैं। आगन्तुकोंमें यूरोपियन स्त्री पुरुषोंकी संख्या बहुत काफ़ी होती है। डलमें एक-दो छोटे-छोटे सुन्दर द्वीप हैं कभी-कभी उनमेंसे किसी पर आप गौराग रमणियोंको नृत्य करते, पिकनिक पार्टीका आनन्द लेते भी देखेंगे। फूल, फल और जल इन तीन चीजोंके लिये कश्मीर अद्वितीय है।

मैंने पहले लिखा है कि कश्मीरियोंकी सी गन्दी जाति ससारमें बहुत कम होगी। इनकी गलियाँ ही पायखानाका काम देती हैं धूप के समय तो कुछ सहन भी हो जाय, किन्तु वर्षामें इन गलियोंमें जाना मानो सडाससे होकर गुज़रना है। आश्चर्य तो यह है कि क्यों हैजा और प्लेग पैर तोड़कर यहाँ नहीं बैठ जाते। डाक्टर नेव लिखते हैं—

'The wonder is, not that cholera came, but that it ever went away; not that it slew 10,000 (in 1888) victims, that so many escaped its ravages.' 'Enough that cholera came and will

come again, aye, and again, as long as it is thus prepared for, and invited and feasted by a city reared in filth, a people born in filth, living in filth and drinking filth'.

१८८८ ई०के दो मासके हैज़ाके प्रकोपके बाद उपर्युक्त पंक्तियाँ लिखी गई थीं। इसके बाद कितनी बार हैज़ाने फिर प्रहार किया, यह नीचेके कोष्ठकसे ज्ञात होगा—

सन्	मृत्यु	विशेष
१८९२ ई०	११,७१२	इसमे ५,७८१ केवल श्रीनगरमे। बीमारी मईसे अगस्त तक रही।
१९००-०२	१०,८११	बीमारी अगस्त १९०० से जनवरी १९०२ तक, १८ महीने रही।
१९ ६-०७	१,६२६	·२ नवम्बरसे ३१ जनवरी तक।
१९ ०	९,२११	४ जूनसे १८ नवम्बर तक।

इसके अतिरिक्त प्लेगने भी १९०३-१९०४ में प्रहार किया था।

प्रसिद्ध स्थान

शंकराचार्य—श्रीनगरके पूर्वोत्तरी भागमे यह एक छोटा-सा पर्वत है, जिसके ऊपर एक शिव-मन्दिर है। मुसलमानी समयमे अन्य मन्दिरोंकी भाँति इसकी भी दुर्गति हुई थी। मुसलमान लोग इसे तख़्ते-सुलेमान कहते हैं। कहते हैं, कश्मीरके प्रसिद्ध मूर्तिखंडक बादशाह सिकन्दरने इस मन्दिरको इसलिये नहीं तोड़ा, क्योंकि महमूद ग़ज़नवी (९९७-१०३०) ने यहाँ नमाज़ पढ़ी थी। कश्मीरमे हिन्दूराज्य स्थापित होने पर इस मन्दिरमे पूजा होनी शुरू हुई। यहाँसे सारी कश्मीर-उपत्यका दिखाई पड़ती है। चारों तरफ घेरे हुए पहाड़—जिनके पीछे-

की ओर हिमाच्छादित शिखरवाले पर्वत है—बीचमें जगह-जगह लम्बे-लम्बे जलाशय, सर्पकी भाँति कुटिलगतिकी जेहलम, दूर तक सफेदेकी दोहरी पंक्तियोंके बीच जानेवाली सड़कें, मीलों तक, शहरसे बाहर भी, सेव, बादाम आदिके बागोंमें बने हुए छोटे-छोटे सुन्दर बँगले, हरी घासोंसे ढँके लम्बे लम्बे क्रीडाक्षेत्र, सुन्दर चिनार वृक्षोंकी मधुर शीतल छाया के अन्दर हरी घासके मखमली फर्शों वाली सुभूमियाँ देखनेमें बड़ी सुन्दर मालूम होती हैं।

श्रीनगरमें स्कन्दभवन, त्रिभुवन स्वामी, क्षेम गौरीश्वर, दिद्दा माथा, विक्रमेश्वर आदि कितने ही प्राचीन मन्दिर थे, जो अब तोड़कर मुसलमानी पीरोंकी जियारतोंमें परिणत हो गये हैं। श्रीनगरकी जामा मस्जिदको सिकन्दरने १४०४ मे बनवाया। इसके बनानेके लिये उसने महाराज तारापीड (६६६ ६७) के विशाल मन्दिरको तोड़कर उसके पत्थरको इस्तेमाल किया। इस मन्दिरके इर्द-गिर्द कितने ही पत्थरके मन्दिरोंके ध्वसावशेष दिखाई देते हैं। इसकी भूमिको बौद्ध लोगभी बहुत पवित्र मानते हैं। लद्दाख आदिसे वे तीर्थ यात्राके लिये जब तब आया भी करते हैं। उनकी भाषामे इसे चिचाङ्-चुग्लक खङ् कहते हैं। स्वर्गीय महाराज प्रतापसिंहने इसकी मरम्मतके लिये १८६३ और १९१२ में १२ हजार और ४० हजार रुपये दिये। महाराजा प्रवरसेन द्वितीयका बनवाया 'सद्भाव श्री' का मन्दिर आज पीर हाजी मुहम्मदकी जियारतके रूपमे परिणत है। इन्हीं महाराजका दूसरा मन्दिर प्रवेरश' पीर बहाउद्दीनकी जियारत है।

नसीमबाग—श्रीनगरसे प्रायः चार मीलपर डलके किनारे हजरत बल नामक एक गाँव है। सारे कश्मीरमें मुसलमानोंके लिये यह सबसे पवित्र जगह है। यहाँ एक बाल है, जो हजरत मुहम्मद साहबका कहा जाता है। इससे आधा मील आगे शाहजहाँका बनवाया (१६३५ ई० में) 'नसीमबाग' है। इसमें सैकड़ों (आरम्भ में १२०० थे) चिनारके बडे-बडे वृक्ष हैं।

शालीमार बाग—नसीमबाग़से थोड़ी दूरपर डलके बीचमें एक छोटा-सा द्वीप है, जिसे सुनालङ्क कहते हैं। जहाँगीरने इस पर एक कुटी बनाई थी। अमीरखाँ जवांशेरने १७३७ मे इसकी मरम्मत कराई थी। लेकिन अब उसका पता नहीं। इसके घासोंकी फ़र्शपर अकसर लोग पिकनिक पार्टी किया करते हैं। इसके थोडी दूरपर डलके पूर्वोत्तरके कोनेपर प्रसिद्ध शालीमार बाग़ है। कहते हैं, प्रवरसेन द्वितीयने इस जगह एक छोटा-सा महल बनवाया था। यह वही राजा है जिसने श्रीनगरको बसाया था। राजा हरवनमें रहनेवाले तपस्वी सुकर्मस्वामीके दर्शनार्थ जाया करता था, इसीलिये उसने यह निवास-स्थान बनवाया था। पीछे जब यह राजभवन नहीं रहा तब यहाँ एक गाँव बस गया, जिसका नाम भी शालीमार होगया मुग़ल बाद-शाह जहाँगीरने १६१६ में एक बाग़ बनवाकर नाम 'फ़रह-बख्श' (आनन्दप्रद) रक्खा। शाहजहाँकी आज्ञासे सूबेदार जफ़रखाँने भी १६३० ई० में इसमें कुछ वृद्धि की। डलसे शालीमार तक नहर गई हुई है। शलीमार बाग़की लम्बाई ५६० गज़ और नीचेकी २०७ तथा ऊपरकी चौड़ाई २६७ गज़ है। इसके, चारों तरफ़ ईंट और पत्थरकी दस फ़ुट ऊंची दीवार है। इसमें प्रायः एक समान चार तल हैं, जो सीढ़ियोंकी भाँति एक-दूसरेके ऊपर हैं। प्रत्येक तलमें पाँतीसे एक-एक कुंड हैं, जो ११ इंच गहरी ६ से १४ गज़ चौड़ी नहरोंके द्वारा मिलाये गये हैं। बाग़के पिछले भागमें हरवनकी धारसे पानी लाया गया है। यह पानी पहले ऊपरवाले तलपर पहुँचता है, वहाँसे काले संगमर्मर-सदृश पत्थर से बनी हुई नहरोंमें बड़ी सुन्दरतासे बहता हुआ, तिर्छी शिलाओंपर मछलियोंकी तरह नाचता क्रमशः एकसे दूसरे कुडमें गिरता, दर्जनों फ़व्वारोंको छोड़ता बाग़के बाहरवाली नहर-द्वारा डलमें चला जाता है। बाग़का ऊपरी तल अन्तःपुर-कीबेगमोंके लिए था। बाग़के बीचवाले कुंडके मध्यमें एक चतुष्कोण सुन्दर मकान है, जिसकी छत सुन्दर कलायुक्त काले संगमर्मर-

के २० फुट ऊँचे खम्भेपर स्थित है। इनकी संख्या प्रत्येक पंक्तिमें छः है। इसके चारों तरफका कुंड साढ़े तीन फुट गहरा तथा ५२ वर्गगज भूमिमें है। रविवारके दिन—जिस दिन पानी नहरमें छोड़ा जाया करता है—सैकड़ों दर्शक इस छतके नीचे बैठे फव्वारोंकी शोभा, जलके प्रपात, हरी घासोंके मखमली फर्श, चिनारकी मनोहारिणी छाया, रंग बिरंगे फूलोंकी शोभा और सुगन्धिका आनन्द लूटते हैं।

निशात बाग—शालीमारसे दो मील दक्षिण प्रसिद्ध निशात बाग है। नूरजहाँके भाई आसफ़जाहने १०४४ हिजरीमें इसकी नींव रक्खी। यहाँभी शालीमारकी भाँति नीचे ऊपर तल, मखमली हरा फर्श, फव्वारोंकी पंक्तियाँ, पुरातन चिनारोंकी छाया पाई जाती है। किन्तु यहाँ सभी वस्तुएँ विशेषकर नहरों और फव्वारोंके ढंगमें कुछ थोड़ी सी नवीनता भी है। निशात बाग ५९५ गज लम्बा, ३६० गज चौड़ा है। इसके भी चारों तरफ़ ईंट पत्थरकी दीवार है। खासकर रविवारके दिन दर्शकोंकी संख्या अधिक होती है। लोग नावों, मोटरों, ताँगोंसे पहुँचते हैं। धनिकश्रेणीसे लेकर साधारण श्रेणी तकके स्त्री-पुरुष भी अपने-अपने समावर (चाय बनानेका चूल्हासयुक्त वर्तन) से चाय पीते, ताश खेलते पाये जाते हैं।

चश्माशाही—निशातसे ढाई मील दक्षिण चश्माशाही है। इसके जलकी शुद्धता बड़ी ही प्रसिद्ध है। इसके आसपास भी शाहजहाँका बनवाया एक छोटा बाग है।

पासपुर—श्रीनगरसे नौ मील पूर्व दक्षिण यह ग्राम है। इसके आसपास दूर तक केसरके खेत है। केसरकी क्यारियाँ बहुत छोटी-छोटी (१½ गज+१ गज) होती हैं, जिनके किनारोंपर प्रायः एक फुट गहरी नालियाँ होती है। जूनमें केसर बोई जाती है और अक्तूबरके अन्त में फसल तैयार होती है। पौधा गेहूँ सा होता है। इसके फूलकी बीच-वाली पँखड़ियाँ ही असली केसर है। ये खेत मीलों तक हैं। केसर केवल

यहीं होती है। काश्मीरके और भागोंमें प्रयत्न करनेपर भी लोग केसर पैदा करनेमें सफल नहीं हो सके। इसका प्राचीन नाम पद्मपुर है। विष्णुपद्म स्वामीके मन्दिरका ध्वसावशेष यहींपर है। इसके कुछ सुन्दर खम्भे यहाँ के मीर मुहम्मद रम्दानीकी ज़ियारतमें लगे हुए हैं।

अवन्तीपुर—इसे वन्तीपुर भी कहते हैं। गाँवके पासमे अवन्तिवर्माके भव्य मन्दिरका ध्वंसावशेष खोदकर निकाला गया है। जेहलमके तटपर यह मन्दिर किसी समय बड़ा ही भव्य मालूम होता होगा। अब भी बडे-बडे पत्थरोंके बने द्वार और दीवारें अर्ध-भ्रष्ट मूर्तियां तथा वेल-बूटोंसे अलकृत दिखाई पड़ती हैं। मन्दिर के चारों तरफ पत्थरकी दीवार है। इसके भीतरी ओर सुन्दर खम्भोंकी पक्तियाँ तथा छोटी-छोटी कोठरियाँ बनी थीं। बीचमें सुन्दर मन्दिर था।

८—ज़ोजीला पार

श्रीनगरसे लद्दाख जानेके दो रास्ते हैं, जिनमें सबसे अधिक चालू वह है, जो ज़ोजीला पार करके जाता है और जिससे कुल दूरी २४० मील है। यों तो मैदानी आदमियोंके लिए श्रीनगर (५२१४ .फ़ुट) भी काफ़ी सर्द है; किन्तु ज़ोजीलाके पारका मुल्क कुछ दूसरे ही प्रकार का है। इसके लिए यात्रीको कपडे आदिकी विशेष तैयारी करनी पड़ती है। श्रीनगर हीसे उसे गर्म कोट, पायजामा, मोजे, पट्टी, कनटोप, दस्ताने, लोइयाँ, बिस्तरे आदिका प्रबन्ध कर लेना पड़ता है। श्रीनगर से नाव या ताँगेपर गादर्बल (५२२० .फ़ुट) ६½ मील जाया जा सकता है। गिल्गित जानेवालेको भी यहाँ तक सम्मिलित सफर करना पड़ता है। गादर्बलसे कागन (१०½ मील) पहला पड़ाव है। लद्दाख चूँकि सीमान्त-जिला है, और उसकी सीमा पूर्वकी तरफ तिब्बतसे और उत्तरकी तरफ चीनी तुर्किस्तानसे मिली हुई है, इसीलिए श्रीनगरमें ब्रिटिश ज्वाइंट कमिश्नरसे पास लेना पडता है। कागनमे पास देखकर आगे

कचलू (Sprus) बदलू (Silver Fur)	७००० १०००० फुट
भोजपत्र	८००० ११५०० ,,

धान, गुडसे नीचे-नीचे होता है। आगे मक्का, गेहूँ, त्रुम्ब आदि की खेती होती है। आगे भूमि भी कई मास तक बर्फसे ढँकी रहती है। गर्मियोंमें यहाँ वर्षा भी प्राय बराबर हुआ करती है। सोनमर्गमें तो हमारे पहुँचनेके साथ बर्फ पडनी शुरू हो गई और घटे भरमें जगह-जगह इंचों बर्फ गिर गई। गिरती हुई बर्फको देखना भी एक सुन्दर दृश्य है। ज्ञात होता है, बड़ी-बड़ी बूँदें गिर रही हैं, गौरसे देखनेपर अंगुल-अगुल चौडे धुनी रुईके फाहेसे गिरते मालूम होते हैं। आदमियों ने कहा—यह गर्मीका मौसिम है, इसीलिए पहले झोंकसे गिरनेवाली बर्फ जमीनपर पडते ही विलीन हो गई, नहीं तो आप अच्छी खासी रुई के पहल भूमिपर जमे हुए पाते।

बालतलमें डाक बँगला और सराय है। सोनमर्गसे बालतल जानेमें अब भी कहीं-कहीं बर्फपरसे चलना पड़ा। कहीं-कहीं सिन्धु नदीपर बर्फ़का पुल भी बँधा दिखाई पड़ा। बालतलमें तो दूकान और बस्ती नहीं है, किन्तु उससे नीचे एक गाँव है। यह गाँव वाल्तियों (भेरहों)का है। काश्मीरियोंको इतनी सर्दीमें खेती-बारी करना बहुत कठिन है।

वर्षा होते समय लोग सोनमर्गसे बालतलको जाना पसन्द नहीं करते, क्योंकि पासकी पहाड़ियोंपर अनेक छोटे-बड़े पत्थर इस तरह बिखरे हुए हैं कि वर्षासे उनके नीचेकी भुभुरी मिट्टी गल जाती है, और मालूम होता है, क्रोधित दानव-सेना उधरसे गुजरनेवाले यात्रियों-पर पत्थरोंका प्रहार कर रही है। बालतलके करीब एक काश्मीरी घोड़ा लेकर लौटता हुआ मिला। घोडेकी एक टाँगके दुमसे ऊपर ऐसा जबरदस्त पत्थर लगा था कि उसकी हड्डी टूट गई थी बेचारा घोड़ा

तो दुखी था ही, किन्तु आदमीके चेहरेसे ज्ञात होता था कि उसपर विपत्तिका पहाड़ टूट पड़ा है। उसके जीवनसे बढ़कर जीविकाका सहारा टूट गया था!

बालतलसे जोजीला पार करनेके दो रास्ते हैं; एक जाड़े का, दूसरा गर्मीका। गर्मीवाला रास्ता अभी-अभी खुला है। अब भी सड़क मील डेढ़-मील ही तक हिम रहित है। आगे बर्फ हीपर चलना पड़ता है। बालतलसे नीचे ही चीड़जातीय वृक्षोंका जगल छूट जाता है। और जगली सफेदा और बीरीके साथ साथ भोजपत्र आरम्भ हो जाता है। आगे फिर सिर्फ हिमगौर चर्मवाले भोजपत्र देखे जाते हैं। ११ हजार फुटसे ऊपरके स्थानोंपर भी, जहाँसे बर्फ अभी महीनों नहीं गलेगी, ये पत्ररहित वृक्ष बडे सन्तुष्ट से दिखाई पड़ते हैं। जहाँ बर्फ नहीं है, वहाँ इनमें छोटे-छोटेसे जामुन के-से पत्ते निकल आये हैं। चार मीलकी चढ़ाईके बाद पहाड़की ऊपरी अँगनाईपर पहुँचते हैं। यहाँ आस पास सफेद सगमर्मरकी दीवारके घिरावेमें मीलों तक चलीगई चाँदी के फर्शवाली यह अधित्यका है। बीचसे चलनेवाले आदमियों और घोड़ोंके पैरोंने रास्तेका चिह्न बनाय है। धूपमें इस बर्फकी ओर नजर डालनेमें आँखें चकाचौंध हो जाती हैं। सभी लोग यहाँ हरे चश्मे लगाते हैं। जिनके पास चश्मा नहीं होता, उन्हें घटे आधे-घटेके सफरके बाद आँखोंमें पीड़ा आरम्भ होती है, आँखें सूज आती हैं। मीलों आगे बढ़ने पर जोजीलाका वह जल-विभाजक आता है, जिसके एक ओर का पानी काश्मीरी सिन्धु और दूसरी ओरका गुम्बेरमें जाता है। घटोंके बर्फके सफरके बाद आदमी मिचोई पहुँचता है।

मिचोईके आस-पास भी बर्फ उसी प्रकार है जिस प्रकार जोजीला पर। यह भी समुद्रतलसे ग्यारह हजार फुटसे कम ऊँचा न होगा। मिचोई कोई गाँव नहीं है। इस जगह एक छोटा सा डाक-बँगला और सराय (धर्मशाला) है जो पुराने तारघरके मकानमें है। इनके अतिरिक्त एक और मकान है, जो जाड़ोंमें तारघरके तौरपर इस्तेमाल होता है। इस

तारघरका कोई और तो काम नहीं मालूम होता, सिवाय इसके कि जाड़े-की डाकके ज़ोजीलापर होनेकी सूचना मिलती रहे। श्रीनगरसे लद्दाख तक थोड़ी-थोड़ी दूरपर डाक-बँगले हैं, जिनमें ठहरनेवालेको बालतल तकका आठ आना और आगे एक रुपया रोज़ देना पड़ता है; लेकिन सराय (यह भी अच्छी है) में ठहरने-वालेको कुछ नहीं देना पड़ता। पड़ाववाली जगहोंपर ठीकेदारके जिम्मे लकड़ी और चारेका प्रबन्ध किया गया है। पड़ावसे थोड़ा हटकर नीचेसे गुम्बेर नदी जाती है। जोजीला-के जलसे एक तरफ़ जहाँ गादर्बलवाली सिन्धु निकलती है, वहाँ दूसरी तरफ यह गुम्बेर निकली है। भाषा और भौगोलिक दृष्टिसे काश्मीर जोजीलापर ही खतम होता है उसकी दूसरी तरफ़ बालतिस्तानका प्रदेश आरम्भ होता है।

मिचोईसे आगे मटायनमें (११००० फुट) ६ मील तक मईके समाप्त होनेपर भी बर्फ पड़ी रहती है। सर्दी बहुत अधिक है। दिनमें चलनेवाली जल प्रणालियाँ सबेरे बर्फ हो जाती है। छोटे-छोटे गड्हांमें जमी हुई बर्फकी चादरें जरा-सी ठोकरसे कच्चे काँचकी तरह टूट जाती हैं। इनके छोटे-छोटे टुकड़ोंको खिड़कियोंमें जड़नेको तबीअत करती है; किन्तु ज़रूरत इतनी ही है कि ये गर्मीमें भी ऐसी ही बनी रहें।

छोटी धारके साथ कल दिनमें वहाँ बालू थी। इस समय वह बालू भी ऐसी पक्की सीमेंट बनी है कि उसपर बर्छी भी मुश्किलसे असर कर सकती है। जगह-जगह पर्वत-शिखरसे गिरी हुई 'माणियाँ' देखनेमें आती हैं। 'माणी' ज्ञात होता है, संस्कृत हिमानीसे बिगड़कर काश्मीरी-में बना है। ज़ोजीलापर, मिचोईसे थोड़ा ही ऊपर, अभी सात दिन भी नहीं हुए, इसी तरहकी एक माणीने तीन आदमियों और तीन घोड़ों-की बलि ली थी। इनमें एक घोड़ा लँगड़ा होकर बच गया। अस्तु, ये माणियाँ बड़ी बला हैं। न जाने कब लाखों मन बर्फ पासके पर्वत-शिखरसे नीचे आकर यात्रीको अपने नीचे दबा ले। इसके बचाव का बीमा सिर्फ़

छोटे-बडे असंख्य पत्थर पडे हुए हैं, ज़रा-सा ही वृष्टि या हवाके लगनेसे नीचे लुढकने लगते हैं। और कभी-कभी किसी यात्री या घोडे की सिर्फ़ हड्डी तोडकर छोड़ देते हैं, अथवा प्राण भी ले लेते हैं।

द्रास (१०१४४ फ़ुट—१२३ मील) गुम्बेर और द्रास नामक दो नदियोंके सगमसे थोडा हटकर ऊपर है। पहाडियाँ यहाँ भी बिलकुल नगी हैं, जिनमे से कुछ के ऊपरी भागपर अब भी हिम है। गेहूँके खेत अभी-अभी बोने शुरू हुए हैं। खेतीके काममें अधिक भाग यहाँ स्त्रियो हीका होता है। बैलोंकी जगह आमतौरपर यहाँ चोमोसे काम लेते हैं। यह नर याक् (चंवरी) और गायके सयोगसे पैदा होता है। खच्चरसे विरुद्ध इसकी सन्तान आगे को चलती है। लेकिन बैलसे यह अधिक मजबूत तथा शीत सहन करने वाला होता है। इसका र ग अधिकतर काला होता है। पीठपर डील नहीं होता। पूँछो तथा पट्ठोके बाल याक्की भाँति अधिक लम्बे होते हैं। गेहूँके अतिरिक्त त्रुम्ब भी यहाँ पैदा होता है, जो सत्तू के काममें आता है। काश्मीर और लद्दाख दोनों एक-दूसरेसे बिलकुल उलटे हैं। यदि एकको बाग और बनस्पतिका स्वर्ग कहें तो दूसरेको वनस्पति शून्य नगे पर्वतोंका ठडा नरक कहा जा सकता है। आश्चर्य यह है कि यहाँके लोग कैसे अपना गुजर करते हैं। ये लोग घोडोंके जरिये व्यापारियोंके मालको श्रीनगर, लद्दाख आदि पहुँचाते हैं। खानेके लिए मक्की काश्मीरसे लाते हैं। यद्यपि प्रकृतिका बर्ताव इस प्रदेशसे निष्ठुर है, तो भी यदि यहाँके लोग कुछ बुद्धिसे काम लेते तो वह बहुत कुछ नर्म किया जा सकता था। उदाहरणार्थ—यहाँपर सफेदा वीरीके वृक्ष लगाये जा सकते हैं राज्यकी तरफ़से जहाँ-तहाँ कुछ वृक्षों को लगाकर दिखाया भी गया है। इससे एक तो लोगोंको मकानोंके लिए लकडियोंका कष्ट न रहता, दूसरे खाना बनाने तथा जाडेमें आग तापनेके लिए कष्ट न उठाना पड़ता।

द्राससे एक रास्ता जाँस्कारको जाता है और दूसरा लद्दाख को। व्यापारियोंके मालके रखने और भेजनेको यहाँ मालगोदाम हैं। राज्य-

संस्कृत	दर्द	संस्कृत	दर्द
अश्व	अश्प	अजा	अयि
गौ	गाव	श्वन्	शुङ्
गोधूम	गुम्	कर्ण	कन्
अक्षि	अशि	हस्त	हथ
पाद	पा	मनुष्य	मनुरु
बालक	बाल	स्वसा	शस
अष्टौ	अष्ट		

यहाँके तथा दर्दस्तानके भी सभी दर्द सुन्नी मुसलमान हैं।

द्राससे शिम्साखर्बू २१ मील है। रास्ता कठिन तो नहीं है, किन्तु ऊबड़-खाबड़ है। इधर की पहाड़ियोंपर गिरनेवाले पत्थर अधिक हैं, लेकिन यात्राके सौभाग्यसे जोजीलाके उस पारकी तरह वर्षा नहीं होती। पन्द्रह मीलकी यात्रा समाप्त करनेपर ठसगाम आता है। बस्ती दर्द (ब्रोक्पा) लोगोंकी है। हर-एक स्त्री पुरुषकी पीठपर गर्म कपड़ोंके अतिरिक्त बकरीका एक छाला भी दिखाई पड़ता है। इधर गेहूँ और जौकी खेती अच्छी होती है। यद्यपि खेत बहुत कम हैं, जिनको आबाद करनेके लिए यहाँके निवासी दूर दूरसे छोटी नहरें राज्यकी सहायताके बिना लाते हैं। ठसगामके मीलों आगे पीछे लोहेके पत्थरों-की अपार राशि है। मैंने सड़कके पाससे एक लाल पत्थर उठाया, जो पीछे ज्ञात हुआ कि ताँबेका पत्थर है। प्रकृति देवीने जहाँ इस प्रदेश-को वनस्पतिसे वञ्चित किया है, वहाँ दूसरी तरफ़ इन खनिज पदार्थों-को कूट कूटकर भर दिया है। मालूम हुआ, यहाँ लोहा, ताँबा, सोना आदि कितनी ही धातुएँ हैं, लेकिन उनके निकालने का प्रयत्न नहीं हुआ है। लोग खेती और माल लदाई ही से अपना निर्वाह करते हैं। ट्रीटी रोड मचोईसे पामीर (चीनी तुर्किस्तानकी सीमा) तक चला गया है।

हैं। इनका खाल, ऊन, दूध, और मास ही यहाँके लोगोंकी जान हैं।

दर्रेसे एक मील नीचे लालुङ् गाँव १२३०० फुटपर है। गाँव ४० घरका एक अच्छा खासा बडा गाँव है। दो मस्जिदे और ज़ियारत भी हैं। निवासी कट्टर शिया हैं। सर्दी ज्यादा होने से फसल पीछे बोई गई है। गाँवके नीचे नालेमें एक हिमशिला अभी तक है। इसी नाले-में लालुङ्से ३ मील नीचे सल्मो गाँव है। यहाँ पर भी शिया मुसल मानोंकी आबादी है। यहाँके लोग गन्दगीमें शायद पृथ्वीतलपर अद्वितीय होंगे। समुद्रतलसे यह भी १०; हजार फुट ऊपर है। लेकिन लोलुङ्मे कोई वृक्ष नहीं दिखलाई पड़ता, किन्तु यहाँ खूबानी सफेदा और वीरी वडे हरे-भरे हैं।

'तनचे' प्रथम बौद्ध गाँव—सल्मोसे चार मीलकी कठिन चढाई-के बाद प्रथम बौद्ध गाँव मिलता है। वहुत दिन नहीं हुए, यह सारा प्रदेश बौद्ध था, किन्तु आज वह बहुत जगहोंसे लुप्त हो चुका है। जो बचा है उसके लक्षण अच्छे नहीं दिखाई देते। यह गाँव गर्कुन इलाके मे है। इधर पाँच सात गाँवोमे एक विशेष जाति निवास करती है। इन्हे लद्दाखी-भाषामे ब्रोक्पा (दर्द) कहते हैं। मुसलमान ब्रोक्पा वे हैं जिनके बारेमे मै दर्दके नाममे लिख चुका हूँ। लेकिन जहाँ मुसल-मान ब्रोक्पा अपनी भाषाको जीवित रक्खे हैं, वहाँ ये लोग उसे भुलाकर लद्दाखी भोटिया भाषा बोलते हैं। लेकिन एक विशेषता है इनका रूप मगोलियन टाइपका न होकर प्रायः शुद्ध आर्य-टाइपका है। ये लोग गौको बडी पूज्य दृष्टिसे देखते हैं। यह भाव इतनी अतिमात्रा को पहुँच गया है कि ये उसका दूध-मक्खन कुछ नहीं खाते और इसी-लिए पालते भी नहीं। इनके गाँवमे गाय और कुत्ता दो जन्तु बिलकुल नहीं दिखाई पड़ते। ये कहते हैं, गायका दूध और मक्खन खानेसे देवता रुष्ट हो जाते हैं। एक ने तो कहा—खाते ही आदमी बीमार हो जायगा।

दर्चिक्स ८५०० फुट ऊँचे सिन्धु तटपर बसा है। ४० घरकी बौद्ध बस्तीमें कुछ मुसलमान घर भी हैं। यहाँकी बौद्ध स्त्रियाँ खास पोशाक रखती हैं, जो सारे गर्कुन इलाकेकी एक सी है। सिरपर सैकड़ों सुइयोंकी पाँती, कच्चे मूँगे, लाल सफेद मणिकाओंकी लड़ियोंसे सँवारी टोपी, जिसपर दोहरी लाल किनारीवाला मुँह आगे की तरफ, पीछेकी तरफ मकोयकी तरहके अत्यन्त लाल रंगवाले फलोंका गुच्छा अथवा जंगली गुलाब। गलेमें कितनी ही मूँगा आदि की मालायें, कानमें चाँदी की छोटी छोटी मनियों की माला। अनेक छोटी छोटी चोटियोंके पृष्ठ-देशपरके सगममें लगा हुआ खूब बड़ा-सा बहुरंग फूलना, जिसमें पीतली मनिकों, कौड़ियों बटनोंसे सँवारा चक्र तथा दो शंख या बड़ी सीपके टुकड़े लगे होते हैं। शरीरमें आधी बाँहवाला घुटने तकका अति मलिन ऊनी कुर्ता, पैरमें चिपका हुआ ऊनी पायजामा—जिसमें पिण्डके पिछले भागमें एक-एक लाल चक्र बना हुआ होता है। जूता ऊनी पष्पू हाथों में दो दो पीतल की चूड़ियाँ, कंधों पर पीतल के दो चक्र, चकमक लोहा, पीतल का दो मुँहा चम्मच, छोटा चिमटा तो सभी स्त्री-पुरुषोंके कमरबन्दमें लटकता रहता है।

गार्कुन ८९०० फुट—४ मील आगे चलकर प्राचीन दर्द-जातिके इस समूह का मुख्य ग्राम है। जान पड़ता है, दर्दस्तानके जबरदस्ती मुसलमान किये जाते समय भागकर ये लोग इन पहाड़ोंमें आ गये। ये स्वयं भी अपनेको गिल्गित से आये हुए कहते हैं। इधर बकरियों के दूध मक्खनके सिवाय और कुछ नहीं मिलता, क्योंकि ये लोग गाय-को इतना पवित्र मानते हैं कि निरुपयोगी होनेसे उसे कोई नहीं पालता। इन जातियोंमें एक बड़ा विचित्र रवाज है। जब किसीके घर लड़का होता है तब माता-पिता घरसे बाहर नहीं निकलते। पेशाब पाखाना भी घरके भीतर ही करते हैं, यह अवधि १५ दिनसे एक मास तक होती है।

सारे लद्दाखमें बड़े भाई हीकी शादी होती है। उसकी स्त्री ही

औरोंकी भी स्त्री होती है, किन्तु सन्तान बड़े भाईकी ही कही जाती है। सन्तान न होनेपर और शादी करनेकी इजाजत नहीं मिलती है। घरकी जायदादका मालिक सिर्फ बड़ा भाई होता है। इस प्रथाने जन-वृद्धिमें बड़ी बाधा उपस्थित की है। यही नहीं, इसका एक भयंकर परिणाम भी इनके लिए होनेवाला है। बालतिस्तानके मुसलमान बराबर बढ़ रहे हैं। जगह न रहनेसे वे बौद्ध गाँवोमें आकर बस रहे हैं। बौद्धोके तो उतनेके उतने ही घर हमेशा रहते हैं; किन्तु ये आगन्तुक मुसलमान छलाँग मारते हुए बढ़ते हैं। जिसका परिणाम एक दिन बौद्धोंसे इनका अधिक हो जाना है।

गर्ख़ नीय बौद्धोमे शादी प्रायः बड़ी अवस्थामे होती है। ये लोग बडे आमोद-प्रिय हैं। नाचने-गानेका इनमें बड़ा शौक है। स्त्री पुरुष अपनी-अपनी टोपियोंको रंग-बिरंगे फलोंसे सजाते हैं। नृत्य स्थान ग्रामका कोई केन्द्रीय स्थान होता है। नगाड़ा, बैंड की तरहका ढोल, रोशनचौकी और बाँसुरी ये बाजे हैं। पहले सारे ही बाजे बजते हैं। उस समय स्त्रियोंकी बारीमें सिर्फ़ स्त्रियाँ, पुरुषोंकी बारी में सिर्फ़ पुरुष ६-७ या अधिक मिलकर एक स्वरसे गीत गाते हैं। गीतका स्वर मीठा होता है, विशेषकर स्त्रियोंका। गाना खतम होंने पर रोशनचौकी बन्द हो जाती है, सिर्फ नगाड़ा बजता है और दाहने हाथके कडेको बायेंवालेपर तीन बार मारकर मुठ्ठी बँधे हुए हाथको सिरकी ओर उठाकर स्त्रियाँ सलाम अदा करती हैं। फिर नृत्य आरम्भ होता है। नृत्यमे बाजा एक ही रस बजता है। हाथों की भिन्न-भिन्न मुद्रा बनाते हुए धीरे धीरे पैरोंको तालके अनुसार चलाती हैं, बस यही नृत्य है। स्त्रियोंके बैठने पर पुरुष उठते हैं। इनके गीत उतने मीठे नहीं होते। नाचमें हाथकी मुद्रायें उतने परिमाणमें नहीं रहतीं। छंग (जौकी शराब) पी-पीकर, आनन्द-मस्त होकर, नृत्य करते हैं। बौद्धके गाँवो-की मुसलमान औरतें भी बड़ी स्वतन्त्रतासे नाचमें शामिल होती हैं। गर्ख़ नमे ६ औरतोंमे ३ मुसलमान थीं। मुसलमानियोंकी पहचान

उनकी टोपी है, जो काले रंग की माला, मनिका तथा सुइयों के ताज से शून्य होती हैं। रंग-विरंगे फूल वे भी लगाती हैं।

इधर स्त्रियोंमें नाक छिदानेकी प्रथा नहीं है पीठपर रोयेंदार बकरीकी खाल सभ के होती है। नृत्यके समय तो जान पड़ता है, राजा इन्द्रके अखाडेकी परदार परियाँ हैं। उनके गीतोका यहाँ एक नमूना देते हैं -

यक् स्कमा जुम्वरि यक् । सरिमी यस्तुत शर्वि यक् ॥
(आज सिरमें तारा आज) । (प्रकाशित हो रहा है आज)
यमें चोडा गड्वि यक् । चोडा शुम् शुम् नर्षि यक् ।
(पूर्णचन्द्र शोभित है आज) । (चाँद तीन तान शोभित हैं आज)

दिरिङ् ङ्ती डे लम्पो जड्वो थोड् ।
(आज नींद में स्वप्न सुन्दर देखा)
दक् स्पोन्वो यल्वा थोड् ।
(मैंने स्वामी सुन्दर देखा)
लँ अट्वो ग्यंनिड् यल्वा थोड् ।
(देवता आत सुन्दर देखा)
दक् स्पोन्वो जड्वो मेंछि स्क्युन्जुक्स ।
(मेर जैसे स्वामी सुन्दर ने आसन स्वीकार किया)
बुर्चा डरालां छक्सु फुल ॥
(बालक हम खडे हैं हाथ जोड़)

गर्खुनसे पाँच मीलपर दाह नाला है। यही कर्गल और लद्दाख तहसीलकी सीमा है। दूसरे शब्दोंमें यह मुसलमान और बौद्ध प्रदेशों-की सीमा है। दाह गाँवमें भी मुसलमान आ बसे हैं, यद्यपि उनकी संख्या अभी कम है। यहाँसे दस ग्यारह मील आगे अचिन-थड् गाँव है। गाँवके पास नालेके पार आबाद होने लायक जमीन है। अधि-कारियोंने उसका बौद्ध और मुसलमान दोनोके साथ बन्दोबस्त किया है। मुसलमान सल्मों गाँवसे आकर बसे हैं। बौद्ध-इलाकेकी भूमि

आमतौरसे इस प्रकार बन्दोबस्त की जा रही है। फल ? कुछ दिनोंके बाद इस प्रदेशको भी मुसलमानी प्रदेश हो जाना होगा; क्योंकि मुसलमान भूमिके लिए बड़े उत्सुक हैं। इन्साफ़ तो यह था कि चूँकि बौद्ध अपनी विशेष प्रथाके कारण जन-संख्या बढ़ने नहीं देते और चिरकालसे वे इस देशमे अपनी असंख्य 'मानी' और स्तूपोंके साथ रहते आये हैं। आज दुनियाके विचारक सन्तान निग्रहके सिद्धान्त-पर बड़ी गम्भीरतासे विचार रहे हैं। वे मनुष्य जातिके हितके लिए इसे अनिवार्य समझते हैं। अतः इसे कार्यरूपमें परिणत करनेवाले बौद्धोंको कुछ पुरस्कार मिलना चाहिए, न कि वहाँ बेतहाशा सन्तान पैदा करने वाले मुसलमानोंको ले जाकर बसाना चाहिए। अचिन्थङ् समुद्र-तलसे ६४०० फ़ुट ऊँचा है। गावमे पाँच घर बौद्धोके और एक घर मुसल-मानका है। लाल टोपी सम्प्रदायके लामाकी एक गुन्पा भी है। दीवारमें गुन्पाके अन्दर दो तरफ़ दो प्रकारकी तसवीरें हैं। एक तरफ़ तो सात्त्विक भाववाली, जिसमें भिन्न-भिन्न मुद्राके साथ भगवान् बुद्धकी पद्मासनस्थ तसवीरें हैं। दूसरी तरफ़ वाम-मार्गके वीभत्स चित्र। मुख्य तारा, बोधिसत्व, अतिशा की मूर्तियाँ मिट्टीकी हैं, बनी अच्छी हैं।

गाँवके समीप या दूर आप बहुत सी छोटे-बड़े पत्थरोकी तीन तीन हाथ चौड़ी छल्लियाँ देखेंगे। इनके ऊपर असंख्य छोटे बड़े पत्थर रक्खे हैं, जिन पर 'ओं मनि पद्महु' मंत्र तिब्बतीय या रंजन अक्षरों में खुदा हुआ है। अक्षर बड़े ही सुन्दर हैं, जिनसे लामाओं की कला-प्रियता जाहिर होती है। किन्हीं किन्हीं छल्लियों (मानियों) पर लम्बी-चौड़ी पत्थरकी पट्टियाँ हैं, जिनपर अत्यन्त सुन्दर अक्षरोंमे शास्त्र-वाक्य खुदे हुए हैं। ऐसे लाखों शिला-लेख रास्ता चलते आपको मिलेंगे। मानियोंको रास्तेमें रखनेका एक और भी अभिप्राय है। बौद्ध इन्हें अपने दाहने हाथ रखकर चलते हैं, जिसमें आते-जाते समय उनकी परिक्रमा हो जाय और आदमीको उतनी बारके मंत्र-जपका पुण्य हो। गाँवोंमें तथा उनके ओर-छोरपर अनेक स्तूप मिलते हैं।

ये वैसे ही हैं जैसे कि बुद्ध-गया तथा नालन्दाकी खुदाईमें मिले हैं। इसके शृंगपर चिह्न,- पत्रगीके च द्रमाके ऊपर गोल, जिसके ऊपर एक छोटा सा गोलप्राय खड होता है। कभी-कभी यह स्तूप एक चौकोर द्वारके ऊपर होता है। भीतर द्वारकी छतमें बड़े सुन्दर र ग-बिर गे चक्र, चित्र या मत्र चित्रित रहते हैं।

स्क्यर्बु चान—अच्चिन्‌थाट्‌से नौ मीलपर सिन्धु-नदके ऊपर यह हरा भरा गाँव बसा है। गाँवके नीचे दूर तक गेहूँ और जौके हरे भरे खेत हैं, जिनमें अनेक छोटी छोटी नहरें अनवरत बहती रहती हैं। जगह-जगह खूबानी, अखरोट तथा सेबके कितने ही वृक्ष हैं, जिनमें अखरोट विस्तार और छायाके विचारसे बड़ा ही भव्य होता है। गाँवमें कितने ही अच्छे मकान भी हैं। बौद्धोंके मकान मुसलमानों-से कई गुना साफ होते हैं। गाँवके सबसे ऊपरी भागपर पहाड़से लगी गुन्पा है। यह इधरकी अन्य गुन्पाओंकी भाँति लामा युरुकी गुन्पासे सम्बन्ध रखती है। कोई तीस बत्तीस लामा रहते हैं, जिनके रहनेके लिए कई घर हैं। आज कल युरु गन्पामें उत्सव है, इसलिए वहाँ बहुत से लामा चले गये हैं। लामोंके अधिक होनेका एक कारण है। बड़े भाईको ही यहाँके बौद्धोंमें सारा अधिकार मिलता है, और छोटे भाइयोंको उसका एक प्रकारके दास होकर रहना होता है। इसलिए छोटे भाइयोंमेंसे कितने ही लामा हो जाते हैं। हर एक गुन्पामें अपनी भूमि होती है, बल्कि यह कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी कि लद्दाख-की अधिकांश खेतीके योग्य भूमि गुन्पाओंके पास है, जिनमें लामा स्वय या अन्य गृहस्थोंसे खेती कराते हैं। वस्तुतः वेषके अतिरिक्त साधारण लामों और गृहस्थोंमें बहुत कम भेद है। यह खेती बारी, घास-फूस, गाय-बकरीकी चरवाही आदि ही नहीं करते; बल्कि दर्शकों या राजकर्मचारियोंकी सेवाके लिए भी पकड़े जाते हैं। इनका लाल कपड़ा सरकारी नौकरोंकी दृष्टिमें कुछ भी गुरुत्व नहीं रखता। पवित्र सन्यास-आश्रमकी इस प्रकार अवहेलना तथा इस प्रकारका मर्यादातिक्रमण

देखकर एक हिन्दूका हृदय दुखी हुए बिना नहीं रहता, विशेषकर एक हिन्दू राज्यमें। यदि अनधिकारियोंके लामा (संन्यासी) बननेसे यह अवस्था है तो इसका सुधार किया जा सकता है।

गुम्पाके आरम्भ होनेके पूर्व ही अनेक स्तूप मिलते हैं, जो दो प्रकारके हैं—एक तो भक्तोंकी भक्तिके सूचक, दूसरे वे जिनमें स्वर्गीय किसी प्रनिष्ठित लामाकी दग्धावशिष्ट अस्थियाँ हैं। दर्शकको इन्हें अपने दाहनी तरफ करके चलना होता है। फिर वे छोटे-बड़े लोहे, टीन, ताँबे या पीतलके खोखले वेलन आते हैं जिनके ऊपर या भीतर 'ओं मनिपद्मे हुँ' खुदा या कागज़पर लिखा रहता है। इस तरहके अनेक वेलन भक्तोंने लगा रक्खे हैं। दर्शक जाते वक़्त इन्हें घुमाता जाता है, जिसमें उतने मन्त्र-जापका उसे पुण्य हो। इधर गाँवोंमें कहीं कुत्ते नहीं देखे जाते। पहले-पहल स्क्यबूँचान गुम्पामें मैंने एक भयंकर काला कुत्ता जंजीरसे बँधा देखा गुम्पामें दो मंदिर हैं। एक तो सात्त्विक, जिसमें भगवान् बुद्ध (जिन्हें ये लोग शाक्यमुनिके नामसे पुकारते हैं) तथा दूसरे बोधिसत्वोंकी प्रतिमायें हैं। कुछ धातुमय स्तूप भी हैं। जूता पहने लोग मन्दिरमें चले जाते हैं। मैंने इसके लिए बड़ा फटकारा। वे कहते हैं—यहाँकी यह प्रथा है। दूसरा मन्दिर वह है, जहाँपर देम्छोग् (यवयुम्) आदिकी वीभत्स अश्लील कामवासनोत्तेजक मूर्तियाँ हैं। महाप्रभु गौतमकी पवित्र शिक्षा यहाँ आकर कहाँसे कहाँ पहुँच गई! जिन अद्वितीय योगिनां चक्रवर्तीने आजन्म इन्द्रिय-निग्रहका उपदेश दिया उनके नामपर यह बीभत्स-कांड! इस कोठरीका सारा वायुमण्डल अश्लीलता तथा कामवासनासे परिपूर्ण है।

सिन्धु-नद—दर्शकसे ही हम सिन्धुके किनारे-किनारे ऊपरकी ओर चलने लगे थे। सिन्धु यहाँ इन्द्र-नीलमणिकी धार-सी मालूम होता है। जाड़ेके दिनोंमें तीक्ष्ण प्रवाहवाले स्थानोंको छोड़कर अन्य जगहोंपर २ से ६ इंच तक पानी जम जाता है। एक इंच मोटी बर्फ़ बोझके लदे हुए घोड़ेके भारको सँभाल सकती है। बर्फ़ और पक्के शीशेकी

मज़बूती एक-सी है। सिन्धुकी धार कहीं चौड़ी और कहीं बोतलकी गर्दन-सी है। आस-पासके पहाड़ भिन्न-भिन्न खनिज पदार्थोंसे भरे हैं। सिर्फ़ सोना निकालनेका काम पुराने ढंगसे कहीं-कहीं होता है। इसके लिए प्रत्येक आदमीको माहवारी १२ रुपया देकर लैसन्स लेना पड़ता है। सिन्धुके तटके ऊपरी भागको खोदनेवाले खोदकर एक प्रकारकी बालू निकालते हैं, जिसे नियारियोंकी भाँति धो-धोकर सोनेके कण इकट्ठे करते हैं। कई जगह पहाड़में नारंगी, किरम्जी आदि रंगोंकी मिट्टी मिलती है, जिससे विज्ञानपटु अनेक रङ्ग तैयार कर सकते हैं। ये पहाड़ सिवाय ग्रामोंके जहाँ कि लोगोंने वृक्ष, वनस्पति लगाये हैं, बिलकुल नंगे हैं। स्क्यबूचानसे १५ मीलपर सिन्धुके उस पार वह नाला आता है जिसके किनारे 'ट्रीटीरोड' आता है। सिन्धुपर झूला-वाले पुलसे पार हो दोनों सड़कें मिल जाती हैं, जिसके बाद खल्सीका बड़ा गाँव आता है।

लामायुरु—ट्रीटीरोडपर खलचीसे १० मील पीछे लामायुरु है। यहाँ एक अच्छी खासी गुम्पा है। युरु वस्तुतः स्वस्तिक चिह्नको कहते हैं। लोग आमतौरपर युरु ही कहते हैं। किन्तु बस्तीमें लामोंका प्राधान्य होनेसे लामायुरु कहा जाता है। लामायुरुके आस-पासके प्रायः सारे पहाड़ मिट्टीके हैं। गुम्पा एक पहाड़ीके शिखरपर है। पहली जूनके आस पास यहाँ उत्सव था, जिसकी वजहसे २००-२५० लामा एकत्र हुए थे। यहाँ लामा (संन्यासी) और चोमो (संन्यासिनी) दोनों रहते हैं। चोमोके रहनेका स्थान गुम्पासे हटकर है। लामोंकी पोशाक—नीचे अनेक टुकड़ोंको जोड़कर सिला या एक लम्बा तहमद, उसके ऊपर बाहु-रहित जाकेट, ऊपरसे एक लम्बी चादर है। रङ्ग सभी कपड़ोंका लाल। इसके अतिरिक्त लम्बा जूता तथा किसी समय टोपी भी पहनते हैं। तिब्बती लामोंके दो प्रधान भेद हैं, जिन्हें उनकी भाषामें सेर्पोगोन् (पीतधारी) और मर्पोगोन् (रक्तधारी) कहा जाता है। दोनोंके और सब कपड़े तो लाल होते हैं, किन्तु सेर्पोगोन्की टोपी

पीली और मर्पोगोन्की लाल होती है। आचारमें भी दोनोंमें भेद है। जहां सेर्पोगोन् छङ् (शराब) को निषिद्ध समझते हैं, वहाँ मर्पोगोन् खुल्लम-खुल्ला अपने मठोंके अन्दर शराब पीते हैं। जो चोमो (सन्यासिनी) विशेष शिक्षा-प्राप्त होती हैं उनकी पोशाक बिलकुल लामों की-सी (त्रिचीवर) होती है। अशिक्षित एक लम्बा चोग़ा-सा पहनती हैं। इनके सिर भी लामोंकी तरह मुड़े होते हैं। लामोंकी भाँति चोमोंकी भी मुखिया होती हैं, जो उनसे काम लेती तथा क़ुसूर होनेपर दंड देती हैं। मठके लिए चोमो लामासे भी अधिक उपयोगी है। लद्दाखके खेतोंका अधिक भाग मठोंकी सम्पत्ति है। चोमो मठके खेतोंमें बड़ा काम करती हैं। लामा या चोमो बनानेका यहाँ बड़ा रवाज़ है। चूँकि यहाँपर पिताकी सम्पत्तिका एक-मात्र उत्तराधिकारी बड़ा लड़का होता है, बाक़ी उसके दासकी भाँति रहते हैं, जिसके बदलेमें बड़ा भाई अपनी स्त्रीपर उनका भी हक़ स्वीकार करता है, तथा उन्हे खाना-कपड़ा देता है। किन्तु यह सब बडे भाईकी प्रसन्नतापर निर्भर है। यदि वह नाराज़ हो तो छोटेको घरसे बाहर कर सकता है। इस प्रथाके कारण भी कितने ही छोटे भाई लामा हो जाते हैं। लामा होनेपर उन्हें कुछ अधिक स्वतन्त्रता तथा खाने-पीनेका आराम मिलता है। कुछ लड़कोंको पुण्य अर्जन करनेके लिए माँ-बाप गुन्पाको भेंट कर देते हैं। कभी-कभी रुग्ण सन्तानसे निराश होकर भी उसे भेंट चढ़ाते हैं। लद्दाखमें स्त्री-पुरुषोंकी संख्या समान है; लेकिन शादी चार-चार, तीन-तीन भाइयोंकी एक हो जाती है; इसलिए कितनी ही स्त्रियोंको पति नहीं मिलते। ये स्त्रियाँ या तो किसी मुसलमानके पास चली जाती हैं, अथवा गुन्पा में चोमो बन जाती हैं। कोई-कोई लड़कियाँ माता-पिता-द्वारा चोमो बननेके लिए अर्पण कर दी जाती हैं।

लामायुरुकी गुन्पा फयाङ (ज्गौङ्गङ्)की गुन्पाके अधीन है।

प्रधान गन्पाका अध्यक्ष कुशक् कहा जाता है। कुशक्के मर जाने पर कोई सर्वज्ञ, लामा बतलाता है कि वह अमुक स्थानपर पैदा हुआ है। और भी निश्चय करनेके लिए कभी-कभी ल्हासाके प्रधान दैवज्ञसे सहायता ली जाती है। फिर उस लड़केको, मठके लामा, अनुनय-विनय करके जैसे हो तैसे मा-बापसे ले आते हैं। वह बच्चा धीरे-धीरे बड़ा होता है तब तक मठका काम-काज दूत-पदपर अधिष्ठित एक लामा करता है। बड़ी विचित्र बात है कि ये सभी कुशक् लद्दाख और तिब्बतके ही अन्दर पैदा होते हैं। इनमेंसे कोई भी भारत या किसी अन्य देशमें पैदा नहीं होता। शायद इसलिए कि फिर उसका मिलना मुश्किल होगा। लद्दाखमें ऐसे अवतारी पाँच कुशक् हैं, जिनके मठ हैं—हमिस्, फ्याङ्, रिज़ोङ्, टिक्से और पितोक्। इनमें प्रथम दो लाल टोपीवाले। पितोक्का कुशक् मर गया। पीछे वह मठोंके राजा (हज़ार-बारह सौ रुपया सालका पेंशनर)के घर द्वितीय पुत्रके तौर-पर पैदा हुआ। आज कल वह सात-आठ वर्षका बालक कुशक् रिज़ोङ्के कुशक्के साथ रहकर विद्याभ्यास कर रहा है। सारे कुशकोंमें विद्याके लिहाज़से रिज़ोङ्, और भक्तिके लिहाजसे फ्याङ् अच्छे समझे जाते हैं। पितोक्का भूतपूर्व कुशक्का बकुला बड़ा ही समझदार, उद्योगी तथा पण्डित पुरुष था। अब तक लोग उसके लिए अफ़सोस करते हैं। वह उपदेश भी दिया करता था। दिल्ली-दरबार तथा काशी आदिको भी उसने देखा था। फ्याङ्का कुशक् बड़ा ही साधु पुरुष है। यद्यपि उसने अपने ग्रन्थोंको तिब्बतीय भाषा हीमें देखा है; किन्तु संस्कृत सीखनेका उसे बड़ा शौक़ है। रिज़ोङ्का कुशक् वैसे है तो पंडित; किन्तु उसने विवाह कर लिया है। ठिक्सेका कुशक् ल्हासासे आया था। उसने आकर पीछे तम्बाकू, शराब आदि पीना शुरू कर दिया, जिससे मठवाले रुष्ट हो गये और उसे निकल जाना पड़ा। कहते हैं, पीछे वह ईसाई हो गया। लेकिन आजकल ल्हासा चला गया है।

जांस्कारसे वह एक औरत भी ले गया था, जिसे उसने दारजिलिंग ही में छोड दिया। हेमिसकी गुन्पा सारे लद्दाख भरमें धनके विचारसे बड़ी है। नक़द वार्षिक आय तो २५ हज़ारके क़रीब ही बताई जाती है; किन्तु ग़ल्ला (गेहूँ, ग्रिम, विला छिलके के जौ) ७०-८० हज़ार मन हो जाता है, जिसका मूल्य दो-तीन लाख होगा। सभी गाँवोंमें इस मठकी ज़मीन है। कहते हैं, जब लद्दाख स्वतन्त्र था तब एक राजाके दो लड़के थे। बड़ा राजा बना, और छोटा हेमिसका कुशक् बना और साथ ही आधा राज्य भी उसको मिला। ७०-७५ वर्ष पूर्व जब वज़ीर जोरावरसिंहने लद्दाखको कश्मीराधिपतिके लिए विजय किया तब जहाँ और गुन्पाओंने आक्रमणकारीका साथ नहीं दिया, वहाँ हेमिसने सब तरहसे मदद दी। तिब्बतकी चढ़ाईमें भी इस गुन्पाने अन्नकी बड़ी भारी मदद दी। इसके पुरस्कारमें हेमिस्‌की सारी जायदाद उसके पास रह गई। सारे कश्मीर-राज्यमें भूमि महाराजकी है, कृषक केवल काश्तकार है। उसको केवल काश्तकारी तक बेचनेका अधिकार है। हेमिस् गुन्पाके लिए भी यही बात है।

लामायुरुका वर्णन करते हुए मैं प्रकरणान्तरमें चला गया; किन्तु सभी बातोंको अच्छी तरह समझनेके लिए इसकी भी आवश्यकता थी। युरुकी गुन्पा जैसा कि मैंने ऊपर बतलाया है, फ्याङ्‌की शाखा है। लाल टोपीवालोंमें भी यह डिगुङ्‌पा कहे जाते हैं। अन्य गुन्पाओंकी भाँति इनका भी प्रधान मठ डिगुङ्‌के नामसे ल्हासाके पास है। उसमें कहते हैं, सात हज़ारसे ऊपर लामा रहते हैं। कितने ही लामा जब यहाँसे ल्हासा पढ़ने जाते हैं तब अपने प्रधान मठमें रहते हैं। वहाँ उन्हें कुछ दैनिक अपेक्षित वस्तुएँ दी जाती हैं। इसके बदले जब प्रधान मठका व्यापारी-क़ाफ़िला इधर ख़रीद-फ़रोख़्तके लिए आता है तब सभी पड़ावोंपर, जहाँ उनके शाखा-मठ होते हैं, घोड़ोंके लिए घास-दान तथा अन्य सामान दिया जाता है। युरुमें भी ल्हासासे लौटे कुछ

लामा हैं। ल्हासामें तिब्बतीय भाषामें धार्मिक पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं तथा रुचिवालोंको चित्रकारी भी सिखाई जाती है।

मठोंके लामा दो प्रकारके होते हैं—एक नागरिक, दूसरे आरण्यक। दोनोंमें अन्तर यह है कि नागरिक बड़ी-छोटी गुम्पाओंमें रहते हैं और आरण्यक पहाड़ोंके एकान्त स्थानमें। अरण्यकोंके सिरपर जटा भी होती है। इन सारे सौ डेढ़-सौ लामाओंमें सिर्फ़ एक ऐसा मिला जो टूटी-फूटी हिन्दी समझता था, तथा कुछ देवताओंके संस्कृत नाम भी जानता था। आजकल उत्सव 'छोस्' (धर्म-पुस्तकोंके पाठ)का है। मन्दिरमें पंक्ति क्रमसे पचासों आदमियोंके लिए आसन लगे हैं। सामने पुस्तकें रक्खी हैं। कहीं-कहीं धूपदानी भी है। एक तरफ़ 'शाक्याथूबा' (भगवान् बुद्ध) तथा महायान सम्प्रदायके अनेक बोधिसत्व तथा देवी-देवता हैं। बायें कोनेमें छोटे मन्दिरके अन्दर मैथुन-रत देम्छोगयब-युम तथा दूसरे वाममार्गी देवताओंकी मूर्तियाँ हैं। मन्दिरकी दीवारों-पर जहाँ अनेक बुद्ध बोधिसत्व तथा देवी देवताओंकी मूर्तियाँ हैं, वहाँ द्वारसे भीतर घुसते ही बाईं तरफ़की दीवारमें अनेक भ्रष्ट देवी-देवताओं-की मूर्तियाँ हैं। मन्दिरमें जूता ले जानेका कोई निषेध नहीं। यहाँके लोगोंने तो बतलाया कि नंगे पैरसे जूते-सहित जाना अच्छा है; क्योंकि इनके पैर बहुत ही दुर्गन्ध देते हैं। ख़ैर, मेरी हिम्मत तो जूता पहने देवमूर्तिके सम्मुख जानेकी नहीं हुई। पाठके मध्यमें कितनी ही बार मक्खन और नमक डाली गाढ़ी चायका दौरा भी चलता रहता है। कोई पाठ करता है तो कोई बात भी करता जाता है। वायुमण्डल भारी जान पड़ता है। यद्यपि मन्दिरके बीचकी छत कुछ ऊँचा करके उसमें खिड़कियाँ लगी हैं, किन्तु उनसे इतना प्रकाश नहीं आता कि भीतरका अन्धकार पूर्णतया दूर हो सके। एक ताँबेका खुले मुँहका बड़ा बर्तन है, जिसमें तेल भरा हुआ है। इसके ढक्कनमें दो इंचके व्यासका एक छेद काटा हुआ है। बीचमें बत्ती डाली हुई है। यह

दीपक दिन-रात जलता रहता है, यद्यपि इसका प्रकाश सिर्फ़ बर्तनके भीतरी भागको ही प्रकाशित करता है। मन्दिरमें दाहिनी और बाईं तरफ़की दीवारोंके पास काठके खानोंमें अनगिनत ल्हासाकी छपी तथा लिखी पुस्तकें वेष्ठनमें बँधी हुई रक्खी हैं। इनमेंसे कुछमें कुछ संस्कृतवाक्य भी मिलते हैं। यद्यपि अधिकांश तांत्रिक बौद्ध-सम्प्रदायकी पुस्तकें हैं, तथापि कुछ प्रज्ञापारमितायें, विनय वस्तु आदिकी भी पुस्तकें हैं।

मन्दिरसे बाहर निकलकर बाईं तरफ़ ६०-७० आदमियोंके बैठनेका एक हाल है। इसकी दीवारोंपर अनेक रंगोंकी अति सुन्दर अनेक तस्वीरें हैं। इसमे दर्वाज़ा सिर्फ़ एक छोटा-सा है, जो एक कोनेमें है। एक दीवारमें अनेक सौम्य देव चित्रावली हैं तो दूसरेमें अनेक बुद्ध, बोधिसत्व और लामा तो तीसरेमें पंचमकार-रत अनेक देवी-देवता। सबसे हृदयवेधी तो वह चित्र था जिसमें पद्मासनस्थ भगवान् बुद्धको भी उसी प्रकार दिखलाया गया है। भगवान्के पवित्र उपदेश और जीवन को इन्होंने क्या-से क्या कर दिया! चौथीमें अनेक लामा तथा देवी-देवता मनुष्य-कपालमें शराब पी रहे हैं। यह हाल छङ् (शराब) पीनेके लिए है। मन्दिरके पीछेकी तरफ़ इसी तरहके चित्रोंवाला, किन्तु अधिक प्रकाश-युक्त इससे बडा एक और हाल है, जिसमे बच्चे-बूढ़े सभी लामा बैठे छङ्-पान कर रहे थे। १२-१२ वर्षके लडके नशेमें चूर थे। पीतल और ताँबेके बड़े वर्तनोंसे बड़ी-बड़ी करछुलों-द्वारा छङ् परोसी जा रही थी। चारों तरफ़ छङ्की गंध फैल रही थी। एक दूसरी कोठरीमें, वहाँसे थोड़ा ही हटकर, चोमो (भिक्षुनी) का चक्र चल रहा था। बाहर छतपर अनेक गृहस्थ तथा भिखमंगे भी अपने-अपने प्यालोंमें छङ्-पान कर रहे थे। यहाँ राज्यकी तरफ़से छङ् बनानेकी कोई मनाही नहीं है।

लामायुरु गाँवमें प्राय: ३०-४० घर बौद्ध-गृहस्थोंके हैं। ज़मीन

अधिकतर मठकी है। जो कुछ पैदावार होती है वह लामोंके पास ब्याई, लगान तथा पूजामें चली जाती है। मुश्किलसे तीन महीनेका अनाज उनके पास बच रहता है। बाक़ी दिन ये लोग मेहनत-मज़दूरी, कम्बल-पट्टूकी बुनाई आदिके द्वारा काटते हैं। यही दशा सारे लद्दाखकी है। ये मुफ़्त-खोरे लामा गृहस्थोंकी मेहनतकी कमाईसे पलकर मोटे हुए हैं; किन्तु बदलेमें उन्हें शराब आदिकी बुरी आदतके सिवा कुछ नहीं देते। बौद्ध स्त्रियाँ दनादन मुसलमानोंसे शादी कर रही हैं। यहाँ भी एक मुसलमान एक बौद्धस्त्रीसे शादी करके बस गया है। उससे उसके कई लड़के पैदा हुए हैं। बौद्ध इसे बिलकुल बुरा नहीं मानते; बल्कि उलटे खुश होते हैं। वह भी अन्य ग्राम-वासियोंसे अधिक सुखी है। उसने एक छोटी-सी दूकान रक्खी है। मठ और गृहस्थोंके लिए मांस भी तैयार कर देता है। दस वर्षके बाद उस एक घरसे पाँच घर मुसलमानोंके हो जाना अनिवार्य है। उसके लड़कोंको यहीं काफ़ी लड़कियाँ मिल जायँगी। यदि प्रत्येक लड़के पीछे चार और सन्तान हों तो तीस-चालीस साल बाद इसके बीस-पचीस घर हो जायंगे और साठ-सत्तर वर्षके भीतर-ही-भीतर इस गाँवमें पचास घर मुसलमानोंके हो जायँगे। इसके विरुद्ध बौद्ध-घर जितने पाँच सौ वर्ष पहले थे, उतने ही अब हैं, और पाँच सौ साल बाद भी अपने प्रथानुसार हरगिज़ नहीं बढ़ सकते, चाहे कम भले हो जायँ; क्योंकि सम्पत्ति और शादीके लिए अधिकार सिर्फ़ बड़े भाई-का है।

सारे लद्दाखके बौद्धोंकी पोशाक एक-सी है। मर्द अपने सिरके बाल गूँथकर, ऊन या सूतके जोड़, कमरसे नीचे तककी चोटी बनाते हैं। सिरपर कनटोप—ऊनी, सूती या भेड़के बच्चेकी नर्म खाल (वक)—रखते हैं। प्रायः गहरे लाल रङ्गका लम्बा ऊनी चोगा, नीचे किसी रङ्गका पायजामा, पैरमें चमड़ेके तल्ले तथा ऊनके ऊपरतल्ले भागवाला, घुट्टीके ऊपर या घुटनेके पास तकके पट्टू जूता, कमरमें

लम्बा कमरबन्द, जिसमें एक तरफ़ चकमकका लोहा लटक रहा है, दूसरी तरफ़ लोहेका पतला-सा क़लम रखनेका क़लमदान और चाकू खोंसा हुआ है। स्त्रियोंकी पोशाक काले या लाल रङ्गका लम्बा चोग़ा कमरबन्द-सहित, पायजामा, पप्पू, सिर पर दो-दो, चार-चार सेर भारी फ़ीरोज़ेके अनेक टुकड़ों, ताँबेकी ताबीज़ोंसे लाल कपड़ेमें जड़ा हुआ साँपके फनकी शकलका 'पीरग' नामक आभूषण, कानोंके ऊपर चरूको, बालोंमें गूँथकर हाथीके कान-सा बनाया गया है। दूरसे देखनेपर ये हाथीके कान और पीरग सूँड़ पीछेकी तरफ़ फेंका जान पड़ता है। इसके अतिरिक्त मूँगे आदिकी मालायें तथा लम्बे बालोंवाली बकरीकी खाल भी प्रायः प्रत्येक स्त्रीकी देहपर पाई जाती है। हाथमें शंखका चूड़ा होता है।

मुसलमानोंकी स्त्रियाँ काले रङ्गकी पोशाक पहनती हैं। पोशाक है—लम्बा कुर्ता, पायजामा, टोपी, ओढ़नी और पप्पू (चमड़े और ऊनी कपड़ेका बना एक तरहका लम्बा बूट)। ओढ़नी पिछले साल (१९२५ ई०) से शुरू हुई है। रङ्ग अधिकतर गेहुँआ होता है; किन्तु नहाने-धोनेकी आदत न होनेसे वह काला दिखाई पड़ता है। हल जोतने और माल-लदाईके अतिरिक्त सारा काम इनमें स्त्रियाँ ही करती हैं। इनमें धर्मान्धता बहुत अधिक है। अपने गुरुओंको - जिन्हें आग़ा कहते हैं—बहुत मानते हैं। बाल्ती लोग कर्गिल और स्कर्दू दो तहसीलोंमें हैं। इनके कई आग़ा हैं—इनमेंसे कोई-कोई ईरानसे पढ़कर लौटे हुए हैं। इनमें एक विचित्र प्रथा 'मुता' की है। मुताका मतलब मियादी शादी है। मान लीजिए, आप शिया हैं। आप इस देशमें चले आये और चाहें कि मै बीबीवाला बन जाऊँ—किन्तु साथ ही हमेशाके लिए नहीं—ऐसी हालतमें किसी युवती लड़की अथवा विधवासे आप मुताके लिए कहेंगे। उसके स्वीकार कर लेनेपर मुल्ला बुलाया जायगा। उसे चार-पाँच आना दक्षिणा देनी होगी। वह उस युवतीके साथ आपके इच्छानुसार—चाहे एक रात या दस वर्षके

लिए—कुछ महर (स्त्री-धन)के साथ मुता पढ़ा देगा। प्रतिज्ञात मीयादके बाद यह सम्बन्ध स्वयं विच्छिन्न हो जायगा। आग़ा लोग जब अपने पेशेमें घूमते हैं तब हर जगह कई-कई सुन्दरी स्त्रियोंके साथ एक-एक दो-दो रातके लिए मुता कर लेते हैं। मुताके लिए इसी दुनियामें सुख होता है, यह नहीं; बल्कि वे उपदेश देते हैं कि इस पवित्र कृत्यसे मनुष्य स्वर्गका भागी होता है। पाठकोंको इसमें ज़रा भी सन्देह और आश्चर्य प्रकट करनेकी आवश्यकता नहीं; यह प्रथा यहाँपर आम है। किन्हीं किन्हीं आग़ोंने तो यहाँ तक फ़तवा दे रक्खा है कि विवाहिता स्त्रीके साथ यदि एक रात्रि भी कोई पुरुष न गमन करे तो निकाह (विवाह) टूट जाता है। आग़ोंके आनेपर स्त्रियाँ तथा उनके पिता माता बड़ी खुशीके साथ अपनी लड़कियों-को उनके सम्मुख मुताके लिए पेश करते हैं। कितने ही पति तो पुण्य लूटनेके लिए यहाँ तक बावले हो जाते हैं कि अपनी स्त्रीको तलाक़ देकर मुताके लिए प्रदान करते हैं। पीछे, आग़ाके चले जानेपर, उनके साथ निकाह कर लेते हैं।

हिन्दू इधर बिलकुल नहीं हैं, सिवाय कुछ राज-कर्मचारियों और करगिल जैसे कस्बोंके कुछ व्यापारियोंके। प्रलोभनवश कितने ही हिन्दू यहाँ आकर मुसलमान भी हो जाते हैं। लद्दाखकी तरफ़के बौद्धोंकी लड़कियोंको भी ये मुसलमान आमतौरसे ब्याह लेते हैं। बौद्ध इनका मट्ठा खाते हैं; किन्तु ये उनका छूआ दूध भी नहीं पी सकते। इसलिए इनको अपनी लड़की देनेमें बौद्धोंको कोई हिचकिचाहट नहीं होती।

करगिल—शिम्शामबू से १५ मील आगे श्रीनगरसे १२ . मील पर समुद्रतलसे ५७६० फ़ुट ऊँचा करगिल स्थान है। करगिल-तहसील का यही हेडक्वार्टर है। तहसील, अस्पताल, डाक, तारघरके अतिरिक्त एक प्राइमरी स्कूल भी यहाँ है। बाज़ारमें कुछ हिन्दुओंकी दूकानें हैं। डाक-बँगला और सराय भी यहाँकी अच्छी है। यहाँका जलवायु शुष्क तथा ठण्ढा है टेम्परेचर १०८से ऊपर नहीं जाता; किन्तु जाड़े

में वह शून्यसे भी १६ अंश (अर्थात् हिमविन्दुसे २४० नीचे) नीचे चला जाता है। बाहरसे आनेवाले यात्रीके हाथ मुँह इधर आते ही फटने लगते हैं। रङ्ग भी स्याह या ताम्रवर्ण हो जाता है। कुछ दिनों पहले यहाँ आकर एक साधु रहे थे। उन्होंने अपने पुरुषार्थसे यहाँ एक शिवमन्दिर बनवाया; किन्तु पीछे वे उदास होकर चले गये। उनकी वह कीर्ति अब भी मौजूद है।

युरुसे लद्दाख जाने के लिए खलची जाना पड़ता है। यहाँ डाक, तार और डाक-बँगला है। दो अँगरेज़ पति-पत्नी पादरी तथा तीन घर ईसाइयोंके भी हैं। उनकी एक पाठशाला भी है। गाँवमें कई घर मुसलमानोंके भी हैं, जो बौद्ध-स्त्रियोंसे शादी करके बढ़ते जा रहे हैं। मुसलमान दूकानदारीका काम करते हैं। कोई-कोई खेती भी करते हैं। बाहरके मुसलमान और बौद्ध-स्त्रियोंकी सन्तान 'अर्गोन' कही जाती हैं। ये बड़ी ही गोरी तथा सुन्दर होती हैं। मजहबमें ये कट्टर मुसलमान होते हैं।

रिजोङ्—खलचीसे नूरला होते हुए आगे चलनेपर नालेमें ३ मील हटकर पहाड़पर रिज़ोङ् गुन्पा है। 'रि' यहाँकी भाषामें पहाड़को कहते हैं, और जोङ् क़िलेको। प्रधान गुन्पासे प्रायः आधा मील नीचे चोमोके रहनेका स्थान है। यह पीली टोपीवाले लामोंकी गुन्पा है। प्राचीन कालमें जब बौद्ध-धर्म तिब्बतमें आया तब वह अपने शुद्ध रूपमें था। उस समय तिब्बतमें बोनज्-धर्म था। धीरे-धीरे बौद्ध लामोंपर भी इसका रंग चढ़ गया। इसके बाद भारतवर्षसे दीपंकर श्रीज्ञान नामक महाविद्वान् सुधारक, जिन्हें तिब्बती लोग अतिशा भी कहते हैं, १०४२ ई०में तिब्बतमें आये। तिब्बत हीमें ल्हासाके पास १०५४ ई०-में दीपंकरने शरीर छोड़ा। इस महापुरुषने बहुत सुधार किया। यहाँ भिक्षुनियोंकी सख्या २० है। इनमें जो पढ़ी हैं, उन्हें लामों की-सी पोशाक रखनेका अधिकार है। ये चोमो लामोंसे भी अधिक काम करती हैं। दूर तक नालेमें गेहूँ, ग्रिम, जौ, शल्गम आदिकी इन्होंने

खेती कर रक्खी है। मीलों तक सफेदा, वीरी और खूबानीका बाग लगाया है।

गुन्पा चारों तरफ़से पहाड़ोंसे घिरी है। सिर्फ एक पतला-सा रास्ता खुला है। वस्तुतः यह पहाड़ी किला है। गुन्पासे कुछ दूर नीचे एक मकान है, जिससे आगे शराब मांस नहीं जा सकता। और न कोई सिगरट तम्बाकू पी सकता है। मद्यपान इन लामोंके लिए सख्त मना है। लामा प्राय ३० हैं। तिब्बतीय भाषामें ये अपने ग्रन्थोंको पढ़ते हैं। इनका कुशक् (महंत) कुछ संस्कृत भी जानता है। आजकल वह सदुंह्लाके उस पार नुवरामें है। उसने शादी कर ली है। ४-५ वर्ष पहले यहाँ एक नया मन्दिर बना है। मन्दिरकी चित्रकारी बहुत अच्छी है। दो बड़ी मूर्तियाँ शाक्यमुनि गौतम बुद्ध और भावी बुद्ध मैत्रेय की हैं। यहाँपर मन्दिरके अन्दर जूता पहनकर नहीं जाते; किन्तु दर्शक विदेशियोंके डरके मारे वे इसका आग्रह नहीं करते। पुराने मन्दिरमें बुद्ध अवलोकितेश्वर आदिकी मूर्तियाँ हैं। यहाँ भी एक कोनेमें भैरवकी अश्लील मूर्ति है। बौद्धोंकी संख्या दिन पर-दिन घट रही है; किन्तु इन्हें इसकी कुछ चिन्ता नहीं। पूछनेपर काल और भाग्यका नाम लेकर घोर निराशा प्रकट करते हैं। और स्थानोंसे यहाँ-के लामा विद्या और आचारमें अच्छे हैं।

सस्पोला गाँवसे पहले भावी बुद्ध मैत्रेयकी १२ हाथसे ऊँची तीन मूर्तियाँ हैं। किसी समय भारतमें भी इस तरहकी मूर्तियाँ पाई जाती थीं; किन्तु मुसलमानोंकी धर्मान्धताने उनका चिह्न तक बाकी न रहने दिया। 'ला' या 'ल्हा' यहाँकी भाषामें देवताको कहते हैं। सभी ऊँचे पार्वत्य स्थान इनके विचारसे किसी-न किसी देवताके स्थान हैं; इसी लिए ये प्रत्येक दर्रेको 'ला' के नामसे पुकारते हैं। मुसलमान भी इसी भावको प्रकट करते हैं, जबकि वे उन्हे 'पीर' कहते हैं। सस्पोलासे ३-४ मील आगे उक्त नामका दर्रा और मैदान है। फिर नीचे उतर-कर नालेमें बग्गो ग्राम है। बहुत पुराने समयमें यही लदाखकी

राजधानी थी। लेह राजधानी यहाँसे पीछे बनी। अब भी यहाँ नगर-प्रकारके चिह्न हैं। खँडहर भी अधिक हैं। बस्ती कम होते-होते बहुत थोडी रह गई है। मुसलमान भी यहाँ हैं, और बढ़ रहे हैं। पुराने स्तूपों और मानीकी छल्लियोंकी यहाँ बहुत अधिकता है। वज़्गोसे आगे एक बहुत लम्बा-चौड़ा मैदान है। पानीके विना यह आबाद नहीं हो सकता, यद्यपि १०-१२ मील ऊपर सिन्धसे नहर निकाली जा सकती है। इस मैदानमें दो मीलसे ऊपर लम्बी मानीकी छल्ली है। इन सभी स्थानों से निराशा प्रकट हो रही है। जान पड़ता है, लद्दाखके बौद्धोंके निराशामय भविष्यपर ये भी शोक प्रकट कर रहे हैं। इस बालू-मिट्टीके मैदानको पारकर नीमू पहुँचते हैं। राज्यका सफेदोका बाग़ बड़ा सुन्दर है। लोगोंने नहरें निकालकर मीलों लम्बी-चौड़ी भूमि आबादकी है। गेहूँ आदिकी खेती चारों तरफ़ लहरा रही है। अभी ये खेत अगस्तके अन्तमें कटेंगे। नीमूमें फिर सिन्धुनद छूट जाता है। एक छोटे-से दर्रेसे हम एक लम्बे-चौड़े मैदानमें पहुँचते हैं, जिसके आसपास हिमाच्छादित पर्वत-मालायें दिखाई पड़ती हैं।

फ्याङ्—दस मील आगे चलनेपर रास्तेसे दो मील ऊपरकी तरफ़ फ्याङ् आता है। यहाँ एक अच्छी गुन्पा है। लामा १०-१२ ही रहते हैं; किन्तु कुशक् यहाँका बहुत ही साधु पुरुष है। यह लाल टोपी वालोंकी गुन्पा है; अतः वाम-मार्ग (मद्य)का प्राधान्य यहाँ आवश्यक ठहरा। यहाँ भी नये सिरसे गुन्पा बनानेका काम शुरू है। 'देम्छोग'का यहाँ पृथक् मन्दिर है। शराबकी बू से यह मन्दिर भरा है। छतसे सींग और जंगली मुर्दा जानवर लटकाये हुए हैं। खोपड़ीका प्याला भी देवताके सम्मुख रक्खा हुआ है। मूर्तियाँ और चित्र बड़े गन्दे हैं। कुशक् बेचारा क्या करे जब कि यहाँकी यह परिपाटी ही है। फ्याङ्में भी मुसलमान-घर हैं और इसके नीचेवाली भूमिको तो स्तोक्के राजाने मुसलमान असामियोंको दे ही दिया है।

पितोक्—चार-पाँच मील आगे चलनेपर सिन्धु नदके किनारे

आस पासके पहाड़ोंसे अलग एक पहाड़ी टेकरीपर 'पितोक्' गुम्बा है। गुम्बा साधारण है; किन्तु इसके भूतपूर्व कुशक् बकुलाकी विद्या और स्वभावकी अब भी लोग बड़ी चर्चा करते हैं। वर्त्तमान कुशक् सात-आठ सालका बालक है।

पितोक्से चार मीलपर मैदानके ऊपरी भागमें पहाड़के किनारे लेह नगर है। चढ़ाई मालूम नहीं होती। 'लेह' यहाँकी भाषामें चश्मोंकी जगहको कहते हैं। तिब्बत, कुल्लू, पंजाब और यारकन्द, खोतनके सौदागरोंको इसी रास्तेसे गुजरना पड़ता है। लेह एक सात-आठ मील लम्बे और तीन-चार मील चौड़े ढालू मैदानमें स्थित है। सिन्धु यहाँसे पाँच मीलपर है। लद्दाख और तिब्बतके हिन्दुस्तानी सौदागरोंकी यहाँ भी दूकानें हैं। गर्मीमें लद्दाख-जिलेका वजीर यहीं रहता है। यहाँ राज्यकी ओरसे एक अँगरेज़ी मिडिल स्कूल तथा जानवरों और आदमियोंके अस्पताल भी हैं। ब्रिटिश गवर्नमेंटने भी अपना अस्पताल खोल रक्खा है; लेकिन उसका सारा प्रबन्ध मोरावियन मिश्नरियोंके हाथमें है। मिश्नरियोंका काम बौद्धोंको ईसाई बनाना है। वे अपने इस काममें अस्पतालको साधन समझते हैं। फिर गवर्न-मेंटने अपना अस्पताल उनके हाथमें क्यों दे रक्खा है? सिर्फ सहायताकी बात होती तो उतना हर्ज न था, यद्यपि राज्यके अन्दर उसकी भी आवश्यकता न थी। गर्मियोंमे दो मासके लिए ब्रिटिश ज्वाइंट-कमिश्नर भी आकर यहाँ रहता है। चूँकि लद्दाखकी सीमा तिब्बत और चीनी तुर्किस्तानसे मिली हुई है, इसीलिए सावधानीके लिए भारतीय गवर्न-मेंटके राजनीतिक विभागको यहाँ अपना एक प्रतिनिधि रखनेकी आवश्यकता पड़ी।

लद्दाख तहसीलमें सिर्फ ८ पुलिसके सिपाही रहते हैं, जिनको भी कोई बहुत काम नहीं रहता। फ़ौजदारीके मुक़दमे बहुत ही कम होते हैं। गाँवोंमें चौकीदारोंकी कोई आवश्यकता नहीं। अनेक गाँवोंपर एक नम्बरदार और अनेक नम्बरदारोंपर एक ज़ेलदार रहता है,

जिनका काम समयपर हाकिमोंकी सहायता करना है। नम्बरदारको अपने हलकेकी खेतोकी आमदनीपर ५) सैकड़ा मिलता है। ज़ैलदारों-को ७०से १०० रुपया सालाना तक मिलता है। यहाँके लोग बड़े सीधे-सादे, सच्चे तथा भीरु होते हैं। एक मामूली चपरासी वह रोब रखता है, जो और जगह पुलिस सब-इंसपेक्टरका नहीं है। इसका एक और भी बुरा परिणाम है। बौद्ध बेचारे सीधे सादे हैं, चपरासी बहुत-से मुसलमान हैं, कानूनगो और पटवारी भी बहुत-से मुसलमान हैं। ये अकसर उनपर नाज़ायज दबाव डालते हैं। बौद्धोकी लड़कियोंको भगानेमें भी अकसर इनका हाथ देखा गया है। हाकिमों और यात्रियों-के लिए प्रत्येक गाँवको बारी-बारीसे निश्चित स्थानपर नियत संख्यामें घोड़े और आदमी रखने होते हैं। आदमीको)॥ मील और घोड़े-को ‑) मील मिलता है, जो बहुत कम है। अधिकांश यात्री दिनमें १०-१२ मील यात्रा करते हैं इस प्रथाको 'रेस' कहते हैं। लोग इससे बड़ा कष्ट अनुभव करते हैं।

मैंने पीछे लिखा था कि कर्गिल और स्कर्दू इन दो तहसीलोंमें प्राय सभी शिया मुसलमान रहते हैं। जो बौद्ध हैं भी वे गर्कूनके दो-चार गाँवोंके अतिरिक्त दो इलाक़ोंमें मुल्बे और जांस्कारमे हैं। इनकी संख्या तीन-चार हज़ार हैं। कर्गिलमे लद्दाख जानेवाली सड़कपर मल्वे पड़ता है। इन बौद्धोंकी क्या अवस्था है, यह इससे मालूम हो सकता है। बोध-खर्बू (सिम्सा खबूं से भिन्न)की तरफ़का रहनेवाला १८-१९ वर्षका एक युवक कर्गिलमें मिला। उसकी माँ मुसलमानिन है। बाप, तीन भाई और दो बहनें बौद्ध हैं। तू क्यों मुसलमान है, यह पूछने-पर उसने कहा—मेरी माँ जो मुसलमान है। जिसका बाप मुसलमान होगा उसके तो सभी बच्चे मुसलमान होंगे। माताके मुसलमान होने-पर एक पुत्र ज़रूर मुसलमान होगा; ताकि माताके लिए वह फ़ातिहा पढ़ सके। माँके मुसलमान होनेसे यह न समझिए कि इधरके मुसल-मान बड़े हैं; इसलिए वे अपनी लड़कीको गैर-मुसलमानसे ब्याह देते

हैं। नहीं, वे भी बौद्ध माता-पिताकी ही सन्तानें हैं, जो खामखाह स्वेच्छा-पूर्वक इस्लामके गल्लेमें दाखिल की गई हैं।

ये शिया मुसलमान तो कश्मीरी पंडितों तकको काफिर समझ उनके हाथका पानी तक नहीं ग्रहण करते। पूल्वे और जास्कर वे इलाके हैं, जहाँके बौद्ध मुसलमान हुए विना वहुत दिनों तक वच नहीं सकते। जहाँ किसी गाँवमें एक मुसलमान आया, पहले तो वह वहींसे अपने और अपने सहधर्मी मित्रके लिए उस गाँवके बौद्धोंमें से दो-एक लड़की अवश्य लेगा। मुसलमान बौद्धोंके हाथका पानी नहीं पीते। उधर बौद्ध और उनके वड़े-वडे लामा महन्त मुसलमानों-का जूठा तक खा जाते हैं। इसकी वजहसे बौद्ध मुसलमानोंको अपने से ऊँचा समझते हैं और उनके साथ अपनी लड़कीकी शादी होते बुरा नहीं मानते। बालतिस्तानमें मुसलमानी आवादी वरावर बढ़ रही है। एक यहाँके अनुभवी सज्जनने कहा कि यहाँ गाँवोंमें लड़के ७-८० फ़ी सदी तक पाये जाते हैं। इसमें शक नहीं कि गाँवोंमें लड़के अधिक देखनेमें आते हैं। मनुष्य-गणनाकी रिपोर्टसे वालतिस्तानकी असाधारण जनवृद्धिका पता लगता है। इस बढ़ती हुई जन संख्या-का आस पासके प्रदेशोंपर धावा मारना स्वाभाविक है। फलतः मुसल-मान एक दो घरके आस-पासके बौद्ध-इलाकोंमें चले जाते हैं। बौद्ध वड़ी खुशीसे इन मुसलमानोंको अपने गाँवोंमें स्थान देते हैं, क्योंकि उन्हें भेड़-वकरी हलाल कर देनेवाला एक उपकारी मनुष्य मिल जाता है। धीरे धीरे हरएक घरसे दो और दो घरसे चार घर हो जाते हैं। फिर वह वड़े ठाट-वाटसे अपने गुरु आग़ाकी पधरावनी अपने यहाँ कराता है। देखा-देखी मिथ्या विश्वासमें सम्पूर्णतया मग्न गाँवके बौद्ध भी आग़ाकी खिदमतके लिए आते हैं। आग़ा उन्हें भी इस्लाम की वर्कतका उपदेश देता है। यहाँके गाँव दो पहाड़ोंके वीचसे जाने वाले नालों या नदियोंके किनारे वसे हैं। आग़ाकी सवारी नालेके

किनारेके सभी गाँवोंमें जाया करती है। जहाँ दो-चार साल इस तरह पधरावनी हुई कि सारा नाला मुसलमान हुआ।

ये आगे बडे चतुर हैं। जब मुसलमानोंकी संख्या कम देखते हैं तब शरीयतकी पाबन्दीपर ज़ोर नहीं देते। अपने अनुयायियोंको भी बौद्धोंके साथ मिलकर नाचने-गाने देते हैं; किन्तु जैसे ही सारे गाँवके लोग मुसलमान हुए कि इन सभी काफ़िराना रसूमातको बन्द करा देते हैं। संक्षेपमें बौद्ध गाँवका नाचता-गाता अकेला मुसलमान भी पक्का मुसलमान है। उसे बौद्ध कभी हज़म नहीं कर सकते; किन्तु दूसरी तरफ़ बौद्धोंमें हिन्दुओंकी कमज़ोरियाँ विद्यमान हैं। वह गुम्पामें भी पूजा कर लेता है और अवसर पा मुसलमानी ज़ियारतगाहकी भी ज़ियारत कर सकता है। वस्तुतः भूत-प्रेतकी बहुत सी कथाओंके अतिरिक्त उसे अपने धर्मका कुछ पता भी तो नहीं होता। पता हो कैसे, जबकि उसका चुरु—लामा भी छङ् (कच्ची शराब)को बेधड़क उड़ाता है। कामवासनाकी तृप्तिकेलिए धर्मानुसार उसे स्त्री भी मिल जाती है। गृहस्थोंके धनसे मौज करते हुए ये हज़ारों लामें यदि अपने कर्तव्यका षोडशांश भी पालन करते तो आज यह दशा इन बौद्धोंकी क्यों होती? मुल्बेकी तरफ़ गुम्पा (बौद्धमठ) गिर रही हैं, क्योंकि उनके अनुयायी कम होते चले जा रहे हैं। वह दिन बहुत नजदीक है, जबकि मुल्बे और जांस्कारमें भी एक गुम्पा और बौद्ध नहीं रह जायगा।

बौद्धोंके ह्रासके और भी कारण हैं। एक तो बड़े भाईके अतिरिक्त दूसरोंकी शादीका अधिकार न होना। बाक़ी भाइयोंकी भी उनकी भाभी ही स्त्री होती है। दूसरे, बापकी सम्पत्ति सिर्फ़ बडे लड़केको मिलती है। इसकी वजहसे भी अनेक छोटे भाई मुसलमान हो जाते हैं; क्योंकि मुसलमान होनेपर उन्हें अलग स्त्री भी मिल जायगी और इधर-उधरसे कुछ जायदाद भी पैदा कर सकता है। एक और भी बात है, जिससे इनकी जड़ कट रही है; ये पहाड़ी लोग राज

कर्मचारियोंसे बहुत डरते हैं। एक मामूली चपरासी भी उनकेलिए लाट साहबसे कम नहीं है।

इधर ४०-४० मील तकका एक ही पटवारी होता है। यदि कहीं पटवारी मुसलमान हुआ, चपरासी और सिपाही भी मुसलमान; पेशकार और रिश्तेदार भी मुसलमान और कोई तहसीलदार (जिसे कि द्वितीय श्रेणीके मजिस्ट्रेटका अधिकार है) मुसलमान हो; साथ ही बड़ा हिन्दू अफ़सर यदि हिन्दू हो, किन्तु मुसलमानोंसे डरनेवाला अथवा अपने मुसलमान निम्न कर्मचारियोंके वशमें हो, तो आप ही सोचें इन सीधे सादे बौद्धोंपर क्या गुजरती होगी। लद्दाखकी अवस्था बिलकुल ऐसी ही है। हिन्दू राज्य होनेपर भी मुसलमान जायज-नाजायज सभी तरीकेसे अपने पड़ोसियोंको दबाते रहते हैं ! बौद्ध बेचारे भोले भाले हैं। उनकी कहीं पूछ-ताछ नहीं। उदाहरणार्थ श्रीनगरको ले लीजिए। वहाँपर लद्दाख, यारकन्द आदिकी तरफ़से जानेवाले मुसलमान सौदागरोंकेलिए अच्छी दोमहली पक्की सराय है, किन्तु बौद्ध व्यापारी ईदगाहके मैदानमें छोलदारी लगाकर रहते हैं। उस दिन सिन्धुतटवर्ती गार्कुन गाँवके कई ग्राम-वासियोंने पूछा—हमारा महाराजा मुसलमान हो गया है तो उसका मुसलमानी नाम क्या पड़ा है ? हिन्दू नाम हरीसिंह तो हम जानते हैं। हमारे बहुत समझानेपर भी उन्हें विश्वास नहीं हुआ, क्योंकि उन्होंने अपने किसी विश्वसनीय मुसलमानके मुखसे यह बात सुनी थी। वे यह बात भी कह रहे थे कि जब हमारा राजा मुसलमान हो गया है तब हमारा क्या ?

लंका (२)

१

अनुराधपुर, लंकाकी राजधानी

यस्याम्बुधिः स भगवान् स च रोहणाद्रिः,
कोशाविमौ मदन-मन्त्र-पदैव चोभिः।
सोऽयं प्रियो यदि हसन् मृदु सिंहलेन्द्रः,
क्रीडानिधानमनुराधपुरं धिनोति॥

(*राजशेखरः*)

कविराज राजशेखरने (८८०-६२० ई०) अपने बाल-रामायणमें इन पंक्तियोंको उस समय लिखा था, जिस समय अनुराधपुरका अन्तिम समय बिलकुल समीप था; तो भी उसमें अभी इतनी शक्ति थी कि उसका राजा द्वितीय सेन (८६६-६०१ ई०) पाण्ड्य (मदुरा)-नरेश-को गद्दीसे उतार, दूसरेको सिंहासनारूढ़ कर सकता था। प्रायः १००१ ई में चोलराज राज-राजने (प्रथम) सिंहल-विजय किया और सिंहलेश्वर महेन्द्र पंचमको बन्दी बना भारत ले गया। वहीं उसकी मृत्यु हुई। इस पराजयके बाद फिर अनुराधपुरको लंकाकी राजधानी बननेका सौभाग्य न प्राप्त हुआ। तो भी अनुराधपुर ४३७ ई० पू०से १००१ ई० प्रायः डेढ़ हज़ार वर्षों तक, सिंहलकी राजधानी रहा। यही कारण है जो ६२६ वर्षों से राज्यश्री-शून्य होनेके बाद, आज भी

उसके कोसों तक फैले हुए ध्वंसावशेष, उसकी पुरातन भव्यकीर्तिकी छटा सम्मुख उपस्थितकर आँखोंको चकाचौंध कर सकते हैं।

लंकाको पहचाननेकेलिए अनुराधपुरका दर्शन अनिवार्य है। जिसने अनुराधपुरको नहीं देखा और न समझा उसकेलिए सिंहल-द्वीपका समझना असम्भव है। अनुराधपुरकी एक-एक अंगुल भूमि सहस्राब्दियोंकी अनेक मधुर, पवित्र स्मृतियोंसे परिपूर्ण है। आज मैं पाठकोंके सम्मुख उसी अनुराधपुरके विषयमें लिखना चाहता हूँ। यद्यपि वर्तमान अनुराधपुरको आप बहुत कुछ समझ सकते हैं, तो भी महान् अनुराधपुरके जाननेकेलिए उसके बाल्यकालकी कथाका कुछ दिग्दर्शन करा देना आवश्यक है, जिसमें हमारी अपनी भी भव्य पुरातन स्मृति एकीभूत है।

ई० पू० सप्तम शताब्दीका समय था जबकि बगदेशकी राजकन्या-को कोई वन्य दस्यु पकड़ ले गया। उसने लाटके (गुजरात) जंगलोंमें उसे रक्खा, जहाँ राजकन्याको उससे दो सन्तान हुईं—सिंहबाहु और सीवली। आगे चलकर सिंहबाहु सिंहपुर नामसे एक नगर बसाकर लाटेश्वर बने। उन्हें सीवलीसे ३२ लड़के हुए, जिनमेंसे बड़ेका नाम विजयकुमार था। विजय ज्येष्ठ और पिताका प्रेमपात्र होनेसे राज्यका उत्तराधिकारी और युवराज हुआ, किन्तु उसकी प्रकृति बड़ी उद्दण्ड थी। वह अपने साथियोंको साथ लेकर लोगोंपर नाना प्रकारके अत्या-चार करने लगा। प्रजाने राजाके पास फ़र्याद की। महाराजने राजकुमारको चेतावनी दी, किन्तु उसके स्वभावमें कुछ भी परिवर्तन न हुआ। अंतमें प्रजाके दबावसे राजाने विजय और उसके सात सौ साथियों तथा उनकी स्त्रियोंको दो जहाजोंमें बैठाकर अपने राज्यसे सदाकेलिए उसी प्रकार निर्वासित कर दिया जैसे कि महाराज सगरने युवराज असमंजसको। रास्तेमें स्त्रियों वाली नाव तो बहकर किसी ऐसे स्थानपर पहुँची; जहाँसे फिर उन्हें उनसे मिलनेका सौभाग्य न हुआ, किन्तु विजय और उसके साथी सुप्पारक (सुप्पारा, बम्बईके समीप)

पहुँचे। नगर-वासियोंने बड़े सत्कारके साथ उनका स्वागत किया, किन्तु *नीम न मीठो होय*। वहाँ भी उन्होंने वही उपद्रव मचाना आरम्भ किया। लोगोंने उन्हें जानसे मार डालनेकी ठान ली, जिसपर वे वहाँसे भागकर भरुकच्छ (भड़ोंच) पहुँचे। वे वहाँ भी न ठहर सके और अन्तमें वहाँसे चलकर ईसा-पूर्व ५४३के वैशाख मासमें लंका-द्वीपके पश्चिमोत्तर समुद्र-तटपर पहुँचे। कोलम्बसकी तरह उन्हें भी भ्रान्ति हुई और उन्होंने उस स्थानको बहुमूल्य मोतियोंका खान ताम्रपर्णी-नदीका तट समझा। इस प्रकार उस स्थानपर बसनेवाली बस्ती ताम्रपर्णीके नामसे प्रसिद्ध हुई, और कालान्तरमें उसने सारे द्वीपको अपने नामसे ताम्रपर्णीके नामसे प्रख्यात किया। महाराज अशोकने भी अपने शिला-लेखमें उसे इसी नामसे स्मरण किया। विजयने अपने सिंह-वंशकी दूसरी छाप दी, जिससे लंकाका नाम सिंह पड़ा और निवासी भी सिंहल कहलाए।

विजयने लंकाके मूल-निवासियोंको विजयकर एक आर्य-राज्य स्थापित किया। समयके ठोकरोंने उसे अब ऐसा बना दिया था कि वह अपनेको योग्य शासक सिद्ध करे। उसके साथियोंने भिन्न-भिन्न जगहोंपर अनेक बस्तियाँ बसाईं, जिनमेंसे अमात्य अनुराधने मलवत-नदीके तटपर अपने नामसे अनुराधपुरको बसाया। ३८ वर्ष राज्य करनेपर महाराज विजय निस्सन्तान मरे। उनके बाद उनका भतीजा पाण्डु वासुदेव लंकामें आकर राजा हुआ, जिसने अपना विवाह भगवान् बुद्धके चचा अमितौदनके पुत्र तत्कालीन वंग-राज पाण्डुकी कन्या भद्र-कात्यायनीसे किया, जिसके साथ बहुतसे परिवार विहार और बङ्गालसे बसनेकेलिए लंका चले आये। इस प्रकार लङ्कामें विजयके सातसौ साथियों और उनकी पाण्ड्य स्त्रियोंसे आर्योंकी जो संख्या थी वह अब इन नये लोगोंके आनेसे और भी बढ़ गई।

विजयके बाद लंकाके सिंहासनपर पाँचवें राजा मुटसीव ई० पू० ३०७में बैठे, जिनके बाद उनके बड़े लड़के देवानाम्प्रिय तिष्य २४७

में सिंहासनासीन हुए। उस समय भारतमें देवानांप्रिय प्रियदर्शी महाराज अशोकका धर्मराज्य था, जिन्होंने २६१ ई० पू० राज्य प्राप्त किया और २६५ ई० पू० अपना राज्याभिषेक कराया। इस प्रकार सम्राट् अशोकके १३वें शासन कालमें देवानांप्रिय तिष्य सिंहासनासीन हुए। जिस प्रकार विजयसे लंकाके इतिहासमें आर्योंके उपनिवेश-द्वारा एक नया युग आरम्भ होता है, उसी प्रकार देवानांप्रिय तिष्यसे भी बौद्ध-धर्मके प्रचार द्वारा दूसरा चिरस्मरणीय काण्ड आरम्भ होता है। महाराज अशोकने अपने चौदहवें अभिषेक-वर्षमें ताम्रपर्णीमें ओषधि और चिकित्साका प्रबन्ध लिखा है। अत देवानांप्रियके पिता मुटसीवके समयसे ही दोनों राजाओंमें मैत्री थी। उस समय सम्पूर्ण लंकाद्वीप तीन प्रान्तोंमें बँटा था। दक्षिणमें महावली और कलुगंगाकी दूसरी तरफका प्रान्त *रोहण रठ* (रोहण राष्ट्र) के नामसे प्रसिद्ध था। देदुरु ओया (नदी) और महावली गंगासे उत्तरका प्रदेश *रज-रट* (राज राष्ट्र) या *पिहित* (पीठ) राजधानीके इसी प्रान्तमें होनेसे कहा जाता था। दोनों प्रदेशोंका मध्यवर्ती प्रदेश *माया रठ* था, जो वर्तमान समयमें सबसे अधिक आबाद प्रदेश है और जिसमें कोलम्बो नगर है। इसीसे लंका भी त्रिकलिङ्गकी तरह, त्रिसिंहलादि नामसे प्रख्यात था और १८१५ ई० तक, कांडीके राजाकी उपाधि त्रिसिंहलेश्वर रही।

नाना देशोंमे धर्म प्रचारक आर्य सभ्यता और धर्मकी पताका फहरानेके-लिए भेजे जाने लगे। उस समय संन्यासी महेन्द्रके भागमें सिंहलद्वीप पड़ा। वह देवानाम्प्रिय तिष्यके अभिषेकके थोडे ही समय बाद २४७ ई० पू०मे ज्येष्ठ पूर्णिमाको लंकाके मिश्रक पर्वतपर (जो पीछेमे चैत्य पर्वत और आजकल मिहिन्तलेके नामसे प्रसिद्ध है) पहुँचे। उसी दिन शिकारकेलिए गये हुए देवानाम्प्रिय बौद्ध-धर्ममें दीक्षित किये गये। एक महीनेके भीतर ही दूर दूर तकके लाखों आदमी त्रिशरण-परायण हो गये। उस समयकी लंकाकी भाषा और उत्तर-भारतीय भाषामें नाम-मात्रका अन्तर था अक्षर भी ब्राह्मी ही थे। इस प्रकार महेन्द्रकेलिए भाषाकी कोई कठिनाई न था। उनके प्रयत्न करनेपर भी यह न छिप सका कि यह फटा चीथड़ा धारण करनेवाला अपूर्व धर्म-प्रचारक सम्राट् अशोकका ज्येष्ठ पुत्र है। दूसरे वर्ष २४६ ई० पू० में भिक्षुणी-संघ स्थापनकर, धर्म-प्रचारकेलिए, बुद्ध गयासे महाबोधि वृक्षकी एक शाखा लेकर संन्यासिनी संघमित्राने भी लकाकी भूमिका पवित्र किया। आज बाईस सौ वर्ष बीत गये। संसारमें न जाने कितने परिवर्तन हुए भारत कहाँसे कहाँ पहुँच गया। तो भी वह संसारका सबसे पुराना और पवित्र वृक्ष अनुराधपुरमे अपने उसी स्थानपर विराजमान है। वह स्वयं लंका और भारतवर्षके सम्बन्धका जीवित इतिहास है। महान् महेन्द्र २५९ ई० पू० और भगवती संघमित्रा २५८ ई० पू० में मोक्ष-धामको सिधारे।

यहाँ एक-दो बातोंकी चर्चा और आवश्यक है। २३७ ई० पू० में जब देवानाम्प्रियके भाई सूरतिष्य राजा थे, द्राविड़ोंने लङ्कापर अधिकार जमाया। १४५-१०१ ई० पू० तक महामना, न्यायमूर्ति, द्राविड़-सन्तान एलार अनुराधपुरके छत्रपति थे। इन्होंने रथके पहियेके नीचे एक बछड़ेके दबकर मर जानेपर अपने प्रिय पुत्रको मरवाकर अपने न्यायका परिचय दिया।

जिस समय प्रायः समस्त लङ्काद्वीप द्राविड़ोंके हाथमें था उस

समय लङ्काके दक्षिणी समुद्र-तटपर महाग्राम भागममें, देवानाम्प्रियके भाई महानागके प्रपौत्र, काक-वर्ण तिष्य रोहणके जङ्गली प्रदेशपर सिंहलकी स्वतंत्र ध्वजा फहरा रहे थे। इन्हींके यहाँ विहार-देवीके गर्भसे, लङ्का-माताका अद्भुत साहसी, अद्वितीय, गुणैकपक्षपाती, धर्म-प्राण, ग्रामणी पैदा हुआ। 'होनहार बिरवान के, होत चीकने पात'। एक समय बालक ग्रामणी और उसके छोटे भाई श्रद्धातिष्यको एक थालीपर बैठाकर, पिताने प्रतिज्ञा-करानी चाही कि वे कभी एक दूसरेसे बिगाड़ न करेंगे। राजकुमार ग्रामणीने सहर्ष स्वीकार किया। जब पिताने इस प्रतिज्ञाके साथ यह कहकर दूसरे कवलको खानेकेलिए कहा कि वह महाबली गंगाके उस पारकी ओर दृष्टि न डालेंगे तब क्रोधसे विह्वल बालक ग्रामणीने उस कवलको वहीं पटक दिया और उठकर चारपाईपर जाकर पैर समेटकर लेट गया। माताने पूछा—पुत्र, पैर समेटकर क्यों सोये हो।* बालकने उत्तर दिया—'माँ! गंगाके उस पार द्राविड़ है और दूसरी तरफ महासमुद्र, पैर पसारकर मैं कैसे सोऊँ?'। तरुण कुमारने कुछ तैयारीके बाद उत्तर देशपर चढ़ाई करनेका इरादा किया। किन्तु पिताने नहीं माना। कुमारने समझाया। किन्तु फिर भी पिताका साहस न हुआ। इसपर कुमारने राजाके पास चूड़ी और साड़ी भेज दी। पिताके साथ इसी विरोधकेलिए ग्रामणीका नाम 'दुष्ट' ग्रामणी (सिंहल - 'दुटुगेमुनु') पड़ा। लेकिन माता विहारदेवी जीजीबाई थीं। उसने सदा पुत्रका उत्साह बढ़ाया। युद्धमें भी देवी रक्षाके रूपमें वे पुत्रके साथ रहीं। द्रविड़ भी कम शक्तिशाली न थे। उन्होंने एक-एक इञ्च भूमिकेलिए कठोर युद्ध किया, किन्तु दुष्टग्रामणीके अदम्य उत्साह और अपूर्व शौर्य, जिसके पीछे सारी

---

*गंगापारम्हि दमिला इतो गोठमहोदधि।
"कथं पसारितोगोहं निपज्जामि०" ॥ महावंश २२-२६

सिंहलजातिकी विदेशियोंके प्रति घृणा मिलकर ऐसी शक्ति बन गई थी, के कारण उसपर विजय प्राप्त करना द्रविड़ोंकेलिए असम्भव थी।

जिस समय अन्तिम बार दुष्टग्रामणी और एलारकी अध्यक्षतामें सिंहल और द्रविड़ सेनायें अनुराधपुरके पास एकत्र हुई उस समय दोनों वीरोंने निश्चय किया कि क्यों इतने प्राणियोंका संहार किया जाय, आओ हमीं दोनों लड़ें। जो जीतेगा उसके हाथ लंकाका राज्य रहेगा। अनुराधपुरके दक्षिण-द्वारके पास ही प्रतापी एलार वीर दुष्टग्रामणीके हाथसे मारा गया। वीर-पूजक गुणग्राही दुष्टग्रामणीने राजोचित सत्कार और सम्मानके साथ राजा एलारका अग्नि-संस्कार किया। उसकी अस्थियोंपर उसने एक बड़ा स्तूप बनाया। महापुरुष एलारके समाधिके पास जलूसका बाजा आदि रोक देनेका जो रवाज ई० पू० १०१में प्रचलित हुआ वह सिंहल-जातिके अन्तिम स्वतन्त्रता-के दिनों तक अटूट बना रहा है। एक अंग्रेज लेखक लिखता है, १८१५ ई०में जिस समय अन्तिम सिंहलेश्वर श्रीविक्रम राजसिंह अंग्रेजोंसे पराजित हो अपने प्राणोंकेलिए इधर-उधर भटक रहा था उस समय शत्रुओंसे पीछा किया जाता हुआ जब वह वीर एलारकी समाधिके समीप पहुँचा और उसे यह मालूम हुआ तब वह तुरन्त अपनी सवारीसे उतरकर पैदल निश्चित सीमा तक गया। दुष्ट-ग्रामणीकी सन्तानने अपने स्वतन्त्र जीवनके अन्तिम क्षण तक उस पवित्र भावको किस तरह निवाहा, इसका यह एक अनुपम दृष्टान्त है।

महाराज दुष्टग्रामणीने २४ वर्ष राज्य-शासन किया। उसने अपने आदर्शको इन शब्दोंमें प्रकट किया—'मेरा यह प्रयत्न अपनेलिए राजसी वैभव और आनन्द प्राप्त करनेकेलिए नहीं है, बल्कि (सिंहल-जातीय) धर्मकी पुन. स्थापनाकेलिए। ई पू ११०में जब वह संसारके सबसे बडे (मिस्री पिरामिडसे भी) स्तूपको पूर्ण न कर सका था तभी मृत्युका सन्देश पहुँचा। भाईकी व्याकुलताको देखकर युवराज श्रद्धातिष्यने स्तूपको चारों ओर अलंकृत वस्त्रसे

आच्छादितकर कहा कि चैत्य तैयार हो गया। राजाने अपने आँखों से देखनेकी इच्छा प्रकट की, और उसे 'पूर्ण' देख बड़े शान्तिपूर्वक इस सिंहल-जाति—नहीं निखिल आर्य-जाति—के अप्रतिम पुत्रने अपनी अन्तिम लीला संवरण की।

ईसाकी चौथी शताब्दी तक लंका भाषा, भेष, और अक्षरमें बिलकुल उत्तरी भारतसा रहा। उत्तरी भारतकी भाँति यहाँ भी सातवीं, आठवीं शताब्दियोंका इतिहास जातिके कलह निर्बलता तथा अज्ञेयताके घोर अन्धकारमें आच्छादित है। इसके बाद अनुराधपुर-के साथ-साथ लंकाके हृदयमें कुछ धुकधुकी सी मालूम होती है। द्वितीयसेनने (८६६-९०१ ई०) अच्छी शक्ति पैदा की। उसके बाद सौ वर्ष तक और अनुराधपुरको लंकाकी राजधानी होनेका सौभाग्य रहा। १००१ ई०में वह सर्वदाकेलिए छीन लिया गया।

लंका वासी आर्योंके दो सबसे बड़े पर्व हैं—एक वैशाख पूर्णिमा, जिस दिन भगवान् गौतमने जन्म, बुद्धत्व और निर्वाण प्राप्त किया और दूसरा ज्येष्ठ पूर्णिमा, जिस दिन संन्यासी महेन्द्रने लंका द्वीपमें पदार्पण किया और सिंहलेश्वर देवानाम्प्रियको बुद्ध-धर्म और संघकी शरणमें किया। अबकी बार मुझे भी उक्त समयपर अनुराधपुर और मिहिन्तले की पुनीत भूमिके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैं यहाँ उसी अनुराधपुरके वर्तमान दृश्यको दिखाना चाहता हूँ, जिसके प्राचीन वैभवका गान अन्यत्र मैं कर चुका हूँ।

लंका-वासी भारतीयोंसे अधिक तड़क-भड़क पसन्द करते हैं, खर्चीले भी उसी तरह हैं। मेलेके दिनमें आप देखेंगे, मोटरों और मोटर-बसोंकी एक बाढ़सी आ गई है, मानो इनका बाजार लगा हुआ है। लोग रेलकी अपेक्षा बसोंको अधिक पसन्द करते हैं, क्योंकि चाल तेज होनेके साथ-साथ उनमें अपना स्वातन्त्र्य रहता है, जहाँ चाहें जायँ, जहाँ चाहें ठहर जायँ। वर्षा और धूपमें ये घरका भी काम देती हैं।

अनुराधपुरकी सबसे प्रिय, सबसे पवित्र और सबसे पुरातन वस्तु वह जय महाबोधि वृक्ष है जो बोध-गयाके उस पुण्य वृक्षकी शाखा है जिसकी शीतल छायामें बैठकर आजसे २,४५५ वर्ष पूर्व संसारके सबसे बड़े उपदेष्टा सिद्धार्थ गौतमने बुद्धत्व प्राप्त किया था। जयमहाबोधि एक लम्बे-चौडे चार-पाँच हाथ ऊँचे चबूतरेपर है, जिसके चारों ओर खूब चौड़ी परिक्रमा चहारदिवारीसे घिरी है। इसका प्रधान द्वार उत्तरकी ओर है। चबूतरेके पूर्ववाले मन्दिरमें भगवान् बुद्धकी अनेक सुन्दर मूर्तियाँ हैं। मेलेके दिनोंमें यहाँ भी वैसी ही भीड़ होती है, जैसी शिवरात्रिको काशी-विश्वनाथके मंदिरमें। दो दिनोंकेलिए अनुराधपुर अपनी वर्तमान एकान्तताको भूल जाता है। चारों ओर सहस्र सहस्र यात्रियोंके हृदय और कंठसे निकली 'साधु' 'साधु'की मधुर ध्वनिसे दिगन्त ध्वनित हो जाता है। रात्रिमें सहस्रों बिजलीके लैम्पोंके साथ यात्रियों-द्वारा जलाई गई अगणित मोमबत्तियाँ चारों ओर रातको दिन बनाती हैं। धूपबत्ती, कमल और दूसरे फूल, यही पूजाके प्रधान द्रव्य हैं।

जय महाबोधिके हातेके बाहर, पास ही उत्तर तरफ़ हज़ारों पत्थरके खम्भोंका जङ्गल दिखाई पड़ता है। यही पुराना 'लौहमहाप्रासाद' है, जिसे देवानाम्प्रियने (दुष्ट ग्रामणी ?) भिक्षुओंके रहनेकेलिए सात तलका बनाया था। ताँबे-लोहेके रङ्गके खपड़ैलके कारण ही इसका नाम 'लौह-प्रासाद' पड़ा।

लौह-महाप्रासादके उत्तर पश्चिम कोनेपर महाराज दुष्टग्रामणीका बनाया रत्नमाल्य (रुवन्वल) महाचैत्य है। अनेक शताब्दियों तक बेमरम्मत रहनेके कारण गिर पड़कर यह ईंटोंके एक बडे ढेरकी तरह रह गया था; जिसपर बहुतसे वृक्ष जमे हुए थे। दूरसे देखनेमें यह एक स्वाभाविक पर्वतसा मालूम होता था। कई सालोंसे अब इसकी मरम्मत-का काम चल रहा है। दो-तिहाईसे ऊपर तक ईंटें चुनी भी जा चुकी

है।※ मेलोंके दिनमें बड़े भक्तिभावसे लोग ईंटें लेकर ऊपर पहुँचते हुए दिखाई पड़ते हैं। लोगोंका विश्वास है कि जहाँ यह स्तूप है, उस भूमिको भगवान् बुद्धने अपने चरणोंकी धूलिसे पवित्र किया है। महा-स्तूपके पश्चिमी कोनेपर पत्थरका एक छोटा स्तूप है, जो कि बड़े स्तूपके मूलरूपका नमूना है। पहले स्तूपके चारों ओर पत्थरकी अनेक मूर्तियाँ थीं जिनमेंसे कुछ अब मरम्मत करके स्थान स्थानपर रक्खी गई हैं। इन्हींमें एक मूर्ति महाराज दुष्टग्रामणीकी भी है। पाठक अन्यत्र उसे देखेंगे।

रत्नमाल्यके दक्षिण-पश्चिम, अभयवापीके (बसवक्कुलम्) पास, दुष्टग्रामणीका बनाया दूसरा स्तूप है। दुष्टग्रामणीका नियम था वही भोजन करनेका जो भिक्षु-संघको दिया गया। एक दिन अनजानमें उन्होंने मिर्च अधिक खा ली, जिसके प्रायश्चित्त-स्वरूप यह स्तूप है। इस लिए इसका नाम 'मिरिसि वट्टी' स्तूप पड़ा। श्यामके राजाने रुपया देकर, गवर्नमेन्ट-द्वारा इसकी मरम्मत कराई थी, किन्तु मरम्मत कच्ची हुई है। यहाँ भी चारों ओर पुराने संघारामोंके ध्वंसावशेष हैं। इन्हींमें पत्थर की एक बड़ी डोंगीसी है; जो पहले पानी रखनेके काम आती होगी। ऐसी डोंगियाँ अन्यत्र भी कितनी ही हैं।

मिरिस वट्टीसे दक्षिण तिष्य वापी (तिस-वेवा) है। देवानाम्प्रियकी यह कीर्ति है। मीलों तक लम्बे फैले हुए अनुराधपुरके ये ताल सिर्फ शोभाकेलिए नहीं हैं। इनसे ही सारे नगरमें जलकी नहरें गई थीं। हजारों बीघे जमीन इनके द्वारा सींची जाती थी। गवर्नमेंटने मरम्मत करके फिर इस जङ्गली भूमिको आबाद करना आरम्भ किया है। तिष्यवापीसे थोड़ा पूर्व हटकर ईश्वरमुनि *इसुरमुनिय* चैत्य है—एक बड़ी अकेली शिला है, जिसके एक ओर बोधि *पीपल* है, द्वारके ऊपर

※१८९१ ई०में स्तूपकी मरम्मत पूरी हो गई।

चरण चिह्न। एक ओर एक छोटीसी सुन्दर पुष्करिणी है, जिसकी बग़लमें शिलासे लगा हुआ विहार है, मूर्तियां नई बन रही हैं। किसी समय यह महायान भिक्षुओंका निवास था, जिसके चिह्न अब भी देखनेमें आते हैं। *ईसुर मुनियसे* दक्षिण थोड़ी दूरपर वेस्स *गिरि* है। इस छोटी पहाड़ीमें अनेक गुहायें यथा ब्राह्मीलेख हैं। संघारामोंके ध्वंसावशेषोंका यहाँ भी बाहुल्य है।

रत्न-माल्य-चैत्यसे प्रायः १ मील पूर्व पुरानी नहरके (जो अब बेकार है) पार जेतवनारामका महास्तूप है। आज-कल इसीको साधारण लोग *अभयगिरि* कहते हैं, जो ठीक नहीं है। इस स्तूप को राजा महासेनने (२७७-३०४ ई०) बनवाया था। देखनेमें यह एक स्वाभाविक पहाड़ी टीलासा मालूम होता है। अब भी इसके ऊपरका शिखर है, यद्यपि उसका कुछ अंश टूटकर कुछ ही वर्षों पूर्व गिर पड़ा है। यह विशाल स्तूप रत्नमाल्यसे कुछ ही कम ऊँचा है। इसके भी चारों ओर दूर तक पुरातन संघारामोंके ध्वंसावशेष हैं। परिक्रमाके चारों ओर पत्थरकी पटिओंका पटाव है, जो अब बहुत सी जगह नीचा-ऊँचा हो गया है।

जेतवनारामसे (? अभयगिरि) उत्तर दो मीलपर अभयगिरि-महाविहार है। रास्ता पुरातन अनुराधपुर नगरके भीतरसे जाता है। देखनेवालेको बाहरसे कुछ नहीं पता लगता, सिवा इसके कि जहाँ तहाँ पत्थरोंके टुकड़े और ऊँची-नीची भूमि मिलती है। अनुराधपुरका ध्वसावशेष इतना लम्बा चौड़ा है कि उसके सम्पूर्ण भागोंका खोदना असम्भव है। पचास-साठ वर्ष तक पी० डब्ल्यू० डी० वालोंकेलिए भी (सड़क तथा बँगलोंके बनानेकेलिए) यह अच्छी खान रहा है। सड़कके पासके कितने भव्य ध्वंसावशेषोंका संहार इस विभागने किया है, यह नहीं कहा जा सकता। अभयगिरि-चैत्यसे कुछ ही दूरपर बड़े ही सुन्दर पत्थरसे बँधे पक्के कुण्ड हैं, जिन्हें *कुंडा पोकुन* कहते हैं। पुराने समयमें नहरसे सम्बद्ध होनेसे ये सर्वदा स्वच्छ जलसे भरे रहते

थे। सम्भवतः ये अभयगिरि-महाविहारके भिक्षुओंके स्नानकेलिए बनाये गये थे।

वलगम्बाहु (४४, पुनः २८-१५ ई० पू०) भी एक बड़ा ही प्रसिद्ध राजा हुआ है। इसीके शासन-कालमें त्रिपिटक लेख-बद्ध किया गया। उससे पूर्व स्मरण-द्वारा ही त्रिपिटककी रक्षा होती आई थी। जहाँ इस समय अभयगिरि-चैत्य है वहाँ पहले गिरि नाम-धारी किसी नंगे जैन साधुका मठ था। महाराज अभय वलगमबाहुने (वलगमबाहु) वहीं इस विहारको बनवा ('अभय' और 'गिरि' मिलाकर) इसका नाम अभयगिरि रक्खा। विहारनिर्माणकर महाराजने इसे महातिष्य स्थविरको अर्पण किया। उस समय महामहेन्द्रके समयसे स्थापित एक ही महाविहार नामक भिक्षुसंघ था। देवानाम्प्रियने अपने मेघवन-उद्यानको भिक्षुसंघकेलिए अर्पित किया था। उक्त महाविहारकी सीमामें ही बोधिवृक्ष, लौह-प्रासाद और रत्नमाल्य-स्तूप रुवन्वल दागवा हैं। जिस महातिष्यको अभयगिरि विहार दिया गया उसके चाल-चलनपर पीछे सन्देह हुआ। भिक्षुओंकी सभामें इसपर विचार होनेके समय महादेलियने अपने गुरुका पक्ष लिया। कुछ सुनवाई न होनेपर महादेल ५०० भिक्षुओंके साथ (८१ ई० पू० वैशाख) अभयगिरि चली गई। तबसे लङ्कामें एक दूसरे सम्प्रदायकी नींव पड़ी, जो ईसाकी बारहवीं शताब्दी तक रहा। पृथक् होनेसे थोड़े ही दिनों बाद भारतवर्षसे धर्मरुचि नामक एक महाविद्वान् बौद्ध सन्यासी आये। अभयगिरि वालोंने उनकी शिष्यता स्वीकार की और अपना नाम 'धर्मरुचिक' रक्खा। स्थविरवादकी (हीनयान) अपेक्षा इनका झुकाव महायानकी ओर ही अधिक था। महाविहार और अभयगिरिकी सदा आपसमें प्रतिद्वन्द्विता रही।

तिस्सके (२१५-२३७ ई०) समय अभयगिरिवालोंने खुल्लमखुल्ला हीनयान त्रिपिटक छोड़ महायान सम्बन्धी वैपुल्य पिटक स्वीकार किया। इसपर महाविहारानुयायी राजाने पुस्तकोंको जला डाला और

अभयगिरि- वासियोंपर कड़ाई की। गोठाभयके (२५४-२६७) चौथे सालमें जब इन्होंने फिर वैपुल्य पिटक स्वीकार किया तब ३०० भिक्षु उस्सिलियातिष्यकी प्रधानतामें अभयगिरिसे अलग हो दक्षिण-गिरि-विहारको चले गये। वहाँ इन्होने एक तीसरे निकायकी (सम्प्रदाय) स्थापना की, जो आगे चलकर अपने एक प्रधान आचार्यके नामसे *सागलीय* नामसे प्रसिद्ध हुआ।

गोठाभय राजाने महायान-त्रिपिटक स्वीकार करनेके अपराधमें अभयगिरिके ६० प्रधान भिक्षुओंको लोहेसे दागकर देशसे निकाल दिया। इसका फल यह हुआ कि महासेनके (२७७-३०४ ई०) समयमें महाविहारवालोंपर भी खूब अत्याचार हुए। महासेनने लौह-प्रासादको ध्वस्त कर दिया और महाविहारके कितने ही संघारामोंको तोड़वा दिया। तो भी ऐसी दुर्घटनायें बहुत नहीं हैं। प्राय सभी राजे दोनों विहारोंका सम्मान किया करते थे। चीनी संन्यासी फाहियान (४११-४१२ ई०के समीप) लङ्कामें आकर अभयगिरि-विहारमें ही ठहरे थे। उन्होंने अभयगिरिके विषयमें इस प्रकार लिखा है—

'नगरकी उत्तर दिशामें जहाँ बुद्धदेवने अपना एक पद-चिह्न स्थापित किया था, राजाने ४०० हाथ ऊँचा सोने-चाँदी, मणि-मुक्तासे सुशोभित एक महान् स्तूप बनवाया। स्तूपके समीप उन्होंने अभयगिरि नामका एक संघाराम स्थापित किया। इस संघाराममें इस समय पाँच सहस्र भिक्षु निवास करते हैं। इस विहारमे सोना-रूपा-मणि मुक्तासे समलंकृत २० हाथसे अधिक ऊँची एक बुद्ध-प्रतिमा है'।

फाहियानके समय महाविहारमें तीन हज़ार भिक्षु निवास करते थे। इस प्रकार पाँचवीं शताब्दीके आरम्भमें अभयगिरि-विहारकी बड़ी समृद्धअवस्था थी। मेघवर्ण (३०४-३३२ ई०) बुद्धदास (३४१-३७० ई०), धातुसेन (४६१-४७९ ई०) द्वितीय अग्रबोधि (५९८-६०८), शील मेघवर्ण (६१४-६२३), दाठोपतिष्य (द्वि०) (६६४-६७३), पंचम अग्रबोधि (७२६-७३२) द्वितीय महेन्द्र (७८८-८०७) आदि

राजाओंने समय-समयपर इसकेलिए बहुतसे गाँव दिये और कितने ही विहार बनवाये जिनका वर्णन महावंश में आता है। द्वितीय महेन्द्रने रत्न-प्रासाद नामक संघाराम बनवाया।

आज अभयगिरिके चारों ओर दूर तक जङ्गली वृक्षोंका (नीर वृक्ष) जो बाग लगा हुआ है और जिसमें आज भी जहाँ-तहाँ मिट्टीसे कुछ-कुछ ऊपर निकली स्तम्भोंकी पंक्तियाँ, अर्द्धपूर्ण बावलियाँ दिखाई पड़ रही हैं, वहाँ किसी समय हजारों भिक्षु निवास करते थे। अभयगिरिके पश्चिम तरफ़ बहुतसे संघारामोंका निम्न भाग खोदकर बाहर किया गया है। द्वारोंपरकी सुन्दर अर्द्धचन्द्रशिलाओंपर हाथी, घोड़ा, सिंह और बैलकी मूर्तियाँ उसी क्रमसे हैं, जैसे सारनाथके अशोकस्तम्भ वाले अद्भुत शिखरपर।

अभयगिरिसे दक्षिण-पश्चिम प्राय १ मील लङ्कारामस्तूप है। लगातार सर्वत्र ध्वंसावशेष चले गये हैं। लङ्काराम एक छोटा स्तूप है, इसीलिए अन्य छोटे स्तूपोंकी भाँति यह भी बड़ी सुरक्षित अवस्थामें है।

लङ्कारामसे एक मीलसे कुछ अधिक दूर दक्षिण स्तूपा-(थूपा) राम है। यही लंकाका सबसे पुरातन स्तूप है, जिसे देवानाम्प्रियने २४५ या २४४ ई० पू०में महेन्द्रके आदेशके अनुसार बनवाया था। यद्यपि यह बृहत्काय नहीं है, तो भी बहुत सुन्दर और सुरक्षित अवस्था में है। परिक्रमापर कभी छत थी, जिसके खम्भे अब भी चारों ओर खड़े हैं। यहाँ पंडोंकी कोई लूट नहीं है। यात्री अपने आप पूजा करते हैं। विहारका प्रबन्ध भिक्षुओंके हाथमें है। इनका पुनरुद्धारका उद्योग प्रशंसनीय है। हर जगह इनकी इस विषयकी कर्मिष्ठताका पता, अनेक धर्मशालायें तथा पुराने चैत्योंकी मरम्मतके काम दे रहे हैं।

थूपारामसे थोड़ी दूर पूर्व हटकर पुराने दन्तमंदिरका (दलद-मलिगव) खंडहर है। महाराज मेघवर्णके (३०४-३१२ ई०) दशम वर्षमें (३१४ ई०) भगवान् बुद्धका दाँत कलिङ्ग-देशसे यहाँ आया।

ऐतिहासिकोंका मत है कि दन्तपुरी—जहाँसे दन्तधातु लङ्का आई—जगन्नाथपुरी हीका दूसरा नाम है। यह मेघवर्ण गुप्त-सम्राट् समुद्रगुप्तका समकालीन था। इसीने बुद्धगयामें एक बड़ा संघाराम बनवाया था। यह दन्तधातु लंकाकी एक विशेष सम्पत्ति है, जो राजधानियोंके साथ-साथ स्थान परिवर्त्तन करती हुई आजकल कांडीमें है।

अनुरोधपुरसे ८ मील पूर्व, त्रिकोमालीकी सड़कपर, मिहिन्तले ग्राम है। 'महेन्द्र-स्थल' और 'महिन्द-थल'से ही 'मिहिन्तले' शब्द बिगड़कर बना है। बस्ती से आध मील चलकर हम पर्वतके नीचे पहुँचते हैं। महेन्द्रके आनेके पूर्व इस पर्वतका नाम मिश्रक पर्वत था, पीछे चैत्यपर्वत, और अब मिहिन्तले। पहाड़पर चढ़नेकेलिए १,८५० सीढ़ियाँ हैं। चढ़ाई प्रायः आध मीलकी होगी। पहाड़के नीचे, और रास्तेमें भी बहुतसे ध्वंसावशेष हैं। रास्तेसे बाईं ओर पत्थरकी दो बड़ी लम्बी डोंगियाँ हैं, जिनसे कुछ क़दम ऊपर रास्तेके पास पत्थरकी एक बड़ी पट्टीपर चतुर्थ महेन्द्रका (९७५-९९१ ई०) विस्तृत शिलालेख है। लेख दो बराबरको पट्टियोंपर सिंहल-भाषामें है। ये पट्टियाँ प्रत्येक ७ फुट ऊँची, चार फुट चौड़ी और दो फुट मोटी तेलिया पत्थरकी (संगखारा) हैं। इस लेखसे तत्कालीन मठ-सम्बन्धी प्रबन्धका विस्तृत ज्ञान होता है।

ऊपर पहुँचनेपर जो पहला स्तूप दिखाई पड़ता है, वही 'अम्बस्थल' विहार है। इसी जगहपर आमके वृक्षके पास महेन्द्रने विस्मय-विमुग्ध राजा देवानाम्प्रियको 'तिष्य' तिष्य' करके सम्बोधित किया था। यहीं तिष्यने धर्म-दीक्षा ग्रहण की। अम्बस्थल-चैत्यसे पूर्व दक्षिणकी शिलाके विषयमें कहा जाता है कि जम्बूद्वीपसे (भारतवर्ष) आकाश-मार्ग-द्वारा चलकर महेन्द्र इसीपर उतरे थे। पहाड़पर कुछ और भी स्तूप हैं। अम्बस्थलसे दूसरी ओर कुछ नीचे उतरकर वह गुफा है जिसमें सन्यासी महेन्द्र रहा करते थे। इसमें आसनके बराबर पत्थर छीलकर चिकना बनाया हुआ है। महेन्द्रका अधिकतर निवास मिश्रक पर्वत

द्वीपर रहा। संघमित्रा अपनी प्रधान शिष्या देवानांप्रियकी बहन भिक्षुणी अनुलाके साथ अनुराधपुरमें ही भिक्षुणी आराममें रहती थी। मिहिन्तलेके जंगलोंमें संघारामके ध्वंसावशेष बहुत दूर तक पाये जाते हैं। कई एक पुष्करिणियाँ *पोकुनी* भी हैं। कालुदायी पुष्करिणी एक मामूली तालाबके बराबर है। तो भी इसमें घड़ियालोंका भय है। लंकाके सभी जलाशयोंकी यही बात है।

२

पोलन्नारुव या पुलस्त्यपुर

मैं अपने पिछले लेखमें अनुराधपुरका वर्णन कर चुका हूँ। अनुराधपुर ग्यारहवीं शताब्दीके आरम्भ तक लंकाकी राजधानी रहा। आठवीं शताब्दीके आरम्भ हीसे उसकी श्री नष्ट होने लगी। तामीलों-के बार बार आक्रमणोंने उसे अरक्षित बना दिया था। प्रथमसेन (मत्वल सेन ८४६ ई०) पांड्य सेनासे पराजित होकर पोलन्नारुव चला आया और तबसे पोलन्नारुवको लंकाकी राजधानी होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। परन्तु इसके बाद भी सवा दो सौ वर्ष तक अनुराधपुर सर्वथा छोड़ नहीं दिया गया था। राजाओंका अभिषेक वहीं होता था। तामिलोंका भय कम होते ही, फिर दरबार पोलन्नारुवसे अनुराधपुर चला जाता था। १०७० ई०से ११११ तक पोलन्नारुव एक मात्र राजधानी रहा। इन साढ़े तीन सौ वर्षोंमें पोलन्नारुव एक बड़ा ही समृद्धिशाली नगर बन गया था।

पोलन्नारुवका संस्कृत नाम पुलस्त्यपुर है। 'पोलन' एक जातिके काले साँपको कहते हैं। जहाँ पीछे यह नगर बसा, वहाँ इस जातिका एक साँप मारा गया था, इसीलिए पीछेसे नगरका भी नाम पोलन्नारुव पड़ गया। १०१७ ई०में चोलराजाने लंका विजयकर इसका

नाम जननाथपुर रक्खा । १०७०ई०के करीब विजयबाहुने फिर सिंहलको स्वतंत्र किया और तब इसका नाम विजयराजपुर पड़ा। तो भी प्राचीन पाली और सिंहल-ग्रन्थोंमें पुलस्त्यपुर और पोलन्नारुव ही अधिक देखे जाते हैं। अनुराधपुरकी तरह पोलन्नारुव भी आज जन-शून्य है। इसके पुरातन खंडहर चीते और हाथियोंके क्रीड़ास्थल हैं। मीलों तक घोर जङ्गल है। दर्शकोंको इनमें अकेले जानेकी भी हिम्मत नहीं होती।

पोलन्नारुवके नाना स्थानोंका वर्णन करनेके पहले उसके पूर्व-कालीन इतिहासका सिंहावलोकन कर लेना आवश्यक है। प्रथमसेनके पराजयके साथ-साथ अनुराधपुरका पतन और पोलन्नारुवका उत्थान आरम्भ होता है। प्रथमसेनके भतीजे, सेन द्वितीयने (८६६-९०१ ई०) न केवल सिंहल हीको स्वतन्त्र किया, प्रत्युत पाण्ड्य देशपर चढ़ाईकर मदुराको विजय किया और अपने मनोनीत व्यक्तिको पाण्ड्य-सिंहासन-पर बैठाया। दशवीं शताब्दीके आरम्भमें चोल-राज प्रथम परान्तकने (९०७-९५३) लंकापर चढ़ाई की तथा अनुराधपुर और पोलन्नारुव-के देवालयों और महलोंको खूब लूटा और जलाया। तो भी उसे स्थायी विजय न प्राप्त हुई। बीच-बीचमें भी कितनी छेड़खानियाँ होती रहीं। किन्तु चोल-सम्राट् प्रथम राजराजने (९८५-१०१२) १००१-१००४ के बीच प्रायः सारे सिंहलको बिजयकर चोल-साम्राज्यमें मिला लिया। १०१७ ई में पञ्चम महेन्द्र (सिंहलेश्वर) भी कैदी बनाकर चोलदेश (मद्रास) लाया गया और वहीं उसकी मृत्यु हुई। १०१७ ई से १०७० ई० तक सिंहल चोल-साम्राज्यके अधीन रहा। दक्षिण-के छोटे-छोटे राजा कुछ स्वतन्त्रसे थे, क्योंकि वहाँ तक पहुँचनेकेलिए चोलसेनाको दुर्गम पर्वत और जङ्गल पार करने पड़ते थे। इन्हीं राजाओंमें कन्नौजके राजा जगतीपाल भी थे, जिन्होंने १०५३-१०५७ ई० तक दक्षिण लंकाके (रोहण) एक भागपर शासन किया। सम्भवतः ये कन्नौजके परिहार राजपूत-वंशमें महाराज यशःपाल-

के सम्बन्धियोंमें थे। किस कारण उन्हें उत्तरी भारत छोड़ लकामें आना पड़ा, इसका पता नहीं चलता। जगतीपालके विषयमें महावशमें लिखा है—

रामन्वयसमुब्भूतो तदायोज्झापुरागतो।
जगतीपालनामेन विस्सुतो भूभुजत्तजो॥
रणे विक्कमपण्डुं त घातयित्वा महब्बलो।
ततो चत्तारि वस्सानि रज्जकारेसि रोहणे॥
तम्पि चोला रणे हत्वा महेसिं धीतरा सह।
वित्तसार च सकलं चोलरट्ठ अपेसयुम्॥

महावश, ५६·१३-१५॥

अर्थात्—राजकुमार ज़गतीपाल, रामके वंशमें पैदा हुए थे; और अयोध्यापुरसे आकर उन्होंने विक्रम पाहु राजाको युद्धमें मरवा चार वर्ष तक रोहणपर (दक्षिण लका) शासन किया। (१०५७ ई०में) चोल जगतीपालको मार, धनके साथ उनकी रानी और कन्याको भी चोल देश ले गए। कितने ही समय तक नज़रवन्द रह रानी अपनी कन्या लीलावती के साथ लकाको भाग आई*। महाराज विजयबाहु प्रथमने (१०५६-१११४) लीलावतीसे विवाह किया। लीलावतीसे यशोधरा, जिससे सुगला जिसकी पुत्री लीलावती हुई। यही महान् पराक्रमबाहुकी पटरानी थी, और ११९७-१२००, १०१६-१११०, १२११-१२१८ तक तीन बार लंकाके सिंहासनपर बैठी।

विजयबाहु प्रथमने १०७० में चोलोंसे अपने देशको स्वतन्त्र किया। १०७२ ई०में राज्याभिषेक हुआ; और पोलन्नारुवका चोल-नाम जननाथपुर वदलकर विजयराजपुर रक्खा गया है। विजयबाहुके ५५ वर्षके सुदीर्घ शासनमें लकाकी समृद्धिके साथ पोलन्नारुवकी भी

---

* महावंश ५९ . ११।

श्रीवृद्धि खूब हुई। इसने चेलोंके शासनकालमें नष्ट हुई भिक्षु परंपरा-को, रामण्यदेशसे पेगू, ब्रह्मा भिक्षुओंको बुलाकर पुनरुज्जीवित किया और पोलन्नारुवमें दन्तधातुके (भगवान् बुद्धके दाँत) लिए मन्दिर बनवाया।

उस समय लङ्काके राजवंशका विशेष सम्बन्ध कलिङ्ग और पांड्य राजवंशोंसे था। इन विवाहोंके साथ ही उन देशोंसे कितने ही राज-वंशीय लङ्कामें आकर बस गए थे, और उन्हें राज्यमें बड़े-बड़े पद मिले थे। पोलन्नारुवके इन प्रभावशाली पुरुषोंके तीन दल थे कलिङ्ग, पांड्य और गोवी (स्वदेशी)। सभी दल अपने अपने उम्मेदवारोंको राजगद्दीपर बैठा देखना चाहते थे। विजयबाहुके मरनेके समय पांड्य-दलने जयबाहुको (११०८-११४५) गद्दीपर बैठाया।

स्वार्थान्ध हो उन्होंने राजकीय परम्परा विरुद्ध पाण्ड्य-राजकुमारीके पुत्र वीरबाहुको युवराज बनाया, यद्यपि प्रथाके अनुसार युवराज राजाका भाई या पूर्वराजाका पुत्र ही हो सकता था। पाण्ड्योंके दलने विक्रमबाहुको अपने मार्ग मे काँटा समझ उससे पिंड छुड़ाना चाहा, किन्तु उन्हें पराजित होना पड़ा और विक्रमबाहु प्रथमने (११११-११३२) पोलन्नारुवको विजय कर लिया। इस प्रकार जयबाहुको भागकर रोहणमें शरण लेनी पड़ी, जहाँ वह नाम-मात्रका राजा रहकर मरा। विक्रमबाहुने भिक्षुओंके साथ अनुचित व्यवहार किया, जिससे वे दन्तधातुको लेकर रोहणको चले गए। राजाके मरनेके बाद उसका पुत्र द्वितीय गजबाहु (११३२-११५३) राजसिंहासनपर बैठा। उस समय दक्षिण लङ्का रोहण में तीन भाई—मानाभरण वीरबाहु, कीर्ति श्री मेघ और श्री वल्लभ—राज करते थे। ये तीनों विजयबाहु प्रथम और जयबाहु प्रथमकी बहन मित्राके लड़के थे जो एक पाण्ड्य राज-कुमारको ब्याही गई थी।

प्रथम विजयबाहुकी कन्या और विक्रमबाहु द्वितीयकी बहन रत्नावली मानाभरणको ब्याही गई थी। इसीसे दक्षिणके पुंखग्राममें एक बालक

पैदा हुआ, जो आगे चलकर लङ्काका सबसे बड़ा प्रतापी राजा, पराक्रमबाहुके नामसे प्रसिद्ध हुआ। पराक्रमका पिता बालपनमें ही मर गया था, इसलिए उसकी माता पुत्रको लेकर श्रीवल्लभके पास चली गई। दुष्ट ग्रामणीकी भाँति बालक पराक्रम भी महामनस्वी था।

जवान होते ही वह अपने चाचासे पूछे विना ही कुछ सेना लेकर चल पड़ा और थोडे ही दिनोंमें अपनी राजनीतिज्ञता और वीरताके बलपर मार्गकी सभी कठिनाइयोंको दूर करता पोलन्नारुव पहुँच गया। मामा गजबाहुने भाँजेकी वीरतापर मुग्ध हो, उसे अपने पास रख लिया। कुछ समय वहाँ रहकर वह फिर अपने चाचाके पास चला आया और चाचाके मरनेपर रोहणके सिंहासनपर बैठा।

पराक्रमने अपने राज्यकी समृद्धिकेलिए उस तरुणावस्थामें भी बहुतसे राजनैतिक दूरदर्शिता परिचायक काम किये। उसने सिंचाईके लिए कितनी ही झीलें बनवाईं। पर पराक्रमसा मनस्वी व्यक्ति एक छोटेसे प्रदेशके राज्यसे कब सन्तुष्ट रह सकता था। थोड़े ही दिनों बाद उसने फिर गजबाहुपर चढ़ाई कर दी, और कुछ ही दिनोंमें उसने पोलन्नारुव पहुँचकर गजबाहुको बन्दी कर लिया। लेकिन इसी बीचमें उसका चचेरा भाई मानाभरण (श्रीवल्लभका पुत्र) राजाकी सहायताकेलिए पहुँच गया। इससे पराक्रमको गजबाहु और पोलन्नारुव छोड़ लौट जाना पड़ा। किन्तु थोड़े ही दिनों बाद महाराज गजबाहुको मानाभरणके दुःस्वभावका अनुभव होने लगा और उन्होंने पराक्रमसे मदद माँगी। पराक्रमने गजबाहुको मुक्त कराया, किन्तु उसके सेनापति फिर भी लडे विना न रहे। पराक्रमने विजय प्राप्त करनेपर भी गजबाहुके साथ बहुत अच्छा व्यवहार किया, और उसके मरनेके बाद ही अपना राज्याभिषेक कराया।

अब राजा पराक्रम सारे लंकाका शासक था। ११८१ ई में सिंहलीय राजदूतके अपमानके कारण रामण्यके पेगू, ब्रह्मा राजासे युद्ध छिड़ गया। राजा युद्धमें मारा गया, और उसके स्थानपर दूसरेको

बैठा सिंहल-सेनाने सन्धि कर ली। ११६८ ई०में पराक्रमकी सेना पाड्य राजाकी सहायताकेलिए चोलोंसे लड़ने द्रविड़ देश गई। उसके वहाँ पहुँचनेसे पूर्व ही पाड्य राजा यद्यपि मारा जा चुका था, तो भी पराक्रमकी सेनाने जाकर चोलोंको पराजितकर मदुराको अपने अधिकारमें कर लिया। कुलशेखरकी (चोल राजा) हार हुई। चोल देशसे हजारों आदमी पकड़कर लङ्का लाये गये और वे चोलोंके समयमें ध्वस्त की गई इमारतोंकी मरम्मतके कामपर लगाये गये। रामेश्वरकी खाड़ीके पार रामनदके समीप पराक्रमकी सेनाने पराक्रमपुर के नामसे एक क़िला बनाया।

पराक्रमकी समुद्र पार तक विजय ही उसको महान् नहीं सिद्ध करती है। उसने अपने देशकी भलाईकेलिए कितने ही और भी काम किये। उसने अपने मन्त्रीसे कहा था — 'हमें अपने देशमें वर्षाकी एक बूँद भी मनुष्योंको बिना कुछ फ़ायदा पहुँचाये समुद्रमें न जाने देना चाहिए। हमारे राज्यमें भूमिका छोटे से छोटा टुकड़ा भी बिना कुछ पैदा किये नहीं रहना चाहिए, उसने अम्बन गङ्गासे नहर निकालकर थूपावेवासे मिला दी, इसी तरह और भी बड़ी-बड़ी झीलें तैयारकर, चारों ओर सिंचाईकेलिए नहरें निकाल दीं। इन झीलोंको आज भी देखनेसे उनका नाम 'पराक्रम-समुद्र' ठीक ही मालूम होता है। शासन-केलिए उसने ये पद स्थापित किये, अधिकार (मंत्री), सेनाविरट (सेनापति), एपा (युवराज), माया (द्वितीय युवराज), महलेन (स्वराष्ट्र-सचिव), महरेटिन (अन्तर्राष्ट्र-सचिव), अनुन (द्वितीय अन्तर्राष्ट्र-सचिव) सभापति, सितुन (व्यापार मन्त्री), सिरित लेना (व्यवस्था मन्त्री) दुलेन (लेख संग्रहावधायक), विपतिन चर-नायक), महविदान (प्रधान वैद्य), महनेकेतन (प्रधान ज्योतिषी), और घम पसकन (शिक्षाध्यक्ष) पराक्रमबाहुके बनवाये हुए भव्य विहारोंमें कुछ ये हैं—पूर्वाराम, दक्षिणाराम, पश्चिमाराम, उत्तराराम, कपिल वस्तु, ऋषिपतन, कुसीनाराराम, वेलुवनाराम, जेतवनाराम, लङ्कातिलक,

त्रिवक और एतुवद-लेन। लेखोंमें पराक्रमकी ये उपाधियाँ मिलती हैं—शत्रुराजचोलकुलान्तक, उद्धतराजनिर्मूलन, दुर्लंघिमथन, दुर्नीतिवारण, प्रकृतज्ञ, सकलदिग्विजय, शत्रुविजय, शरणागत, वज्रपंजर, परमत्रभेद-विक्रमप्रतापअकङ्कक, सर्वशत्रुशिरोमणिप्रक्रियानुक्रिया निश्चय, परराज-गोधूजटि, नृहरिकैरवराजहंस, परनारीसहोदर, अरिराज-वैश्य भुजंग। पोलन्नारुवमें इन नामोंके नामसे अलग-अलग बुर्ज बने थे। तीन हजार सात सौ भिक्षुओंके भोजनका प्रबन्ध राजाकी ओरसे होता था। उस समयके पोलन्नारुवके सम्बन्धमें पालीका एक प्राचीन श्लोक है—

सोत्थि ´पसत्थजनता जनताणभूत,
भूपालसीलरमणी रमणीय रूपा।
फीतापुलत्थिनगरी नगरीति तुंग,
गेहा महाधिपवरा पवरा पुरानम्॥

महान् पराक्रमबाहुकी मृत्युके बाद उसका भाजा विजयबाहु एक ही वर्ष तक राज्य करने पाया कि उसको महेन्द्रने मार डाला। लेकिन युवराज निःशङ्कने शीघ्र ही हत्यारेको दंड दिया। इस प्रकार निःशङ्क मल्ल (११८८-११९६ ई०) लङ्काके सिंहासन पर बैठा। इस राजाका पूरा नाम "श्री संघबोधि कलिङ्ग पराक्रमबाहु वीरराज कीर्ति निःशङ्क मल्ल अप्रतिमल्ल चक्रवर्ती" था। ये सिंहपुरके (आन्ध्र देश शीकाकोल-के समीप) राजा जयगोपके पुत्र थे जो कलिङ्गके चक्रवर्ती या पूर्वीय रङ्गवंशसे सम्बन्ध रखते थे। माताका नाम पार्वती महादेवी था। निःशङ्कने नौ वर्ष शासन किया और लङ्काको समृद्धिशाली बनानेका प्रयत्न किया। निःशङ्कने भी दक्षिण भारतपर चढ़ाई करनेकेलिए सेना भेजी। उसने अपने विजयके उपलक्ष्यमें रामेश्वरमें एक जयस्तम्भ और निःशङ्केश्वर महादेवकी स्थापना की। उसने लाखों रुपये लगाकर बड़े ठाठसे ´म्बुल्लके पुरातन गुहाविहारका प्रतिसंस्करण भी किया। निःशङ्कके शिलालेखमें लिखा है—

"पहलेके राजाओंके चौगुने करके कारण प्रजा गरीव हो गई थी। उसने निःशंक ने पाँच वर्षका कर माफ़ कर दिया। उसने तीन वार लङ्कामें चारों ओरकी यात्रा की। गाँव, कस्वे, शहर, वन, पर्वत, दुर्ग देखे। सारी लङ्का इस प्रकार उसके लिए हस्तामलकवत् है। उसने जङ्गलों और वस्तियोंको, चारो ओ दस्युओंके भयसे इस प्रकार निर्मुक्त कर दिया कि एक स्त्री भी वहुमूल्य रत्न लिये हुए एक छोरसे दूसरे छोर चली जाय, और कोई नहीं पूछे, कि क्या है। दो वार उसने पाण्ड्योंको परास्त किया। ... .. चील और गौड़ आदि राजाओंसे मित्रताका सम्बन्ध स्थापित किया। . जम्बूद्वीप और लङ्का-में उसने अनेक धर्मशालायें स्थापित कीं।"

"उसने तीन बड़े मण्डप वनवाये, और वेलुवनकी भाँति एक दूसरा कलिङ्गवन तैयार कराया। उसमें कलिङ्ग, वेंगी, कर्नाट, गुर्जर आदि देशोंकी राजकुमारियोंसे विवाह किया। अपनी यात्रामें उसने 'गवु' (गव्यूति = २ कोस, पर निःशङ्क 'गवु'के नामसे पत्थर लगवाये।"

निःशङ्कमल्ल शुद्ध कलिङ्गवंशका था, उसका भाई साहसमल्ल २३ अगस्त सन् ११०० ई०के सिंहासनारूढ़ हुआ। सिंहल इतिहासमें यह एक ऐसा दिन है, जो अच्छी तरह निश्चित हो चुका है। इसके बाद राज-सिंहासनकेलिए तरह-तरहके झगड़े खडे होने लगे। पोलन्नारुव षड्यन्त्रोंका केन्द्र हो गया। पराक्रमवाहुकी रानी लीलावती तीन वार, और निःशङ्ककी रानी कल्याणवती एक वार सिंहासनपर वैठाई गई और सिंहासनच्युत की गई। किसीका शासन चिरस्थायी नहीं रहा। अन्तमें कलिङ्ग विजयवाहुने, जिसका दूसरा नाम माघ भी है, केरल-सेनाके साथ लङ्कापर चढ़ाई की और १२१५ ई० में सिंहासनपर वैठा। इसका शासन सफल होता, यदि वह प्रजाके धर्मके वौद्ध धर्म प्रति दुर्व्यवहार न करता। इसके अत्याचारसे पीड़ित हो भिक्षु अपनी-अपनी पुस्तकें छोड़ पोलन्नारुवसे दूसरी जगहोंको चले गये। माघ के २१ वर्ष-

के शासनके अन्तमें (१२२६ ई०) पोलन्नारुव भी अपने वैभवके अन्तपर पहुँच गया। इसके बाद दम्बदेनिय जम्बुद्रोणि राजधानी हुई।

वर्तमान पोलन्नारुव चारों ओर जङ्गलसे घिरा, दस-बारह घरोंका एक छोटा सा गाँव है। ये घर भी दूकानदारोंके हैं, जो आने-जानेवाले यात्रियोंके भरोसे हीपर बसे हुए हैं। इस स्थानपर मलेरियाका अधिक प्रकोप रहता है। इसलिए यद्यपि सरकारने झीलकी मरम्मत करा दी है, और सिंचाईकी सुविधा भी हो गई है तो भी आबादी बढ़ नहीं रही है। आस-पास मुसलमानोंके एकाध गाँव हैं, जो खेतीपर गुजर करते हैं। पोलन्नारुव अनेक बडे भव्य ध्वंसावशेषों से परिपूर्ण है। सबसे पहले पुराना राजमहल मिलता है। इसके चारों तरफ ईंटकी बड़ी मजबूत दीवार थी, जिसके अनेक अंश अब भी मौजूद हैं। महल भी ईंटोंका ही है। इसका पुराना नाम वेजयन्त है। जिस प्रकार अनुराध-पुरमें इमारतोंकेलिए पत्थरका प्रयोग अधिक दीख पड़ता है, वैसे ही यहाँ ईंटोंका। भारतवर्षमें भी पत्थरके बाद ईंटोंका युग आरम्भ होता है। राजमहलके उत्तर तरफ थूपाराम है। थूपाराम ईंटोंका बना होनेपर भी एक बड़ी ही अद्भुत इमारत है। पोलन्नारुवकी सारी पुरानी इमारतों में यही एक इमारत है जिसकी छत अभी तक सुरक्षित है। पुरातत्व-विभाग ने इसकी रक्षाकेलिए बड़ा प्रयत्न किया है और इसकी दरारों और दूसरे कमजोर भागोंकी मरम्मत करा दी है। इसके पास ही वटडागेका गोलाकार ध्वंसावशेष है। लङ्काकी बौद्ध पाषाणकी इमारतोंका यह बहुत ही सुन्दर नमूना है। एक ऊँची वेदीके बीचमें एक छोटेसे स्तूपके चारों तरफ चार सुन्दर प्रतिमायें थीं। इस वेदीके चारों ओर एक परिक्रमा है, जिसके बाद गोल दीवार है। इसके ऊपर पहले ताँबेकी छत थी। सीढ़ियाँ, द्वार, बाहरी दीवारकी नींव सभी बड़ी ही सुन्दर हैं। पुरातत्व-विभाग के अध्यक्ष ने लिखा है—

'No photograph or drawing can adequately reproduce, nor can words but faintly outline, the inexpres-

sible charm of this beautifully moulded platform. Some idea of its details may be gathered from the .. description..., but the wata-da-ge stylobate must be seen, and its functional members thoroughly studied, to be appreciated to the full.

The stylobate to the inner and upper platform, 5 ft. 3 in. in full height, was rivetted with stonework exhibiting in its moulded lines and figured dados a combined boldness and grace unrivalled at any other Buddhist shrine, whether at Anuradhapura or Polonnaruwa, and probably in any other Buddhist shrine in Ceylon.'

(Arch. S. Ceylon, 1904)

वटदागेके सामने उत्तर तरफ इटदागे है। कहते हैं यह साठ दिनमें बनाया गया था, इसीलिए इसका नाम हट-दा-गे *षष्ठिधातुगृह* या साठ दिनमें बना धातुगृह पड़ा। पुरातत्ववालोंने पत्थरोंके जोड़में बहुत सी जगहोंपर एक एक इञ्चकी कमी-वेशी देखी थी। यह भी शायद उसी जल्दीका परिणाम हो। और इमारतोंकी भाँति यह भी आगसे जलाया गया था, शायद चोलोंके द्वारा। गर्भ स्थानमें जहाँकी आग अधिक प्रचंड रही होगी, इमारतको बहुत नुकसान पहुँचा है। पत्थरके टुकड़े-टुकड़े हो गये हैं। इन टुकड़ोंको जोड़ पुरातत्व-प्रेमियोंने मूर्त्तियोंकी मरम्मत करनेका प्रयत्न किया है। पोलन्नारुवकी अन्य इमारतोंकी भाँति यह भी द्राविड़ ढंगपर बना है। पत्थर और ईंट दोनों हीका उपयोग हुआ है।

हटदागेके पूर्व तरफ़ पास ही लम्बी शिलापर विस्तृत शिलालेख है, जिसे गल-पोत *पाषाण-पुस्तक* कहते हैं। इसके पास ही वह इमारत है, जिसे सत-महल-प्रासाद कहते हैं। यह इमारत ईंटकी बनी है और कम्बोडियाकी इमारतोंसे बहुत मिलती-जुलती है। हट-दा-गे और सत-महल-प्रासादके बीचमें निःशङ्कका बनवाया लतामंडप है, जिसके

अब कुछ खम्भे ही रह गये हैं। खम्भोंकी शकल लताकी तरह है, इसीलिए इसका नाम लता मंडप पड़ा। कहते हैं, इसी स्थानपर वह साँप मारा गया था, जिसके नामपर पोलन्नारुव नाम पड़ा। हट-दा-गेके पश्चिम तरफ भी दो छोटे विहार हैं। स्तूपाराम, वट-दा गे, हट-दा-गे, सत महल प्रासाद और कुछ और छोटे-छोटे विहार, ये सब एक ही घेरे-में हैं। यहीं पोलन्नारुवका एक प्रधान मठ था।

लंकातिलक, जेतवनाराम बड़े ही विशाल विहार थे। आज भी इनके ईंटोंके महान् कंकाल सात शताब्दियोंके अत्याचार और उपेक्षाके बाद भी कम प्रभाव नहीं डालते। पहले ये सभी इमारतें अजंताकी भाँति, सुन्दर चित्रोंसे अलंकृत थीं। इनका चिह्न अब भी जहाँ तहाँ देखनेमें आता है। इनमें बुद्ध-प्रतिमायें ईंट और चूनेकी थीं। उत्सवके समय अब भी हजारों यात्री भक्ति भावसे इन सुनसान खंडहरों में आते हैं। थोड़ी देरकेलिए सैकड़ों मोमबत्तियाँ और धूपबत्तियाँ जलाई जाती हैं। परन्तु उसके बाद फिर इनके पुजारी, वही साँप, बिच्छू चीते, भालू और समय समयपर हाथियोंके झुंड ही रहते हैं।

लंका-तिलक विहारसे उत्तर 'किरिवेहेर' का *क्षीर-विहार* सुन्दर स्तूप है। इसके चारों तरफ टूटे-फूटे खम्भे और पुराने मठोंके ध्वंसावशेष हैं। 'किरिवेहेर'से उत्तर दक्षिण 'गलविहार' *पाषाणविहार* है, जिसका पुराना नाम उत्तराराम था। यहीं एक लम्बी शिलापर भगवान बुद्धकी सोई हुई विशाल प्रतिमा उत्कीर्ण है। इसके सिरहानेकी तरफ़ अब भी आनन्द उसी प्रकार करुणाभरी दृष्टिसे भगवान्‌के परिनिर्वाणको ही नहीं, बल्कि इस भव्य नगरके भूतकीर्त्ति प्रदीपके परिनिर्वाणको देख रहे हैं। एक समय था, जब महापराक्रमबाहुके समृद्धिशाली पोलन्नारुवमें इन मूर्त्तियोंकी रक्षा और पूजाकेलिए सहस्रों पुरुष नियुक्त थे। नगरवासी सहस्रोंकी संख्यामें नित्य पुष्प दीप ले पूजाकेलिए आते थे। शील और शरणके शब्द, मालूम होता है, मानों अब भी आकाश से विनष्ट नहीं हुए हैं। उनकी क्षीण किन्तु मधुर ध्वनि मानों अब भी

सात शताब्दियोंको भेदकर कानोंमें पहुँच रही है। सोती हुई प्रतिमाकी छातोमें अब भी वह निशान है, जिसे किसी अग्रेज शिकारीकी गोलीने किया था। कहते हैं, उसने घृणा और झूठी निर्भीकता दिखलानेके-लिए यह गोली मारी थी; लेकिन अभी गोली चलाकर वह दूर नहीं गया था कि जगली हाथीने उसका काम तमाम कर दिया। शिलाके देसरे छोरपर खड़ी बुद्ध-प्रतिमा है। उसके और आनन्दकी प्रतिमाके वीचमें शिला काटकर बनाये सुन्दर मंडपके भीतर शिलोत्कीर्ण ध्यानावस्थित बुद्ध-प्रतिमा है। आगे प्रायः एक मील, पश्चिम तरफ जगलमें ठोस पत्थरका बना शिवालय है। शिल्प शुद्ध द्राविड है। शिवलिंग अब भी भीतर विद्यमान है। परन्तु इस निर्जन स्थानमें शिवके भक्तोंका कहाँ ठिकाना। यद्यपि देवालय छोटा है, तो भी सभी चीज़ें वहुत दृढ़ हैं, और अभी वर्षों तक ज्योंकी त्यों बनी रहेगी। चोल शासन-कालका यह एक सुन्दर नमूना है।

पुराने नगरसे पश्चिम स्तूपवापी *थूपावेवा* नामक विशाल झील है। शताब्दियों तक उपेक्षित रहनेके कारण, इसके वाँध टूट गये थे। गवर्नमेंटने और कितने ही झीलोंकी भाँति उसकी भी मरम्मत करा दी है। इसी झीलके किनारे डाँक बँगला है। झीलके किनारे-किनारे प्राय: मील भर चलकर थोड़ी दूरपर शिला खोदकर बनाई प्रायः सात हाथ लम्बी महापराक्रमबाहुकी मूर्त्ति है। दाढ़ी लम्बी है और हाथमें पोथी। सामने उसी पुस्तकालयकी गोल दीवारें खड़ी हैं, जिसमें परा-क्रमने पुस्तकालय स्थापित किया था। आज उन पुस्तकोंका यद्यपि कहीं ठिकाना भी नहीं है तो भी मूर्त्तिके हाथकी पोथी बतला रही है कि महान्-पराक्रम सरस्वतीके भी अनन्य उपासक थे।

३

काण्डी

१ मार्च १८१५ ईस्वीको लङ्का अंग्रेजोंके अधिकारमें आया। उस समय इस द्वीपकी राजधानी काण्डी थी। जो काण्डी १५० वर्षों तक लङ्काकी राजधानी रही, जिसने पोर्तुगीजों, डचोंके बाद अंग्रेजों तकसे अपनी स्वतन्त्रताकेलिए बड़ी वीरता दिखाई, उसी ऐतिहासिक नगरके विषयमें यहाँ मैं कुछ लिखना चाहता हूँ। भौगोलिकोंको मालूम है कि लङ्काका मध्य भाग पहाड़ी है। ये पहाड़ लम्बाईमें अक्षांश ६°, ३०' से ७°, ३०' तक और चौड़ाईमें लम्बांश ८०°, ४५' से ८°, ४५' तक फैले हुए हैं। इन्हीं पहाड़ोंके तीन सर्वोच्च शृङ्ग हैं—श्रीपाद अथवा समन्तकूट (Adam's peak) ७,३६० फुट, पिदुरुतलागल (Peda) ८,२९१ फीट, किरिगल पोत (Kirigalpotta) ७,८५७ फीट हैं। इन्हीं तीनों उच्च शिखरोंके कारण इस पर्वतका नाम त्रिकूट पड़ा, और गोसाईंजीने लिखा—'गिरि त्रिकूटपर बस जहँ लङ्का।' १६वीं शताब्दीके द्वितीयार्द्धके मध्यमें, समुद्र-तटपर स्थित कोट्टेको (कोलम्बोके पास) अरक्षित देखकर ही राजधानी दुर्गम पहाड़ों और जङ्गलोंसे सुरक्षित काण्डी नगरमें लाई गई।

[1] कोलम्बोसे काण्डी ७४ मीलके अन्तरपर समुद्रतलसे १६सौ फीट ऊपर बसा हुआ है। लङ्काकी सभी लाइनें ई० आई० आर०के बराबर चौड़ी हैं। कोलम्बोसे काण्डी, रेलसे साढे तीन घंटेका रास्ता है। रंबुक्कन स्टेशनसे रेल पहाड़पर चढ़ना आरम्भ करती है, जहाँसे १२ मीलपर काण्डी है। वैसे तो सुदूर उत्तर और पूर्वको छोड़ सभी लङ्का साल भर 'जनु वसन्त ऋतु रह्यो लुभाई' है। किन्तु यह पहाड़ी सौन्दर्य

अद्भुत है। रेलवे यात्रीके लिए रंबुकनसे कागडीतकका प्राकृतिक दृश्य अनुपम मालूम होगा। नीचेसे ऊपरतक हरियाली ही हरियाली दिखाई पड़ती है। पहाड़ोंपर रेल साँपकी तरह चलती जान पड़ती है। कभी कुछ समयकेलिए गाड़ी घोर अन्धकारमय सुरङ्गोंमें जाती है, तो कभी खिड़कीके पास ही यात्री हजारों फ़ीट नीचे भूतलको देखकर सिहरने लगता है। दूर-दूर तक अनेक हरे-भरे पर्वत-शृङ्ग काले बादलोंसे मिले हुए बहुत ही सुन्दर मालूम होते हैं। स्थान-स्थानपर धानके खेतोंकी हज़ारों फ़ीट ऊँची सीढ़ियाँ हिमालयके किसी कोनेका स्मरण दिलाती हैं। फूलसे लदी हुई हरी-हरी लतायें वृक्षोंको चारों ओरसे ढाँके हुए नीरस मनुष्यके हृदयमें भी सरसता उत्पन्न कर देती हैं। बीच-बीचमें नारियल और सुपारीके घने वृक्षोंके भीतर काठ और फूसके बने हुए कुटीरोंके सम्मुख, साड़ी पहने हुई खड़ी पार्वत्य स्त्रियाँ, किन्नरियाँ-सी प्रतीत होती हैं। रेलसे २,५०० फ़ीट ऊँचा मनोहर अल्ल-गल्ल शिखर है। नीचेकी तरफ़ भी हरियालीसे ढँकी हज़ार फ़ीट नीचे उपत्यका है। ऐसे तो सदा ही अल्ल-गल्ल सुन्दर है, किन्तु कड़ी वर्षाके बाद इसके चारों ओर जल-प्रातोंकी श्वेत धारायें ही धाराएँ दिखाई पड़ती हैं, जिनमेंसे कितनी ही सैकड़ों फ़ीटकी ऊँचाईसे रेलवे लाईनकी ओर गिरकर नीचेकी उपत्यकाकी तरफ़ चली जाती हैं। नीचेसे आये हुए रबर-वृक्षोंके बाद अब बीच-बीचमें चायके बग़ीचे शुरू हो जाते हैं।

इन अद्भुत दृश्योंसे होकर रेल पेरादिनया पहुँचती है। यहाँसे एक लाईन नुवर एलियाको भी गई है। पेरादिनियासे अगला स्टेशन 'न्यु पेरादिनिया' है। यहाँ ही संसार-प्रसिद्ध वनस्पति-उद्यान है। १५० एकड़में महावली गङ्गाके तटपर यह महा उद्यान अवस्थित है। पहले यहाँ राजाके दिलबहलावके कुछ मकान थे। अब भी कुछ अलङ्कृत प्रस्तर-स्तम्भ उक्त समयके परिचायक दिखाई पड़ते हैं। यह समुद्र-तलसे १६ सौ फीट ऊपर है। मध्यम तापमान ७६°, और निम्नतम ५५° है। साल भर में वर्षाके १७१ मध्यम दिन हैं। वर्षाका माध्यम ८९ इंच

प्रतिवर्ष है। उष्ण प्रदेशके सभी वनस्पति यहाँ देखनेमें आते हैं। चारों ओर भीतर भी मोटरकेलिए सड़कें हैं। यह उद्यान केवल विनोदकी ही सामग्री नहीं है। यहाँ मालियोंकी शिक्षा और नाना भाँतिके बीजों और पौधोंके वितरणका भी प्रबन्ध है। अन्यत्र दिये हुए चित्रोंसे इसके विषयमें पाठक कुछ अनुमान कर सकते हैं।

संख्यामें काण्डी लङ्कामें द्वितीय नगर है। इसकी जन-संख्या ३२ हजार है। समुद्रतलसे १६ सौ फीट ऊपर होनेसे कोलम्बोकी अपेक्षा यह अधिक शीतल है। मच्छरोंका नाम नहीं है। काण्डी नगर चारों ओर हरे पहाड़ोंसे घिरी एक छोटीसी उपत्यकामें, एक झीलके बोगम्बर किनारे बसा हुआ है। कहते हैं जिस जगह पुराना राज-प्रासाद है, उससे कुछ ऊपर श्रीखण्ड नामक कोई तपस्वी निवास करते थे; उन्हींके नामसे नगर भी श्रीखड प्रसिद्ध हुआ, जिसका अपभ्रंश काण्डी शब्द है। नगर बसानेके विषयमें प्रसिद्ध है कि, महाराज पराक्रमबाहु तृतीय, (उस समय राजधानी गम्पोलामें थी) १३६० ई०के क़रीब एक नगर बसाना चाहते थे। उन्होंने इसके लिए किसी शुभस्थानकी खोज की। जहाँ आज दन्तमन्दिर है, उसके पास कई जगहोंको खोदकर देखा गया, ज्योतिषीने कहा था—वही स्थान सर्वोत्तम है, जहाँ खोदनेपर प्रथम सफेद मिट्टी निकलेगी, फिर बालू, उसके बाद जल और अन्तमें सफेद कछुआ। ज्योतिषीकी बात सत्य निकली। राजाने उसी स्थानपर अपना महल बनाना चाहा। इसपर ज्योतिषीने यह कहकर मना किया, कि यह अत्यन्त पवित्र स्थान है, यहाँ मन्दिर बनवाना अच्छा होगा। उसी जगह 'दलद-मलि-गव' बनाया गया। यहाँ पीछे भगवान् बुद्धकी दन्तधातु स्थापित की गई। मन्दिरकी पूर्व दिशामें एक छोटासा तालाब बनाया गया, जिसमें उक्त श्वेत कच्छप रखा गया था। इस तालाबका नाम 'किरिमुहुद' क्षीर समुद्र पड़ा। वर्तमान 'बोगम्बर' या 'नुवर वैव'की बड़ी झील उसी स्थानपर बढ़ाकर १८१०-१८१२ ई०में अन्तिम राजा श्रीविक्रम राज

सिंहके समयमें बनाई गई। पहले इस स्थानपर निम्न भूमि 'देनिय' थी, पीछे वह राजकीय धानके खेतोंके रूपमें परिणत हुई। पास ही जोतनेके लिए काममें आनेवाले भैंसोंका स्थान था, जो 'मिगोनआरम्व' 'महिष-आराम' कहा जाता था। यह स्थान 'मलवत्त पुष्पाराम विहार' मठके पास वह स्थान है, जहाँ 'सुइस होटल' अवस्थित है।

मध्यकालके राजनैतिक उत्पातमें लङ्कामें भिक्षु सङ्घ नष्ट हो गया था। काण्डीके स[ातवें] राजा कीर्ति श्रीराज सिंहने (१७४७-१७८०) पुनः भिक्षु सङ्घ स्थापित करनेके लिए श्यामदेशसे भिक्षुओंको बुलाया, जिन्होंने कतिपय लङ्का-निवासियोंको भिक्षु बनाकर भिक्षु-सङ्घकी पुनः स्थापना की। राजाने भिक्षुओंके रहनेके लिए 'मलवत्त विहार' और 'इसगिरि ऋषिगिरि विहार' दो विहार बनवाये। सारे लङ्काके भिक्षुओंके प्रथम सङ्घराज श्रीशरणङ्कर हुए। जब तक काण्डीमें राजाओंका राजत्व रहा, तब तक बराबर 'मलवत्त विहार'के प्रधान, सङ्घराज होते थे, और 'इसिगिरि विहार'के प्रधान, महानायक। १८१५के बाद अँगरेज़ी राज्य स्थापित होनेपर, अब सङ्घराजका पद नहीं रहा; दोनों ही प्रधान महानायक कहे जाते हैं। तो भी मलवत्त विहारके महानायक सारे लङ्काके संघराज समझे जाते हैं। अभी हालहीमें मलवत्त विहारके महानायकका देहान्त हुआ है। मलवत्त विहारमें २०० भिक्षु रहते हैं। सारे भिक्षुओं द्वारा जीवन भरके लिए चुने गये २० सभासदोंकी 'कारक सभा' है। जिसके एक 'नायक' और दो 'उपनायक' होते हैं। नायक या उपनायकके देहावसानपर वही कारक-सभा दूसरा नायक चुनती है। यही व्यवस्था 'इसिगिरि विहार'-की भी है।

काण्डी नगर इसी झीलके किनारे उत्तर और पश्चिम ओर बसा हुआ है। झीलके चारों ओर सुन्दर बँगले और पहाड़-वृक्षोंसे हरे-भरे हैं। झीलके चारों ओर कोलतार की हुई सुन्दर सड़क है। काण्डीके ऐतिहासिक स्थानोंमेंसे अधिकतर झीलके उत्तरी तटपर, दन्तमन्दिरके

पत्र जड़े हुए हैं। भीतर लोहेके सीकचोंके भीतर चाँदीकी बड़ी स्तूपाकार पिटारी या 'करण्डुवा' है। इस 'करण्डुवाके' भीतर एकके नीचे एक सात छोटे शुद्ध सोनेके 'करण्ड' हैं, जिनपर रत्न और मोती जड़े हुए हैं। सबसे भीतरवाले करण्ड में पवित्र दन्तधातु है, जो रत्नसे बिल्कुल ढकी हुई है।

दन्तधातुका इतिहास बहुत ही लम्बा है। पाली भाषामें इसपर 'दलद वंश' नामक एक पुस्तक है। लङ्काके प्रसिद्ध इतिहास 'महावंस' में भी इसका इतिहास दिया हुआ है। 'महावंस' ४८३ ई० पूर्वसे १८१५ ई० तकका एक परम प्रामाणिक इतिहास है। महावंसकी कथाका संक्षेप यह है। ४८३ ई० पूर्व भगवान् बुद्धके कुशीनारामें (कसया, गोरखपुर) परिनिर्वाणके समय भगवान्की दाहिनी दाढ़वाला दाँत बचकर कलिङ्गकी (गोदावरी, विजगापट्टन, गञ्जामके ज़िले) राजधानीमें पहुँचा। यहाँपर वह आठ सौ वर्ष तक रहा। ३०५ ई०के करीब कलिङ्गकी अवस्था अशान्त होनेसे, वहाँके राजाकी आज्ञासे शिरके बालोंमें छिपाकर एक राजकुमारी द्वारा वह लंका पहुँचा। उस समय राजधानी अनुराधपुर थी। वहाँ इसके लिए एक खास मन्दिर बनाया गया। १३०० ई०में विजयी तमिल राजा इसे फिर भारत ले गया। इसे प्रतापी राजा पराक्रमबाहु, तृतीय (१२९८-१३०२) द्रविड़ विजयके बाद फिर लंकामें लाया। इस समय राजधानी पोलन्नारुवमें पुलस्त्यनगर थी, वहाँपर भी इसके लिए पत्थरका सुन्दर मन्दिर बनाया गया। आज भी वह छोटासा सुन्दर अपनी टूटी-फूटी अवस्थामें दिखाई पड़ता है। किन्हीं-किन्हीं लेखोंमें कहा गया है, कि १५६० ई०के करीब वह पोर्तुगीज़ी लोगोंके हाथमें आया; और वह उसे गोआ ले गये। पेगूके ब्रह्मा राजाने उसके बदलेमें बहुत धन देना चाहा; किन्तु गोआके धर्मान्ध पादरीकी आज्ञासे वह जला डाला गया, और उसकी भस्म पोर्तुगीज़ गवर्नरके सामने समुद्रमें फेंक दी गई। कहते हैं, १५६६के करीब विक्रमबाहु चतुर्थने उसकी जगह

चलते हैं। अन्तिम पाँच दिनोंका उत्सव 'रन-दोली-बेमा' कहा जाता है। इसमें सबसे पीछे चार ढँकी हुई डोलियोंमें भिन्न-भिन्न देवियोंके आभूषण तथा पवित्र वस्तुयें चलती हैं। शुरूसे आखिर तक नारियलके खोपड़ोंकी जलती मशालें होती हैं। बाजे मुख्यतः ढोल, झाल, डमरू, रोशनचौकी के होते हैं। स्कन्दस्वामीके मन्दिरके बाजेवाले तामिल होते हैं। उनकी आवाज़ और सुर अच्छा होता है। नाचनेवाले नाना प्रकारके पुराने ढङ्गके आभूषणों—सोनेके कङ्कण, केयूर, हारसे सुसज्जित होते हैं। स्त्री-पुरुषके रूपमें, कभी साहिबके रूपमें, तीन हाथ ऊँची लकड़ियोंपर बड़ी मौजसे चलते हुए, नट अनेक हँसाने वाली चेष्टायें करते हुए लोगोंके लिए बड़े मनोरञ्जक होते हैं।

पहले इस उत्सवमें केवल चारों देवालयोंके ही जलूस सम्मिलित होते थे। महाराज कीर्ति श्रीराजसिंहके (१७४७-१७८०) समय, जब भिक्षुसङ्घकी स्थापनाके लिए श्यामदेशसे प्रधान-प्रधान भिक्षु आये थे, उसी समयसे भगवान् बुद्धकी पवित्र वस्तुयें भी इसमें निकाली जाने लगीं। दन्तधातु उत्सवों में भी बाहर नहीं निकाली जाती। अन्तिम दिन चारों देवालयों के कपुराल (पुजारी) रातके दो बजे से ही जलूसके साथ काण्डीसे ४ मील दूर 'गन्नुरुव' गाँवमें, महाबली गङ्गाके तटपर पहुँचते हैं, जहाँ सूर्योदयके समय ही अलंकृत नावपर चढ़ देवालयकी सोनेकी तलवार और सोनेके कलशको लेकर गङ्गामें जा सूर्यकी लालीके साथ जलमें तलवार मारते हैं। उसी समय दूसरे परिचारक पिछले सालके जलको गिराकर नया जल भर लेते हैं। इसके बाद जलूस उसी तैयारीके साथ लौट आता है।

प्रधान द्वारमें घुसकर बाईं ओरका रास्ता पुरानी राज-कचहरीकी दीवानआम ओर जाता है। सिंहलभाषामें इसे 'मगुल मडुव' मंगल-मण्डल कहते हैं। यह लकड़ीकी खुली बारहदरी, 'हल्मील्ल' काष्ठके विशाल खम्भोंपर खपड़ैलसे छाई हुई है। आजकल सालके कुछ भागोंमें यहाँ सुप्रीमकोर्टका इजलास हुआ करता है। यह मण्डप

जो अनुराधपुरके इस महाबोधिवृक्षसे लाकर लगाया गया है, जिसे सम्राट् अशोककी पुत्री भिक्षुणी सङ्घमित्रा बुद्धगयाके बोधिवृक्षसे लाई थीं। नाथ-देवालयके उत्तर तरफ़ सड़ककी दूसरी तरफ़ 'महादेवालय' विष्णुका मन्दिर है। इसे इतना पवित्र मानते हैं कि पुजारीके सिवा दूसरेको देव-दर्शन भी नहीं मिलता। यहाँ पश्चिम तरफ़ कुछ दूर दूसरी सड़कपर 'कतरगमुव' (कार्तिकेय या स्कन्द) देवालय है। चौथा प्रधान 'देवालय' 'पत्तिनी' देवीका है।

काण्डी नगर यद्यपि समय-समयपर अनेक बार पोर्तुगीज़ डच और अंगरेज़ों द्वारा जलाया गया, तो भी १८१५ तक इसने अपनी स्वतन्त्रता कायम रक्खी। आपसकी फूटसे लंकावालोंने पोर्तुगीज़ोंको बुलाया। पोर्तुगीज़ोंके मुक़ाबलेके लिए काण्डीके राजाओंने डचोंको बुलाया, जिसका परिणाम उन्होंने बड़ा ही कड़ुआ पाया। पीछे डचोंको हटानेके लिए उन्होंने अँगरेजोंको निमन्त्रण दिया। १७९६ और १७९७में अँगरेज़ोंने डच लोगोंके हाथसे समुद्र-तटके प्रदेशोंको छीन लिया। जनवरी १८०३ ई०में अंगरेजोंने काण्डीवालोंके साथ पुनः युद्ध-घोषणा कर दी। काण्डीको दख़लकर वहाँ अंगरेज़ोंने अपनी एक छोटीसी फ़ौज रक्खी, लेकिन थोड़े ही दिनोंमें ज्वर और बीमारी-से यह इतनी निर्बल हो गई, कि काण्डीवालोंने उसे पराजितकर फिर अपना अधिकार जमा लिया। मेजर डेवी क़ैद होकर १८१२ तक काण्डीमें रहकर वहीं मरे। १८०५के बाद कुछ दिनोंके लिए शान्ति रही। १८१५में अंगरेजोंने फिर युद्ध छेड़ा। अब की बार राजा श्रीविक्रमराजसिंह गिरफ़्तार कर लिये गये। वे क़ैद करके एल्लोर (मद्रास) भेज दिये गये।

काण्डी प्रदेशवाले पहाड़ी लोग सबसे पीछे तक स्वतन्त्र रहे। उन्होंने अपनी पोशाक, नाम, रहन-सहनको अपनी पुरानी सभ्यताके अनुसार रक्खा। यही कारण है जो काण्डीवाले लोग नीचेवाले समुद्र-तटके लोगोंको—जिन्होंने क्रिश्चियन नाम और वेषको लियो

तकमें बहुत अधिकतासे जारी करा दिया है—सम्मानकी दृष्टिसे नहीं देखते। काण्डी-प्रदेशमें स्त्रियोंकी पोशाक वही पुरानी साड़ी है। वह फेराको दो तरफ फाड़कर रखती हैं, नीचेवालोंकी तरह बिना फाड़े हुए नहीं। काण्डीके लोगोंमें दो जातियाँ ऊंची समझी जाती हैं, 'रदल' और 'गोवी'। 'रदल' पुराने राजाओं तथा राजामात्योंके वंशज हैं। 'रदल' का शब्दार्थ 'राजलोहित' है जो राज पुत्र शब्द-सा-ही है। इनकी संख्या १,००० से बहुत अधिक नहीं होगी। ये लोग विवाह आपस हीमें करते हैं, दूसरी जातिकी कन्या न लेते हैं न देते हैं। ये लोग अब भी अच्छी भू-सम्पत्ति रखते हैं। गोवी लोग वैश्य हैं। इनकी संख्या लाखों है। गोवी जाति नीचे भी बसती है, परन्तु विदेशियोंके संस्कारसे अत्यन्त बटे हुए इन गोवियोंको ऊपरी गोवी तुच्छ निगाहसे देखते हैं और उनसे विवाह आदि सम्बन्ध रखना बुरा मानते हैं।

४

कोलम्बोकी सैर

जिस तरह अंगरेजी-राज्य स्थापित होनेसे पहले कलकत्ता कुछ भी नहीं था, विदेशी शासनसे पहले कोलम्बोकी भी वही दशा थी, पर आज कल कोलम्बो केवल लङ्काके ही लिए नहीं, समस्त संसारके लिए एक विशेष स्थान रखता है। १४वीं शताब्दीके तृतीयांशमें जब कि विक्रमबाहु तृतीय (१३५७-१३७४ ई०) गम्पोलासे लङ्कापर शासन कर रहा था, उसके प्रधान मन्त्री अलकेश्वरने अलगक्कोनार- तामिल वर्तमान कोलम्बोसे ६ मीलपर जयवर्द्धनपुर बसाया। जयवर्द्धनपुर तबसे अब तक कोट्टेके ही नामसे प्रसिद्ध है। लंकाको जिस समय पाश्चात्य जातियोंने लाञ्छित करना पड़ा था, उस समय यही राजधानी था।

१५ नवम्बर १५०५ ई०को सर्वप्रथम दोम्-लोरेन्सो द-अल्मेदा प्रथम पोर्तगीज़ कोलम्बो पहुँचा; और तभीसे इस अप्रसिद्ध कोलम्बोका भाग्योदय होने लगा। पोर्तगीज़ोंने कोलम्बो-निवासियोंपर बड़ा प्रभाव डाला। सिंहल-इतिहास 'राजावलिय'के अनुसार उनके विषयमें राजा-का इस प्रकारकी सूचना दी गई थी— हमारे कोलम्बोके बन्दरमें एक जातिके लोग हैं, जो रगमें सफेद हैं। ये लोहेके जामा और लोहेकी ही टोपी पहनते हैं। ये एक क्षण भी एक स्थानपर नहीं खड़े होते; सर्वदा इधर-उधर घूमते रहते हैं; ये पत्थरके ढेले खाते हैं, और रक्त पीते हैं; ये एक मछली या लेमूके लिए दो-तीन अशर्फ़ियाँ दे देते हैं। युग-धर पर्वतपर बिजलीके गिरनेसे उतनी आवाज़ नहीं होती जितनी इनकी तोपोंकी होती है। इनके तोपका गोला कोसों तक पहुँचता है, और पत्थरके क़िलेको भी छिन्न-भिन्न कर देता है।" पोर्तगीज़ राज-दूत खूब घुमाफिराकर तीन दिनमें दर्बारमें पहुँचाया गया। यद्यपि कोट्टे कोलम्बोसे ६ ही मील है। उस समय मुसलमान व्यापारियोंने बहुत कोशिश की कि लोरेन्सो सफल-मनोरथ न हो; क्योंकि उस समय लङ्काका सारा ही व्यापार इन्हीं मुसलमानोंके हाथमें था। (ये मूर' कहे जाते हैं)। परन्तु लोरेन्सोका अभीष्ट सिद्ध हुआ। राजा वीरपरा-क्रमबाहु अष्टमने पोर्तगालकी संरक्षता स्वीकार की; और बदलेमें दार-चीनीको भेंट प्रदान की।

थोड़े ही दिनों बाद पोर्तगीज़ोंने कोलम्बोमें अपना क़िला बनाया। १५२४में, पोर्तगाल-नरेशके आज्ञानुसार यद्यपि यह किला तोड़ दिया गया; तोभी कोलंबोकी उन्नति होती ही गई। १६४४ ई० तक कोलंबो-पर पोर्तगीज़ोंका झंडा फहराता रहा; इसके बाद यह हालैंडवालोंके हाथमें आया। अन्तमें १५ फ़रवरी १७९६में डचोंसे अंगरेज़ोंने छीन लिया। इस प्रकार कोलंबो छोटेसे मछुओंके गाँवसे बढ़कर आज प्रायः ढाई लाख आबादीका एक आधुनिक नगर बन गया। जिन तीन पाश्चात्य जातियोंका प्रभुत्व कोलंबोपर रहा; उन्होंने अपने अनेक

चिह्न छोड़े हैं। पोर्तगीज़ोंका सबसे बड़ा चिह्न उनके द्वारा बनाये गये लाखों रोमन कैथलिक ईसाई हैं। ये लोग बलपूर्वक ईसाई बनाये गये थे। कोलंबोमें इनकी यथेष्ट संख्या है। डचोंकी बनाई हुई कितनी ही इमारतें अब भी मौजूद हैं।

भारतसे यहाँ आनेके दो रास्ते हैं, एक तो धनुषकोडीसे रामेश्वरम् जहाजपर बैठकर दो घंटेमें मन्नारकी खाड़ी पार हो, रेल द्वारा १२ घंटेमें कोलंबो पहुँच सकते हैं। अथवा बम्बईसे जहाज़में बैठकर कोलंबो आ सकते हैं। अधिकतर भारतीय पहलेही रास्तेसे आते हैं। भारतमें आने-जानेका कोलंबोका सबसे बड़ा स्टेशन मर्दाना पहले मिलता है। पर हमारे यात्रीको यहाँ न उतरकर एक स्टेशन और आगे फोर्ट स्टेशन-पर उतरना होगा। स्टेशनसे बाहर आपको घोड़ागाड़ी या इक्के नहीं मिलेंगे; हाँ रिक्शा और मोटरें आप चाहे जितनी ले लें। यदि आप अंगरेज़ी जानते हैं तो भाषाकी कठिनाई आपको बिलकुल नहीं होगी, लेकिन एक बातके लिए आपको सावधान रहना चाहिए; आप किसी-को 'कुली' न कहें। रेलवे कुलीको 'पोर्टर' कहकर आप बुला सकते हैं। यों तो आप उसकी पोशाकसे और अंगरेज़ीमें बातचीत करनेसे 'कुली' कहनेकी हिम्मत न करेंगे; तो भी आपको ख़बरदार कर देना आवश्यक है, क्योंकि 'कुली' शब्द उनके लिए बहुत असह्य है। यह उन भारतीयोंके ही लिए व्यवहृत होता है, जो यहाँके चाय और रबरके बगीचोंमें काम करनेके लिए लाखोंकी संख्यामें आते हैं।

स्टेशनसे यदि आप पसंद करें, तो किरायापर मोटर कर सकते हैं; किंतु हमारे कुछ उत्तर भारतीय मित्रोंकी सम्मति तो यही थी, कि यहाँ एक ही चीज़ सस्ती है और वह है रिक्शा। भूमध्यरेखाके सिर्फ़ ६ अंश दूरपरके इस स्थानमें १२ बजेकी धूपमें नंगे पैर रिक्शा लिये भागते हुए, इन आदमियोंको देखकर आप अवश्य गोस्वामीजी की कोई चौपाई, सो भी लङ्का-कांडकी कहे बिना न रहेंगे। स्टेशनसे सबसे पहले आपको यहाँकी चौरंगी या ठंढी सड़ककी ओर चलना चाहिए।

इसे फ़ोर्ट कहते हैं। फ़ोर्ट स्टेशनसे बहुत दूर नहीं है। इच्छा हो तो स्टेशनके सामनेवाली ट्रामसे आप दो मिनटमें पहुँच सकते हैं। थोड़ी ही दूरपर चहारदिवारियोंसे घिरी कुछ बारकें मिलेंगी; यही 'चामर्स ग्रेनरी' है। लङ्कामें चावलका सबसे बड़ा ज़खीरा यही है। आपको मालूम होना चाहिए कि इंगलैंडकी भाँति लङ्का भी शायद तीन मासले अधिकके लिए अनाज नहीं पैदा करता। यहाँकी पैदावार है चाय, रबर और नारियल। इससे आप चामर्सके अन्न-भण्डारका महत्त्व समझेंगे। चावलका व्यापार अधिकतर मद्रासी हिन्दू चेट्टियोंके ही हाथमें है। यहाँसे कुछ आगे चलनेपर चौरंगी आरम्भ हो जायगी। दोनों तरफ़ विशाल भवन हैं; जिनमें बड़ी-बड़ी अँगरेज़ी कम्पनियोंकी दूकानें हैं। कहीं-कहीं, कोई-कोई भारतीय व्यापारी भी मिलेंगे। इन भारतीय व्यापारियोंमें अधिकतर गुजराती खोजे और बोहरे मुलतानी मुसलमान हैं। ये जवाहिरात और रेशम आदिका व्यापार करते हैं।

आप इसी सड़कसे कुछ ही मिनटोंमें कोलंबो बन्दरपर पहुँच जायँगे। कोलंबोका बन्दर स्वाभाविक बन्दर नहीं है। १८८२ ई० तक गाल लङ्काका सबसे बड़ा बन्दर था। सहस्राब्दियोंसे अरब, ईरान, चीन, जावाके व्यापारी यहीं आकर मिलते थे। १८८२के बाद करोड़ों रुपये लगाकर कोलंबोका बड़ा बन्दर तैयार किया गया, और उसके साथ ही लक्ष्मी देवी भी गालसे हट गईं। इसमें विशालकाय पचासों जहाज़ अपना-अपना लंगर डाले खड़े रहते हैं। दिनको कभी दरियाई घोड़ोंकी लहरोंपरकी दौड़ और कभी उनका आकाशमें उड़ना देखनेके लिए कितने ही लोग आपको एकत्रित मिलेंगे। रातके समय तो बिजली-की रोशनीसे चारों ओर—स्थल-जल जगमगा उठता है। यदि आप चाहें, तो आठ आना पैसा फेंककर, छोटी मोटरनावपर चढ़ सकते हैं; दो घंटेमें वह आपको सारे बन्दरकी सैर करा देगी। यदि फ्रेंच, अँगरेज़ी, अमेरिकन, जर्मन, जापानी किसी जहाज़के देखनेकी इच्छा

हो तो वह भी मुश्किल नहीं, ज़रूरत सिर्फ़ रुपयेकी है।

बन्दरगाहसे निकलने पर अब दाहिनी ओरकी सड़कपर हो जाना चाहिए। दो मिनटों में अब आप उस सड़क पर पहुँच गये, जो यहाँकी सबसे पवित्र सड़क है। यहाँ बड़े डाकघरके सामने बग़ीचेका दरवाजा-सा दिखलाई पड़ेगा, जिसके दरवाजेपर ज्येष्ठ-वैशाखकी धूप-में, काली ऊनी कोट पहने हुए पुलिसमैन खड़ा है। पुलिसमैन ही क्यों; आपको बारह बजे दिनमें कितनेही सिंहाली साहब भी, गर्म ऊनी लबादेदार कोट पहने मिलेंगे; आख़िर उन बेचारोंके लिए यदि प्रकृति-ने जाड़ा नहीं दिया तो क्या वे ऊनी कपड़ोंके पहननेका शौक़ ही न पूरा करें? यही क्या, आपमेंसे कितनोंको तो उस कड़ाकेकी गर्मीमें इन साहबोंको उबलती चाय और काफ़ी पीते भी देखकर असह्य मालूम होगा। लेकिन आपको समझना चाहिए कि कितनी ही बातोंमें लंका और उसकी राजधानी भारतसे सदियों आगे बढ़ आई है।

यही बग़ीचेवाला घर 'क्वीन्स हौस' महारानीका घर कहा जाता है, क्योंकि यह उस समय बना था, जब महारानी विक्टोरिया राज्य-शासन करती थीं। यही 'वाइसीगल लाज' है, जिसमें सीलोनके गवर्नर रहते हैं। चुपचाप आफ़िसोंको देखते, जरा इस बस्तीको पार कर जाइए, अब आप फिर समुद्रके तटपर पहुँच गये। बाईं ओर कौंसिल-हाल और सेक्रेटरियटकी इमारतें हैं। कुछ क़दम आगे बढ़नेपर नहर पारकर आप एक हरे भरे मैदानमें पहुँचेंगे। यदि सायंकालका समय है; सूर्य हो या न हो, पर उसका बिम्ब बुझ चुका हो; तो विशाल नीले समुद्रकी लहरोंपरसे आनेवाली हवा एक बार आपके तीनों ही ताप भुलवा देगी, शारीरिक तापकी तो बात ही क्या? यदि कहीं कराल कालके चक्रसुदर्शनसे आर्त, सहस्रांशुको सागरके अनन्त गर्भमें लीन होनेका अवसर आगया हो, तब तो कहना ही क्या है। नीचे आपके पैरोंसे आकाशके छोर तक, सारा समुद्र लाल हो जाता है। उसकी अनन्त छींटें आकाशको भी लाल कर देती हैं। समुद्रके तटपर-

पड़ी कुर्सियोंपर ज़रा बैठ जाइए; देखिये, लहरें कैसे एक दूसरेपर चढ़ाई करती आपके पैरोंके नीचे तक आजाती हैं। इस नहरसे प्रायः ½ मील भर फैला हुआ यह मैदान, कोलम्बोका सबसे रमणीय स्थान है; यद्यपि हरी घासके फ़र्श, मामूली बेंचें और किनारेपर बँधे पत्थरोंके बाँधके अतिरिक्त, मनुष्यने इसके शृङ्गार के लिए कोई साधन नहीं प्रस्तुत किया है, तो भी यह बहुत ही रमणीय है।

यहाँसे सामने गहरी रामरज मिट्टीमें रंगा हुआ प्रासाद दिखाई दे रहा है; इसे आप रामरजमें रंगा हुआ समझकर तापसोंकी कुटिया न समझें। यह है 'गालफेस होटल' फ्रेंचमें 'होतेल दिल्युस्'। यह है पेरिसका (परी) टुकड़ा। इसके हातेमें सैकड़ों मोटरें देखकर आपको घुड़दौड़का मैदान याद आने लगेगा। समुद्रके तटपर बाहरसे भोली-भाली-सी मालूम होनेवाली यह इमारत अन्दरसे वैसी भोली नहीं है। जीवनके आनन्दको लूटनेके लिए, कितने ही कोलम्बो-वासी सिंहाली साहब इसमें ही वास करते हैं। भीतरकी स्वच्छता, सौन्दर्य, सनियमता के लिए क्या कहना है? यहाँ आवश्यकता है, रुपये और हृदयहीन हृदय की। यहाँसे दक्षिण दिशाकी सड़क, पचासों मील तक समुद्रके किनारे-किनारे चली गई है। इसीपर कोलम्बोसे ६ मीलपर, समुद्र-तट-पर दूसरा सुन्दर 'मौंट लेवनिया होटल' है। यह अपने सामुद्रिक स्नानके लिए विशेष प्रसिद्ध है।

होटलोंकी सैरके बाद अब आप कोलम्बोके बड़े बाज़ारमें चलिए, यह पेट्टा कहा जाता है। सड़क पतली है, इसमें ट्रामकी दुहरी लाइनें भी हैं। भीड़ यहाँ भी बड़े बाज़ारकी ही तरह है। मारवाड़ियोंकी जगह, यहाँ गुजराती बोहरों और खोजोंने ले रक्खी है। इन गुजराती मुसलमानोंमें कितने ही करोड़पति हैं। अभी फ़ोर्टमें एक बड़े मार्केकी ज़मीन, एक बोहरे सेठने दस लाखसे ऊपरपर खरीदी है, अब वह उसपर १५ लाख और खर्च करने जा रहा है। उससे पहले हीसे 'ग़फ़ूर बिल्डिङ्ग'की शानदार' इमारत फ़ोर्ट में बन्दरके पास खड़ी है; यह

अपेक्षा, इनकी अधिक पसन्द करते हैं। इसी सड़कपर सर रामनाथन्-का मन्दिर बन रहा है। चिदम्बरम् और मदुराके नमूनेके पत्थरके मण्डप बन रहे हैं; लाखों रुपये व्यय हो रहे हैं, पर सर साहबको, इन पत्थरके मकानोंके खड़े करनेकी जितनी भक्ति है, उतनी उन अपने सह-धर्मियोंके लिये नहीं, जो हज़ारो की संख्यामें हर साल ईसाई बनते जा रहे हैं। शायद उन्हें मन्दिरवालोंकी अपेक्षा मन्दिरका अस्तित्व अधिक वाञ्छनीय है। इसका मतलब यह नहीं, कि सर रामनाथन् लोकोपकारक कार्योंसे अलग रहते हैं। वे जाफनामें अपने धनसे लड़कों और लड़कियोंके दो कालेज चला रहे हैं। अमेरिकन रमणीसे विवाह करनेपर भी, वे पक्के हिन्दू हैं।

अब हमें पेट्टाकी सीमा छोड़कर एक दूसरे भागमें चलना है, जिसमें रायल कालेज, जादूघर, घुड़दौड़, टाऊन हाल और सिनामोन-गार्डन मुहल्ला है। रायल कालेज लंदन यूनिवर्सिटीसे सम्बद्ध सरकारी कालेज है; उसको अब यूनिवर्सिटी-कालेज कहते हैं। सीलोनमें अपना विश्वविद्यालय न होनेसे, यहाँ सभी कालेज लन्दन-यूनिवर्सिटीकी ही परीक्षा दिलाते हैं। इनमें सिर्फ यही यूनिवर्सिटी कालेज है, जहाँ बी० ए० तककी पढ़ाई होती है। मैट्रिक तककी पढ़ाईवाले स्कूल भी यहाँ कालेज ही कहे जाते हैं। आगे चलकर अब हम 'सिनामोनगार्डन' दारचीनीके बगीचेमें प्रवेश करते हैं; लेकिन अब यह दारचीनीका बगीचा नहीं है, पहले, पोर्तुगीजों और डचोंके कालमें था। अब तो यह कोलम्बोके धन-कुबेरोंके बँगलोंसे सुशोभित है। इसीमें 'टाऊन-हाल' है। यह सीलोनकी सर्वोत्तम इमारतोंमें है। अभी हाल हीमें तयार हुआ है; टाऊन हालके सामने विक्टोरिया पार्क है। बगीचेकी कोई उतनी विशेषता नहीं है। इससे टेनिस खेलनेके कई क्षेत्र हैं। उसके बाद आपको जादूघर दिखलाई पडेगा। सभी जादूघरोंकी तरह यहाँ भी मूर्तियाँ, शिलालेख, मुर्दे जानवर रक्खे हुए हैं। विशेषता है, एक सङ्गमरमरकेसे पत्थरसे बने लङ्काके चित्रकी, जिसमें पहाड़ोंकी

ऊँचाइयाँ और दूरियाँ, बड़ी अच्छी तरह दिखलाई गई हैं। म्यूज़ियम-के ही एक कोनेमें पुस्तकालय है। पुस्तकालय लङ्काके योग्य नहीं है। इसीमें सीलोन-शाखा एसियाटिक सोसाइटीका पुस्तकालय भी शामिल है। तोभी मुझे तो बहुधा बड़ा निराश होना पड़ता था। मालूम होता है, सीलोनके लोग अंगरेज़ी भाषापर जितना ध्यान देते हैं, उतना साहित्यपर नहीं। म्यूजियमके पास एक दूसरी पब्लिक लायब्रेरी भी है।

म्यूज़ियमसे अब मर्दाना स्टेशनको चलना चाहिए; टाऊन हालसे थोड़ी ही दूर आगे मसजिद मिलेगी। मर्दाना स्टेशनके पास एक और भी मसजिद है। इसका आहाता बहुत लम्बा-चौड़ा है। मर्दानाके चारों ओरकी बस्ती खूब घनी है। स्टेशनके बाहर मदन-कम्पनीका सिनेमा है। कोलम्बोमें मदन-कम्पनीके तीन सिनेमाघर हैं। मर्दानाकी पूर्व जानेवाली सड़कपर यहाँका सबसे बड़ा बौद्ध-कालेज आनन्द-कालेज है, पढाई लन्दनके एफ० ए० तक है। ईंट-चूनेपर इन लोगोंने भी लाखों रुपये क़र्ज़ कर लिये हैं। अन्य बौद्ध-शिक्षा-संस्थाओंमें नालन्दा कालेज, महबोधी कालेज, और कन्याओंका 'विशाखा कालेज' है। शिक्षामें लङ्का भारतसे बहुत आगे है; इसलिए लङ्कावासी बौद्ध-बन्धुओं-का इधर ध्यान आकृष्ट होना आवश्यक ही है, तोभी शिक्षाका बहुतसा काम ईसाइयोंके हाथमें ही है, यद्यपि अब वे भी बौद्धोंकी जाग्रतिका अनुभव करने लगे हैं।

कोलम्बोकी उत्तरी सीमा केलनी कल्याणी गङ्गा है। इसीके किनारे कल्याणी-विहार है, जो लङ्काके सर्वोत्तम बौद्ध-तीर्थोंमें है। अमावस्या और पूर्णिमाके दिन आप यहाँ हज़ारों स्त्री-पुरुषोंको पायेंगे। अभी हाल हीमें एक गृहस्थने बिजलीकी रोशनीके लिए इंजन लगवाया है, और दो लाख रुपये लगाकर मन्दिर बनवानेका काम आरम्भ कर दिया है। केलनी-विहारसे डेढ़मीलपर केलनिया स्टेशन है, जिसके पास ही विद्यालङ्कार विद्यालय है। यह विद्यालय भिक्षुओंका है, जिसमें

अधिकतर भिक्षु ही पढ़ते हैं। इस तरहका एक विद्यालय कोलम्बोमेंभी है, जिसका नाम विद्योदय है। विद्योदय सबसे पुराना और विद्यार्थी-सख्यामें भी सबसे बडा भिक्षु विद्यालय है। लङ्काके बौद्ध भिक्षुओंका वर्णन मैं एक दूसरे लेखमे करना चाहता हूँ, इसलिए यहाँ लिखने की कोई आवश्यकता नहीं।

केलनिया स्टेशन से हम एक मील पैदल चलकर कल्याणी गङ्गाके घाटपर पहुँच सकते हैं, और इसके उस पार ट्राम है; यह ट्राम १० सेट प्राय: ६ पैसे में फ़ोर्ट पहुँचा देगी। रास्तेमें पहले आपको सिंहाली शहरकी वस्ती देखनेका मौक़ा हाथ लगेगा। कहीं-कहीं आपको सूखी मछलियोंकी गंध अवश्य बेचैन कर देगी, चाहे आप भले ही भारत-वर्पसे ही मत्स्यावतारके प्रेमी हों; लेकिन यह तो सारे लङ्कामें साधारण बात है। कुछ दिनके अभ्यासपर शायद आप भी इसमे कन्नौजकी गलियोंकी-सी सुगन्ध मालूम करने लगें। ट्राम्वेके दोनों बगलमें सारी छोटी छोटी दूकानें ही हैं। केला और चाय आप यहाँ अधिक देखेंगे। यह बात यहीं नहीं सारे सिंहलद्वीपमें है।

कोलम्बोकी सैरमें आपको कुछ विशेष बातें मालूम होंगी। एक तो कुछ भागोंको छोड़कर बाकी सभी जगह मकान एक तल्ले ही हैं। खास बाजारोंको छोड़कर; नारियलके वृक्ष तथा फूल-पत्ते आप हर जगह देखेंगे। चाहे कोई मास हो, हरियाली सदैव बनी रहती है; क्यों-कि यहाँ वर्षा हर सप्ताह हो जाया करती है। मई तो वर्षाका मास ही ठहरा। मुसलमानोंको छोड़कर यहाँ पर्दा बिलकुल नहीं है। सिंहली स्त्रियाँ तो इस प्रकार कुर्त्ती पहनती हैं कि, आधा कन्धा ऊपरके खुला रहता है। शिर नङ्गा रहना तो उनके लिए धर्म सा है।

एक जगह और चलिए। यह है 'हैवलाक टाऊनमें, इसि (ऋषि) पतनाराम'। बनारसके छ: मील उत्तर सारनाथ है। उसीका यह पुराना नाम है। यहाँ एक छोटा-सा मन्दिर है, जो बड़े ही सुन्दर चित्रों और मूर्तियोंसे अलङ्कृत है। यद्यपि इसे बने हुए बहुत दिन नहीं हुए

तो भी लोग इसको भी कोलम्बोकी दर्शनीय चीजोंमें समझते हैं। १९१५ई० में लङ्कामें मार्शल-लाकी घोषणा हुई थी, उसीमें यहाँके एक करोड़पतिका, तरुण-पुत्र बलिदान हुआ! उसीमें स्मृति-रक्षाके लिए, भगवान् बुद्धका यह मन्दिर, उसके धनाढ्य पिताने बनवाया है।

५

लंकाके लोग और भिक्षु

यहाँ मैं आवश्यक ज्ञातव्य बातोंको संक्षेपमें ही दे सकूँगा और वह सब नवीन लंका (सीलोन) के बारे में।

लंककी आकृति मोती या आमकी तरहकी है। यह उत्तर अक्षांश ५° ५५′ और ९° ५०′ तथा देशान्तर ७९° ४२ और ८१° ५३ के मध्यमें है। भूमध्य-रेखाके बहुत समीप होनेसे देश गर्म है और ऋतुभेद स्पष्ट नहीं मालूम होता। यद्यपि बीचकी पहाड़ी ऊँची जगह नुवर-एलिया आदिमें सर्दी पड़ती है तो भी पहाड़के नीचेकी समतल भूमि खूब गर्म है, जो समुद्रके पास भी आज वक्त असह्य मालूम होती है। सीलोनकी अधिकतम लंबाई २७० मील और चौड़ाई १३७ मील, क्षेत्रफल २५,-३३२ वर्गमील है, जो भारतका आठवाँ भाग है। १९२१ ईस्वीकी मर्दुमशुमारीमें सीलोनकी जन-संख्या ४४,९८,६०५ थी, जिसमें—

बौद्ध	२७,६६,८०५	६१·६-सैकड़ा
हिन्दू	९,८२,०७३	२१·८
मुसलमान	३,०१,५३२	६·७
ईसाई	४,४३,४००	९·९
अन्य	७९५	·२

जातिके विचारसे यही संख्या इस प्रकार है—

योरपीय	८,११८	·२
पुराने डच और यूरेशियन	२६,४३६	·७
सिंहल	३०,१६,१५४	६७·
तमिल	११,२०,०५६	२४ ६
तमिल (भारतीय)	६,०१,७३५	१३·४)
मूर (मुसलमान)	२,८४,६६४	६·३
मलाई	१३,४०२	·३
वेद्दा (जंगली)	४,५१०	·१
अन्य	२१,६५६	·५

ढाई हजार वर्षसे पहले लंकामें जो लोग बसे थे उनकी शुद्ध सन्तान आज भी जंगलोंमें हैं। इनको 'वेद्दा' (व्याधा) कहते हैं। ये लोग शिकार और मधुपर गुजर करते हैं। एक छोटेसे कोपीनके अतिरिक्त इनके पास और कोई कपड़ा नहीं होता। सामानमें भी एक धनुष और एक कुल्हाडी, बस। ये खेती आदि नहीं करते और सभ्य आदमियोंसे दूर घोर जंगलोंमें रहते हैं। कहते हैं, इन लोगोंको हँसना नहीं आता। ये मनुष्यजातिकी बहुत पुरानी अवस्थाके सजीव उदाहरण हैं, लेकिन ये लोग नर-मांस नहीं खाते।

वेद्दा लोगोंके पूर्वजोंको पराजित कर सिंहल लोग आबाद हुए हैं। इनकी सबसे अधिक संख्या है। प्रायः दो हजार वर्ष पूर्वसे मदरास-प्रान्तसे तामिल लोगोंका हमला शुरू होने लगा, और तामिल लोग बराबर लंकामें आते रहे। इनमेंसे ऊँची जातिवाले तो सिंहलोंमें मिल गये और बाकी जो पीछेसे आये वही सीलोनी तामिल हैं। इनकी संख्या पाँच लाख है। मूर लोग अरब सौदागरोंकी सन्तान हैं और मलाई लोग मलायासे डचोंके लाये हुए सैनिकोंकी सन्तान हैं। डचोंकी अपनी सन्तान आज कल बर्गर कही जाती है।

सिंहल लोगोंमें भी १०-११ जातियाँ हैं, जिनमें सबसे ऊंची तथा बहुसंख्यक गोवी जाति है। शिक्षा, धन तथा प्रभावमें ये लोग बहुत बढ़े-

चढे हैं। किन्तु सीलोन और भारतके जाति-भेदमें बहुत-अन्तर है। सीलोनमें धर्म बदलनेपर भी जाति नहीं टूटती। एक गोवी ईसाई होनेपर भी पक्का गोवी बना रहता है और कोई भी बौद्ध गोवी उसे लड़की देने-लेनेमें जरा भी आना-कानी नहीं करता। ऐसे दृश्य वहाँ बिलकुल साधारण हैं—पति बौद्ध है तो पत्नी ईसाई, मा ईसाई है तो लड़के बौद्ध। धर्म-भेदसे उनके पारिवारिक जीवनमें कुछ भी अन्तर नहीं पड़ता। जाति-भेदके इस सिद्धान्तसे लंकाके बौद्ध नफेमे ही रहे हैं। पोर्तुगीजोंने जबर्दस्ती ईसाई बनाना शुरू किया था। उस समय पानी पीते ही हमेशाके लिए ईसाईवाला सिद्धान्त यदि वे लोग मानते तो वहाँका प्रधान धर्म ईसाई ही हो गया था। किन्तु उनकी इस नीतिने फिर अपने धर्ममें लौट आनेका दरवाजा खुला रक्खा। बहुतसे धनी परिवार जो पोर्तुगीजोंके अत्याचारसे ईसाई हो गये थे, उलटकर बौद्ध हो गये और होते जा रहे हैं। १९२१ में पिछले दस वर्षमें जहाँ बौद्ध ११'६ सैकड़ा बढ़े थ, वहाँ ईसाई सिर्फ ८'४ बढे थे। और यह भी वृद्धि अधिकतर उन तामिल हिन्दुओंकी वजहसे है, जिनमें मदरासकी भाँति यहाँ भी ईसाइयोंका कार्य अधिक हो रहा है, तो भी सिंहल लोग अब इस जाति-भेदके दोषको अनुभव करने लगे हैं। हालके चुनावोंमे भारतकी तरह वहाँ भी जातिका सवाल उठा जा रहा है। लोगोंने जाति-पाँतिके खिलाफ आवाज उठानी आरम्भ कर दी है। बौद्ध धर्म भी जाति पाँति-के खिलाफ है, इसलिए पंडे पुजारियोंको धर्मकी दुहाई देनेका मौका नहीं है।

सामाजिक बुराइयाँ सिंहल लोगोंमें बहुत ही कम हैं। १८-१९ वर्ष लड़कीके व्याहकी सबसे कम उम्र है। लड़के साधारणतया २६-३० वर्षकी उम्रमे व्याह करते हैं। इस प्रकार बाल-विवाहका नाम नहीं। विधवा-विवाह और तिलाक इच्छापर निर्भर हैं। इनमें किसी प्रकारकी रुकावट नहीं। दहेज आदिकी भी प्रथा नहीं है। गाँवसे लेकर शहरतक सभी जगह आज कई वर्षोंसे प्राइमरी शिक्षा लड़के-लड़कियोंके लिए

मुफ्त और अनिवार्य हैं। अपढ़ लोग बहुत कम हैं। सारे लंकामें वेश्यावृत्ति कानूनसे मना है। शराबका बेचना भी स्थानीय लोगोंके ऊपर है। यदि किसी इलाकेके लोग शराब आदि नशाकी चीजोंकी बिक्री रोकना चाहें तो कहनेपर सभी वयस्क आदमियोंका वोट लिया जाता है और बहुमत होनेपर दूकान बन्द कर दी जाती है। सीलोनके बहुतसे भागोंमें मादक वस्तुओंका इस प्रकार बहिष्कार हो चुका है।

लकाके लोग भारतकी अपेक्षा अधिक सुखी हैं। उनका मुख्य पेशा चाय, रबर और नारियलके बगीचे हैं। यद्यपि भूमि बहुत ही उर्बर तथा अधिक है, तो भी चावल यहाँ २-३ मास ही खाने-भरको पैदा होता है, बाकी हिन्दुस्तानसे आता है। रबर और चायके बगीचोंमें भी काम करनेवाले कुली भारतीय तामिल हैं। प्रतिवर्ष सत्तर हजारकी सख्यामें बढ़ रहे हैं। इस असाधारण वृद्धिको ही देखकर सिंहल लोग भयभीत हो रहे हैं। और जब डोनोमोर कमीशनने ५ वर्षसे अधिकके भारतसे आये लोगोंको भी वोट देनेके अधिकारको सिफारिश की, तब उन्होंने जो तोड़कर इसका विरोध करना आरम्भ किया। उनका कहना है कि यदि भारतीयोंको वोटका अधिकार दिया गया तो अपनी वर्त-मान वृद्धिकी गतिसे बीस-पच्चीस वर्षमे भारतीय (तामिल) ही बहुमतमें हो जायँगे और हम सिंहल अल्पमतमें। यद्यपि सिंहल लोगोंके भयका काफी कारण है, तो भी इसमें भी शक नहीं है कि भारतीय कुलियोंके बिना अँगरेजोंके अरबों रुपये चाय, और रबरके जिन बागोंमें लगे हैं वे सूख जायँगे। ऐसी हालतमें अँगरेज कभी कुलियोंकी आमद रुकने न देंगे। सीलोनमें जङ्गली भूमि बहुत है। भूमिमें हाथ लगते ही तामिल कुली कुलीगीरी छोड़ स्वतन्त्र किसान बन जाता है; इसलिए प्रतिवर्ष कुलियोंकी माँग भी घटनेकी जगह बढती ही जाती है। इसका परिणाम स्पष्ट है, अर्थात् कुछ वर्षोंमें भारतीयोंकी बहुसंख्या। सिंहल लोग भी बहुसंख्यासे नहीं घबराते; किन्तु वे चाहते हैं कि सिर्फ कुली भारतीय वहाँ रहें, उनके लिए वोटाधिकारमें ऐसे नियम होने चाहिए,

जिनसे उनकी अधिकांश संख्या वोटाधिकारसे वंचित रहे, उदाहरणार्थ ५००), ६००) रुपया सालाना आमदनीवाले अच्छे शिक्षित और बहुत वर्षोंसे वहीं रहनेवाले भारतीयको ही वोट देनेका अधिकार दिया जाय।

अँगरेज लोग भी उनकी बात मान लेते, यदि उन्हें विश्वास होता कि भारत अपने पुत्रोंको सदा चुपचाप लंकामें गुलामी करनेके लिए भेजता रहेगा। फल स्पष्ट है। या तो सिंहल लोग अँगरेजोंके चाय और रबरके बगीचोंके लिए यथेष्ट सिंहल मजदूर दें, नहीं तो २०, २५ वर्षमें अल्प संख्यामें होनेके लिए तैयार रहें। वर्तमान समयमें कुलियोंकी जो मजदूरी है उसपर सिंहल मजदूर मिलना ही असम्भव है। मजदूरी दूनी करनेके लिए वेसिंहल बाग-मालिक भी तैयार नहीं, जो व्याख्यान-मंचोंपर इस विषयकी लम्बी-लम्बी स्पीचें झाड़ा करते हैं।

लंकाका सारा पश्चिमी समुद्र-तट नारियलके बगीचोंसे ढका है। नारियल बिना कोई देश जी भी सकता है, इसका यहाँके लोगोंके लिए अनुमान करना ही मुश्किल है। समुद्र-तलसे हजार डेढ़ हज़ार फीटकी ऊँचाईतक रबर होता है। रबरके बगीचे अधिकतर अँगरेज़ों के हैं, तो भी लंकावालोंका उनमें काफी हिस्सा है। डेढ़ दो हजार फुटसे ऊपरके पहाड़ चायके बागोंसे ढँके हुए हैं। ये अधिकतर अंगरेजोंके ही हाथमें हैं। ठंडा होनेसे ये उनके रहनेके लिए भी बहुत ही अनुकूल हैं।

नुवर एलिया समुद्रतलसे ६,००० फुट ऊपर है, यही यहाँका शिमला है। बारहों महीने यहाँ बनारसके कार्तिक-अगहनकी-सी सर्दी पड़ती है। चारों ओर पहाड़ोंसे घिरी यह चौरस उपत्यका सीलोनकी अत्यन्त रमणीय भूमि है। इसीके करीब सीता-एलिया है, जहाँ कहा जाता है—रावणने सीताको कैद करके रक्खा था। लोग इसके प्रमाण-में आस-पासके जंगली लाल अशोकके पेड़ोंको भी दिखाते हैं, तथा

लगे हुए उस पर्वतको भी दिखलाते हैं, जिसके ऊपरकी एक हाथ गहरी मिट्टी कोयले की भाँति काली है।

नुवर एलियाके पास लंकाका सबसे ऊँचा पर्वत-शिखर पेड्रूतला गल्ल (८,२९६ फुट) है। यह ७३५३ फुट ऊँचा है; अधिक पूज्य समझा जाता है। कहते हैं, भगवान बुद्ध एक बार जब लंका आये थे, तब उन्होंने अपना पद-चिह्न इस पर्वत-शिखरपर अङ्कित किया था। फरवरीमें बहुतसे यात्री श्रीपादकी यात्रा करते हैं। बाबा आदम-से सम्बन्ध रखनेके कारण मुसलमान भी इस स्थानकी पवित्रताको स्वीकार करते हैं।

लंकाका रत्नपुरा-प्रदेश रत्नोंके लिए बहुत पुराने समयसे प्रसिद्ध है। उत्तरी समुद्रमें मोती निकालने का व्यवसाय भी होता है। जंगली हाथी भी जब-तब पकड़े जाते हैं; किन्तु इन व्यवसायोंसे आय बहुत थोड़ी होती है।

सीलोन में अधिक संख्या सिंहल लोगोंकी है, जिनमें दो ढाई लाखको छोड़कर बाकी सभी बौद्ध हैं। यहाँ बौद्ध और बौद्ध-संस्थाओं के बारेमें कुछ लिखनेसे पहले यह लिखना आवश्यक है कि पोर्तुगीजों-के समयमें बौद्ध धर्मपर कैसा सङ्कट आया था। उन्होने भी मुसलमानों-की भाँति तलवारके जोरसे ईसाई धर्मका प्रचार करना चाहा। मंदिरों-को तोड़ा और जलाया, पुस्तकोंका नाश किया और हाथ लगे भिक्षुओं-को कत्ल किया। इसीका परिणाम है कि पोर्तुगीजकालसे (१५९४-१६३६ ई०) पूर्वके कोई भी मन्दिर, मूर्तियाँ या किताबें लकामें नहीं मिलतीं। यद्यपि इस समय भी सीलोनका मध्य-भाग पहाड़ोंमें स्वतन्त्र था, तो भी कितनी ही बार पोर्तुगीजोंने वहाँ भी आग लगाई थी। इस राजनैतिक अशान्तिके समय भिक्षुओंका नियम चलना असम्भव था। और परिणाम यह हुआ कि सत्रहवीं सदीके अन्ततकमें एक भी भिक्षु लंकामें न रह गया, जिसपर तत्कालीन राजा कीर्ति श्री राजसिंहने दूत भेजकर स्यामसे भिक्षु मँगवाये और लंकामें नये सिरेसे भिक्षु-संघकी

प्रतिष्ठा कराई। उसी वक्त बौद्ध त्रिपिटक भी स्यामसे मँगाया गया।

१७५३ ईस्वीमें भिक्षु संघकी पुनः स्थापना हुई। इसके बाद ७०-८० वर्ष पूर्व बर्माकी तत्कालीन राजधानी अमरपुरसे कुछ सिंहल लोगों ने भिक्षु-आश्रम ग्रहण कर अमरपुर निकायकी स्थापना की। उसके पीछे बर्मासे ही एक और निकाय रामण्य-निकाय की स्थापना हुई। इस प्रकार आजकल लंकाके बौद्ध साधु तीन निकायोंमें विभक्त हैं। स्याम-निकायके भिक्षु ही अधिक हैं और पुराने स्थान भी इन्हींके अधिकारमें हैं। इनका एक और भी नियम है कि ये सिर्फ गोवी जाति के लोगोंको ही भिक्षु बनाते हैं। इसके बाद अमरपुर निकाय है। रामण्य-निकाय में छः-सात सौ ही भिक्षु हैं। अमरपुरकी तरह यद्यपि इनमें भी जाति-भेदका खयाल नहीं है, तो भी तीनों निकायोंमें यह विनयके नियमोंके पालनमें कड़ाईसे काम लेते हैं।

पिछले पचास वर्षोंमें बौद्ध-भिक्षुओंने बौद्ध धर्मके अध्ययन और प्रचारमें काफी भाग लिया है। इसके लिये आचार्य सुमंगलने कोलंबो में विद्योदय-विद्यालय तथा उनके गुरु-भाई आचार्य धर्मालोकने कोलंबो नगरके बाहर विद्यालङ्कार-विद्यालय (पेलियागोडा) स्थापित किया। लङ्काकी इन दो संस्थाओंने पाली और बौद्धधर्मके अध्ययनकेलिए बहुत काम किया है और कर रही है। इनके अतिरिक्त और भी कितने विद्यालय हैं, जिनमें भिक्षुओंके पढ़ने का प्रबन्ध है। दोडन्दुवमें आचार्य श्रीज्ञानातिलोक महास्थविर तथा दूसरे कितने जर्मन बौद्ध-भिक्षु हैं। महास्थविर ज्ञानातिलोकने बहुत-सी पाली पुस्तकोंका जर्मन भाषा में अनुवाद किया है। पाली भाषापर उनका पूरा अधिकार है। बौद्ध धर्म और दर्शनके प्रति उनकी श्रद्धा अगाध है।

———

६

लंकामें हिन्दू

१९२१ की जन-सख्याके अनुसार ६८२०७३ हैं। यहाँ मैंने संक्षेप के लिए हिन्दू शब्दके अर्थको संकुचित करके, उसी अर्थमें प्रयुक्त किया है, जिसमें कि सरकारी कागजोंमे इसका प्रयोग होता है। इन हिन्दुओं-में सभी वही तामिल (द्राविड़) हैं, जो या तो उनकी सन्तान हैं, जो सहस्रों वर्षोंसे यहाँ आकर बसते गये हैं अथवा वह श्रमजीवियोंकी भारी तादाद है, जो चायके बगीचोंमें कुलियो का काम करते हैं। उक्त जन-गणनाके अनुसार कुल द्राविड ११२००६६ है। सभी पहिले हिन्दू थे; किन्तु अब इनमेंसे सवा लाख ईसाई हो चुके हैं। यहाँके हिन्दू समुद्र पार होकर भी वैसे-ही कट्टर हैं, जैसे की मद्रास प्रान्तमें। छूत-छातका घृणित तथा अमानुषिक व्यवहार, विशेषतः उत्तरी प्रान्त जाफनामें असह्य है। उपरोक्त हिन्दुओंकी अधिक सख्या प्रायः दो ही प्रान्तोंमें वास करती है; यह प्रान्त हैं, उत्तरीय तथा पूर्वीय प्रान्त। उत्तरमें अनुराधपुरसे ही तामिल बस्ती अधिक होने लगती है। पूर्वमे वट्टीकोलाके दक्षिणसे त्रिकोमाली तथा उत्तरतक फैला हुआ प्रान्त पूर्व प्रान्त है, जिसका शासन-केन्द्र वट्टीकोला समुद्र तटपर बसा है। इस प्रान्तमें भी तामिलोंकी ही वस्ती अधिक है, किन्तु कितने ही भागोंमें मलाई तथा मद्रासमे आकर बसे हुये मुसलमानोंकी संख्या पर्याप्त है। पूर्वीय प्रान्तोंमें हिन्दू सिर्फ खेतीका काम करते हैं। कपड़ा तथा दूसरे प्रकारका भी प्रायः सबका सब काम मुसलमानोंके हाथमे है। इन प्रान्तोंमें सिंहाली भाषा इतनी कठिनाईसे समझी जाती है, जैसे वह लङ्काकी भाषा ही नही है।

तामिल बड़े ही परिश्रमी हैं। लङ्काकी चाय और रबर उन्हींके परिश्रमका फल है। जिन प्रान्तोंमें अधिकांश तामिल रहते हैं, वह सभी शुष्क प्रान्त हैं। इनमें वर्षा बहुत कम होती है। हज़ारों वर्षोंसे लङ्काके राजा बड़े-बड़े तालावोंको बनाकर बूँद-बूँद जल एकत्रित करनेका प्रबन्ध करते आये हैं। किसी समय जब यह जलाशय सुरक्षित थे तो मनुष्य दैवकी कृपणताका भी अपने पौरुषसे प्रतीकार करता था। बहुत दिनोंसे मरम्मत आदिका इन्तिजाम न होनेके कारण यह जलाशय बहुतसे नष्ट-भ्रष्ट हो गये हैं। अंगरेज़ सरकारने इधर इनमेंसे बहुतोंकी मरम्मत कराई है, जिससे भविष्यमें बहुत कुछ कृषिकी उन्नति होनेकी आशा है। इनमें कितने ही जलाशय छोटे-छोटे समुद्र जैसे १५,२० मीलके घेरेमें फैले हुये हैं।

यद्यपि यहाँके हिन्दुओंमें ब्राह्मणोंकी संख्या बहुत कम है तो भी दूसरे अब्राह्मण हिन्दू अछूतोंके साथ वैसाही कठोरताका बर्ताव करते हैं, जैसे कि कोई मालाबारके नम्बूदरीपाद। फल इसका यह हो रहा है कि निम्न जातिके अछूत हिन्दू ईसाई होते जा रहे हैं। तीन-चार लाखकी संख्यामें जो कुली मद्राससे यहां आते-जाते रहते हैं, उनकी भी देख-भाल करनेवाला कोई नहीं है। आज पश्चिमी समुद्र-तटपर भी देहातोंमें अनेक गिर्जे तामिलोंके लिए बने हुये मिलते हैं। पिछली अर्धशताब्दीसे उद्योगने बौद्धोंको बहुत कुछ जाग्रत कर दिया है। यही वजह है. जो पिछले दश वर्षों में बौद्ध ११·६ फी सदी बढ़े हैं; जब कि ईसाई ८·४ मुसलमान, ६·७ और हिन्दू ४·७ बढ़े हैं।

इधर हिन्दुओंमें जहाँ-तहाँ रामकृष्ण मिशनकी ओरसे भी काम हो रहा है। लेकिन वह उतना नहीं है, जितनेकी आवश्यकता है। सब से बड़ी बात यह है कि यहाँ आवश्यकता है कितनी ही सामाजिक कुरीतियोंमें क्रान्ति पैदा करने की; किन्तु अधिकांश रामकृष्ण मिशन वाले क्रान्तिसे भयभीत होते हैं। यही वजह है कि वह जनताके उन सुधारोंके स्वीकार करलेनेपर अपना कदम उधर बढ़ाते हैं। वस्तुत

लकाके हिन्दुओंको आर्य-समाज जैसी संस्थाकी आवश्यकता है, जो यहाँके जाति-पाँति छुआ-छूतके बन्धनोंको तीखे नश्तरोंसे फोड़ निकाले, न कि जहरीले फोडेपर साधारण मरहम लगावे। त्रिकोमालीमें सुननेमें आया, कितने ही वर्ष पूर्व वहाँ कुछ आर्य-समाजी थे; किन्तु शायद अब कोई नहीं है। त्रिकोमालीकी (त्रिकोणामलय) जन-सख्या ९ हज़ार है, जिसमें ५ हजार हिन्दू, बाकी ४ हजारमें ईसाई, मुसलमान, और सिंहाली बौद्ध हैं। जहाँ दो हजारकी संख्या होनेपर भी रोमन कैथलिक ईसाइयोंके स्कूल और लड़कियोंके लिग कान्वेंट हैं। वहाँ हिन्दुओंने बहुत पीछेसे इन संस्थाओंको खोला है, तो भी कार्य मङ्गलप्रद है और रामकृष्ण मिशन इसके लिए धन्यवादका पात्र है। त्रिकोमालीके हिन्दुओंमें कितने ही क्लर्कीका काम लङ्कामें ही नहीं बाहर मलाया स्टेटतक जाकर करते हैं। इस प्रदेशके हिन्दू (जहाँ हिन्दू बहुत अधिक सख्यामें हैं) व्यापारमें जितने पिछडे हुए हैं, उतने शायद ही कहींके हों। यह लोग सिर्फ कुलीगिरी, खेती और क्लर्की जानते हैं। हिन्दी जाननेवालोंका तो यहाँ पता भी नहीं है।

सक्षेपसे कह देना चाहता हूँ कि, मारवाड़ी वैश्योंके लिए इस तामिल-लकामें बहत क्षेत्र पड़ा हुआ है। यद्यपि यहाँका कपड़ा, गल्ला आदिका व्यवसाय मुसलमानोंके हाथ में है; किन्तु वह मारवाड़ियोंकी व्यापारिक बुद्धि, सङ्गठन और पूँजीका सामना नही कर सकते। सिंहालियों जैसे सुस्त क्लर्कोंकी जातिको अथवा देशकालानुसार प्रतिभा-विरहित तामिल जातिको ही वह पछाड सकते हैं। जहाँ काबुली पठान त्रिकमाली, कोलम्बो तक धावा मारते हैं, वहाँ सारे लङ्काका मारवाड़ी-शून्य होना अच्छा नही मालूम होता।

लङ्काके हिन्दुओका सर्वोत्तम तीर्थ स्कन्दस्वामीका मन्दिर दक्षिण लङ्काके खदिर गाँवमें है। हर साल यहाँ श्रावण पूर्णिमाको मेला लगता है। कुछ साधु भी हैं, किन्तु वह अधिकांश भारतीय साधुओंकी भाँति जातिपर बोझ-मात्र हैं। कहा नहीं जाता, लङ्काके हिन्दुओंका

भविष्य कैसा है। अभीतक यहाँके हिन्दू चेतनाशून्यसे जा रहे हैं। किसी प्रकारके धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक सुधारकी भावना भी अभी इनमें पैदा नहीं हुई है।

७

समन्तकूट (Adam's Peak)

समन्तकूट या श्रीपाद, जिसे अंगरेजीमें 'ऐडम्स-पीक' भी कहा जाता है लंका (सीलोन) का सबसे पवित्र पर्वत शिखर है। यह यहाँके तीन सर्वोच्च शिखरों—पिदुरु तला-गल ८२६१ फीट, किरि-गल पोत (७८५७ फीट) और ऐडम्सपीक (७३६० फीट)—में तीसरे नम्बरपर है। अधिक ऊंचा होनेपर भी उन दो शिखरोंके साथ वह पवित्रताका भाव नहीं पाया जाता, जो 'समन्तकूट' के साथ है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि यह चोटी बौद्धों और ब्राह्मण-धर्मियोंकी दृष्टिमें जितनी पवित्र है, उतनी ही मुसलमानोंकी दृष्टिमें भी! पिछली २४-२५ मार्च (१९३२) का मुझे यहाँकी सब-प्रथम यात्रा करनी पड़ी।

भदन्त आनन्द कौसल्यायन चार वर्षसे यहाँ आये थे। वह अब जल्दी ही स्याम और हिन्दू-चीन (Indo-china) की ओर जा रहे हैं, और इस लिये—फिर कभी मौका मिले या न मिले, ऐसा खयाल कर – उनकी इच्छा समन्तकूट हो आनेकी हुई। इतने दिनोंसे यहाँ (सीलोन) रहते हुए भी मैं कभी जा नहीं सका था; और यद्यपि अभी मुझे कुछ महीनों और यहाँ रहना है, तो भी यह सोचकर कि समन्तकूटकी यात्रा मार्च और अप्रैलमें ही मुकर होती है, अन्य मासोंमें वर्षा और तेज हवाके कारण यात्रा कठिन हो जाती है, मेरा भी इरादा जानेका होगया। हमारे साथ श्र. एम० एच० परेरा पहलेसे

ही जानेको तैयार थे। दिन पक्का होनेके दिन, श्री वाङ्ने भी-एक चीनी विद्वान, जो आजकल हमारे (विद्यालङ्कार) कालेजमे ही पढ़ रहे हैं, जानेके लिये उत्साह प्रकट किया। इस प्रकार चार आदमियोंकी मंडली हो गई। स्टेशनतक एक और सज्जन मिल गये। अब हम पाँच हो गये।

कोलम्बोसे समन्तकूट जानेके दो रास्ते हैं—एक 'रत्नपुरा' होकर और दूसरा 'हैटन्' होकर। रत्नपुराके रास्तेमें यद्यपि खर्च कम पड़ता है, तो भी पैदल अधिक चलना पड़ता है; इसीलिये पैसेवाले क्या, अधिकाश लोग, हैटन्के रास्ते ही जाते हैं। हमारी डाक-गाड़ी ६ वजे रातको जानेवाली थी। २३ मार्चको हम लोग मर्दाना (कोलम्बो) गाड़ीपर जब पहुँचे, तो देखा, वहाँ जगह ही नहीं है! आनन्दजी, मेरा और श्री परेराका टिकट सेकण्ड क्लासका था और इस्टरकी छुट्टियोंके कारण ६,८५ रुपयेमे आने-जानेका मिला था। गाड़ीमें चढ़कर भी हम उतर आये। कुछ ही मिनटोंमें दूसरी स्पेशल ट्रेन आई। उसमें किसी प्रकार हम दोनों भिक्षुओंके लिए एक बेंच खाली कर दी गई।

दस बज चुके थे, जब हमारी गाडी रवाना हुई। हमारे डब्बेके सभी आदमी बीचमें कहीं उतरनेवाले न थे, अतः यह आशा न थी कि कहीं सोनेका मौका मिलेगा; इसलिये बैठे-बैठे रात बिता देनेको तैयार हो गये।

भारतकी डाकको लेकर आनेवाली गाड़ीके पहले और दूसरे दरजोंमे निचली सीटोंके ऊपर भी एक-एक सीट रहती है, जिससे यात्रीके सोनेका कोई रास्ता निकल आता है; परन्तु मालूम हुआ कि इस लाईनमें वह बात सिर्फ प्रथम श्रेणीमें ही है।

पहले हमारा ध्यान एक कृष्णकाय अधेड़ मेम साहेबकी ओर गया जब हमने उन्हें फर-फर अंगरेजी झाड़ते देखा। जब उनके साथका छोटा बच्चा रोने-चिल्लाने लगा, और उसे भी उन्होंने अँगरेजीमें चुप

कराना शुरू किया, तो हमें मालूम हो गया कि इनका यह स्वांग बनावटी नहीं है। सीलोनमें वस्तुतः ऐसे कितने ही परिवार हैं, जिनके यहा अगरेजी मातृभाषाके तौरपर है। कितने ही ऐसे सिंहल परिवार यद्यपि बोलचालकी सिंहल-भाषा बोल तो लेते हैं, किन्तु लिखना-पढना नहीं जानते। हम लोगोंने यह भी देखा कि मेम साहबकी दो लड़कियां जहां कौवेसे भी गोरी थीं, वहाँ सबसे छोटा बच्चा गोरे रग और सुनहले बालोंवाला था। लेकिन इसका समाधान हो गया, जब मालूम हुआ कि रोमन-कैथलिक ईसाइयोंमें, अपने पापोंको क्षमा करानेके लिये, स्त्री-पुरुषोंको अनिवार्य रूपसे अपने पादरियोंके पास जाना होता है। इन पादरियों या फादर लोगोंमें बहुतेरे योरोपियन हैं और अविवाहित होते हैं। मालूम होता है, काले रग और पापका एक ही रग है। इसीलिये जब कभी पापकी गहरी क्षमा हाथ लग जाती है, उस समय यह चमत्कार देखने में आता है कि यद्यपि उसी व्यक्तिमें तो नहीं; किन्तु स्त्री होनेपर उसकी सन्तानमें, कालिमा-रहित श्वेत-वर्ण सन्तानके रूपमें, प्रादुर्भूत होती है।

रातको कुछ देरतक तो अखबार और पुस्तकमें गुजारा। इसके बाद आनन्दजी तो कोनेमें होनेसे बैठे-बैठे झपकी लेने लगे। हम दोनों ऐसे ही समय बिताने लगे। यह जानकर सन्तोष हुआ कि कुछ स्टेशनोंतक खडे रहनेके बाद, ओवाङ् और दूसरे सज्जनको बैठनेकी जगह मिल गई है। प्रायः ५२ मील तक तो हमारी गाडी मैदानमें गई है, किन्तु 'रम्बुक्कन' से पहाड़ शुरू हुआ, और वहाँ से ५६ मील हैटन्-तक पहाड़ ही पहाड़ था। जाते वक्त रातमें जानेसे यद्यपि हम बाहरके दृश्यको देख न सके थे, किन्तु लौटते वक्त उसे अच्छी तरह देखा। पहले निचले पहाडोंपर नारियल और रबड़के वृक्ष बहुतसे दिखाई पड़ते थे। नारियल का भाव कुछ इधर सुधर गया है, इसलिए उनके बगीचोंमें साफ-सुथरापन दिखलाई पड़ता था, किन्तु रबड़को कुछ न पूछिये, कितने ही बगीचे बरसोंसे नहीं पाछे गये हैं। कोई-कोई बगीचे-

वाले भविष्यकी आशापर कभी-कभी सुध तो लेते हैं, जिसके प्रमाण-स्वरूप वृक्षकी जड़के पास लटकती हुई नारियलकी खोपडीमें पाछे हुये हिस्से से दूधकी पतली धार गिरती दिखाई पड़ रही थी। एक पहाड़को तो नीचेसे ऊपरतक केलेके बगीचेसे ही ढँका देखा। किन्तु ऊँचाईके साथ नारियल और रबड़के बाग कम होते जाते थे। डेढ़ हजार फीटसे ऊपर चायके बगीचे शुरू हो गये।

लंकाका बिचला भाग पहाड़ी है, जिसे पुराने ग्रन्थोंमें 'मलय' कहा गया है। आजकल इस प्रदेशके बहुतसे भागोंमें चायके बगीचे हैं, जिनके अधिकाश मालिक साहब लोग हैं और कुली सब-के सब तामिल भारतीय। इन कुलियोंकी संख्या सात लाखसे ऊपर है। यह इन्हींकी मिहनतकी बरकत है कि सैकड़ों मील ये पहाड, पैरसे चोटीतक, पाँतीसे लगी बेलाकी फुलवारी-जैसे, चायके बागोंमें परिणत हो गये हैं।

सवेरे छः बजेके करीब हमारी गाड़ी **हैटन्** पहुँची। पहले हमें यहाँके एक सज्जनका तार मिल चुका था। किन्तु हम नियत गाड़ीसे न आ सके थे; इसलिये वह स्टेशन पर न मिल सके। 'हैटन्' पहाड़पर समुद्रतलसे ४१४१ फीटकी ऊँचाईपर बसा हुआ है। इसीलिये यहाँ गर्मी नहीं है; बल्कि यहाँवाले तो इसे बहुत ही सर्द स्थानोंमें मानते हैं। लेकिन यह सर्दी हमारे बनारसकी दीवाली की सर्दीसे कम ही है।

सिंहलमें भिक्षु, जहाँतक हो सकता है, मठोंमे टिकाये जाते हैं। हमलोग भी एक मठमे लिवा ले जाये गये। मालूम हुआ, अभी स्थानपति भिक्षु सो रहे हैं। हम लोग जबतक शौच आदिसे निवृत्त हुये, तबतक भिक्षु भी जाग उठे। उन्होंने कहा, सर्द जगहमें निद्रा देरतक रहती है। मैंने कहा, बिलकुल ठीक, योरपमे तो नव-दस बजेतक सोना मामूली बात है। बेचारे पहले समझते थे, हम दोनों आगन्तुक

भित्तु सिंहलके हैं, किन्तु उन्हें और भी अधिक प्रसन्नता हुई, जब उन्हें मालूम हुआ कि हम भारतीय हैं।

मठके निचले भागमें एक स्कूल है, जिसमें दो सौसे ऊपर लड़के पढ़ते हैं। तामिल और सिंहलके साथ स्कूललीविङ् तककी पढाई होती है। आसपास सभी चायके बगीचे हैं, जिनमें तामिल कुली काम करते हैं और बाजारमें भी बहुत-सी दूकानें तामिलोंकी हैं। कुलियोंकी भला इतनी कहाँ सामर्थ्य जो वे अपने लड़कोंको यहाँ पढनेके लिये भेज सकें, किन्तु तामिल व्यापारियों और क्लर्कों के बहुतसे लड़के इस स्कूल में पढते हैं। इस भारतीय सम्बन्धका एक स्पष्ट प्रभाव मैंने यहाँ देखा कि हमारे ऊपरकी बैठकमें महात्मा गांधी और देशबन्धु दासकी तसवीरें लटक रही थीं।

भित्तुको आश्चर्य हुआ, जब उन्हें मालूम हुआ कि प्रायः पाँच वर्षसे सिंहलका सम्बन्ध होनेपर भी मैं सिंहल-भाषा बोल या समझ नहीं सकता। उन्होंने कुछ दिनों पहले सिंहली दैनिक 'दिन-मिन" में छपे मेरे लेखके बारेमें पूछा। मैंने कह दिया—मैं संस्कृतमें बोलता जाता था, जिसे दूसरे भित्तुने सिंहलमें उल्था किया था। पीछे आनन्दजीसे उनकी सिंहलमें घुटने लगी और मैं आस-पासका दृश्य देखने लगा। सामने हमारे ऐडम्स-पीक-होटल था और नीचेकी ओर दो तीन पतली कतारोंमें बसा बाजार। पहाड़ोंमें जहाँ तहाँ चायकी कोठियां तथा टीनसे छाई नाटी-नाटी पतली कुली-लाइनें थीं। सिंहलकी विशेषता—-नारियल—-का कहीं पता न था। इस ठंडकमें उसका फूलना-फलना दर-असल हो ही नहीं सकता था।

अब हमारा जलपान तैयार था। पाव रोटी, मक्खन, पानीमें उबाली चावलकी नमकीन सेवइयाँ, बीचमें नारियलके बुरादे-भरे चावलके चीले तालका गुड़—यही नाश्ता था। पानी तो दर-असल अमृत था। रातको जगे ही थे, इसलिये निद्रादेवीका बड़ा तकाजा था। खाते ही हमें सोनेका कमरा बतला दिया गया और आठसे साढ़े दस बजेतक

हम सोते रहे। श्रीवाङ् भी जगे थे, किन्तु उन्होंने अपना अधिक समय प्रकृति-निरीक्षणमें लगाया।

दोपहरका भोजन हमें उक्त सद्गृहस्थके घर ग्रहण करना था, इसलिये हम वहाँ पहुँचे। वहाँ मालूम हुआ, यद्यपि यह प्रदेश 'उड-रट्' (उद्-राष्ट्र = ऊपरी देश) है, तो भी यहाँके सिंहली व्यापारी अधिकतर नीचेके हैं। उनको मालूम हो गया था कि आनन्दजी मास-मछली नहीं खाते। उनको यह भी समझा दिया गया था कि वह 'उम्मल कड्' भी नहीं खाते, जिसपर उन्हें आश्चर्य होना स्वाभाविक ही है। जैसे कोई भारतीय वैष्णव किसी मिठाईको यह कहकर छोड़ दे कि उसमें कस्तूरी पड़ी है! कस्तूरीकी भाँति इस विशेष प्रकारकी सूखी मछलीको भी लोग मसालाकी भाँति व्यवहार करते हैं और सभी भाजी-तरकारियोंमें डालते हैं। आज आनन्दजीके कारण जब 'उम्मल्-कड्' भी नहीं पड़ने पाई, तो मछली मांस कहाँसे? अन्तमें जौके साथ घुन भी पीसा गया और मुझे भी उसीपर सन्तोष करना पड़ा। मुझे तो नारियलके बुरादेके दूधमें बनी मिर्चसे भरी यहाँकी भाजी-तरकारियाँ अच्छी लगती ही नहीं, वैसे तो मछली-मासमें भी वही बात है, तो भी कुछ कामचलाऊ हो जाती है।

एक बजे हमें 'मस्केलिया'के लिये लारी मिली। भिक्षु होनेसे हम दोनोंके लिए ड्राइवरकी बगलमें अगली सीट मिली। सीलोनकी सड़कें आम तौरसे बहुत ही अच्छी हैं। यहाँ भी यह पक्की नहीं बल्कि 'टार'की बनी हुई थी। लेकिन, हर बीस कदमपर घुमाव था, जो यद्यपि हम दोनोंको उतना कष्टप्रद तो नहीं मालूम हुआ; किन्तु श्रीवाङ् तो उससे बहुत उकता ही नहीं गये, बल्कि हर दूसरे मिनट उनको लारीके खड्डमें चले जानेका डर लगा रहता था। दस-बारह मीलकी यात्रा करके उन्होंने तो फतवा दे डाला कि ड्राइवरका मन फौलादका था और यह भी जाहिर किया कि अब हम लारी द्वारा नहीं लौटेंगे। श्रीपरेराके भी हाँमें हाँ मिलानेसे उत्साहित हो, उन्होंने

जंगल भी था, यद्यपि वे देवदारु और चीड़-जैसे विशाल न थे। कुछ ही देरमें हम 'मडम्' (मठम्) पहुँच गये।

यद्यपि बहुतसे आदमी अभीसे टिकने लगे थे; तथापि हमें मालूम हो गया था कि यहींसे असल चढाई शुरू होती है। तीन पौने-चार मीलकी कठिन चढ़ाई, एक ही बारमें, सूर्योदयसे पूर्व पूरा करना आसान काम न था। इसलिए अगले और आखिरी पड़ाव 'इन्-दि-कटु-पान' या 'गेत्तम् पान्' (रफू करना) पर आज ही पहुँच जाना चाहिए। अभी घंटा-सवा-घटा दिन भी था। यहा श्रीपाद (समन्तकूट) के ट्रस्टी श्री विजयवर्धन भी मिल गये। उन्होंने अगले पडाव तथा श्रीपादके लिए चिट्ठिया लिख दीं, और हम चल पड़े।

'मडम्' यहाँ द्रविड नाम है। सिहल-भाषामें इस स्थानको 'गेगुलतेन्न' कहते हैं। यहा एक तामिल साधु रहते हैं, जिन्हें—उनके पीतलके घड़ेमें चन्दा माँगनेके कारण—'कल-गेडि-सामी' कहते हैं। सिंहल लोग भी इनके—यात्रियोंके आरामके—कामोंकी बड़ी प्रशसा करते हैं। इनके काममें सिंहलियोंके अतिरिक्त चाय-बगीचेके सभी तामिल कुली सहायता करते हैं। यद्यपि यह ठीक है कि इन्हें ईसाई बनानेके लिए ईसाइयोंकी कुली-मिशन जैसी सस्थाएँ अथक काम कर रही हैं। और दूसरी ओर ये निरक्षर—अधिकतर अस्पृश्य—कुली अपने धर्मके बारेमें कुछ जाननेका कोई साधन नहीं पाते, तो भी पूर्वजोंका धर्म बहुत आकर्षण रखता है; इसीलिए सभी ईसाई नहीं हो सकते।

'मडम्' से थोड़ा ही आगे चलनेपर चढाई शुरू हो गई। इस चढ़ाईमें चक्कर खाता हुआ रास्ता न बनाकर सीढ़ियाँ बना दी गई हैं, जिससे चढ़ाई और कठिन हो गई है। थोड़ी ही देरमें पैर भर गये, और गति मन्द ही नहीं हुई, बल्कि हर पचास कदमपर सुस्ताने की जरूरत पड़ने लगी। श्रीवाड् महाशय तो सबसे पीछे रहने लगे। मैंने कहा—वाड् महाशय जेनरल चुने जायँ। लोगोंने उनके आगे न रह पीछे र८

उनके जाते ही लोगोंने स्थान दखल कर लिया। इस प्रकार इस रात भी उनके सोनेकी नौबत न आई, और वाड् महाशयके ऊपर तो एक-के बाद दूसरी आफत-सी आती मालूम हुई! चैत बदी दोज होनेसे चाँदनी रात थी; इसलिए एक बजते ही चल देनेकी बात तय कर हम सो गये।

यद्यपि सोनेके लिए हमें अच्छी जगह मिल गई थी, तो भी नींद बीच-बीचमें उचट जाती थी। लोग भी बारह बजे रातसे ही चलने लगे थे। हम लोग भी एक बजे (२५ मार्च) से पहले चल पड़े। हमारे सामने चाँदनीमें स्तूपाकार 'समन्तकूट' दिखलाई पड़ रहा था। चाँदनी इतनी तेज थी कि वृक्षोंकी घनी छायामें ही हमें बिजलीकी मशाल (टार्च) की आश्यकता पड़ती थी। रातको सोनेके लिये भी स्थान न मिलनेसे श्रीवाड् और भी दुखित थे! मुश्किल यह थी कि हम इच्छा रखते हुए भी कुछ नहीं कर सकते थे। इसमें सन्देह नहीं, यदि वह भिक्षु होते, तो हम अपना स्थान उन्हें दे सकते थे। अस्तु; जैसे-जैसे उनके पैर जवाब देते जाते थे, वैसे ही वैसे उनकी जबानकी कड़ी टिप्पणियाँ बढ़ती जा रही थीं। बेचारे वाड् ही क्यों एक सिंहल-यात्री भी कहता सुना गया—बुद्ध तो बड़े ज्ञानी होते हैं; किन्तु मालूम होता है, उनसे भी बेवकूफी बिलकुल छूट नहीं गई रहती, अन्यथा किसी आसानीसे पहुँच जाने लायक स्थानको छोड़ इस दुर्गम शिखरपर क्यों अपना पद-चिन्ह स्थापित करने आये!

मेरे पैर भी भर आये थे, किन्तु इस समय मैं पीछे रहनेवाला न था। आखिर हिमालयके यात्रीकी लज्जा भी तो रखनी थी! अन्तको हम उस जगह पहुँचे, जहाँसे "नारियलके वृक्षपर चढ़नेकी तरह" की चढ़ाई शुरू होती है। कई जगह सीढ़ियाँ पैर रखने भरकी ही हैं, लेकिन कठिन स्थानोंपर लोहेके सीकचे लगा दिये गये हैं। उस वक्त यह खयाल जरूर हुआ था कि इस वक्त रातको कुछ सीढियोंसे अधिक देखा नहीं जा सकता और चढ़ना भी ऊपरकी ओर है; दिनमें उतरते वक्त

पहले पादुकाके पास गये। देखा, कुछ स्त्री-पुरुषोंका मत्था पैरके गढ़हेमें टिकवाया जा रहा है। उस वक्त मुझे अपने बचपनकी एक घटना याद आई—

"उस समय जिन पंडितजीके यहाँ गाँवमें मैं लघुकौमुदी पढ़ता था, वहाँके एक विद्यार्थी बनारसमें विश्वनाथजीका दर्शन करने आये। बहुत दूर था नहीं, पैदल ही चले आये थे ; किन्तु आठ-दस आने पैसे बेचारेके पास थे। बदकिस्मतीके मारे विश्वनाथसे वह कचौरी-गलीके रास्ते चौककी ओर चल पड़े। वहाँ रास्तेमें एक पडा मिल गया और बोला, काशीकरवट बिना किये क्या विश्वनाथके दर्शन और मणि-कर्णिकाके स्नानका कोई फल हो सकता है? विद्यार्थी यद्यपि देहाती और संस्कृतका था, तो भी धर्मकी बात समझनेमें पीछे रहनेवाला न था। वह पंडेके साथ काशी-करवटमें गया। पंडेने कुआँ दिखलाकर कहा, यह काशी-करवट है, यहाँ करवट लो। विद्यार्थी जब करवट लेकर लेट रहा, तो पंडाजीने कहा, ऐसे नहीं पहले चित लेटो और आँखों, नाक, मुँह और कानोंपर एक-एक चवन्नी रखो। बेचारेके पास सात चवन्नियाँ न थीं। अन्तमें सात इकन्नियाँ रखी गईं; फिर करवट ली। इकन्नियां जमीनसे पंडाजीने उठा ली और 'यात्रा सुफल हो' कहकर पीठ ठोक दी!

यहाँ भी उसी तरहका कुछ दृश्य था। एक बित्ता ऊँचे ढालुए चबूतरेसे पैरके गढ़हेमें तीन-चार स्त्री-पुरुषोंने पैसे रख-रखकर सिर रक्खा था। पुजारी पाली भाषामें कुछ मंत्र बोल रहा था। कई मंत्र-वाक्यों या गाथाओंके समाप्त होनेपर बेचारे सिर ऊपर करने पाते थे।

दूसरी तरफ देखा, कुछ तामिल 'हरो हर' कहकर साष्टांग दंडवत् कर रहे हैं। तीसरी ओर कुछ लाल टोपीवाले और नंगे सिर मुसलमान बाबा आदमके नक़्शे-क़दमपर बत्तियाँ जला रहे हैं। पैसेके युगमें पैसा चढ़ाना सभीके लिये लाजिम ही ठहरा!

यद्यपि अब हम दर्शन कर चुके थे, तथापि समन्तकूटपर चढ़कर

उनके विचारानुसार शिवजीका एक पैर यहाँ और दूसरा मक्कामें है ! किसी जानकार हिन्दूसे तो नहीं पूछ सका; किन्तु मुसलमानोंके बारेमें मालूम हुआ कि मुहम्मद साहबका पैर नहीं, बल्कि बाबा आदमका पैर है !!

बौद्ध लोग इस शिखरको 'समन्तकूट' और पद चिन्ह को 'श्रीपाद' कहते हैं। वे कहते हैं कि शाक्य मुनि एक बार लंकाद्वीपमें आये थे, उसी समय उन्होंने यहाँ धर्मोपदेश किया और आनेवाली जनताके हितार्थ अपना पद-चिन्ह छोड़ दिया। सारे पाली त्रिपिटक (बुद्ध वचन) में न ऐसे किसी आगमनका और न उपदेशका ही कोई जिक्र है, तो भी यहाँके लोग इसपर परम श्रद्धालु हैं। यही नहीं, बल्कि उनके कथनानुसार बुद्धने तीन पद-चिन्ह छोड़े हैं—एक नर्मदा नदीमें सच्चबद्धक पर्वतपर, दूसरा यहाँ और तीसरा यवनोंके नगर अर्थात मक्कामें; जैसा कि इस गाथामें कहा गया है—

"यं नम्मदाय नदिया पुलिने च तीरे, यं सच्चबद्धगिरिके सुमनाचलग्गे।
यं तत्थ योकनपुरे मुनिनो च पादं, तं पादलांछनमहं सिरसा नमामि ॥"

जिस प्रकार बदरीनारायण और पशुपतिकी यात्रामें लोग अनेक गीत गाते तथा जय-घोष करते चलते हैं, वैसे ही यहाँ भी। "हिम-वत्-वर्णनाव" इसी मतलबकी एक पद्य पुस्तिका ही है। (यहाँके लोगोंके लिये इतनी सर्दी भी काफ़ी है, इसीलिये इस प्रदेशका नाम ही 'हिमवत्' रख दिया गया है)। इन पद्योंमें एक आरंभिक पदको एक आदमी पहले कहता है। इसके बाद सभी साथी मिलकर दूसरे हिस्सेको बोलते हैं। उदाहरणार्थ—

समन देवियो (समन देवता)—पिहिट वेयड (प्रतिष्ठा हो)।
पाद-पद्म—अपि वॅदियड (हम वन्दना करते हैं)।
अपे बुदुन् (अपने बुद्ध को)—अपि वॅदियड।
वन्दना करके लौटते समयके कुछ पद्य ये हैं—

तिब्बत में सवा बरस (३)

पहली मंज़िल

भारत के बौद्ध खँडहरों में

१. लङ्का से प्रस्थान

सन् १६२६ में मैंने कश्मीरसे लदाखकी यात्राकी थी। वहाँ से लौटते हुए दलाई लामाके ङरी-खोसुं'म[1] प्रदेशमें कुछ दिनों रहा, किन्तु तब कई कारणोंसे वहाँ अधिक न ठहर सका। सन् १६२७-२८ में मैंने सिंहल-प्रवास किया; उस समय मुझे फिर तिब्बत जानेकी आवश्यकता मालूम हुई। मैंने देखा कि भारतीय दार्शनिकोंके अनेक ग्रन्थोंके अनुवाद तथा भारतीय बौद्ध धर्म की बहुमूल्य ऐतिहासिक सामग्री मुझे तिब्बत जानेसे ही मिल सकती है। मैंने निश्चय कर लिया कि पाली बौद्ध ग्रन्थों का अध्ययन समाप्त कर तिब्बत अवश्य जाऊँगा।

१६२८में मेरा सिंहल का कार्य समाप्त हो गया और पहली दिसम्बरकी रातको डाकसे मैं अपनी यात्राके लिए रवाना हुआ। कहने-की आवश्यकता नहीं कि तिब्बत जानेका रास्ता और उपाय मैंने पहले

[१. पच्छिमी तिब्बतको, अर्थात् कैलाश पर्वतसे पच्छिमके प्रान्त-को, ङरी कहते हैं। उसीका पूरा नाम है ङरी-खोर्सुम अर्थात् ङरी-चक्र-त्रय-ङरीके तीन प्रान्त। ङरी का शब्दार्थ—शक्ति। अलमोड़ासे जो यात्री कैलाश जाते हैं, वे ङरी में ही पहुँचते हैं।]

हीसे सोच रक्खा था। मैं यह जानता था कि खुल्लमखुल्ला ब्रिटिश सीमा पार करना लगभग असम्भव होगा। पासपोर्टके झंझटोंमें पड़ना और अधिकारियोंकी कृपा की राह देखते रहना मुझसे न हो सकता था। कलिम्पोङसे सीधा ल्हासाका मार्ग तो बहुत खतरनाक था, क्योंकि उधर ग्याची तक अँगरेजी निगाह रहती है। इसीसे मैंने अधिकारियोंकी आँख बचा तिब्बत जानेका निश्चय किया। मैंने नेपाल का रास्ता पकड़ा। नेपाल घुसना भी आसान नहीं है। वहाके लोग भी अँगरेजी प्रजा को बहुत सन्देहकी दृष्टि से देखते हैं। और यही हालत भोटिया (तिब्बती) लोगोंकी है। इस प्रकार मैं तीन गवर्न्मेंटों से नज़र बचा कर ही अपने लक्ष्य पर पहुँच सकता था। अस्तु।

यात्राके सम्बन्धमें जाननेके लिए श्रीयुत कावागुची, तथा मदाम् नील आदिकी पुस्तकें मैंने पहले पढी थीं। उनसे मुझे भोटिया लोगोंके स्वागत-वर्तावकी जानकारीके सिवा मार्ग के सम्बन्धमें कोई सहायता न मिली। अन्तमें भारतीय सरकारके सर्वेके नक्शोंसे काठमाडू (नेपाल) से तिब्बत जाने वाले रास्तोंको मैंने लिख डाला। नक्शों तथा वैसी दूसरी सन्देह की चीज़ोंको पास नहीं रखना चाहता था। नेपालमें घुसने को मैंने शिवरात्रिका समय उपयुक्त समझा। सन्-१९२३में शिवरात्रिके समयमें नेपाल हो आया था, और चुपकेसे डेढ मास वहाँ रहा भी था। मैंने देखा, अभी शिवरात्रिको तीन मास वाकी हैं। सोचा, इस बीच पच्छिमी और उत्तरी भारतके बौद्ध ऐतिहासिक और धार्मिक स्थानोंको देख डालूँ।

कोलम्बोसे चल कर सवेरे हमारी ट्रेन तलेमन्नार पहुँची। यहाँ स्टीमरका घाट है। भारत और सिंहलके बीचका समुद्र स्टीमरके लिए सिर्फ़ दो घंटेका रास्ता है। उसमें भी सिर्फ़ चंद मिनट ही ऐसे आते हैं जिनमें कोई तट न दिखाई देता हो। सिंहलसे आने वाली सभी चीज़ोंकी जाँच कस्टम-अधिकारियों द्वारा धनुष्कोडीमें

होती है। मैंने प्रायः पाँच मन पुस्तके, जिनका अधिकांश त्रिपिटक[1] और उनकी अट्ठकथायें[2] थीं, जमाकी थीं। खोलने और फिर अच्छी तरह न बन्द करनेमें पुस्तकोंके खराब होनेके डरसे मैंने अपने सामने खोले जानेके लिए उन्हें साथ रक्खा था।

धनुष्कोडीमें पुस्तके दिखा कर मैने उन्हें पटना रवाना किया। फिर वहाँसे रामेश्वर, मदुरा, श्रीरंगम्, पूना देखते हुए कार्ले पहुंचा। कार्लेकी पहाड़ीमें कटी गुफ़ायें स्टेशन मलवाड़ी (जी० आई० पी०) से प्रायः अढाई मील हैं। बराबर मोटर की सड़क है। साबुत पहाड़ काट कर ये गुफ़ायें बनाई गई हैं। चैत्यशाला विशाल और सुन्दर है, जिसके अन्तके छोर पर पत्थर काट कर एक बड़ा स्तूप बनाया गया है। शालाके विशाल स्तंम्भों पर कहीं कहीं बनवाने वालोंके नाम भी खुदे हैं। शालाके बगलमें भिक्षुओंके रहनेकी छोटी छोटी कोठरियाँ हैं। ऊपर सुन्दर जलाशय है। यह सब आध मीलसे ऊपर की चढ़ाई पर है।

कार्लेसे नासिक पहुँचा। नासिकके आसपास भी बहुतसी लेणियाँ (गुहायें) हैं। सबको देखनेका मुझे अवसर नहीं था। मै १२ दिसम्बर को सिर्फ़ पाडव गुफाको देखने गया। यह शहर से प्रायः पाँच मील दूर है। सड़क है, मोटर और टमटमभी सुलभ हैं। यहाँ कार्लें जितना चढ़ना नहीं पड़ता, बाईं ओर कितनेही महायान देवी-देवताओंकी मूर्तियाँभी हैं। बड़ी चैत्यशालाके छोरमें विशाल बुद्धप्रतिमा है। एक चैत्यशालाके चैत्यको खोद कर ब्राह्मण देवता की प्रतिमाभी बनाई गई है। लेखोंमें ब्राह्मण-भक्त शक राजकुमार उषवदात[3] और उसकी कुटुम्बिनीके भी लेख है।

[१. बौद्ध धर्म-ग्रन्थ तीन पिटकोंमें विभक्त हैं।]

[२. अट्ठकथा = अर्थकथा = भाष्य।]

[३. ई० पू० १०० से कुछ पहले शकों ने अपने देशशकस्थान

नासिकसे मुझे वेरूल[1] जाना था। औरङ्गाबाद स्टेशन पर उतर कर मुझे एक विचित्र अनुभव हुआ। प्लैटफ़ार्मके बाहर निकलते ही पुलिसके सामने हाजिर होना पड़ा। नाम बतलानेमें तो मुझे कोई उज्र न था। किन्तु जब अपमानजनक स्वरमें पुलिसके सिपाही ने बाप आदिका नाम पूछा तब मैंने इनकार कर दिया। फिर क्या था, वहाँ से मुझे थानेमें, फिर तहसीलदारके पास तक घसीट कर हैरान किया गया। इससे कहीं अच्छा होता यदि हैदराबादकी नवाबीने बाहरसे आनेवालोंके लिए पासपोर्टका नियम बना दिया होता। खैर। तहसीलदार साहब भलेमानस निकले। उन्होंने मद्रासके गवर्नरके आज वेरूल-दर्शनका बहाना बता कर मुझे छुट्टी दी। दूसरे दिन मोटर-बस पर चढ कर प्रायः ६ बजे वेरूल पहुँचा। उसी बससे एक और अमेरिकन भी आये थे। सड़कसे गुफा जाते वक्त पता लगा वे भी मेरी तरह मस्तमौला हैं। सूथर महाशय 'ओहायो वेस्लियन विश्वविद्यालय' (अमेरिका) के धर्मप्रचार-विभागके अध्यक्ष हैं। वे अमेरिकासे अंकोरवाट[2] आदिकी भारतीय भव्य प्राचीन विभूतियों को देखते हुए भारत आ पहुंचे थे। उन्होंने बहुत सहानुभूति-पूर्ण मानव हृदय पाया है। वेरूलमें कोई डाकबङ्गला नहीं है और न कोई दूकान। गुहाके पास ही पुलिस-चौकी है। सिपाही मुसलमान हैं

(सीस्तान) से सिन्ध-गुजरात पर चढाईकी थी, और यहाँसे उज्जैन महाराष्ट्र पर। उज्जैनका शक राजा नहपान बहुत प्रसिद्ध हुआ। उषवदात नहपानका जमाई था। पैठन (महाराष्ट्र) के राजा गौतमीपुत्र सातकर्णि ने नहपान या उसके किसी वंशजको मार कर ५७ ई० पू० में उज्जैन वापिस लिया। गौतमीपुत्रही प्रसिद्ध विक्रमादित्य था।]

[१. 'विरुल' का विगाड़ा हुआ अँग्रेजी रूप है-'एलोरा'।]

[२. आधुनिकफ्रांसीसी हिन्दचीनके कम्बुज प्रान्तमें, जो कि एक प्राचीन आर्य उपनिवेश था।]

और बहुत अच्छे लोग हैं। कह देने भरसे यात्रीकी अपनी शक्ति भर सहायता करनेके लिए तैयार हो जाते हैं।

प्रथम हमने कैलाश-मन्दिरसेही देखना आरम्भ किया। एक विशाल शिवालय आँगन द्वार कोठे कमरे हाथी वाहन नाना मूर्ति चित्र आदि महापर्वतगात्रको काट काटकर गढ़े गये हैं। यह सब देख कर मेरे मित्रने कहा—इसके सामने अकोरवाटकी गिनती नहीं की जा सकती। यह अतीत भारतकी सम्पत्ति, दृढ मनोबल, हस्तकौशल सभीका सजीव स्वरूप हैं।

कैलाश समाप्त कर कैलाशके ही चश्मे पर हम दोनोंने अपने मेहरबान सिपाहीको दी हुई रोटियोंसे नाश्ता किया। इसके बाद बौद्ध गुहाओंके हिस्सेवाले छोरसे देखना आरम्भ किया। कैलाशके बाईं ओरके छोरसे १२ बौद्ध गुहायें और फिर ब्राह्मण गुहाये हैं, जिनके बीचमें कैलाश है। अन्तमें चार जैन गुहाये हैं। वस्तुतः इनको गुहा न कह कर पहाड़में कटे हुए महल कहना चाहिए। कल मद्रास के गवर्नरके आनेसे यहाँ खूब सफ़ाई हो गई थी, इसलिए हमे चमगादडोंकी बदबू और ततैयोंके छत्तोंसे टकराना न पड़ा।

सूर्यास्त हो गया था। उस वक्त हम अन्तिम जैन गुहाको समाप्त कर पाये थे। लौटते वक्त हमारे दिमागमें कभी पहाड़को काट कर अपनी श्रद्धा और कीर्तिको अटल करने वाले अपने उन पुरखोंकी पीढ़ियोंका ख़याल आ रहा था। हिन्दू, बौद्ध और जैन धर्मकी विशाल कला-कृति तथा हृदयोंको इस प्रकार एक पंक्ति एक स्थानमें शताब्दियों अनुपम सहिष्णुताके साथ फूलते-फलते देखना क्या आश्चर्य-युक्त बात नहीं थी?

१४ दिसम्बरको हम दोनोंने वहीं पुलिसकी चौकीमें विश्राम किया। बस्ती कुछ दूर दूर है। यदि ये भलेमानस सिपाही न हों, तो यात्रियोंको यहाँ रहनेमें बहुत तकलीफ़ हो सकती है। उन्होंने हमारे लिए दो चारपाइयाँ दे दीं और शामको गर्म-गर्म रोटियाँ भी। सूअर

महाशय भाग्यवान् थे, उन्हें गर्म चाय भी मिल गई।

१५ दिसम्बरको हमने वहाँसे दौलताबादकी ओर पैदल प्रयाण किया। रास्तेमें, खुल्दाबादमें, हठधर्मी सम्राट् औरंगज़ेबकी समाधि भी देखी, जिसके सामने पीर जैनुद्दीनकी समाधि है। देवगिरि (दौलताबाद) का दूर तक फैला हुआ खंडहर बीचमें खड़ी अकेली पहाड़ीपर अनेक सरोवरों, दरवाजों, भूल-भूलइयों, पानीके ।चहबच्चों मंदिरध्वसों, मीनारों, तहखानोंसे युक्त विकट दुर्ग आज भी मनुष्यके चित्तमें आश्चर्य पैदा किये बिना नहीं रहता। पानीका आराम तो पहाड़ीकी चोटीके पास तक है। इन्हीं देवगिरिवासियोंकी ही विभूति और श्रद्धाकी सजीव मूर्ति हैं उक्त कैलाश और उसके पासकी गुहायें। देखते ही दिल बाग़ी होने लगता है। भला इनके स्वामी कैसे पराजित हो सकते थे? लेकिन पराजित होना सत्य है।

तीसरे पहर हम लोग औरङ्गाबाद आये। सूथर महाशयने पहले हीसे डाक-बंगलेमें इन्तज़ाम कर लिया था, इसलिए मेरे लिए भी आसानी हुई। दूसरे ही दिन हमें अजिंठाके लिए चल देना था, इसलिए मैं भी अपना सामान परिचित गृहस्थके यहाँसे उठा लाया।

‡ २. अजिंठा

सुननेमें आया था कि सवेरे ही फर्दापुरको बस जाती है, लेकिन वह नौ बजे चली। निज़ाम सरकारने बसोंका ठेका दे रक्खा है, जिससे एक आदमी मनमानी कर सकता है। इस मनमानीमें यात्रीको पैसा अधिक देना और कष्ट उठाना पड़ता है। किसी तरह हम लोग एक बजे फर्दापुरके डाक-बंगले पर पहुँचे। गवर्नर ! साहब चले गये थे। निज़ाम-सरकारके अफ़सर लोग खेमे वगैरह बँधवा रहे थे। भोजनके बाद हम अजिंठा देखने चले। डाक-बंगलेसे यह प्रायः तीन मील है। बहुत दिनोंसे अजिंठाके दर्शनकी साध थी। आज पूरी हुई। यहाँ भी गवर्नरके लिए ख़ास कर सफ़ाई हुई थी। हमने घूम-घूम कर

नाना समयोंकी बनी नाना गुहाओं सुन्दर चित्र प्रतिमाओं, शालाओं, स्थानकी एकान्तता, जलकी समीपता, हरियालीसे ढके पहाड़ोंकी सुन्दरताको अतृप्त हो देखा। अभी पूरी तौर देख भी न पाये थे कि "बन्द होनेका समय आरहा है" कहा जाने लगा। किसी प्रकार अन्तिम गुहाओंको भी जल्दी-जल्दी समाप्त किया।

रास्तेमे लौटते वक्त सूथर महाशयने इन कृतियोंकी चर्चाके साथ वर्तमान भारतकी भी कुछ चर्चा छेड़ दी। उन्होने वर्तमान भारतके विचार और जातीय वैमनस्यकी भी बात कही। मैने कहा—विचार तो वही हैं जो एक उठती हुई जातिके होने चाहिए। और यह भी निस्सन्देह है कि बाधाओंके होते हुए भी ये विचार आगे बढ़नेसे रोके नहीं जा सकते। वैमनस्य हमारी बड़ी भारी निर्बलता है। जातीयता और मज़हब एक चीज़ नहीं है और न वे एक दूसरेसे बदलने लायक चीजे हैं। दोनोंका एक दूसरे पर असर पड़ता है और वह अनुचित भी नहीं है। तो भी जब कोई मज़हब जातिके अतीतसे आते हुए प्रवाहको—उसकी संस्कृतिको—हटाकर स्वयं स्थान लेना चाहता है, तब यह उसका बड़ी ज़बर्दस्त धृष्टता है, और यह अस्वाभाविक भी है। हिन्दुस्तानमें इस्लामने यह गलतीकी और कितने हीईसाई भी कर रहे हैं। सूथर महाशयने कहा—इसे हम लोग हर्गिज़ नहीं पसन्द करते। मैंने कहा—अब छुआछूत पहलेसी कहाँ है? जो है वह भी कितने दिनोंकी मेहमान है? क्या हिन्दुस्तानी नाम, हिन्दुस्तानी वेष, हिन्दुस्तानी संस्कृति और हिन्दुस्तानी भाषाको रखते हुए कोई सच्चा ईसाई नहीं बन सकता? मैं यह मानता हूँ कि अधिकाश अमेरिकन पादरी इसको पसन्द नहीं करते। उन्होंने कहा—मैं अपनी इस यात्रामें भारतमें अपने मिशनवालोंसे मिलते वक्त इसकी अवश्य चर्चा करूंगा। मैंने कहा इसी तरह यदि भारतीय मुसलमान भी चाहते तो कभी यह फूट न होती। लेकिन समय दूर नहीं है, जब ये गलतियाँ दुरुस्त हो जायँगी। भारतका भविष्य उज्ज्वल है।

३. कन्नौज और सांकाश्य

१७ दिसम्बरको हम फर्दापुरसे जलगाँवके लिए बैलगाड़ीपर पाहुर तक १० मील आये, फिर २४ मील जलगाँव तक बसमें। जलगाँवसे मैं तो उसी दिन साँचीके लिए रवाना होगया, किन्तु सूथर साहबने दूसरे दिन आनेका निश्चय किया। सवेरे मैं साँची पहुंचकर उसे देखने गया। कभी ख्याल आता था कि यही वह स्थान है जहाँ अशोकके पुत्र महेन्द्र सिंहलमें धर्म-प्रचारार्थ हमेशाके लिए प्रस्थान करनेसे पूर्व कितने ही समय तक रहे थे। यही स्थान है, जहाँ बुद्धका शुद्धतम-धर्म (स्थविरवाद) मगध छोड़ शताब्दियों तक रहा। उसी समय तथागतके दो प्रधान शिष्यों महान् सारिपुत्र और मौद्गल्यायनकी शरीर-अस्थियाँ यहाँ विशाल सुन्दर स्तूपोंमें रक्खी गई थीं, जो अब लन्दनके म्यूज़ियमकी शोभा बढा रही हैं।

साँचीके स्तूपोंको गद्गद हो देखा। भोपाल राज्यके पुरातत्व-विभागके सुन्दर प्रबन्धको भी देखकर अत्यन्त सन्तोष हुआ। लौटकर स्टेशन आया तब सूथर साहब भी आ गये थे, इसलिए एक बार उन्हें दिखानेके लिए भी जाना पड़ा।

१९से २६ तारीख़ तक कोंचमें अपने एक पुराने मित्रके यहाँ रहना हुआ। दशार्णोंका[1] देश सूखा होनेपर भी कितना मधुर है।

अब मुझे शिवरात्रिसे पूर्व मध्यदेशके[2] बुद्धके चरणोंसे परिपूत कितने ही प्रधान स्थानोंको देख लेना था। २७ दिसम्बरसे मैंने फिर बाबा रामउदारकी काली कमली पहनी, एक छोटासा झोला और

[१. दशार्ण पूरबी मालवेका पुराना नाम है। अब भी वह धसान कहलाता है।]

[२. कुरुक्षेत्रसे विहार तकका प्रान्त प्राचीनकालमें मध्यदेश कहलाता था। नेपाली उसे अब भी मधेस कहते हैं।]

आनन्दकी सिंहल पहुँचाई बाल्टी साथ ली। २७को कन्नौज पहुँच गया। बे-घरको घरकी क्या फ़िक्र? इक्केवालेसे कहा, शहरसे बहुत दूर न हो, ऐसी बगीची में पहुँचा दो। एक छोटीसी बगीची मिल भी गई। पुजारीजीने अकिंचन साधुको उसके लायक ही स्थान बतला दिया। खुली जगह थी, दो वर्ष बाद जाड़ेसे भेंट हुई थी, इसलिए मधुर तो नहीं लगा!

कन्नौज? नया कन्नौज तो अब भी बिना गुलाबका छिड़काव किये ही सुगन्धित हो रहा है। लेकिन मैं तो मुर्दोंका भक्त ठहरा। २८को थोड़ा जलपानकर चला, टीलोंकी खाक छानने। ऐसे तो सारा ही देश असह्य दरिद्रतासे पीडित हो रहा है, लेकिन प्राचीन नगरोंका तो इसमें और भी अभाग्य है। शताब्दियोंसे उनका पतन आरम्भ हुआ, अब भी नहीं मालूम होता कहाँ तक गिरना है। विशेषकर श्रमजीवियोंकी दशा अकथनीय है। मैंने चमारोंके यहाँ जाकर एक जानकार आदमीको साथ लिया। एक दिनके लिए चार आना उसने काफ़ी समझा।

कन्नौज क्या एक दिनमें देखने लायक है? और उसका भी पूरा वर्णन क्या इस लेखमें लिखना शक्य है, जिसका मुख्य सम्बन्ध एक दूसरे ही सुदीर्घ वर्णन से है? मैं अजयपाल, रौज़ा, टीला मुहल्ला, जामा मस्जिद (=सीता रसोई), बड़ा पीर क्षेमकलादेवी, मखदूम नहानिया, कालेश्वर महादेव, फूलमती देवी, मकरन्द नगर तक ही पहुँच सका। हर जगह पुरानी टूटी-फूटी चीजोंकी अधिकता, अर्ध-सत्य कहावतोंकी भरमार, पुरातन सुन्दर किन्तु अधिकतर खंडित मूर्तियाँ, इतिहास प्रसिद्ध भव्य-कान्यकुब्जकी क्षीण छाया प्रदर्शित कर रही थीं। फूलमती देवीके तो आगे-पीछे बुद्ध प्रतिमायें ही अधिक दिखलाई देती हैं।

आदमीको चार आने पैसे दिये, उसने अपने पड़ोसियोंसे कुछ

पुराने पैसे[1] दिलवाये, उसके लिए भी उन्हें दाम मिला। वहाँसे मैं इक्केके ठहरनेकी जगह गया। किन्तु मेरे अभाग्यसे वहाँ कोई न था। पासमें कुछ मुसलमान भद्रजन बैठे थे। उन्होंने देखते ही कहा—आइए शाह साहेब, कहाँसे तशरीफ लाये? मैने कहा—भाई, दुनियाकी खाक छाननेवालोंसे क्या यह सवाल भी करना होता है?

"जुमा की नमाज क्या जामा मस्जिदमें अदाकी? पान खाइए।"

"शुक्रिया है, पान खानेकी आदत नहीं। फर्रुखाबाद जाना है।"

उन्हें मेरी काली लम्बी अल्फी देखकर ही यह भ्रम हुआ। भ्रम क्यों? हिन्दू भी तो नास्तिक ही कहते। किसी तरह और सवालका मौका न देकर वहाँ से चम्पत हुआ। स्टेशनके पास फतेहगढके लिये लारियाँ खड़ी मिलीं। बसों और रेलकी यहाँ बड़ी लाग डाँट है। रेलको घाटा भी हो रहा है। अस्तु, पाँच बजे के करीब हमने कन्नौजसे बिदाई ली।

रास्तेमें पुनीत पचालके[2] हरे खेत, आमोंके बगीचे, देहाती हाट, फटी धोतियाँ, कृश शरीर, नटखट और भविष्यकी आशा ग्रामीण विद्यार्थी समूहको देखते ठीक समयपर फर्रुखाबाद पहुँचा। वहाँसे फ़तेहगढ़को गाड़ी बदली, उसी दिन मोटा स्टेशन पहुँच गया।

रातको खुली हवामें मोटा स्टेशनपर ही सर्दीकी बहार लूटी। सवेरे सकिस-बसन्तपुरका रास्ता लिया। काली नदीकी नावने २६ दिसम्बरको पहले-पहल मुझे ही उतारा। खेतोंमें भूलते-भटकते पूछते-पाछते तीन मील दूरी तयकर बिसारी देवीके पास पहुँच गया। देखा भारतके भव्य भूतकी जीवन्त मूर्ति सम्राट अशोकके अमानवीय स्तूपों-

---

१ पुराने पैसे कन्नौजके पुराने टीलों पर बरसातके दिनोंमें बहुत मिला करते हैं।

[२. कन्नौज फर्रुखाबादका इलाका प्राचीन दक्षिण पंचाल देश है, उसके उत्तर रुहेलखंड उत्तर पचाल।]

मेंसे एकके शिखर-हस्तीके पास ही कुछ क्षीणकाय मलिन-वेष भारत-सन्ताने धूप सेक रही हैं। पुष्करगिरि बेचारेने परिचितकी भाँति स्वागत किया। मुँह आदि धोनेके बाद प्राचीन अशोक स्तूपको दखल करनेवाली परिचय-रहित बिसारी देवीका दर्शन किया। पुष्कर गिरिने भोजन बनानेकी तैयारी आरम्भकी; और मैं गढ़ संकिसाकी ओर चला। पांचालोंके पुराने महानगर साकाश्यका ध्वंस भी वैसा ही महान् है। गाँवमें अधिकाश मकान पुरानी ईंटोंके ही बने हुए हैं। कहते हैं, दूर तक कुआँ खोदते वक्त कभी-कभी लकड़ीके तख्ते मिलते हैं। क्यों न हो, किले, महल, फ़र्श सभी किसी समय लकडीके तख्तोंके ही तो होते थे। सकिसा फर्रुखाबाद जिलेमें है। इसके पास ही सराय अगहत एटामें है, जहाँ अब भी कितने ही जैन (सरावगी) परिवार वास करते हैं। कितने ही दिन हुए वहाँ भी मूर्त्तियाँ निकली थीं। संकिसा पुराने नगरके ऊँचे भीटेपर बसा हुआ है। पुष्कर-गिरिके हाथका बनाया सुमधुर भोजन ग्रहणकर उसी दिन शामको तीन जिलोका चक्कर लगाकरमैं मोटा (मैनपुरी जिला) पहुँचा।

४. कौशाम्बी

अब मेरा इरादा कुरुकुलदीपकी अन्तिम शिखा वत्सराज उदयन-[1] की राजधानी कौशाम्वी देखनेका था। मोटासे भरवारीका टिकट लिया। शिकोहाबादमें रातको ट्रेन कुछ देरसे मिलती है। सबेरे भरवारी[2] पहुँच गया। उतरते ही हाथ-मुँह धो पहले पेट पूजा करनी शुरूकी। मैंने पभोसा जाकर कौशाम्वी आनेका निश्चय किया। मालूम हुआ करारी तक सड़क है, वहाँ तकको इक्का मिलेगा, उसके

[१. कौशाम्बीका राजा उदयन भगवान् बुद्धके समयमें था। उज्जैनके राजा प्रद्योतने उसे कैदकर लिया था; उसी कैदमें उसका प्रद्योतकी बेटी वासवदत्तासे प्रेम होगया, और तब युवक-युवती एक षड्यन्त्र कर भाग निकले थे।]

[२ इलाहाबादसे २४ मील पच्छिम रेलवे-स्टेशन।]

कानमें अँगुली लगाकर आज भी गारहे थे। मैं खेतोंमें रास्ता भूल गया था, इसलिए रास्ता पूछनेके लिए उनके पास जाना पड़ा। वहाँ एक और साथी कुछ दूर आगे-जानेवाला मिल गया। उसका मकान गंगाकी नहरके किनारे बसे आगेके बड़े गाँवमें था। गरीब मालिकके लिए गाँजा खरीदने गया था। हमको तो उस गाँवसे कोई काम न था, आज ही पभोसा पहुँचना था। उसने कहा, यदि मालिक ने छुट्टी दे दी तो मैं आपको पभोसा तक पहुँचा दूँगा। आगे नहरपर मैंने थोड़ी देर इन्तिज़ार किया। फिर जान लिया कि मालिककी मर्ज़ी न हुई होगी। मैंने रास्ता पूछा और यह भी कि रास्तेमें कहीं कोई पंडित है। मुझे नहरकी पटरीपर ही एक पंडितजीका घर बतला दिया गया। जल्दी-जल्दी मैं वहाँ पहुँचा, अब दिन बहुत नहीं रह गया था। पभोसा पहुँचनेका लोभ अब भी दिलसे न हटा था। पंडितजीके बारेमें पूछा। वे घरमें थे, निकल आये। पीछे एक अपरिचित गरीब साधुको देखकर उनके चित्तमें भी वही हुआ जो एक अभागे देशके साधन-हीन गृहस्थके हृदयमें हो सकता है। उन्होंने आगे एक बहुत सुन्दर टिकाव बतलाया। मेरी भी तो अन्तरात्मा पभोसामें थी। आगे चलकर नहर छोड़नी पडी। रास्ता खेतोंमेंसे होकर था। भूलनेपर कहीं-कहीं ऊखके कोल्हूके पास जाना पड़ता था। जाते-जाते नालोंके आरम्भ होनेसे पूर्व ही सूर्यने अपनी लाल किरणोंको भी हटा लिया। अब रास्ता कुछ अधिक स्पष्ट था, तो भी पोरसों[1] नीचे, पोरसों ऊपर आनेवाले रास्तेमें, जिसमें जहाँ-तहाँ और रास्ते आते-जाते दिखाई पड़ते थे रास्तेका क्या विश्वास था? जल्दी कोई गाँव भी नहीं आता था। ख़याल था, यह तो यमुना के उत्तर वत्सोंका[2] समतल देश है।

---

१. पोरसा एक पुरुषकी ऊँचाई या गहराई चार हाथ। बिहारमें यह बोल-चालका शब्द है।

२. वत्स देश = प्रयागके चौगिर्दका प्राचीन प्रदेश जिसकी राजधानी कौशाम्बी थी।

परन्तु यहाँ तो चेदियोंकी-सी [1]ऊबड-खाबड, अनेक नालोंसे परिपूर्ण भूमि है। आखिर पानीकी यमुना ही तो इसे चेदि बनानेमें रुकावट डालती है। अब भी आगे बढता जारहा था, तो धीरे-धीरे आशाने साथ छोड़ना आरम्भ किया। दूर भी कहीं कोई चिराग टिमटिमाता नहीं दिखाई पड़ता था। उसी समय एक तालाव का बाँध दिखलाई पडा। पहले पीपलके दरख्तके नीचे गया। पीछे पासमें एक छोटासा शून्य-देवालय दिखाई पड़ा। विचार किया, इतनी रातको अपरिचित गाँवमें ऐसी सूरतसे जानेकी अपेक्षा यहीं शून्य देवालयमें विहार करना अच्छा है। बाहर चबूतरा बहुत पुराना होजानेसे बिगड़ गया था। बिजलीकी मशालसे देखा टूटी-फूटी अनेक मूर्त्तियोंसे जटित वह छोटी मढी दिखाई पडी। मैंने रात वहाँ बितानेका निश्चयकर लिया। आगे बढनेका विचार अभी चित्तसे विदा ही हुआ था कि कुछ दूरपर आदमियोंकी बात सुनाई दी।

बरगदके पेडके नीचे वहाँ दो गाड़ियाँ खड़ी देखीं। मालूम हुआ, कुछ जैन-परिवार दर्शन करनेके लिए इन्हीं गाड़ियोंपर आये हैं, जो पास ही धर्मशालामें ठहरे हुए हैं। पभोसा पहुँच गये सुनकर बडी प्रसन्नता हुई। धर्मशालाके कुएँसे पानी भर लाया और गाड़ीवानोंके बगलमें आसन लगा दिया। बेचारोंने धूनी भी लगा दी। सवेरे गाँवसे होकर यमुना स्नानको गया। गाँवमें कुछ ब्राह्मण-देवालय भी दिखाई पडे। स्नानसे लौटकर पहले विचार हुआ, पहाड़ देखना चाहिए जिसके लिए इतनी दूरकी खाक छानी थी। जब एक पाली-सूत्रमें कौशाम्बीके घोषितारामसे[2] आनन्दका[3] 'देवकट सोब्भ'को एक छोटे पर्वतके पास जाना पढा था, तब सन्देह

---

१ चेदि देश = बुन्देलखण्ड, छत्तीसगढ। वत्स और चेदि सटे हुए हैं, बीचमें केवल जमना है।

२. बुद्धके समय कौशाम्बीमे इस नामका एक विहार था।

३. भगवान् बुद्धके प्रमुख शिष्य।

हुआ था कि यमुनाके उत्तर पहाड़ कहाँ। लेकिन आयुषमान आनन्द जब इन सभी तीर्थों को घूमकर सिंहल पहुँचे, तब वह सन्देह जाता रहा। इस एकान्त पहाड़ीके दो भाग हैं, उत्तर वाला बड़ा पहाड़ कहा जाता है, जिसके निचले भाग मे पद्म प्रभुका मन्दिर है। जैन गृहस्थोंने कहा, साथ चले तो दरवाजा खोलकर दर्शन होगा। मै थोड़ा आगे गया। पहाड़ीकी ऊपरी चटानोपर कितनी ही पुरानी छोटी-छोटी मूर्तियाँ खुदी हुई हैं। बहुतसी दुगम भागोंपर हैं। ये मूर्तियाँ अधिकतर जैनी मालूम होती हैं। इससे मालूम होता है सहस्रो वर्ष तक कौशाम्बीके समृद्धि-कालमें यहाँ जैन-साधुजन रहा करते थे। उस समय कौशाम्बीके धनकुवेर यहाँ कितनी ही बार धर्म-श्रवण करने आया करते थे। थोड़ी देरमें जैन गृहस्थ भी आगये। उन्होंने स्वयं भी दर्शन किया। मुझे भी बड़े आदरसे तीर्थंकरकी प्रतिमाओंका दर्शन कराया। बाहर उस समय दो बार बूँदे पड़ रही थीं। चौडे गच किये हुए खुले आँगन पर कहीं-कहो पीली बूँद सी कोई चीज़ निकली हुई थी। उन्होंने बड़ी श्रद्धासे कहा—यहाँ अतीतकालमें केशर बरसा करता था। तब लोग सच्चे थे, अब आदमियोंके बेईमान हो जानेसे यही केसरकीसी चीज़ निकलती है। मैंने सोचा अतीतकी स्मृति कितनी मधुर है। भारतका यही तो एक सबसे पुराना जीवित धर्म है, जो अविच्छिन्न रूपसे चला आता है। बौद्ध यदि होते तो बराबरी का दावा करते। शंकर, रामानुज, सभी तो इनके सामने कलके हैं। ढाई हज़ार वर्ष हो गये, कौशाम्बी जन-शून्य, गृहशून्य हो गई, भूमि ने कितने ही मालिक बदले, परन्तु इनके लिए केसरकी वर्षा की बात पूरी सच्ची है। उन्होंने भोजन करनेका निमन्त्रण दिया। कौन उस गाँव में उसे अस्वीकार करता, यदि वह सत्कार बिना भी मिलता? वहाँसे मैं पहाड़की परिक्रमा करने निकला। फिर ऊपर गया। वहाँ पुराने स्तूपका ध्वंस है। एक छोटासा नया स्तूप बना हुआ है। वहाँसे पासमें एक ओर कलिन्द-नन्दिनोकी मन्द नोली धार देखी, जिसके उसपार

युवक ने कारण बताया। कैसे किसी समय संकृति-वंशी किसी सरवार, मलाँवके ब्राह्मण तरुण ने विवाह सम्बन्ध द्वारा ऊँचा बननेकी इच्छा वाले किसी दूसरे ब्राह्मणके फेरमें पड़कर हमेशाके लिये जन्मभूमिको छोड़ दिया। उसने चलते-चलते जैन-मन्दिर जाने तथा जैनकी पकाई रोटी खानेके बारेमें भी अपनी टिप्पणी कर दी। संकिसाकी भाँति यहाँके लोग 'सरौका'को[1] न-पानी-चलने वाला नहीं कहते।

प्रेम और श्रद्धापूर्वक दी हुई मधुर रसोई, उसपर चौबीस घंटेका कड़ाका, फिर वह अमृतसे एक जौ भी कैसे नीचे रह सकती है? वे लोग भी कौशाम्बी जाना चाहते थे, किन्तु उन्हें नावसे जानेका प्रबन्ध करना था। साथमें बच्चे और स्त्रियाँ भी पर्याप्त संख्यामें थीं, उनको हमारी नज़रसे देखना भी न था। इसलिए मैं भोजनके बाद अकेले ही चल पड़ा। सिंहबल एक कोस पर है। उससे आगे पाली। पालीमें पुरानी ईंटोंके बने हुए घर देखनेमें आते हैं। पालीसे थोड़ी ही दूर आगे कोसम[2] है। बस्तीमें अधिकतर पुरानी मुसलमानी लखौरी ईंटोंके बने मकान बतलाते हैं कि कौशाम्बी मुसलमानोंके हाथों आते ही एक-दम ध्वस्त नहीं कर दी गई।

कोसमसे प्रायः आध कोसपर गढवा है। यह पुरानी कौशाम्बीका गढ़ है। यह यमुनाके तटपर है। दूर तक इसके दुर्ग-प्राकार आज भी छोटी पहाड़ियोंसे दिखाई पड़ते हैं। इसीके बीचमें एक ऊँची जगह जैन मन्दिर है। मन्दिरके पास ही एक अति सुन्दर खडित पद्म-प्रभुकी प्रतिमा है। जैन-मन्दिरकी उत्तर ओर थोड़ी दूरपर विशाल अशोक-स्तम्भ है; यह किस स्थानको सूचितकर रहा है, यह निश्चित तौर पर नहीं कहा जा सकता। घोषिताराम, बदरिकाराम आदि बौद्ध-संघ-

---

१. [पभोसा का पुराना नाम।]

२. [कोसम नाम स्पष्टतः कौशाम्बीका अपभ्रंश है।]

को दिये गये तीनों ही आराम तो शहरसे बाहर थे। सम्भव है, यह उस स्थानको सूचित करता है, जहाँ पर उदयनकी रानी बुद्धकी एक श्रद्धालु उपासिका श्यामावती सखियोंके सहित अपनी सौत मागन्दी-द्वारा जलवा दी गई थी। श्यामावती बुद्धके ८० प्रसिद्ध शिष्य-शिष्याओंमें है। जलते वक्त उसका धैर्य भी अपूर्व बतलाया गया है। वह महलमें जली थी, इसलिए सम्भव है कि यहाँ ही राजकुल रहा हो।

कन्नौजकी भाँति कोशममें रास्ता पूछते वक्त एक मुसलमान सज्जनने अपने मकान लेजानेका बहुत आग्रह किया था। न मानने पर गढ़वा देखकर आनेके लिए जोर दिया। यद्यपि उन्होंने 'शाह-साहब' नहीं कहा तो भी मालूम होता है, उनको भी मुझमें मुसल-मानीपन दीख पड़ा था। यही भ्रम एक और मुसलमानने उसी शामको सरायआकिलके करीब कुछ दूरपर बकरियोंको पत्ता खिलाते हुए, सलामलेकुम् कहकर प्रदर्शित किया था। अँधेरा हो जानेपर सरायआकिल पहुँचा। पक्के कुएँके पास ही धर्मशाला है, जिसके पास ही मन्दिरके अधिक साफ होनेसे वहीं रात बितानी चाही। मन्दिरमें आसन लगाकर आरतीके बाद ठाकुरजीको दण्डवत् करने न जाना मेरा बड़ा भारी अपराध था। पुजारीजीने नास्तिक कह ही डाला। लेकिन उसकी चोट लगे, ऐसा दिल ही कहाँ? इस प्रकार आकिलकी सरायमें सन् १९२८ समाप्त हो गया।

पहली जनवरीको बसपर चढ़ मनौरी आया। बसमें इलाहाबाद-को जानेवाले दफ्तरके बाबू भी थे। इस बार एक हिन्दू बाबूने भी मुसलमान होनेका सन्देह किया। खैर! उनके साथीने नहीं माना, और यही अन्तिम सन्देह था। इस सन्देहकी भी बड़ी मौज रही। मैं हैरान होता था, सिवा १५-२० दिनके बढे हुए बालके, और क्या बात देखते हैं जो लोग मुझे मुसलमान बनाते हैं? पर उन्हें मालूम नहीं था कि मैं राम-खुदाई दोनोंसे योजनों दूर हूँ।

‡ ५. सारनाथ, राजगृह

प्रयागमे कोई काम नहीं था। यदि कोई मित्र होता तो दाल-रोटी मिल गई होती, लेकिन अब होटलोंके युगमें इसके लिए तरसनेका काम नहीं। उसी दिन छोटी लाइनसे बनारसमें उतरे विना ही सार-नाथ पहुँच गया। भिक्षु श्रीनिवास सो गये थे। खैर जागे, और सोनेको जगह मिली।

बनारस में अपनी टीका-सहित पूर्ण किये हुए 'अभिधर्मकोशको'[1] छपाने तथा यदि होसके तो उससे तिब्बतके खर्चेका प्रबन्ध करना था। पुस्तक साथ न रहनेसे उस समय कुछ नही हो सकता था। केवल तथागतके धर्मचक्र-प्रवर्तनके इस पुनीत ऋषिपतनका[2] दर्शन-कर पाया। ऋषिपतनका भी अब पहलेका क्या रहा? तो भी उतना शून्य नही है और उसका भविष्य उज्ज्वल है।

शिवरात्रि १२ मार्चको पड़नेवाली थी। अभी दो महीने और हाथमें थे। इसमे ४से ७तक छपरामें विताकर पटना पहुँचा, ९को ही पटनासे वख्तियारपुरमें गाड़ी वदलकर राजगिरि पहुँच गया। कौंडिन्य बाबा की धर्मशाला घरसी ही थी। दो वजेके करीब वेणुवन, सप्तपर्णी-गुहा, पिप्पली गुहा, वेभार, तपोदाको[3] देखने चला। जिस वेणुवनको तथागतने संघके लिए पहला आराम[4] पाया था, जिसमें कितनी ही बार महीनों तक रहकर अनेक धर्म उपदेश किये थे, आज

---

१ [अभिधर्मकोश पेशावरके बौद्ध दार्शनिक वसुबन्धुका प्राचीन ग्रन्थ है। राहुलजीने उसका सम्पादन किया है।]

२. [बौद्ध वाङ्मयमे सारनाथ-बनारसको ऋषिपत्तन कहा जाता है। वहीं बुद्धने धर्मचक्र प्रवर्त्तन किया, अर्थात् अपने धर्मका प्रचार आरम्भ किया था।]

३. [बौद्ध वाङ्मयमें राजगृहके इन सब स्थानोंका उल्लेख है।]

४. आराम माने बगीचा, विहार। बुद्धको अपने संघके लिए उस

उसका पता लगाना भी मुश्किल है। वेणुवनकी भूमिसे होकर नदीके पार हो महंत बाबाकी कुटीमें गया। मालूम हुआ, आठ-नौ वर्ष पहले-के बाबा अब इस संसार में नहीं हैं। वहाँसे वैभारके किनारे तक बहुत दूर तक सप्तपर्णीकी खोजमें गया। फिर वैभार पर चढ़, उतरते हुए पत्थरसे बिना गारेकी जोड़ी पिप्पली-गुहाको देखा। महाकश्यप[1]-का यही कितने दिनों तक प्रियस्थान रहा। थोड़ा और उतर तपोदा-सप्तऋषियोंके गर्म कुण्डपर पहुँच गया। लौटकर दूसरे दिन गृध्रकूट[2] जानेका निश्चय हुआ।

स्वामी प्रेमानन्द जी साथी मिल गये। उन्होंने पराठे और तर-कारीका पाथेय तैयार किया और श्रीकौडिन्य स्थविरका नौकर मार्ग-प्रदर्शक बना गृध्रकूट ४ मीलसे कम न होगा। पुराने नगरमेंसे होते हुए आगे जंगलमें सुमागधाके सूखे घाटसे हम आगे बढ़े। यही भूमि किसी समय लाखों आदमियोंसे पूर्ण थी और आज जंगल! यही सुमागधा कभी राजगृह और आस-पासके अनेक ग्रामोंके तृप्त करनेकी महान् जलराशि थी, और अब वर्षामें भी जल-रिक्त! गृध्रकूट-पर तथागतकी, सेवामें जानेके लिए जिस राजमार्गको मगध-साम्राज्यके शिलास्थापक बिम्बिसारने बनवाया था वह अब भी काम लायक है। चलते चलते गृध्रकूट पहुँचे। मनुष्योंके चिंह्न सब लुप्तप्राय थे, किन्तु जिन चट्टानोंपर पीले कपड़े पहने तथागतको देखकर पुत्रके बन्दी[3] बिम्बिसारका हृदय आशा और सन्तोषसे भर जाता था उनके लिए

समयकी सब बड़ी नगरियोंमें आराम दानमें मिल गये थे, राजगृहमें वेणुवराराम उनमें पहला था।

१. [महाकाश्यप बुद्धके एक प्रधान शिष्य थे।]

२. [राजगृहके पास गृध्रकूट नामका एक विहार बुद्धके समय बहुत ही प्रसिद्ध था।]

३. [पाली बौद्ध वाङ्मयमें लिखा है कि अजातशत्रु ने अपने

हजार वर्ष कुछ घण्टे ही हैं। दर्शनके बाद वहीं पराठे खाये गये, और फिर दोपहर तक हम कौंडिन्य बाबाकी धर्मशाला में रहे।

उसी दिन १० जनवरीको सिलाव[1] चला आया। जिनसे कुछ काम लेना था वे तो न मिले, किन्तु मौखरियोंका[2] गंधशालीका भात-चिउड़ा और खाजा तो छोड़ना नहीं होता। सिलाव ब्रह्मजाल-सुत्तके[3] उपदेशके स्थान अम्बलट्ठिका तथा महाकाश्यपके प्रव्रज्या-स्थान बहुपुत्रक चैत्यमेंसे कोई एक है। बाबू भगवानदास मौखरीके हातेमें एक ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी का नया शिलालेख भी देखनेको मिला। दूसरे दिन उसकी कापी लेने और खानेमें ही दोपहर हो गया। फिर वहाँसे अपनी स्वप्नकी भूमि[4] नालन्दाके लिए रवाना हुआ।

दो वर्षके बाद फिर भव्य नालंदाकी चिता देखने आया—उसी नालंदाकी जिसके पण्डितोंके रौंदे हुए मार्गको पार करनेके लिए मैंने अपनेको तैयार किया है। इच्छा थी, नालंदामें थोड़ीसी, भविष्यमें कुटिया बनानेके लिए भूमि ले ले। लेकिन इतनी जल्दीमें वह काम कहाँ हो सकता था? भीतर-बाहर परिक्रमा करके निकली हुई मूर्तियाँ,

---

पिता राजा बिम्बिसारको कैद किया और मार डाला था; पर आधुनिक विद्वान् अब इस बातको सच नहीं मानते।]

१. [नालन्दाके पास एक आधुनिक गाँव। वहाँके चिउड़ेकी विहारी लोग बहुत तारीफ़ करते हैं।]

२. [गुप्त सम्राटोंके बाद मध्यदेशमें मौखरि वंशके सम्राट् हुए। हर्षवर्धनकी बहन राज्यश्री एक मौखरि राजाको ही व्याही थी। मौखरियोंकी एक छोटी शाखा बिहारमें भी राज्य करती रही। सिलाव गाँवमें अब भी कई 'मोहरी' परिवार हैं।]

३. [बुद्धके उपदेश किये हुए सूक्तोंमेंसे एकका नाम।]

४. [ग्रन्थकारका यह स्वप्न-संकल्प है कि नालन्दामें फिरसे एक बौद्ध विद्यापीठ स्थापित किया जाय।

मुद्रायें, बर्तन, कोठरियाँ, द्वार, कुएं, पनाले, स्तूप देखे, एक ठंडी आह भरी और चल दिया।

उसी दिन ११ जनवरी को पटना पहुँच गया। अभिधर्मकोशका पार्सल पहुँच गया था, इसलिए उसके प्रबन्धमें १३ जनवरीको फिर बनारस पहुँचा। डेरा हिन्दूविश्वविद्यालयमें डाला। प्रकाशक महोदयने स्वयं पुस्तक देखी, फिर दूसरे विद्वान्‌के पास दिखानेको ले गये। उन्होंने मूल फ्रेंचसे[1] कारिकाओंको मिलाकर कुछ राय देनेके लिए कहा। अठारह तारीखको सारनाथ जानेपर चीनी भिक्षु बोधिधर्मकी चिट्ठी मिली। दो वर्ष पूर्व मेरी उनसे राजगृहके जंगलमें मुलाकात हुई थी। पीछे सिंहलमें विद्यालंकार विहारमें ही जहाँ मैं रहता था वे भी महीनों रहे। हदसे अधिक शान्त थे, इसलिए अपरिचित मनुष्य उन्हें पागल कहनेसे भी न चूकते थे। देखनेसे भी उस गर्दन-झुके, मलिन अकृत्रिम शरीरको देखकर किसी को अनुमान भी नहीं हो सकता था कि वह अन्दरसे सुसंस्कृत होगा। सिंहलसे लौटकर उन्होंने मेरे लिखने-पर अपनी नेपाल-यात्राके सम्बन्धमें विस्तार-पूर्वक लिखा था। चीनी-भाषा में बौद्धदर्शनके वे पण्डित ही न थे, बल्कि उसके अनुसार चलनेकी भरपूर कोशिश भी करते थे। उन्होंने हम लोगोंके भविष्यके कार्यपर ही उस पत्रमें लिखा था। मुझे यह न मालूम था कि वही उनका अन्तिम पत्र होगा।

२० जनवरीको पण्डित महोदयकी अनुकूल सम्मति मिली। दूसरे दिन प्रकाशक महोदयसे बातचीत होनेपर मालूम हुआ कि दस-पाँच प्रतियाँ देनेके अतिरिक्त और कुछ पारितोषिक देनेमें वे असमर्थ हैं। मुझे अपनी यात्राके लिए कुछ धनकी अत्यन्त आवश्यकता थी,

---

१. बेल्जियमके विद्वान् लुई द वाली पूसीने अभिधर्मकोशका फ्रेंचमें सम्पादन किया है। राहुलजीका नागरी सम्पादन उसीपर आश्रित है।

इसलिए उनकी बात स्वीकार करनेमें असमर्थ था। इस प्रकार इस बारका नौ दिन काशी-वास निष्फल ही होता, यदि आचार्य नरेन्द्र-देवने पुस्तकके कुछ अंशोंको देखा न होता। उन्होंने उसको काशी-विद्यापीठकी ओरसे प्रकाशित करानेकी बात कही। २२को प्रकाशन समितिकी स्वीकृति भी आ गई और सबसे बड़ी बात थी सौ रुपये देनेकी स्वीकृति भी।

६. वैशाली, लुम्बिनी।

मै अन्य झंझटोंसे मुक्त था ही। पटना होकर पहले बुद्धगया गया। वहीं मुझे मगोलियाके भिक्षु लोब्-सङ्-शे रब मिले। मैंने भोटिय भाषाकी एक-आध पुस्तकें देख ली थी, इसलिए एक-आध शब्द बोल लेता था। उन्होंने बड़े आग्रहसे चाय बनाकर पिलाई। मुझे उनसे उनके ल्हासाके डेपुङ् मठमें रहनेकी बात भी मालूम हुई। उन्हें अभी एक दो मास और यहीं रहना था। वे महाबोधिके लिए एक लाख दंडवत प्रणाम पूरा करना चाहते थे। उस समय मुझे कभी न भान हुआ था कि उनकी यह मुलाकात आगे मेरे बड़े कामकी सिद्ध होगी।

बुद्धगयासे लिच्छवियोंकी वैशाली[1]को देखना था। मुज़फ्फ़रपुर उतरनेसे मालूम हुआ कि वैशालीके पास बखरा तक बस जाती है। जनक बाबू[2]ने बौद्ध धर्मपर एक व्याख्यान देनेके लिए भी दिन नियत करवा लिया। मैं रास्तेमें बखराके अशोकस्तम्भको पहले देखने गया,

१. प्राचीन मिथिलामें लिच्छवि नामकी प्रसिद्ध जाति रहती थी, जिनको पंचायती राज्यकी राजधानी वैशालीको मुजफ्फ़रपुर ज़िलेका बसाढ़ गाँव सूचित करता है।

२. मुज़फ्फ़रपुरके कांग्रेस कार्यकर्त्ता बाबू जनकधारी प्रसाद महात्मा गांधीकी चम्पारन-जाँचके समयसे राष्ट्रीय कार्य करने लगे हैं;

जहा किसी समय महावन की कूटागारशाला थी, जिसमें तथागतने कितनी ही वार वास किया था। जिस स्थानमें अनेक विख्यात सुत्त[1] आज भी वर्तमान हैं, जहाँ[2] तथागतके परिनिर्वाणके १०० वर्ष बाद आनन्दके शिष्य स्थविर सर्वकामीकी प्रधानतामें भिक्षु-सङ्घने दूसरी बार एकत्र हो शङ्काओंका समाधान करते हुए भगवान की सूक्तियोंका गान किया था, उसकी आज यह अवस्था कि आदमी असन्देह हो स्थानको भी नहीं बता सकते।

बखरा से बनिया पहुँचा। वैशाली आज कल बनिया-बसाढके नामसे ही बोली जाती है। बसाढ तो असल वैशाली है, जो वज्जियों[3] की राजधानी थी। बनिया उसीका व्यापारिक मुहल्ला था। यही जैनसूत्रों का 'वाणिय-गाम-नगर' है। भगवान् महावीरका एक प्रधान गृहस्थ शिष्य आनन्द यहीं रहता था। भगवान् बुद्धके ग्यारह प्रधान गृहस्थ शिष्योंमें उग्र गृहपति यहीं रहता था। वज्जियों के महाशक्तिशाली प्रजातन्त्रकी राजधानीका यह व्यापारिक केन्द्र महासमृद्धिशाली था, यह बौद्ध-जैन ग्रन्थोंसे स्पष्ट है। अब यह एक गाँव रह गया है। वहाँ पहुंचते-पहुंचते भोजनका समय हो गया था, इसलिए एक गृहस्थके भोजनकर लेनेके आग्रहको अस्वीकार न कर सका।

बनिया-बसाढ़के आस-पास मिट्टीकी छोटी-छोटी पकी मेखलाओंसे बँधी हुई कुइँयाँ कहीं भी निकल आ सकती हैं। वहाँसे चलकर बसाढ आया। तालाबपरका मन्दिर जिसमें अब भी बौद्ध-जैन-मूर्तियाँ हिन्दुओंकी देवी-देवताओंके नाम पर पूजी जा रही हैं, रौज़ा, गढ और गाँव सभी घूम-फिर देखा। यहीं किसी समय वज्जियोंका संस्थागार

---

१. बुद्ध ने कौन कौन सुत्त (सूक्त) कहाँ कहा सो पाली वाङ्मयमें दर्ज है।

२. वैशालीकी ओर निर्देश है।

३. लिच्छवि ही वृजि या वज्जि कहलाते थे।

(प्रजातंत्र-भवन) था, जिसमें ७७०७ राजोपाधिधारी लिच्छवि किसी समय बैठकर मगध और कोशलके राजाओंके हृदय कम्पित करने वाले, सात 'अपरिहाणि धर्मों'से[1] युक्त वज्जी देशके विशाल प्रजातंत्रका सञ्चालन किया करते थे। बसाढ़ और उसके आस-पास अधिक प्रभावशाली जातिके लोग जथरिया (भूमिहार) हैं। आज-कल तो ये लोग सोलहों आने पक्के ब्राह्मण जातिके बने हुए हैं, जिस जातिको भिखमंगोंकी जाति तथा तीर्थङ्करोंके न उत्पन्न होने योग्य जाति जथरियोंके पुत्र (ज्ञातृ-पुत्र) वर्द्धमान महावीर ने कहा था[2]। मैं जिस वक्त बसाढ़के एक वृद्ध जथरियासे कह रहा था कि आप लोग ब्राह्मण नहीं

---

१. मगधके राजा अजातशत्रुने वज्जियोंके संघ राज्य (प्रजातंत्र राज्य)को जीत लेना चाहा था। उसने बुद्धके इस बारेमें सलाह माँगी। बुद्धने कहा (१) जबतक वज्जी अपनी परिषदोंमें बड़ी संख्यामें और बार-बार जमा होते हैं, (२) जबतक वे इकट्ठे उठते-बैठते और मिलकर अपने सामूहिक कार्योंको करते हैं, (३) जब तक वे बिना नियम बनाये कोई काम नहीं करते, और अपने बनाये नियम-कानूनका पालन करते हैं, (४) जबतक वे अपने बुजुर्गोंकी सुनने लायक बात सुनते और उनका आदर करते हैं, (५) जब तक वे अपनी कुलस्त्रियों और कुल-कुमारियों पर ज़ोर जबरदस्ती नहीं करते, (६) जब तक वे अपने वज्जी-चैत्यों (राष्ट्रीय मन्दिरों)का सम्मान करते हैं, और (७) जबतक वे विद्वान् अर्हतोंकी शुश्रूषा करते हैं, तबतक वे कभी नहीं हारेंगे चाहे कितनी सेना लेकर उनपर चढाई क्यों न करो। बुद्धकी ये सात शर्त्तें अपरिहाणि-धर्म अर्थात् क्षीण न होनेकी शर्त्तें कहलाती हैं। देखिये भारतीय इतिहास की रूपरेखा, पृ० ५१४-१५।

२. भगवान् महावीर लिच्छवियोंके ज्ञात्रिक कुलमें पैदा हुए थे। ज्ञात्रिकका ही रूपान्तर है जथरिया लोग अब भूमिहारोंके

हैं, क्षत्रिय हैं, तब उन्होंने झट नीमसारसे आकर जेथरडीह (छपरा ज़िला)में बसनेवाले अपने पूर्वज ब्राह्मणोंकी कथा कह सुनाई। बेचारोंको समृद्ध, प्रतिभाशाली, वीर, स्वतन्त्र ज्ञातृ-जातिके खूनकी उतनी परवा न थी, जो अब भी उनके शरीरमें दौड़ रहा था और जिसके लिए आज भी पड़ोसियोंकी कहावत है—

सब जातमें बुबंक जथरिया।
मारै लाठी छीनै चदरिया॥

जितना कि एक अधिकांश धनहीन, बलहीन, विद्याजड़, कूप-मण्डूक मिथ्याभिमानी जाति में गणना करानेमें। वही क्यों, क्या सुशिक्षित देशभक्त मौलाना शफ़ी दाऊदी[1] भी 'शफ़ी जथरिया'के महत्त्वको समझ सकते हैं?

वैशालीसे लौटकर मुज़फ़्फ़रपुर आया। एक ज्ञातृ-पुत्रके ही सभापतित्वमें बुद्ध-धर्मपर कुछ कहा। फिर एक-दो दिन बाद वहाँसे देवरियाका टिकट कटाया। आज (१४ फ़रवरी) फिर दो-तीन वर्षों बाद कुशीनार (कसिया)[2] पहुँचा। दश वर्ष पहले इसी रास्ते पैदल

शामिल हैं। बिहारके भूमिहारोंने जिन्हें वीर लिच्छवि क्षत्रियोंके वंशज होनेका अभिमान करना चाहिए, अज्ञानवश अपने आपको ब्राह्मण कहना शुरू कर दिया है।

१. खुदीराम बोस वाले भारतके पहले बम-मामलेमें शफ़ी दाऊदी सरकारकी तरफ़से वकील थे। १९२१में वे वकालतसे असहयोगकर देशभक्त कहलाये। अब 'मुस्लिम अधिकारों'की रक्षामें लगे हैं। वे भी जथरिया हैं।

१. बुद्धका महापरिनिर्वाण (बुझना = देहान्त) कुशीनारमें हुआ था, जिसे अब गोरखपुर ज़िलेकी देवरिया तहसीलका कसिया गाँव सूचित करता है।

गया था। उस वक्त एक भोले-भाले गृहस्थ ने कहा था, क्या बर्मा वालोंके देवताके वास पाते हो? सौभाग्य है, आज लोगोंने अपनेको पहचान लिया है। माथा कुँअरमें अबकी महापरिनिर्वाण-स्तूपको तैयार पाया। प्रतापी कुँअरसिंहके सम्बन्धी स्थविर महावीरके[1] धूनी रमानेका ही यह फल है जो आसपासके हज़ारों नरनारी तथागतके अन्तिम-लीला-संवरण स्थान पर फूल माला ले बड़ी श्रद्धासे आते हैं।

मूर्तिके सामने बैठे ख़याल आया कि २,४१२ वर्ष पूर्व इसी स्थान-पर युगल शालों (साखुओं)के बीचमें वैशाखकी पूर्णिमाके सबेरे, इसी तरह उत्तरको सिर दक्षिणको पैर पश्चिमकी ओर मुँह किये, अश्रु-मुख हज़ारों प्राणियोंसे घिरी वह लोक ज्योति "सभी बने बिगड़नेवाले हैं" कहती हुई हमेशाके लिए बुझ गई।

कुशीनारामें दो-चार दिन विश्राम किया। फिर वहाँसे बसमें गोरखपुर गया। शामकी गाड़ीसे नौतनवा गया। लुम्बिनी[2] यहाँ से पाँच कोस है। जिसको दुर्गम, दुरारोह हिमालयकी सैकड़ों कोस लम्बी घाटियाँ पार करनी हैं उसको यहाँसे टट्टूकी क्या ज़रूरत? सवेरा होते ही दूकानसे कुछ मिठाई पाथेय बाँधा, और रास्ता पूछते हुए चल दिया। रास्ते में शाक्यों और कोलियोंकी सीमापर

---

१. सन् ५७के गदरमें बिहारके जो प्रसिद्ध कुँवरसिंह बड़ी वीरतासे लड़े थे, उनके एक सम्बन्धी अंग्रेज़ों की प्रतिहिंसासे बचनेको बर्मा भाग गये, वहाँ बौद्ध धर्मका अध्ययनकर भिक्षु बने और फिर बरसों बाद कसियामें आकर रह गये। उनकी असलीयतके हाल तकका बहुत कम लोगोंको पता था। अब भी इस बातके सच होनेमें कुछ सन्देह है।

२. बुद्ध कपिलवस्तुके पास जिस बगीचेमें पैदा हुए थे, उसका नाम।

चढ़नेवाली रोहिणीके[1] साथ अनेक नदी-नालोंको पार करते, जहाँ भगवान शाक्य मुनि पैदा हुए उस स्थानपर १७को पहुँच गया। अबकी यह पूरे दसवर्ष बाद आना हुआ था। अब एक छोटी सी धर्मशाला भी बन गई है। कुएँ और मन्दिर की भी मरम्मत हो गई है। उदार नेपाल नरेश चन्द्र-शम्शेरके सङ्कल्प-स्वरूप फॅकरहवा तकके लिए सड़क भी बहुत कुछ तैयार हो गई है। 'महाराज रुम्मिनदेई[2]' को फिर लुम्बिनी-वन बना देना चाहते थे, किन्तु यह इच्छा मनकी मन-हीमें लेकर चल बसे। अब न जाने किसे उस पुनीत इच्छाके पूर्ण करनेका सौभाग्य प्राप्त होगा?[3]

२,४६१ वर्ष पूर्व यहीं वैशाखकी पूर्णिमाको सिद्धार्थ कुमार पैदा हुए थे। २,१८२ वर्ष पूर्व धर्मविजयी सम्राट अशोक ने स्वय आकर यहाँ पूजा की थी। इसी स्थानको देखना मनुष्य जातिके तृतीयांशकी मधुर कामना है। कुशीनाराके पूज्य चन्द्रमणि महास्थविरकी दो हुई मोमबत्तियों और धूपबत्तियोंको उस नीची कोठरीमें मैंने जलाया, जिसमें लोक गुरूकी जननी महामायाकी विनष्टप्राय मूर्ति अब भी शाल-शाखाको दाहिने हाथसे पकडे खड़ी है। रातको यही विश्राम करनेकी इच्छा हुई, किन्तु दयालु पुजारीने कहा—इस झाड़ीमें रातको चोर रहते हैं, इसलिये यहाँ रहना निरापद नहीं है। मैं अब भी जानेका पूरा निश्चय न कर चुका था कि इतनेमें ही खुनगाँई' के चौधरीजीके लड़के आगये उन्होंने भी अपने यहाँ रातको विश्राम करनेको कहा। उनके साथ चल दिया। लुम्बिनीके यात्रियोंके लिए चौधरीजीका घर खुली विश्रामशाला है।

---

१. बुद्ध शाक्य वंशके थे; उनकी माँ पड़ोसके कोलियवंशकी थीं। शाक्यों और कोलियोंके देशके बीच सीमा रोहिणी नदी थी।

२. लुम्बिनीके स्थानपर अब रुम्मिनदेई गाँव है।

३. नेपाल सरकार का लुम्बिनी-पुनरुद्धार कार्य जारी है।

उन्होंने अ-हिन्दू अतिथियोंके लिए चीनी मिट्टीके प्याले-तश्तरी भी रख छोड़े हैं। मुझे रातको भोजन करनेकी आवश्यकता न होनेसे मैं उनके उपयोगसे बच गया।

दूसरे दिन चौधरी साहबने अपनी गाड़ीपर नौगढ रोड स्टेशन तक भेजनेका प्रबन्धकर दिया। खुनगाईंसे कँकरहवा डेढ़-दो कोससे अधिक न होगा। यह नैपाल-सीमासे थोड़ी ही दूरपर है। नौगढ़से यहां तक मोटर और बैलगाड़ीके आने-जानेकी सड़क है। जब लुम्बिनी तक सड़क तैयार हो जायगी तब यात्री बड़े सुख-पूर्वक मोटर पर नौगढ़-रोडसे लुम्बिनी जा सकेंगे। उसी दिन रातको स्टेशनपर पहुंच गया। अब जेतवन[1] जाना था। गाड़ी उस समय न थी, भूख लगी थी, इसलिए हलवाईके पास गया। वह पूड़ी बनाने लगा। उसकी अपनी पानकी भी दुकान है। रोज़ोंके दिन थे। एक ग्राम-वास मुसलमान गृहस्थ आकर बैठ गये। हलवाईने पान मँगवाया कहा—

"बहुत तकलीफ़ है, खाँ साहब!"

"नहीं भाई! इस साल तो जाड़ेका दिन है, रातको पेट भर खानेको मिल जाता है। जब कभी गर्मीमें रमज़ान पड़ता है तब तकलीफ़ होती है।"

उनकी बातें चुपचाप सुनते समय ख़याल हुआ कि इनको कौन एक दूसरेका जानी दुश्मन बनाता है? क्या इस प्रकार अलग-अलग विचार-व्यवहार रखते हुए भी इन दोनोंको पैर पसारनेके लिए इस भूमिपर काफ़ी जगह नहीं है? यदि यह काम धर्मका है तो धिक्कार है ऐसे धर्मको।

---

१. कोशल देशकी राजधानी श्रावस्तीमें बुद्धको जो बगीचा दान मिला था, उसका नाम।

‡७. भारतसे विदाई

दूसरे दिन (१९ फरवरी) नौगढसे बलरामपुर पहुंचे। भिक्षु आसयाकी धर्मशालामें ठहरे। ये ब्रह्मदेशीय धनिक पिताकी शिक्षित सन्तान हैं। दस वर्ष पहले जब मैं यहा आया था, उस समय बर-सम्बोधि नामक भिक्षु रहते थे। उन्होंने इस धर्मशालाका आरम्भ किया था। उस समय बहुत थोड़ा ही हिस्सा बन पाया था। अब तो कुएँ और रहने तथा भोजन बनानेके मकानोंके अतिरिक्त मंदिर और पुस्तकालयके लिये भी एक अच्छा मकान बन रहा है।

२१ फरवरीकी अपनी चिट्ठीमें मैंने आयुष्मान आनन्दको जेतवनके बारेमें इस प्रकार लिखा—

'कल सवेरे पैदल चलकर बिना कहीं रुके दो-ढाई घंटेमें यहाँ चला आया। चलनेका अभ्यास बढाना ही है। यहां महिन्द बाबाकी कुटीमें ठहरा हूँ। कल पूर्वाह्णमें जेतवन घूमा। गंध कुटी, कोसम्ब कुटी, कारेरी कुटी, सललागारमें सन्देह नहीं मालूम होता। गंध कुटीके सामने बाहरकी ओर निम्न भूमि ही जेतवन-पोक्खरणी है। महिन्द बाबाकी जगह फाहियान वर्णित तैर्थिकोंके देवालयकी है। महिन्द बाबा आजकल ब्रह्मदेश गये हैं। मुझे तो वे धनुष्कोडीमें ही मिले थे। अपराह्णमें श्रावस्ती गया। पूर्व-द्वार गङ्गापुर दरवाजा (बड़का दरवाजा) हो सकता है, किन्तु उसके पास बाहर पूर्वारामका कोई चिह्न नहीं। हनुमनवाँ ही सम्भवत: पूर्वारामका ध्वंसावशेष है। कल सूर्यास्त तक श्रावस्तीमें घूमते रहे तो भी चारों ओर नहीं फिर सके।

'आज-कल गोंडा बहराइचके जिलेमें अकाल है। इस देहातके आदमी तो विशेषकर पीड़ित मालूम होते हैं। तालाब सूखे पड़े हैं। वर्षाकी फसल हुई ही नहीं। रबी भी पानीके बिना बहुत कम बो सके हैं। इनका कष्ट अगली वर्षा तक रहेगा। जगह-जगह सरकार सड़क आदि बनवा रही है, जिसके लिए दो-दो तीन तीन कोस जाकर लोग का[illegible]

करते हैं। मर्दको ढाई आना, दूसरोंको दो आना रोज़। मक्की चार आना सेर मिल रही है। लुम्बिनीके रास्तेमें ऐसी तकलीफ नहीं देखनेमें आई।

'७-८ मार्च तक नेपाल पहुँच जाऊँगा। अन्तिम-पत्र चम्पारन ज़िलेसे लिखूँगा। नेपाल तक एक दो साथी मिलेंगे।

'यात्राके लिये महाबोधिके[1] तीस चालीस पत्ते, बुद्ध-गयाके चढ़े कुछ कपडे, कुशीनाराके चढ़े कुछ कपड़े और कुश ले लिये हैं। नेपाल तक सम्भवतः डेढ़ सौ रुपये बच रहेंगे। नेपालसे भी अपने साथीके हाथ एक पत्र दे दूँगा। आगेके लिए क्या प्रबन्ध हुआ, यह उससे मालूम हो सकेगा।

आज अन्धवन (पुरैना, अमहा ताल) देखनेका विचार है।'

२२ फ़रवरीकी रातको मैंने चम्पारन जानेका रास्ता लिया। सोनेके ख़यालसे छितौनी घाट तकका ड्योढेका टिकट लिया। गाड़ी गोरखपुर-में बदलती है। दस बजेके क़रीब छितौनी पहुँचा। गण्डकके पुलके टूट जानेसे यहाँ उतर कर बालूमें बहुत दूर तक दोनों ओर पैदल चलना पड़ता है। सीधे रेलसे रक्सौल जानेवालोंके लिए छपरा, मुज़फ़्फ़रपुर होकर जाना पड़ता है। नाव पर पशुपतिनाथके यात्रियोंको अभीसे जाते देखा। लेकिन अब मुझे ख़याल आया कि मैं आठ दिन पहले आया हूँ। अब इन आठ दिनोंको कहीं बिताना चाहिए। उस वक्त नरकटियागंजके पास विपिन बाबूका मकान याद आया। मैंने कहा, चलो काम बन गया।

स्टेशन पर मालूम हुआ, शिकारपुर न कहकर उसे दीवानजीका शिकारपुर कहना चाहिए। जानेपर विपिन बाबू तो न मिले, उनके सबसे छोटे भाई घर हो पर मिले। बे-घरको घर बड़ी आसानीसे मिल ही जाता है। लेकिन अब ख़याल हुआ, ये दिन कैसे कटें। इसके

---

१. बुद्ध-गयाका पीपल वृक्ष।

लिए मैंने आस-पासके ऐतिहासिक स्थानोंको देखने-भालनेका निश्चय किया। ये सब बातें मैंने २८ फ़रवरीसे ३ मार्च तकके लिखे अपने पत्रमें दी हैं। वह पत्र यों है—

शिकारपुर, ज़िला चम्पारन (बिहार)
२८–२–२६

प्रिय आनन्द,

बलरामपुरसे पत्र भेज चुका हूँ। इस जिलेमें तेइस ही तारीखको आगया। आना चाहिए था तीन मार्चको। इस तरह किसी प्रकार इस समयको बिताना पड रहा है। इधर रमपुरवा गया था, जो पिपरिया-गाँवके पास है और जहाँ पास-ही-पास दो अशोक-स्तम्भ मिले हैं, जिनमेंसे एक पर शिलालेख भी है।

पुरातत्त्व विभागकी खुदाईके समय एक बैल मिला था, जो एक स्तम्भके ऊपर था। दूसरेके ऊपर क्या था, इसका कोई ठीक पता नहीं। परम्परासे चला आता है कि एकपर मोर था। मोर मौर्योंका राज-चिन्ह था। साथ ही पासमें पिपरिया-गाँव है। क्या पिप्पलीवन[1] को ही तो नहीं यह पिपरिया प्रकट करता है? पिप्पली वनिय-मोरियों-ने भी कुसीनारामें भगवान्की धातु[2]में एक भाग पाया था। एकही जगह दो-दो अशोक स्तम्भोंका होना भी स्थानके महत्त्वको बतलाता है। पिप्पलीवन ही मौर्योंका मूल-स्थान है और वहाँके लोगोंने बुद्धका सम्मान भी किया था। ऐसी अवस्थामें बुद्ध-भक्तोंका अपने पूर्वजोंके

---

१. पिप्पलीवन — हिमालय तराईमें कोई जगह थी। वहाँ मोरियों (मौर्यों)का प्रजातन्त्र राज्य था।

२. बुद्धके चिताभस्मके फूल या अस्थियाँ धातु कहलाती हैं। परिनिर्वाणके बाद वे आठ हिस्सोंमें बाँटी गईं थीं। पिप्पलीवनके मोरिय बटवारेके बाद पहुँचे, इसलिए उन्हें राखसे ही सन्तोष करना पड़ा था।

स्थानके स्मरणमें अशोकका यहाँ दो स्तम्भ गाड़ना अर्थ-युक्त मालूम होता है।

पिप्पलीवन जैसी छोटेसे गण-तन्त्रकी राजधानी कोई बड़ा शहर नहीं हो सकता। अजातशत्रुके समयमें ही इसका भी मगध-साम्राज्यमें मिल जाना निश्चित है। इस प्रकार ईसाके पूर्वकी पाँचवीं शताब्दीके एक छोटेसे क़स्बेका जो अधिकतर लकड़ीकी इमारतोंसे बना था, ध्वसावशेष (जो अब बीस-बाइस फ़ुट, जल-तलसे भी कई फ़ुट नीचे है) बहुत स्पष्ट नहीं हो सकता।

मैं रमपुरवासे ठोरी गया, जो वहाँसे ७-८ मील उत्तर नेपाल-राज्यमें है; और वहाँसे भी एक मार्ग तिब्बत तक जानेको है। ठोरीसे तीन मील दक्षिण महायोगिनीका गढ़ है। नीचेकी ईंटोंसे यह प्राक्-मुस्लिम-कालीन मालूम होता है। पुराना मन्दिर पत्थरका बहुत सुदृढ़ बना था। मुसलमानों द्वारा नष्ट होने पर नया बड़ा मन्दिर १००-१५० वर्ष पूर्व बना होगा। यह स्थान तराईके जङ्गलसे मिला हुआ है।

यहाँ थारु-जातिका परिचय प्राप्त करनेका भी मौका मिला। यह बड़ी विचित्र जाति है। कितने विद्वान् इन्हींको शाक्य सिद्ध करनेका प्रयास कर चुके हैं (१) चेहरा मङ्गोलीय। (२) इधरके थारुओंकी मुख्य भाषा गया-ज़िलेकी (मगही भाषासे संपूर्णतः मिलती है। (३) अपने दक्षिणके अथारु लागोंकी ये बाजी[1] और देशको बजियान कहते हैं। (४) मुर्गी और सूअर दोनों ही खाते हैं, हालाँकि हिन्दू इधर मुर्गी खाना बहुत बुरा समझते हैं। (५) (चितवनिया थारु अपनेको चित्तौड़ गढ़से आया कहते हैं।) पश्चिम (लुम्बिनीके पास) के थारु अपनेको वनवासी हुए अयोध्याके राजकी सन्तान बतलाते हैं।

'कल चानकी-गढ़ जाऊँगा जहाँ मौर्य-काल या प्राक्-मौर्य कालका

---

१. अर्थात् वृजि=लिच्छवि।

एक गढ़ है। परसों रातकी गाड़ीसे यहाँसे प्रस्थान करूँगा। नेपाल-से पत्र भेजनेका कम ही मौका है।

'३-३-२६ आज सायकाल यहाँसे प्रस्थान करूँगा, कल सबेरे नरकटिया-गंज रेलपर रक्सौलके लिए।

"प्रिय आनन्द ! अन्तिम वन्दे करते हुए अब छुट्टी लेता हूँ। 'कार्य वा साधयेय, शरीर वा पातयेयं"—जीवन बहुत ही मूल्यवान् है, और समयपर कुछ भी नहीं है।

तुम्हारा अपना—
रा० साकृत्यानन

तीन तारीखको मैं शिकारपुरसे रक्सौल पहुँचा। वहाँसे नेपाल सरकारकी रेलगाड़ीसे उसी दिन वीरगंज पहुँच गया।

———

दूसरी मञ्जिल

नेपाल

१. नेपाल-प्रवेश

तीन मार्च १६२६ ई०को सूर्योदयके समय मैं रक्सौल पहुँच गया। छः वर्ष पहले जब मैं इसी रास्ते नेपाल गया था उस समयसे अब बहुत फर्क पड़ गया है। अब यहाँसे झुण्डके झुण्ड नरनारियोंका पैदल वीरगंजकी ओर जाना, और वहाँ कतारमें होकर डाक्टरको नब्ज दिखलाना, तथा इस प्रान्तके उच्च अधिकारीसे राहदानी लेना आवश्यक नहीं है। रक्सौलके बी० एन० डब्लू आर०के स्टेशनकी बगलमें ही नेपाल-राज्य-रेलवेका स्टेशन है। लाइन बी० एन० डब्लू० आर०से भी छोटी है। यात्री अब सीधे वहाँ पहुँच जाते हैं। राहदानी देनेके लिये कितने ही आदमी खड़े रहते हैं। उसके मिलनेमें न कोई दिक्कत न देरी। नब्ज दिखलानेकी भी कोई आवश्यकता नहीं। दर

असल उसकी आवश्यकता है भी नहीं, क्योंकि असल नब्ज-परीक्षा तो चीमा पानी, चन्दागढ़ीकी चढाइयाँ हैं; जिनपर स्वस्थ आदमीको भी हाँपते-हाँपते पहुँचना पड़ता है।

मेरे यहाँ पहुँचनेकी तारीख कुछ मित्रों को मालूम थी। पूर्व-विचारके अनुसार यात्रा लम्बी होने वाली थी। वस्तुतः मैंने अपनी इस यात्राका प्रोग्राम आठ-दस वर्षका बनाया था। तिव्वतसे चौदह मास बाद ही लौट आनेका ज़रा भी विचार न था। इसीलिये कुछ मित्रोंको विदाई देनेकी आवश्यकता भी प्रतीत हुई थी। उनमेंसे एक तो गाडीसे उतरते ही मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। उनसे बिदाई ले मैं नेपाली स्टेशनपर पहुँचा। राहदानी तो मैंने ले ली, लेकिन अभी सीधा अमलेखगंज नहीं जाना था। अभी कुछ साथियों और एक बिदा-करने वाले मित्रकी वीरगंजमें प्रतीक्षा करनी थी। मैं रेलमें बैठकर बीरगंज पहुँचा। गाड़ियोंकी कमीसे मालके डब्बे भी जोड़ दिये गए थे। मुझे भी मुश्किलसे एक मालके डब्बेमें जगह मिली।

वस्तुतः रेल-यात्रासे यात्राका मज़ा कितना किरकिरा हो जाता है, यह अबकी मालूम हुआ। जिस वक्त इञ्जन नेपाल-हिन्दुस्तानकी सीमा बनाने वाली छोटी नदीपर पानी ले रहा था, उस समय मैंने कुछ दूर-पर इसी नदीके किनारे सड़कपरकी उस कुटियाको देखा, जिसमें दस वर्ष पूर्व आकर मैं कुछ दिन ठहरा था। उस समय तो साधारण आदमीके लिए वीरगञ्ज भी पहुँचना, सिवाय शिवरात्रिके समयके, मुश्किल था। मैं भी उस समय बैशाख मासमें राहदानीकी अड़चनसे ही नहीं जा सका था। उस समयका वह तरुण साधु भी मुझे याद आया, जो रूसके मुल्ककी ज्वालामाईसे लौटा हुआ अपनेको कह रहा था। मैंने उसके किस्सेको सुना तो था, किन्तु उस समय इसका विश्वास ही न था कि रूसमें भी हिन्दुओंकी ज्वालामाई हैं। यह तो पीछे मालूम हुआ कि वाकूके पास रूसी सीमाके अन्दर दर-असल ज्वालामाई हैं, और वह उक्त साधुके कथनानुसार बड़ी ज्वालामाई हैं।

रक्सौलसे वीरगञ्ज तीन-चार मील ही दूर है। इतनी दूरीको हमारी बच्ची गाड़ीको भी काटनेमें बहुत देर न लगी।

गाड़ी वीरगञ्ज बाजारके बीचमें गई है। सड़क पहले हीसे बहुत अधिक चौड़ी न थी, अब तो रेलकी पटरी पड़ जानेसे और भी सङ्कीर्ण हो गई है। स्टेशनपर उतर कर अब धर्मशालामें जाना था। रेलसे ही धर्मशालाका मकान देखा था। आकृतिसे ही मालूम हो गया था कि यह धर्मशाला है, इसलिए किसीसे रास्ता पूछनेकी आवश्यकता न थी। सीधे धर्मशालामें पहुँचा। दूसरा समय होता तो धर्मशालामें भी जगह मिलना आसान न होता, किन्तु मालूम होता है, जैसे अन्यत्र रेलोंने पुरानी सरायोंकी चहल-पहलको नष्ट कर दिया, वैसे ही यहाँ शिवरात्रिके यात्रियोंकी बहारको भी। मुझे एक दो दिन ठहरना था। आज फागुन सुदी अष्टमी (२ मार्च १६२६) थी। इसलिए अभी नेपाल पहुँचनेके लिए काफ़ी दिन थे। एकान्तके लिए मैं ऊपरी तल-की एक कोठरीमें ठहरा। यह धर्मशाला किसी मारवाड़ी सेठकी बनवाई हुई है। यह परकी ओर बहुत कुछ साफ है, पीछेकी ओर कुआँ और रसोई बनानेकी जगह भी है। दर्वाजेपर ही हलवाईकी तथा आटा चावलकी दूकानें हैं। आसन रखकर मैंने पहले मुँह-हाथ धोया, और फिर पेटभर पूरियाँ खाईं। थोड़ी ही देरमें एक बारात आ पहुँची, और मैंने देखा कि मेरी कोठरी भर गई। असलमें हवा और धूपके लोभसे मैंने यही कोठरी लेकर गलती की थी। अन्तमें बारातकी भीड़में उस कोठरीमें मेरा रहना असम्भव मालूम हुआ, इसलिए दूसरी छोटी कोठरीमें चला गया, जिसमें बारातके दो-तीन नौकर ठहरे हुए थे। यह अच्छी भी थी।

यह सब हो जानेपर, अब बिना काम बैठे दिन काटना मुश्किल मालूम होने लगा। पासमें ऐसी कोई किताब भी न थी, जिससे दिल बहलाव करता; न यहाँ कोई परिचित ही था, जिससे गप-शप करता। और, किसी तरह रात आई। आज भी मेरे मित्रके आनेकी प्रतीक्षा

थी। वे न आये। तरह-तरहके ख्याल दिलमें आ रहे थे। सवेरे उठा तो पासकी दालानमें किसीके ऊँचे स्वरमें बात करनेकी आवाज़ मालूम हुई। मथुरा बाबूकी आवाज़ पहचाननेमें देर न लगी। मालूम हुआ, वह रातमें ही आकर यहीं आसन लगाकर पड़ गये थे। बहुत देर तक बात होती रही। पिछले दिन मुझे थोड़ासा ज्वर भी आ गया था, इस-लिये भोजनमें स्वाद नहीं आता था। भातका वहाँ प्रबन्ध न था। मथुरा बाबूके परिचित मित्र यहाँ निकल आये, और मेरे लिए भात का प्रबन्ध बराबरके लिए हो गया।

दस बजेके करीब मथुरा बाबू लौट गए। अब मुझे मित्रोंकी ही प्रतीक्षा करनी थी, जिन्हें नेपाल तकका साथी बनना था। उनके लिए भी बहुत प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। दोपहरके करीब वे भी पहुँच गये। लेकिन और आने वाले साथी उनके साथ न थे। मालूम हुआ, उनमेंसे एक बीमार हो गया, और दूसरोंने यात्रा स्थगित कर दी। मेरे इन मित्रको भी आगे जाना नहीं था। जिसको अकेले यात्रा करनेका अभ्यास हो उसके लिए यह कोई उदास होनेकी बात तो थी ही नहीं। हाँ, मुझे इसका जरूर ख्याल हुआ कि उन्हें छपरासे इतनी दूर आनेका कष्ट उठाना पड़ा। लेकिन यह तो अनिवार्य भी था, क्यों कि मेरी यात्राका सामान और रुपये उन्हींके पास थे।

दोपहरके बादवाली गाड़ीसे उन्हें लौट जाना था। मुझे भी अब प्रतीक्षाकी आवश्यकता न थी। मैंने बीरगञ्जमें प्रतीक्षा करनेकी अपेक्षा उसी गाड़ीपर रक्सौल जाकर लौटना अच्छा समझा। सभी गाड़ियाँ रक्सौलसे भरी आती थीं, इससे बीरगंजमें चढ़नेकी जगह मिलेगी, इसमें भी सन्देह था। इस प्रकार अपने मित्रके साथ ही एक बार फिर मैं भारत-सीमामें आया, और चिरकालके लिये वहाँसे बिदा ले लौटती गाड़ीसे अमलेखगंज की ओर चला। यात्रा आरामसे हुई, लेकिन जो आनन्द पैदल चलनेमें पहले आया था, वह न रहा। अँधेरा होते-होते

हमारी गाड़ी जङ्गलमें घुस पड़ी। कुछ रात जाते-जाते हम अमलेखगंज पहुँच गए।

२. काठमाण्डव की यात्रा

अमलेखगञ्ज नई बस्ती है। दिनपर-दिन बढ़ती ही जा रही है। रेलके आनेके साथ ही साथ इसकी यह उन्नति हुई है। रेल यहाँ समाप्त हो जाती है। आगे, सम्भव है धीरे-धीरे रेल भीमफेदी तक पहुंच जाय। आजकल सामान और माल यहाँसे लौरियों पर भीमफेदी जाता है। स्टेशनसे उतरने पर ख्याल किया कि किसी लौरीवालेसे बात चीत ठीक कर वहीं सोना चाहिये, जिसमें बहुत सबेरे यहाँसे चलकर भीमफेदी पहुंच जाऊँ, और चीसापानी-गढ़ी ठण्डे-ठण्डेमें चढ़ सकूँ। एक बस वालेसे बातकी, उसने सबेरे जानेका बचन दिया। उसी बसमें सो गया। सबेरे देखा कि लौरियाँ दनादन निकलती जा रही हैं, लेकिन हमारे बसवाले ने अभी चलनेका विचार भी नहीं किया है। अखिर में थोड़ी देर में ऊब गया। पूछनेपर उसने कहा, सवारी तो मिल जाय। उसका कहना वाजिब था। आखिर मैंने खुली माल ढोनेवाली लौरीके मालिकसे बात की। किराया भी बहुत सस्ता, एक रुपया। लौरी तय्यार थी। किराया कम होनेसे यात्रियों के मिलनेमें देर न लगती थी।

हमारी लौरी चली। हमने समझा था, अब कोई भी भीमफेदी तक पैदल चलनेका नाम न लेता होगा। लेकिन रास्तेमें देखा झुण्डके झुण्ड आदमी चले आ रहे हैं। दरअसल यह सभी लोग अधिक पुण्य-के लिये पैदल नहीं जा रहे थे, बल्कि इसका कारण उनकी भयानक दरिद्रता है! दूरके तो वही लोग पशुपतिकी यात्रा करते हैं, जिनके पास रुपया है; परन्तु पासके चम्पारन आदि जिलों के लोग सत्तू लेकर भी चल पड़ते हैं। यह तो मुश्किलसे एक-आध रुपया जमाकर पाते हैं। उनके लिये तो खुली माल ढोनेकी लौरीपर चढ़ना भी

शौकीनी है। मैं प्रतीक्षा कर रहा था कि अब चुरियाघाटीपर चढ़ना होगा, किन्तु थोड़ी ही देरमें हम एक लम्बी सुरङ्गके मुँह पर पहुंचे। मालूम हुआ, चुरियापरकी चढ़ाईको इस सुरङ्गने खतमकर दिया। अब हम तराईके जङ्गलसे आगे पहाड़ोंमें जा रहे थे। हमारे दोनों तरफ जङ्गलसे ढँके पहाड़ थे, जिनपर कहीं-कहीं जङ्गल काटकर नये-नये घर बसे हुए थे। कितनी ही जगह जङ्गल साफ करनेका काम अब भी जारी था, कितनी ही जगह छोटी-छोटी पहाड़ी गायें चरती दिखाई पड़ती थीं। रास्तेमें लोग कहां पशुपति और भैरवके गीत गाते चल रहे थे; कहीं-कहीं "एक बार बोलो पस्‌पस्‌-नाथ बाबाकी जय", "गुह्येशरी (—गुह्येश्वरी) माईकी जय" हो रही थी। देखा-देखी हमारी लौरीके आदमियोंमें यह बीमारी फैल गई। और इस प्रकार हमें यह मालूम भी न हुआ कि हम कब भीमफेदी पहुंच गये। सारी यात्रामें तीन घंटेसे कम ही वक्त लगा।

गोर्खाके राष्ट्र भाषा होनेसे सभी इसको बोलते हैं।

भीमफेदीमें भोजनकर आदमीको ले आगे बढ़ा। चीसा-पानीकी चढाई थोड़ा आगेसे शुरू होती है। चढ़ाई शुरू होनेकी जगहपर ही कुलियोंका नाम-ग्राम लिखने वाला रहता है। यह प्रबन्ध इसलिए है, जिसमें कि कुली अनजान आदमीको धोखा देकर, पहाड़में कहीं खिसक न जायँ। चीसापानीका रास्ता अबकी उतना कठिन न था। पहलेका रास्ता छोड़कर राजकी ओरसे अब बहुत अच्छा रास्ता बन गया है। इसमें चढाई क्रमशः है; पहलेकी भाँति सीधी नहीं। इस प्रकार चीसापानीके आधे गौरवको तो इस नये रास्तेने ही खतम कर दिया, और यदि कहीं इसपर भी मोटर दौड़ने लगी तो खतम ही है। रास्तेमें कहीं-कहीं हमने अपने सिरपरसे रोप लाइनके रस्सेपर माल दौड़ते देखा। दोपहरके करीब हम चीसापानी-गाढ़ीके ऊपर पहुंचे। पहरेवालोंने तलाशी लेनी शुरू की, लेकिन मेरे पास सामान बहुत थोड़ा होनेसे उन्होंने सामान खोलकर देखना भी पसन्द न किया। मैंने तो भिक्षुओंके पीले कपड़ोंको मोटरी बाँधकर बहुत गलतीकी थी। इस सारी यात्रामें उनका कोई काम न था, और दूसरोंको उनके देखने मात्रसे पूरा सन्देह हो जानेका अवसर था।

मरियाने कहा मेरा भी ऐसा विचार हुआ कि आज ही चन्द्रागढीको भी पारकर जायें। पिछली बार भीमफेदीसे चलकर जिस भैसादहमें रात्रिवास किया था, उसे अबकी हम दो-तीन बजेके समय ही पारकर गये। चीसापानीके इस ओरके प्रदेशमें जहाँ-तहाँ गाँव बहुत हैं, तो भी उतनी हरियाली और जङ्गल नहीं है। चार बजेके करीब चन्द्रागढीके पार करनेकी प्रतिज्ञा छूटती जान पड़ी, तो भी हिम्मत बाँधे अभी आगे-आगे चलता-जा रहा था। बहुत रोकनेपर भी कुली आगे चला जाता था। उसी समय सारन जिलेके दो-तीन परिचित-जन मिल गये। उनमें एककी तो अवस्था मुझसे भी खराब

थी। खैर, किसी तरह मर-पिटकर हम चिताङ् पहुंचे। ऐसी यात्रामें दिन रहते ही चट्टीपर पहुंच जाना अच्छा होता है, हम अँधेरा होते-होते पहुंचे। उस समय सभी जगहें भर चुकी थीं। सर्दी काफी पड़ रही थी। बड़ी मुश्किलसे एक छोटी सी कोठरी मिली। हम पाँचों आदमी उसमें दाखिल हुए। उस थकावटमें तो सबसे मीठा लेटना ही लगता था, किन्तु विना खाये कलकी चढ़ाई पार करना कठिन था। खैर, हमारे साथी पाण्डेजीने भात बनाया। सबने भोजन किया; और लेट रहे।

सवेरे तड़के ही चल पडे। अब मुझे अपने सारनके साथियोंसे पिण्ड छुड़ाना था। यद्यपि उनका मेरे साथ घनिष्ठ सम्बन्ध था, तोभी उन्हें इतना ही मालूम था, कि मैं भी उनकी भाँति पशुपति का दर्शन करने जा रहा हूँ। चन्द्रागढीकी चढ़ाईमें आप ही वे पीछे पड़ गये; और मुझे आगे बढ जानेमें कोई कठिनाई न हुई। मैं प्रतीक्षा कर रहा था, अभी चन्द्रागढीकी सख्त उतराई आनेवाली है। लेकिन आकर देखा, तो यहा भी कायापलट, रास्ता बहुत अच्छा बन गया है। नीचे आकर मालपूएके सदाव्रतपर मुझे भी लेने जानेको कहा; और मेरे कुलीने भी जोर दिया। खैर, मैं भी गया। देखा पासमें कितने ही महात्मा लोग भी बैठे हुये हैं। गाँजेकी चिलम दमपर-दम लग रही है। मुझे भी कहा— आओ सन्तजी! मैं बहाना बना, मालपूआ ले, आगे चल पड़ा। थानकोटमें केला और दूध मिला। आगे देखा इधर भी लौरियाँ रोपलाइनके स्टेशनसे माल ढो रही हैं। मेरे साथी कुलीने पहले ही अपनी गाथा सुना दी थी कि किस प्रकार पहले जब रोपलाइन न थी, तब हम लोग साल भर भीमफेदीसे काठमाण्डव माल ढोनेमें लगे रहते थे। हजारों परिवारोंका इस प्रकार सुखपूर्वक पालन होता था। लेकिन अब तो रोप लाइन पर छः आने मन भाड़ा लगता है, किसको पड़ी है जो अठगुना भाड़ा देकर अपनेमालको महँगा बनावे। वस्तुतः इन हजारों परिवारोंकी

जीविका-वृत्तिका कोई दूसरा प्रवन्ध किये बिना रोप-लाइनका निकालना बड़ा क्रूर काम हुआ है।

काठमाण्डव शहरमें होते हुए दस बजेके करीब हम थापाथलीके वैरागीमठमें पहुँचे। यद्यपि पिछली बार हफ्तों तक रहनेसे महन्त जी परिचित हो गये थे, और उनके जन्म-स्थान छपरासे मेरा सम्बन्ध भी उन्हें मालूम था, पर भीड़के समय देखे आदमीका परिचय किसको रहता है। तो भी उन्होंने रहनेके लिए एक साफ़ स्थान दे दिया।

३. डुक्पा लामासे भेंट

छः मार्चको मैं नेपाल पहुँच गया था। उस दिन तो मैं कहीं न जा सका। शिवरात्रिके अवसरपर कई दिन तक थापाथलीके सभी मठोंमें साधुओंके लिए भोजन, गाँजा, तम्बाकू, धूनीकी लकड़ी महाराजकी ओरसे मिलती है। साधारण तौरपर भी इन मठोंमें प्रतिदिनकी हाण्डयाँ बधी हैं। एक हण्डीसे मतलब एक आदमीका भोजन है। इन्हीं हण्डियों और वार्षिक भोजसे पैसे बचाकर यहाँके महन्त लोग धनी भी होगये हैं, यद्यपि यों देखनेसे ये महन्त लोग बडे गरीबसे मालूम हाते हैं। नेपालके इनके महन्त ही क्या, राजपरिवारका छोड़ सभी लाग अपने धनके अनुसार ठाट-बाटसे नहीं रहते। राजा तथा उच्चाधिकारी सर्वज्ञ तो हैं नहीं, और चुगलखोरोंकी कमी नहीं है, इसीलिये लोगोंको आत्म-गोपन करके रहना पड़ता है। मैंने नैपालमें जिन साहूकारोंके घर मामूलीसे देखे, ल्हासामें उन्हींकी बड़ी-बड़ी सजी कोठियाँ लाखोंके मालसे परिपूर्ण पाईं। अस्तु महत बेचारोंकी हालत तो और भी बुरी है। वे तो सदा अपनेको बारूदके ढेरपर समझते हैं। जिन लोगोंसे डरते हैं उन्हे भी पूजा देनी पड़ती है, स्वय भी रुपये बचाकर नेपाल राज्यसे बाहर कहीं इन्तजाम करना पड़ता है, जिसमें पदच्युत होनेपर आश्रय मिल सके। शिवरात्रिके भोजोंके समय राज-कर्मचारी भी देख-भालके लिए रहता है, लेकिन इससे प्रवन्धमें कोई

मदद नहीं मिलती, उसीका कुछ फ़ायदा हो सकता है। वस्तुतः यह दोष तो उन सभी शासनोंमें होता है, जहाँ लोक-मतका कोई मूल्य नहीं है, और इसलिए शासकको अधिकतर अपने पार्श्ववर्ती लोगोंकी बातपर चलना पड़ता है।

दूसरे दिन मैंने विचार किया कि यों ही बैठे रहना ठीक नहीं है। नेपालसे कई दिनोंके रास्तेपर भोटकी सीमाके पास मुक्तिनाथ और गोसाईं कुण्डके तीर्थ-स्थान हैं। मालूम हुआ, कहनेसे वहाँ जानेके लिये आज्ञा मिल सकती है, लेकिन राज्यके खर्च और प्रबन्धसे साधु लोग नियत समयपर जाते आते हैं मैंने इस परतन्त्रतामें सफलता कम देखी। इसलिये किसी भोटिया साथीको ढूंढना ही उत्तम समझा। पशुपतिनाथके मन्दिरसे थोड़ी दूरीपर बोधा स्थान है। इसे नेपालमें भोटका एक टुकड़ा समझना चाहिए, जैसे कि बनारसमें बङ्गाली, मराठे, तिलङ्गे आदि महल्ले हैं। मैंने सोचा वहीं कोई भोटिया साथी मिल सकेगा। ७ मार्चको पशुपति और गुह्येश्वरीका दर्शन करते, नदी पार हो, मैं बोधा गया।

बोधाको भोटिया लोग छोर्तन रिम्पोछे (चैत्य-रत्न) या ब-युल-छोर्तन् (नेपालचैत्य) कहते हैं। कहते हैं पहले-पहल इस स्तूपको महाराज अशोकने बनवाया था। यह बीचमें सुनहले शिखरवाला विशाल स्तूप है, जिसकी परिक्रमाके चारों-ओर घर बसे हुए हैं। इन घरोंमें अधिकाश भोटिया लोग रहते हैं। विशेषकर जाड़ेमें तो यह एक तरह भोट ही मालूम होता है। अपनी पहली यात्रामें भी मैं यहाँके प्रधान चीना लामासे मिला था। मैंने सोचा था, उनसे मेरी यात्रामें कुछ सहायता मिलेगी, लेकिन वहाँ पहुँचकर बड़े अफसोससे सुना, कि अब वह इस संसारमें नहीं रहे। जिस समय स्तूपकी भीतरसे प्रदक्षिणाकर रहा था, उस समय मैंने कितने ही भोटिया भिक्षुओंका हाथके बने पतले कागजोंको दोहरा चिपकाते देखा। मैंने अपनी टूटी-फूटी भोटियामें उनका देश पूछा। मालूम हुआ, उनमें तिब्बत, भूटान और

कुल्लू (काँगड़ा) तकके आदमी हैं। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई, जब मैंने कुल्लूके दो भिक्षुओंको हिन्दी बोलते देखा। उन्होंने बतलाया, हम लोग बड़े लामाके शिष्य हैं, जो प्रायः दो माससे यहाँ विराज रहे हैं और अभी एक मास और रहेंगे। ये बडे सिद्ध अवतारी पुरुष हैं। इनका जन्म डुक्पा (=भूटान) देशका है, इसलिए इन्हें डुक्पालामा भी कहते हैं। कोरोङ् (नेपालकी सीमाके पास भोटमें) तथा दूसरे स्थानोंमें इन्होंने बडे-बडे मन्दिर बनवाये हैं। रातदिन योगमें रहते हैं। हम लोग तीस-चालीस भिक्षु-भिक्षुणी उनके शिष्य इस वक्त गुरुजीके हाथ हैं। वे वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता (=दोर्जे-चोद्पा) पुस्तकको धर्मार्थ वितरण करनेके लिए छपवा रहे हैं। उसीके छापने और कागज तय्यार करनेका काम हम लोग कर रहे हैं।

पिछली बार जब मैं लदाख गया था तबके और कुछ पीछेके भी लदाखी बडे लामोंके थोड़ेसे पत्र मेरे पास थे। उनमें मेरी तारीफ़ काफ़ी थी, और मेरी यात्राका उद्देश्य तथा सहायता करनेको बात लिखी थी। मैंने उन चिट्ठियोंको दिखलाया। उन्होंने परिचय करानेमें बड़ी सहायता की। कुल्लूवासी भिक्षु मुझे डुक्पा लामाके पास ले गया। उन्होंने भी पत्रोंको पढा। उनमेंसे एकके लेखक उनके अत्यन्त परिचित तथा एक सम्प्रदायके बड़े लामा थे। मैंने उनसे कहा—बुद्ध-धर्म अपनी जन्म-भूमिसे नष्ट हो चुका है; वहाँ उसकी पुस्तकें भी नहीं हैं; उन्हीं पुस्तकोंके लिए मैं सिंहल गया; कितने ही बडे-बडे आचार्योंकी पुस्तकें वहाँ भी नहीं हैं, लेकिन वे तिब्बत में मौजूद हैं, मैं तिब्बतकी किसी अच्छी गुम्बा (=विहार)में रह कर तिब्बती पुस्तकोंको पढ़ना उनका संग्रह करना और उन्हें भारतमें लाकर कुछका संस्कृत या दूसरी भाषामें तर्जुमा करना चाहता हूँ; ऐसा करनेसे भारतवासी फिर बौद्ध धर्मसे परिचित होंगे, भारतमें फिर बौद्ध धर्मका प्रचार होगा, आप मुझे अपने साथ तिब्बत ले चलें।

डुक्पा लामाने इसे तुरन्त स्वीकारकर लिया, लेकिन उस जल्दीके

स्वीकारसे मुझे यह भी मालूम हो गया कि वे मेरे जानेको वैसा ही आसान समझते हैं, जैसा दूसरे भोटियोंके। मैं शिवरात्रिको सामान लेकर आजानेकी बात कह वहाँसे फिर थापाथली आया आजकी बातसे मैंने समझ लिया कि मैदान मार लिया।

आठ मार्चको मैं अपने एक पूर्वपरिचित पाटनके बौद्ध वैद्यको देखने गया। मालूम हुआ, वह भी इस संसारमें नहीं है। फिर मैंने पाटनके कुछ और संस्कृतज्ञ बौद्धोंसे मिलना चाहा। दो-चारसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। सभी मेरे विचारसे सन्तुष्ट थे। कोई ब्राह्मण बौद्ध धर्मकी ओर खिँचेगा, यह उनके लिए आश्चर्यकी बात थी। तिब्बत जानेके बारेमें उन्होंने भी डुक्पा लामा छोड़ दूसरा उपाय नहीं बतलाया। उस दिन भोजन मैंने पाटनके एक बौद्ध गृहस्थके यहाँ किया। पाटनको ललित-पट्टन और अशोक-पट्टन भी कहते हैं। नेपालकी पुरानी राजधानी यही है। निवासी अधिकाश बौद्ध और नेवार हैं। शहरके बीचमें पुराने राजमहल अब भी दर्शनीय हैं। जहाँ-तहाँ मन्दिरों और चैत्योंकी भरमार है। गलियोंमें बिछी ईंटें बतला रही हैं कि किसी समय यह शहर अच्छा रहा होगा। लेकिन आज-कल तो गलियाँ बहुत गन्दी रहती हैं। जहाँ-तहाँ पाखाना और सूअर दिखाई पड़ते हैं। शहरमे पानीकी कल लगी है। पाटनके पुराने भिक्षु विहार अब भी पुराने नामोंसे मशहूर हैं जिनमें इस समय भी लोग रहते हैं। उनमें कितने अब भी अपनेको भिक्षु कहते हैं—हाँ, गृहस्थ-भिक्षु। वस्तुतः यह वैसे ही भिक्षु हैं, जैसे घरबारी गोसाईं संन्यासी। विद्याका भी अभाव है। पिछली यात्रामें, जब कि मेरा विचार तिब्बत जानेका नहीं था, पाटनके एक साहूकारने मुझे तिब्बत लेजानेका प्रस्ताव किया था, किन्तु अब जब कि मैं स्वयं जानेके लिये उत्सुक था, किसीने कुछ नहीं कहा।

पाटनसे लौटकर मैं फिर थापाथली अपने स्थानपर आया। मेरा इरादा उसी दिन उस स्थानको छोड़ देनेका था लेकिन मैंने फिजूल

सिंहली-चीवरोंकी एक वला मोल ली थी। वह न होते तो मुक्त हो विचरता। किसीके उनके देख लेनेमें भी अच्छा न था। इन चीवरोंके लिए मैं बहुत दिनों तक पछताया। और मैं अपनी परिस्थितिके दूसरे पुरुषोंको यही कहूँगा कि हरगिज इस प्रकारकी चीजोंको साथ न रखें। मैं उन्हें एक नेवार सज्जनके पास रख छोड़ना चाहता था। उन्हें मैं एक जगह खड़ाकर चीजोंको लेने गया, लेकिन उस समय मेरे आसनके पास और लोग बैठे थे और मेरे असबाव उठानेसे उन्हें सन्देह हो जानेका डर था, इस कारण मैं कुछ न कर सका, और उस रात फिर वहीं रहना पड़ा।

नौ मार्च शनिवारको महाशिवरात्रि थी। बडे तड़के ही मैंने अपना कम्बल, गठरी बहुत यत्नसे इस प्रकार बाँधी, जिसने किसीको मालूम न हो कि मैं क्यों बिदाईसे पहले ही आसन ले जाता हूँ। मैं पहिले बागमतीके किनारे पुलके नीचेके ऊपरको ओर चला, फिर पशुपतिकी ओरसे आनेवाली धारको मुड़ गया। सूर्योदयके करीब मैं पशुपति पहुँचा। एक तो ऐसे ही माघ-फाल्गुनका महीना, दूसरे नेपालमें सर्दी भी अधिक पडती है। लेकिन उस जाडेमें भी श्रद्धालु हजारोंकी सख्यामें नहा रहे थे। अधिकाश स्त्री-पुरुष उत्तरी विहारके थे, उसके बाद पूर्वी सयुक्त प्रान्तके, वैसे तो कुछ-कुछ सभी प्रान्तोंसे आदमी शिव-रात्रिमें बाबा पशुपतिनाथके दर्शनके लिए आते हैं। मुझे आज न नहाने की फुर्सत थी, न बाबा पशुपतिनाथके दर्शन करने की। पुल और पहाड़ी टेकरी पारकर गुह्येश्वरी, और वहाँसे नदी पार हो बोधा पहुँचा

अभी सवेरा ही था, जब मैं बोधा पहुँच गया। कुल्लूका भिक्षु रिञ्चेन मुझे डुक्पालामाके पास ले गया। उन्होंने मेरे पास जो सिंहली भिक्षुओंके कपडे थे उन्हें देखा। कैसे पहना जाता है, यह उनको दिखाया। फिर रिञ्चेन मुझको एक बगलके मकानमें लेगया, जहाँ वह और उसका दूसरा साथी छवङ् रहता था। यह दोनों ही हिन्दी

समझते थे, इसलिए मुझे कठिनाई न होती थी। नाश्तेके लिए भात आया। मैंने कहा, जो यहाँ और लोग खाते हैं, वही मैं खाना चाहता हूँ। मुझे इसका अभ्यास भी तो करना है। मैं इस वक्त भी काली अल्फी पहने हुआ था और यह मेरे लिये खतरनाक थी। मैंने रिञ्चेनसे कहा कहींसे एक भोटिया छुपा (= लम्बा कोट) और एक भोटिया जूता लेना चाहिए। जाड़ेके महीनोंमें इन चीज़ोंका मिलना मुश्किल नहीं है। भोटिया लोग भी खर्चके लिए चीज़ें बेच दिया करते हैं। बोधामें दूकान करने वाले नेपाली ऐसी चीजें खरीदकर रख छोड़ा करते हैं। मैंने सात-आठ रुपयेमें एक छुपा लिया। जूता तुरन्त नहीं मिल सका। जूतेके न होने पर भी, छुपा पहिननेसे ही अब कोई मधेसिया[1] (= मध्य देशका आदमी) तो नहीं कह सकता था। रिञ्चेन और छवङ् दिनभर पुस्तक छापनेमें लगे रहते थे, तो भी बीचमें आकर पूछताछकर जाया करते थे।

छुपा पहनकर दूसरे दिन फिर लामाके पास गया। डुक्पालामाका असल नाम गेशे शेब्-दोर्जे (= अध्यापक प्रज्ञावज्र) है। विद्वान् भिक्षुको भोटिया लोग गे-शे (= अध्यापक) कहते हैं। इनकी अवस्था साठके करीब थी। खाम्[2] और तिब्बतमें बहुत दिनों तक रह इन्होंने भोटिया पुस्तकोंको पढा था, वहीं तिब्बतके एक बड़े तान्त्रिक लामा शाक्य श्रीसे तान्त्रिक क्रिया सीखी थी। पीछे डुक्पालामा अपने देश भूटानमें गये। राजाने रहनेके लिए बड़ा आग्रह किया, लेकिन इनका चित्त वहाँ न लगा। वहाँसे भागकर काठमाण्डवसे उत्तरका ओर सीमा-पार भोट देशके के-रोङ् स्थानमें ये बहुत दिनों पूजा और तन्त्र-मन्त्र करते रहे। तिब्बतमें और नेपालमें भी, बिना तन्त्र-मन्त्रके कोई सम्मा-

---

१. नेपाली अब भी बिहार-युक्त प्रान्तके लोगोंको मधेसिया कहते हैं।

२. तिब्बतका उत्तर पूरबो सीमा-प्रान्त।

नित नहीं हो सकता। गेशे शेरब्-दोर्जे पढे लिखे भी थे, चतुर थे, तन्त्र-मन्त्र रमल फेंकने भूत झाड़नेमें भी होशियार थे। आदमियोंको कैसे रखना चाहिए यह भी जानते थे, इस प्रकार धीरे-धीरे इनके चारों ओर भिक्षु चेले-चेलियोंकी एक जमात बन गई। इन्होंने धीरे-धीरे केरोङ्के अवलोकितेश्वरके पुराने मन्दिरकी अच्छी तरह मरम्मत करवा दी। वहाँ भिक्षु-भिक्षुणियोंके लिये एक मठ बनवा दिया। केरोङ् और आस-पासके इलाकेमें इनकी बड़ी ख्याति है। केरोङ्के मन्दिरमें नेपालके बौद्धोंने भी मददकी थी। इस प्रकार यह गेशे शेरब्-दोर्जेसे डुक्पा लामा हो गये।

डुक्पा लामाकी बड़ी-बड़ी शक्तियाँ मेरे साथी कुल्लूवाले बयान किया करते थे। मैं भी दूसरे दिन जब जाकर लामाके सामने बैठा, तो देखा वह बात करते-करते बीचमें आँख मूँदकर निद्रित हो जाते थे। यह मैंने कई बार और दिनमें बहुत बार देखा। उस समय इसे निद्रा न समझा। मैंने ख्याल किया, यह जीवन्मुक्त महात्मा बारम्बार इस हमारी बाहरी दुनियासे भीतरकी दुनियामें चले जाया करते हैं। दो तीन दिन तक तो मैं हदसे अधिक प्रभावित रहा। मैंने समझा मेरे भाग्य खुल गये। कहाँ मैं कागज़ बटोरने जा रहा था, और कहाँ रत्नाकर मिल गया। लेकिन मेरे ऐसे शुष्क तर्कोंकी यह अवस्था देर तक नहीं रह सकती थी, पीछे मैंने भी समझ लिया, वस्तुतः वह समाधि नहीं, नींद ही थी। यह लोग रातमें भी लेटकर बहुत कम ही सोते हैं, और इस प्रकार बैठे बैठे सोनेकी आदत पड़ जाती है। उसी वक्त यह भी समझमें आ गया कि यदि मेरे जैसे पर तीन-चार दिन तक इनका जादू चल सकता है तो दूसरे श्रद्धालुओं पर क्यों नहीं चलेगा। नेपालके लोग लामाके पास पहुँचा करते थे। बराबर उनके यहाँ भीड़ लगी रहती थी। लोग आकर दण्डवत् करते, मिश्री-मेवा तथा यथाशक्ति रुपये चढ़ाते थे। कभी कोई अपना दुःख-सुख पूछता, तो वे रमल फेंककर उसे भी बतला देते थे। बाधा हटानेके लिए कुछ

तन्त्र-मन्त्र देते; कभी कोई छोटी-मोटी पूजा भी बतला देते थे।

दो तीन दिन अलग मकानमें रहकर मैंने सोचा, मुझे भी भोटियोंके साथ ही रहना चाहिए, इससे भोटिया सीखनेमें आसानी होगी। फिर मैं उनके पास ही आ गया। पहलेसे अब कुछ भोटिया बोलनेका अधिक मौका तो मिला, लेकिन उतना नहीं, क्योंकि सभी भिक्षु-भिक्षुणियाँ सूर्योदयसे पहले ही उठकर किताब छापनेको जगह पर चली जाती थीं। किताब छापनेको कोई प्रेस न था। एक लकड़ीकी तख्तीके दोनो ओर किताबके दो पृष्ठ खुदे हुए थे। तख्तीको जमीनपर रख कपड़ेसे स्याही पोती, और कागज रखकर छोटेसे बेलमको ऊपरसे चला दिया। डुक्‌-पा लामा कई हजार प्रतियाँ वज्रच्छेदिकाकी छपवाकर मुफ्त वितरण करवा चुके हैं, और कहते थे, दस हजार प्रतियाँ और छपवा रहे हैं।

यद्यपि मैं अब भोटिया छुपा पहने था, किन्तु अब भी आत्म-विश्वास न था। इस आत्म-विश्वासका अभाव आधे जून तक रहा, यद्यपि अब मैं सोचता हूँ उसकी कोई आवश्यकता न थी। मैं समझता था, मैंने कपड़ा पहन लिया है, दो चार भोटिया वाक्य भी बोल सकता हूँ, लेकिन चेहरा मेरा कहाँसे छिपा रह सकता है। अपने साथी रिछेन्‌का चेहरा भी मैं देखता था, तो वह भी भोटियोंसे जरा भी मेल न खाता था, तो भी मुझे विश्वास न होता था। इसका कारण दर-असल सुनी सुनाई अतिशयोक्तियाँ और मेरी जैसी परिस्थितिवाले भारतीयको इन रास्तोंको कैसे पार करना चाहिए—इस ज्ञानका अभाव था। वस्तुतः जब तुमने भोटिया कपड़ा धारणकर लिया, और थोड़ी भाषा भी सीख लो तो तुम्हें निडर हो जाना चाहिए, दुनिया अपना काम छोड़कर तुम्हारी देख-रेखमें नहीं लगी है।

कोई देख न ले इसके लिए नौ-से तीस मार्च तक मैं गोया जेलमें था। दिनमें घरसे बाहर निकलनेकी हिम्मत ही नहीं थी, रातको भी पेशाब-पाखाना छोड़ एकाध ही बार मैं बोधा चैत्यकी परिक्रमाके लिए

गया होऊँगा। इस समय वह हैण्डर्सनका तिबेतन-मेनुअल (तिब्बती भाषाकी पुस्तक) दोहराया करता था बीच-बीचमें शब्दोंका प्रयोग भी करता था, लेकिन तिब्बतके प्रदेशमें भिन्न भिन्न उच्चारण है। ल्हासा राजधानी होनेसे उसका उच्चारण सर्वत्र समझा जाता है लेकिन हैण्डर्सन महाशयकी पुस्तकमें चाङ् (=टशीलुम्पोके पासके प्रदेश)का हो उच्चारण अधिक पाया जाता है। इसके लिए सर चार्ल्स बेलकी पुस्तक अधिक अच्छी है, जिसमें उच्चारण भी ल्हासाका है।

डुक्पा लामाने सत्सङ्गमें जब योग समाधिकी बात न करके मन्त्र-तन्त्रकी ही बात शुरूकी तभी मालूम हो गया, बस, इतना ही है। लेकिन मुझे तो उनके साथ-साथ भोटकी सीमाके भीतर पहुँच जानेका मतलब था। और इस कारण वे मेरे लिये बड़े योग्य व्यक्ति थे। सप्ताहके बाद ही मैं फिर घबराने लगा, जबकि बनारसके ब्राह्मण पडितको खोज-खोजकर कितने ही नेपाली मेरे पास पहुँचने लगे। मैं चाहता था शीघ्रातिशीघ्र यहाँसे चल दूँ किन्तु यह मेरे बसकी बात न थी। डुक्पा लामाको छपाई पूरी न हुई थो। अभो गर्मी भी न आयी थी कि पिछले वर्षकी तरह एकाध साथी मरणासन्न होते, और गर्मीके डरसे लामाको जल्दो करनी पड़ती।

जब लामाने करुणामयकी पूजा की विधि सांगोपांग बतलाना स्वीकार किया, तो रिञ्चेन्‌ने कहा, आप बडे भाग्यवान् हैं जो गुरुजीने इतनी जल्दी इस रहस्यको देना स्वीकार कर लिया। लेकिन उसको क्या मालूम था कि जो आदमी करुणामय (=अवलोकितेश्वर)को ही एक बिलकुल कल्पित नाम छोड़ और कुछ नहीं समझता, वह कहाँ तक इस रत्नका मोल समझेगा। कई दिन टालते-टालते सत्ताइस मार्चको मालूम हुआ, पुस्तककी छपाई समाप्त होगई। इस समय काठमाण्डव और पाटनके कुछ आदमी मेरे पास उपदेश सुनने आया करते थे। भय तो था ही, कुछ कहनेमें भी सङ्कोच होता था, क्योंकि

मैं तो पुरुषोत्तम बुद्धका पूजक था और वे अलौकिक बुद्धके।
जबसे बोधा आया, तबसे मैंने स्नान नही किया था; मैं चाहता ही था पक्का भोटिया बनना। आते ही वक्त कुछ दिनों तक पिस्सुओंने निद्रामें बाधा डाली, पीछे उतनी तकलीफ़ न होती थी।

पुस्तक छप जानेपर मुझे बतलाया गया, कि अब गुरु जी स्वयम्भू[1]के पास एकाध दिन बैठकर यल्मोंमें और फिर वहाँसे यावज्जीवन बैठनेके लिए लब्-चीकी गुहामें जायँगे। मुझे प्रसन्नता हुई कि यदि नेपाली सीमासे नहीं पार हो सकता तो भोटिया जातिके देश यल्मोंमें पहुँच जाना भी अच्छा ही है। चैतमें अब गर्मी भी मालूम होने लगी, एकाध भोटिया साथियोंका सिर भी दर्द करने लगा। अन्तमें इकतीस मार्च, रविवारको सायकाल सब बोधा छोड़ किन्दूको गये। आज इतने दिनोंपर मैं बाहर निकला था। बोधासे काठमाण्डवके पास पहुँचते-पहुँचते ही भोटिया जूतेने पैर काट खाया। इसपर भी मैं उसे नहीं छोड़ना चाहता था, समझता था जूता उतारने पर मेरा भोटियापन कहीं न हट जाय, यद्यपि मेरे अधिकांश साथी नंगे पैर जा रहे थे। जिस समय मैं गलिओंमेंसे गुज़र रहा था, मै समझता था सारे लोग मुझे ही मधेसिया समझकर घूर रहे हैं, यद्यपि काठमाण्डवके लोग चिर-अभ्यस्त होनेसे भोटियोंकी ओर जल्दी नजर भी नहीं डालते। नेपालके गृहस्थने और भी कितनी ही बार घर आनेके लिये आग्रह किया था, इसलिए आज वहाँ जाना हुआ। उन्होंने बड़े आग्रह पूर्वक एक अप्रैलसे दो अप्रैल तक अपने यहाँ मुझे रखा। यह विचारे बड़े भोले-भाले थे, उन्हें इसमें भी डर नहीं होता था कि चाहे कितना ही मेरा काम और भाव शुद्ध हो, लेकिन मालूम हो जानेपर नेपाल सर्कार मेरे लिये उनको भी तकलीफ पहुँचा सकती है। चौथे दिनकी रातको मै काठमाण्डव छोड़ स्वयम्भूके पास पहुँचा।

---

१. काठमाडूके पास एक बौद्ध स्तूप।

‡ ४. नेपाल राज्य

नेपाल उपत्यका, जिसमें काठमाण्डव, पाटन, भात गाँवके तीन शहर और बहुतसे छोटे-छोटे गाँव हैं बड़ी आबाद है। इस उपत्यका-का भारतसे बहुत पुराना सम्बन्ध है। कहते हैं पाटन, जिसका नाम अशोकपट्टन और ललितपट्टन भी है, महाराज अशोकका बसाया है, और अशोक-कालमें यह मौर्य साम्राज्यके अन्तर्गत था। यही नहीं बल्कि नेपालके अर्ध-ऐतिहासिक ग्रन्थ स्वयम्भूपुराणमें सम्राट अशोक-का नेपाल यात्रा करना भी लिखा है। उन्नीसवीं शताब्दीके आरम्भ तक वर्तमान वीरगञ्जसे नेपालका रास्ता ऐसा चालू न था। उस समय भिखना-टोरीसे पोखरा होकर नेपालका रास्ता था।

भारत और नेपालका सम्बन्ध कितना ही पुराना क्यों न हो, किन्तु नेपाल उपत्यकाकी नेवारी (नेपारी = नेपाली) भाषा संस्कृत और संस्कृतके अनगिनत अपभ्रंश शब्दोंको लेलेनेपर भी आर्य भाषा नहीं है। यह भाषाओंके उसी वंशकी है, जिसमें बर्म्मा और तिब्बत-की भाषाएं शामिल हैं। समय-समयपर हज़ारों आदमी मध्यदेश छोड़कर यहाँ आ बसे, तो भी मालूम होता है, यह कभी उतनी अधिक संख्यामें नहीं आये, जिसमें कि अपनी भाषाको पृथक् जीवित रख सकते। आज यद्यपि नेवार लोगोंके चेहरोंपर मङ्गोल मुख मुद्राकी छाप बहुत अधिक नहीं है, तो भी इनकी भाषा अपना सम्बन्ध दक्षिण-की अपेक्षा उत्तरसे अधिक बतलाती है। सातवीं शताब्दीके उत्तरार्द्ध-में, जब कि भारतमें सम्राट् हर्षवर्द्धनका शासन था नेपाल तिब्बतके शासक स्रोङ्-चन-गेम्बोको अपना सम्राट् मानता था। मुसलमानी कालमें भारतसे भागे राजवंशोंने भी कभी-कभी नेपालपर शासन किया है।

ऐसे तो नेपाल उपत्यका एक छोटासा देश है ही, किन्तु सत्रहवीं शताब्दीके अन्तमें राजा यक्षमलने अपने राज्यको अपने पुत्रोंमें बाँट-

कर नेपालको बहुत ही कमजोर बना दिया। उसी समयसे पाटन, काठमाण्डव और भातगांवमें तीन राजा राज करने लगे। उधर इसके पश्चिम और गोर्खा प्रदेशमें सीसोदियोंका वंश स्वदेश-परित्यागकर धीरे-धीरे अपनी शक्ति बढ़ा रहा था। गोर्खाका दशम राजा पृथ्वी-नारायण बहुत मनस्वी था। उसने नेपालकी कमज़ोरीसे लाभ उठाना चाहा और अल्प परिश्रमसे २६ दिसम्बर सन् १७६६ ईसवीको काठमाण्डव दखलकर लिया तबसे नेपालपर गोर्खा वंशका शासन आरम्भ हुआ। पहले सहस्राब्दियोंसे यद्यपि नेपालपर प्रायः बौद्ध शासकोंका ही शासन रहा है, और गोर्खा राजा ब्राह्मण धर्मके माननेवाले हैं, तो भी भारतकी त ह यहाँ भी धर्मके नामपर कभी किसीको कठिनाईमें नहीं पड़ना पड़ा।

महाराज पृथ्वीनारायणसे महाराज राजेन्द्र विक्रमशाहके समय तक नेपालका शासन-सूत्र गोर्खाके ठकुरी क्षत्रियों के वंशमें रहा; किन्तु १८४६ ई०के १७ सितम्बरकी क्रान्तिने नेपालमें एक नयी शासन-रीति स्थापितकी, जो अब तक चली जा रही है। इस क्रान्तिके कारण महाराज जङ्गबहादुरने राजशासन की बागडोर अपने हाथमें ली। उन्होंने यद्यपि अपने लिए महामन्त्रीका ही पद रखा तो भी इसमें शक नहीं कि १७ सितम्बर सन् १८४६से पृथ्वीनारायणका वंश सिर्फ नामका ही अधिराज (महाराजाधिराज) रह गया, और वास्तविक शक्ति महाराज जङ्गबहादुरके राणावंशमें चली गयी।

महाराज जंगबहादुरने अपने भाइयोंकी सहायतासे इस क्रान्तिमें सफलता पाई थी। इसलिए उत्तराधिकारके बारेमें अपने भाइयोंका ख्याल उन्हें करना ही था। उन्होंने नियम बना दिया कि महामन्त्री-को जिसे तीन सरकार (=श्री ३) और महाराज भी कहते हैं जगह खाली होनेपर बाकी बचे भाइयोंमें सबसे बड़ेको यह पद मिले। भाइयोंकी बारी खतम हो जानेपर, दूसरी पीढ़ी वालोंमें जो सबसे जेठा होगा वही अधिकारी होगा। महाराज जंगबहादुरके बाद उनके

भाई उदीपसिंह तीन सरकार (१८७७—८५ ई०) हुए। उस समय जगबहादुरके पुत्रोंने कुछ षड्यन्त्र रचे, जिनके कारण उन्हें नेपाल छोड़ भारत चला आना पड़ा। महाराजा उदीपसिंहके बाद उनके भतीजे और वर्तमान महाराजके सबसे बड़े भाई वीरशमसेर (१८८५-१९०१ ई०) चचाके गोलीका निशान बन जानेपर गद्दी पर बैठे। उनके बाद (१९०१ ई०में) महाराज देवशमसेर कुछ महीनों तक ही राज्यकर पाये और वह वहाँसे भारत निकाल दिये गये तबसे २५ नवम्बर १९२९ तक नेपालपर वर्तमान तीन सरकार महाराज भीम-शमसेरजंग राणाबहादुरके बड़े भाई महाराज चन्द्रशमसेरने शासन किया।

मैं कह चुका हूँ, पृथ्वीनारायणका वंश अब भी नेपालका अधिराज है, तो भी सारी राज शक्ति प्रधान मन्त्रीके हाथमें है, जिसके बनाने-बिगाड़नेमें अधिराजको अधिकार नहीं है। जगह खाली होने-पर स्वय राणा खान्दानका दूसरा ज्येष्ठ व्यक्ति आ जाता है। प्रधान-मन्त्रीके नीचे चीफ साहेब (कमाण्डर-इन्-चीफ़ फिर लाट साहेब (=फौजी लाट), और पीछे राज्यके चार जनरलोंका दर्जा आता है। महाराज जङ्गबहादुरके भ्रातृवशमें उत्पन्न होनेवाला हर-एक बच्चा नेपालका प्रधान मन्त्री होनेकी आशा कर सकता है; लेकिन ऐसे लोगों-की सख्या सैकड़ों हो जानेसे अब उस आशाका पूर्ण होना उतना आसान नहीं है; और यही भविष्यमें चलकर इस पद्धतिके विनाशका कारण होगा।

नेपालका शासन एक प्रकारका फौजी शासन समझना चाहिए। राणा खानदान (जङ्गबहादुरके खानदान)का बच्चा जन्मते ही जनरल होता है (यद्यपि इस प्रथाको महाराज चन्द्रशमसेरने बहुत अनुत्साहित किया है)। वह अपनी उम्र और सम्बन्धके कारण ही राज्यके भिन्न-भिन्न दायित्वपूर्ण पदोंपर पहुँच सकता है। वह हजारों सैनिकोंका "जर्नैल" बन सकता है, चाहे उसे युद्ध विद्याका क-ख भी न आता

हो। इस बड़ी आशाके लिए उसे अपनी रहन-सहनमें वित्तके अनुसार नहीं, बल्कि खान्दानके अनुसार जीवन बसर करना पड़ता है। राज्यको किसी न किसी रूपमें एक ऐसे खान्दानके सभी मेम्बरोंकी परवरिश करनी पड़ती है, जिनमें अधिकाश अपनी किसी योग्यता या परिश्रमसे राज्यको कोई फ़ायदा नहीं पहुंचाते। बहु-विवाहकी प्रथासे अभी ही इस खान्दानके पुरुषोंकी सङ्ख्या दो सौके करीब पहुंच गयी है, ऐसा ही रहनेपर कुछ दिनोंमें यह हज़ारोंपर पहुँच जायेगी। यद्यपि महाराज चन्द्रशमसेरने अपने लड़कोंकी शिक्षाका पूरा ध्यान रखा, और वैसे ही कुछ और भाइयोंने भी, किन्तु जब इन सैकड़ों खानदानी "जनैलो" पर ध्यान जाता है, तो अवस्था बहुत ही असन्तोषजनक मालूम होती है।

नेपालकी भीतरी भयङ्कर निर्बलता का ज्ञान न होनेसे बहुतसे हिन्दू इससे बड़ी-बड़ी आशायें रखते हैं। उनको जानना चाहिए कि नेपालमें प्रजाको उतना भी अधिकार नहीं है जितना भारतमें सबसे बिगड़े देशी राज्योंकी प्रजाको है। इसलिए राष्ट्रकी शक्तिका यह स्रोत उसके लिए बन्द है। जिस तीन सरकारके शासनसे कुछ आशा की जा सकती है, उस पदके अधिकारी अधिकाशतः वे हैं, जिनमें उसके लिए उपयुक्त शिक्षा नहीं, और जो अपने राजसी खर्चके कारण बड़ी शोचनीय आर्थिक अवस्थामें रहते हैं। मेरा ध्यान एक दो व्यक्तियोंपर नहीं है, बल्कि राणा खान्दानके उन सभी पुरुषोंपर है, जो जीते रहनेपर एक दिन उस पदपर पहुंच सकते हैं। अनियन्त्रित व्यक्तिगत शासनके कारण शासकका जीवन हमेशा खतरेमें रहता है। यही हाल नेपालमें भी है। कहावत है, कि नेपालकी तीन-सरकारीका मूल्य एक गोली है, जितनेमें महाराज जङ्गबहादुरने इसे खरीदा था। उससे बचने पर वैसे षड्यन्त्रोंका भी भय रहता है, जिनके कारण महाराज देवशमसेर कुछ ही मासमें देशसे बाहर निकाल दिए गये। ऐसी स्थितिमें तीन सरकारके पदपर पहुँचकर कोई भी क्षणभरके लिए निश्चिन्त नहीं

उठ सकता, उसको यह डर बना रहेगा कि कहीं मैं भी किसी कुचक्रमें न पड़ जाऊँ। इसलिए उसे पहले अपनी सन्तानोंके लिए जितना हो सके उतना धन जमा करना पडेगा, उसे भी सुरक्षाके लिये नेपालसे बाहर किसी विदेशी बैंकमें रखना होगा, जिसमें ऐसा न हो कि उसके परिवार की सारी सम्पति जब्त हो जाय।

जनवृद्धिके अनुसार ही तीन सरकारीके भुक्खड़ उम्मेदवारोंकी संख्या बढ रही है। ऐसी अवस्था में निश्चय ही अच्छे दिनोंकी आशा कम होती जा रही है। यदि राणा खान्दानके लड़कोंको देश-विदेशमें भेजकर भिन्न-भिन्न विषयोंकी उच्च शिक्षा दिलाई जाती, यदि नेपाल विदेशी राज्योंमें अपने राजदूत भेजता तो इसमें शक नहीं कि बेकार राणा खान्दान वालोंको भी काम मिलता, और देशको भी कई तरहसे नफा होता। किन्तु आधुनिक सभी पाश्चात्य विलासिताओंको अपना कर भी, यह लोग विद्या ग्रहणमें विदेश-गमनके अनुकूल नहीं हैं; और आगे भी ढोंगबाजीमें एक दूसरेसे बाजी लगानेवाले इन लोगोंको कब अक्ल आयेगी, कोई नहीं जानता, सम्भव है उसी वक्त होश आये, 'जब चिड़ियाँ चुग गईं खेत'।

नेपालकी वर्त्तमान अवस्थासे यदि किसीको अधिक सन्तोष हो सकता है, तो अंग्रेजोंको। वे जानते हैं कि यहाँकी प्रजा शक्ति-शून्य है, सिंहासनाधिपति अधिराज शक्ति-शून्य है और तीन सरकार अपने खान्दानके दाव पेचोंसे ही शक्ति-शून्य है। इसलिये वह चाहे सैनिक शक्ति सम्पन्न जनताका देश ही क्यों न हो, उसके नामके 'जर्नैल' और खुशामदके बलपर होने वाले टके सेर 'कप्टेन' और 'कर्नैल' मौका पड़नेपर क्या अपने देशकी भी रक्षा कर सकेंगे? अगर अंग्रेजों ने इस तत्वको न समझा होता तो जिस प्रकार कश्मीर धीरे-धीरे बृटिश साम्राज्यके अन्तर्गत आगया, वैसे ही नेपाल भी आगया होता। इन्हीं बातोंके कारण अँग्रेजोंने भी आसानीसे १६२६ ई०की सन्धिद्वारा नेपालको "स्वतन्त्र" राज्य स्वीकारकर लिया, और काठमाण्डव

रहने वाले रेजीडेण्टका नाम बदलकर "एनवाय" (=राजदूत) कर दिया।

‡ ५. यल्मो ग्राम की यात्रा

किन्दू स्वयम्भूके पास ही है। अभी यहाँ नया विहार बनाया गया है। डुकृपा लामाको यहाँ कुछ दिन रहना था। मै तीन अप्रैलकी रातको वहाँ पहुचा। लामाने मुझे भी पासमें आसनके लिये जगह दे दी। परन्तु मैं रातको ही समझ गया कि इस जगहपर, जहाँ दिनभर सैकड़ों आदमी आते रहते हैं, मेरा रहना ठीक न होगा। मैंने यह भी सुन लिया कि और भी एक सन्यासी तिब्बतकी यात्राके लिये ठहरे हुए हैं। वे यहाँ आये थे, और उनको मेरी सूचना भी दे दी गई है। पीछे यह भी मालूम हुआ कि मेरे उक्त स्थानको छोड़नेके दूसरे दिन वे वहाँ भी मुझे खोजनेके लिए गये थे। उनको तो राज्यसे ठहरनेकी इजाजत मिल गई थी, और वे राज-कर्मचारियोंकी सङ्गतिमे रहते भी थे। मैंने सोचा यह बड़ी गल्ती हुई, अगर कहीं ऊपर खबर हुई तो इतने दिन बेकार गये और मैं फिर रक्सौल उतार दिया जाऊँगा।

रातको ही मैंने निश्चयकर लिया कि मैं अलग किसी एकान्त जगहमें जाऊँगा। सयोगसे मुझे इस काममें मदद देनेके लिए एक सज्जन मिल गये। उन्होने एक खाली मकानमें मेरे रहनेका प्रबन्ध किया। दिनभर मैं एक कोठरीमें पड़ा रहता था, सिर्फ रातको पाखानेके लिए एकबार बाहर निकलता था। कोठरीका अभ्यास तो मुझे हजारी-बागमें दो सालके कारावासमें काफी हो चुका था, किन्तु यह एकान्त-वास उससे कठिन था। हर समय चिन्ता बनी रहती कि कहीं यह रहस्य खुल न जाय। मालूम हुआ, अभी डुक्पा लामाको जानेका कोई विचार ही नहीं हो रहा है। उन्होंने दो-चार ही दिन रहनेका ख्याल किया था, किन्तु मालूम हुआ, पूजा यहाँ काफी चढ रहा है। यहाँ भी धीरे-धीरे कुछ लोग आने लगे। फिर तो मैं दूना चिन्तित हो

उठा। डुक्पा लामाको यल्मो जाकर कुछ दिन रहना था इसलिए मैंने सोचा कि मुझे वहाँ ही जाकर ठहरना चाहिए।

मेरे अकारण मित्र कोशिश करनेपर भी किसी यल्मोवासीको न पा सके। अन्तमें निश्चय हुआ कि वही मुझे यल्मो पहुँचा आयें। ८ अप्रैलको अँधेरा रहते ही हम चल पड़े। स्वयम्भूके दर्शनको न जा सके। स्वयम्भूका दर्शन पहली नेपाल-यात्रामें कर चुका था। यह नेपालका सर्वश्रेष्ठ बौद्ध तीर्थ है। चन्द्रागढ़ीसे भी इसके दोनों बुद्धके मन्दिर काठमाण्डवसे बाहर एक छोटी टेकरी पर, दिखाई पड़ते हैं। वर्तमान मन्दिर और दूसरे मकानोंमें कोई भी उतना पुराना नहीं है, जैसा कि स्वयम्भू-पुराणमें बतलाया गया है। तो भी स्थान रमणीय है। कुछ वर्षों पूर्व इसकी भी मरम्मत हो चुकी है। हम स्वयम्भूकी परिक्रमाकर नगरसे बाहर ही बाहर यल्मोकी ओर चले। कुछ देर तक रोपलाइनके खम्भोंके सहारे चले, खम्भोंको देखकर फिर हजारों बे रोजगार मजदूर परिवार याद आये। हमारे पास एक छोटी गठरी थी। बेचारे मित्र उसे ले चले, किन्तु उनको भी अभ्यास न था। अंग्रेजी रेजीडेन्सीके नीचेसे हम लोग गुजरे। यह जगह शहरसे बाहर एक टीले पर है। बहुत दिनोंसे रहनेके कारण बाग बगीचे अच्छे लग गये हैं। हमको थोड़ा ही आगे चलनेपर एक आदमी मिला, हमने उसे सुन्दरी जल तक मजदूरी पर चलनेको कहा। वह पूछनेके बहाने घर गया। थोड़ी देर इन्तजार करनेपर मेरे साथी उसका पता लगाने गये। मालूम हुआ वह नहीं जायगा। नाहकमें ठण्डे समयका आधा घण्टा बरबाद किया।

हाँ, मैंने इस समयकी अपनी पोशाककी बात नहीं कही। यल्मो तकके लिए मैंने नेपाली पोशाक स्वीकार की। नेपाली बगलबन्दी, ऊपर से काला कोट, नीचे नेपाली पायजामा, सिर पर नेपाली टोपी, पैरमें नेपाली फलाहारी जूता (कपड़े और रबड़का), आँखोंपर काला चश्मा। ऊपरसे नेपाली बन गया था, लेकिन दिलमें चैन कहाँ! वस्तुतः नेपाल

में भोटिया पोशाक ही अधिक उपयुक्त है। मालूम हुआ, इस रास्तेपर भी सरकारी पुलिस चौकी है। हमारे भाग्य अच्छे थे, जो उस दिन घुड़दौड़ थी। सिपाही लोग भी घुड़दौड़ काठमाण्डव चले गये थे। दोपहर मेरे साथीने एक जगह भात बनाया; किन्तु भूख मुझे उतनी न थी। मध्याह्नकी धूपसे बचनेके लिए थोड़ा विश्राम किया, और फिर चल पड़े।

नये जूतेने पैर काट खाये थे; महीनेभरकी टाँगोंकी बेकारीने चलने की शक्तिको बेकारकर दिया था; तो भी उत्साहके बलपर मैं चला जा रहा था। काठमाण्डवसे सुन्दरीजल तक मोटर जाने लायक सड़क भी बनी है, किन्तु आजकल एक जगह नदीका पुल टूटा हुआ है। यहाँ मैंने पत्थरके कोयलोंसे ईटोंको पकाते देखा। वही कोयले, जिन्हें छः वर्ष पूर्व जब मैंने एक राजवंशिकके सामने जलाकर दिखाया तो उसे आश्चर्य हुआ था। उस समय लोग इस नर्म कोयलेको कुदरती खाद समझते थे, और उसका व्यवहार खेतमें डालना भर था। नेपालकी भूमि रत्नगर्भा है, नाना प्रकारकी धातुएँ हैं, और उत्तम फलोंके लिए यहाँ उपयुक्त भूमि है, परन्तु इधर किसीका ध्यान हो तब न।

चार-पाँच बजे हम सुन्दरीजल पहुँचे। यहाँसे भी नलों द्वारा पानी काठमाण्डव गया है। इस नलके रास्तेको हमने जनरल मोहनशमसेरके महलके पाससे ही पकड़ा था महाराज चन्द्रशमसेरने अपने सभी लड़कोंके लिए अलग अलग महल बनवा दिये हैं। मकान बनवानेका उन्हें बहुत शौक था। अपना महल भी उन्होंने बहुत सुन्दर बनवाया है। कहते हैं, इस पर करोड़ों रुपया खर्च हुआ है। इस महलको तो अपने जीवनमें ही वह सभी तीन-सरकारोंके लिए नियत कर गये हैं। उनके लड़कोंके भी छः अलग-अलग महल हैं। इनमें जितनी भूमि और रुपयेका खर्च हुआ है, यदि ऐसा ही भविष्यके भी सरकार करें तो बीसवीं शताब्दीके अन्त तक काठमाण्डवके चारों ओरका भूभाग तो महलोंसे भर जायगा, और सारे उपजाऊ सुन्दर खेत उनके पार्कों-

के रूपमें परिणत हो जायेंगे। देशके करोड़ों रुपये कला शून्य इन विलायती ढङ्गकी ईंटोंके ढेरमें चले जायँगे सो अलग।

सुन्दरीजलकी चढाई शुरू हो गई। अभी तक तो हम मैदानमें जा रहे थे, अब मालूम हुआ, पहाड़ पार करना आसान नहीं होगा। सयोगसे ऐन मौकेपर एक हट्टा-कट्टा तमङ्ग मजदूर मिल गया। उसे चार दिनके लिए नेपाली आठ मोहर (३ रुपयेसे कुछ ऊपर) पर ठीक किया। साथ ही यह भी ठहरा कि वह मुझे ढोकर ले चलेगा। आदमी बहुत मजबूत और साधारण लोखे के कदसे लम्बा था। हम सुन्दरीजलके सहारे ऊपर बढे। थोड़ी ही देरमें हरियालीसे भरे सुहावने जङ्गल में पहुच गये। हमने नीचेसे जानेवाले रास्तेको छोड़ दिया था, क्योंकि उसमें कुछ चौकियाँ पड़ती हैं। यह ऊपरका रास्ता पहाड़ोंके डाँड़ों-डाड़ों गया है, यह कठिन तो है, किन्तु निरापद है। लगातार चढाई ही चढते शामको हम ऊपर एक गाँवमें पहुंचे। यहाँ ऊँचाईके कारण ठढक थी। सभी रास्तोंपर नेपालके पहाड़ोंपर छोटी छोटी दूकानें हो गयी हैं, जहाँ खाना बनानेका सामान मिल जाया करता है।

मुझे तो दिन भरकी थकावटमें नींद सबसे मीठी मालूम हो रही थी। मेरे साथीको पर्वाह न थी। उन्होंने भोजन तैयार किया, फिर तीनों आदमियोंने भोजन किया।

सवेरे बड़े तड़के हम लोग रवाना हुए। अब भी चढ़ाई काफी चढनी थी। इन ऊपरी भागोंमें भी कहीं कहीं आबादी थी। जगह-जगह नये जङ्गल साफ हो रहे हैं, और लोग अपनी झोपड़ियाँ डाल रहे हैं। नेपालमें जनवृद्धि अधिक हो रही है, इसलिए दार्जिलिंग और आसाममें लाखों नेपालियोंके बस जानेपर भी, वर्तमान खेत उनकी जीविकाके लिए काफी नहीं हैं, और नित्य नये खेतोंकी आवश्यकता पड़ रही है, जिसके लिए जङ्गल बेदर्दीसे काटे जा रहे हैं। जगलका वर्षासे सम्बन्ध है ही; यह तो प्रत्यक्ष है कि जङ्गल कट जानेपर पानीके सोते कई

जगह सूख गये या क्षीण हो गये। जङ्गलोंकी इस कटाईने कई जगहों पर पहाड़ोंको नङ्गाकर दिया है।

अस्तु, हम डाँड़ोंसे होते दोपहरको डाँड़ोंके बीचकी रीढपरके एक गाँवमें पहुँचे। सुन्दरीजलके ऊपरसे तमङ्गोंका देश शुरू होता है। अंग्रेज़ी गोर्खा फौजोंमें वीर तमङ्गोंकी बड़ी खपत है। चेहरेमें भोटिया लोगोंसे अधिक मिलते हैं, भाषा और भी समीप है। धर्म यद्यपि बौद्ध है, तो भी वर्तमान अवस्था देखनेसे मालूम होता है, कि वह बहुत दिनों तक शायद ही टिके। मेरे साथी तमंगसे मालूम हुआ कि मरने पर तो उनके यहा लामा आता है, और विजया दशमीके दिन वे पूरे शाक्त होते हैं। इस गाँवमें भी एक साधुकी टीनसे छाई हुई अच्छी कुटी है। कहते हैं, किसी समय बौद्ध तमगोंको ब्राह्मण धर्ममें दीक्षित करनेके लिए ही यह कुटी बनवायी गयी थी, और यहाँ एक प्रसिद्ध साधु भी रहता था। दूसरे डाड़ेको पारकर अब हम दूसरी ओरसे चल रहे थे। रास्तेमें अब हमें मानिया[1] (= पत्थरोंपर लिखकर बनाये स्तूप या लम्बे ढेर) मिलीं, मालूम होता था चिरकालसे वे उपेक्षित हैं।

रात तो एक झोपड़ेमें कटी; सबेरे उतराई शुरू हुई। दो दिनकी यात्रामें पैरोंमे थोड़ी मजबूती भी आ गयी, और रास्ता भी उतराईका था, इसलिए अब मैं चलनेमें किसीसे पीछे न था। आठ बजेके करीब हम नीचे नदीके तटपर पहुँच गये। नदी पारकर नीचेकी ओर जानेपर थोड़ी देरमें हम नदीके सङ्गमपर पहुँच गये। यहाँ कुछ दूकाने हैं। खानेके लिए कुछ चीज़े ली गयीं और हम चल दिये दोपहरको छोटे गाँवमें पहुँचे। नीचे पूजाके लिए पुराने पीपल और बर्गदके पेड़ हैं। किन्तु सर्दीकी प्रतिकूलतासे विचारे उतने प्रसन्न नहीं। यहाँ

---

१. वज्रयान अर्थात् तान्त्रिक बौद्ध धर्मका तिब्बतोंमें प्रसिद्ध मन्त्र है—ओं मणि पद्मे हुं; उसके कारण जिस चीजपर वह लिखा हो वह भी मानी हो गई।

पहाड़ोंके ऊपरी भागमें मालूम हुआ, यल्मो लोग बसते हैं। निचला भाग अपेक्षाकृत गर्म और जङ्गलहीन होनेसे, उसे ये पसन्द नहीं करते। उन्हें अपनी चँवरी गायों और भेड़ोंके लिये जङ्गलकी अनिवार्य आवश्यकता है।

जिस घरमें हमें भोजन बनाना था, वह खेत्रीका था। नेपालमें अब भी मनु के अनुसार अनुलोम असवर्ण विवाह होता है। क्षत्रियका अपनेसे नीची जातिकी कन्यामें उत्पन्न लड़का खेत्री कहा जाता है, कुछ पीढ़ियों बाद वह भी पक्का क्षत्रिय हो जाता है। इसी प्रकार ब्राह्मण का अब्राह्मण स्त्री में उत्पन्न लड़का जोशी होता है और कुछ पीढ़ियों बाद पूरा ब्राह्मण हो जाता है।

उसी दिन शामको हम असल यल्मो लोगोंके गाँवमें पहुँचे। ये लोग भोटिया समझे जाते हैं। भोटिया इनमें खूब समझी जाती है। इनका रङ्ग बहुत साफ गुलाबी होता है, और सुन्दरता भी है, इसीलिये इनकी लड़कियाँ राज घरानोंमें लौंडीके कामके लिये बहुत पसन्द की जाती रही हैं। आज पिस्सुओंने रातको सोना हराम कर दिया। मालूम हुआ, कल हम पहुँच जायँगे।

दूसरे दिन बड़े तड़के ही उठे। रास्ता चढ़ाईका था। तीन घण्टेमें हम घने जङ्गलोंमें पहुँच गए। यहाँ गेहूँमें अभी दाना नहीं आया था। कहीं कहीं आलू भी बोया हुआ था। दोपहरको हमें भी तरकारीके लिए आलू मिला। भोजनोपरान्त हम लोग चले। पहाड़की एक फैली बाँहको पार करते ही मानों नाटकका एक पर्दा गिर गया। चारों ओर गगनचुम्बी मनोहर हरे हरे देवदारूके वृक्ष खड़े थे। नीचेकी ओर जहाँ-तहाँ हरे-भरे खेत भी थे। किन्तु कहीं भी प्रकृति देवी अनीलवसना न थी। जगह भी बहुत ठण्ढी थी। ११ अप्रैलको तीन बजेके करीब हम यल्मोके उस गाँवमें पहुँच गये। ग्राम-प्रवेशके पूर्व ही पानीके बलसे मानी (=कागज़पर लिखे मन्त्रोंसे भरा लड़कीका घूमता ढोल) चलती दिखाई पड़ी।

‡ ६ डुक्पा लामाकी खोज

अब जिस गाँवमे मैं था वह यल्मो लोगोंका था। ये लोग यल्मो नदीके किनारे पहाड़के ऊपरी भागोंमें रहते हैं। इनमें पुरुष तो दूसरे नेपालियों जैसे ही पोशाक पहनते हैं, किन्तु स्त्रियोंकी पोशाक भोटिनियो-कीसी है। वस्तुत: इन्हे भाषा, भूषा, भोजन आदिसे भोटिया ही कहना चाहिए यद्यपि दूसरी जातियोंके सत्सङ्गसे इनमें भोटियोंसे अधिक सफाई पाई जाती है ये लोग हाथ मुँह धोना भी पसन्द करते हैं।

यह गाँव बड़ा है। इसमें सौ-से ऊपर घर हैं। सभी मकानोंकी छतें लकड़ी की हैं। पास ही देवदारुका जङ्गल होनेसे लकड़ी इफरातसे है। इसलिए मकानमें लकड़ीकी भरमार है। मकान अधिकतर दो मञ्जिले तिमञ्जिले हैं। सबसे निचली मञ्जिलमें लकड़ी या दूसरा सामान रखते हैं। पशुओंके बाँधनेकी भी यही जगह हैं। जाड़ेके दिनों-में यहा बर्फ पड़ा करती है आजकल भी आधे अप्रैल के बाद काफी ठण्ढक है। पहाड़के ऊपरी भागोंमें तो मईके पूर्वार्द्ध (बैशाख तक मैंने कभी-कभी बर्फ पड़ते देखा। इन लागोंमें बौद्ध धर्म अधिक जागृत है। हर एक घरके पास नाना मन्त्रोंकी छापा वाले सफेद कपड़ोंकी ध्वजायें, पतले देवदारुके स्तम्भोंमें फहरा रही हैं। मकान, आदमी, खेत, पशु इत्यादिके देखनेसे मालूम होता है कि यल्मो लोग नेपाल की दूसरी जातियोंसे अधिक सुखी हैं। इनके गाँवोंकी मानियाँ सुन्दर अवस्थामें हैं। हर एक गाँवमें एक दो गुम्बाये (= विहार, मठ) हैं। लामा भी एकाध रहते हैं। खेतोंसे भी बढकर इनकी सम्पत्ति भेड बकरी और चँवरी हैं। जाड़ेके महीनेमें ही ये इन जानवरोंको घर ले आते हैं, अन्यथा जहाँ सुन्दर चरागाह देखते हैं, वहीं एक दो घरके आदमी अपना कुत्ता और डेरा लेकर पशुओंको चराते फिरते हैं। मक्खन मिलाकर बनाई हुई चाय और सत्तू इनके भी प्रधान खाद्य हैं।

मैं एक भोटिया (= यल्मो) घरमें ठहरा। आतेही मैंने भोटिया

चोगा और जूता पहन लिया। दूसरे दिन मेरे मित्र भी लौट गये। मालूम हुआ, यहाँसे चार दिनमें कुथी और चार ही दिनमें केरोङ् पहुँचा जा सकता है। दोनों ही स्थान भोट (=तिब्बत) देशमे हैं। वहाँ घूमने फिरनेकी रुकावट न थी। दिन काटनेके लिये तिब्बती पुस्तककी एकाध आवृत्ति रोज करता था। कोई कोई लोग हाथ दिखाने और भविष्य पूछने आते थे। अधिकोंको मैं निराश ही किया करता था, यद्यपि भाग्य देखना, दवा देना, और मन्त्र-तन्त्रका प्रयोग करना यही तीन इन प्रदेशोंमें अधिक सम्मानकी चीजें हैं।

मेरे वहाँ पहुंचनेके तीन दिन बाद डुक्पा लामाके शिष्य भिक्षु-भिक्षुणी भी आ गये। अभी भी उन्हें कई हजार पुस्तकें छापनी थीं। उन्होंने यह भी बतलाया कि बड़े लामा भी जल्दी आयेंगे। वे लोग गांवसे थोड़ा हटकर एक बड़ी गुम्बाके भीतर ठहरे। मुझे भी गाँव छोड़-कर वहां ही जाना पसन्द हुआ, क्योंकि वहां मुझे भाषा सीखनेकी सहूलियत थी। यहां आनेपर मुझे बुखार आने लगा था, किन्तु वह दो तीन दिनमें ही छूट गया। अब मैं उक्त गुम्बामें आगया सवेरे उठते ही वे लोग तो पुस्तक छापने या दो-दो कागजोंको चिपकाकर एक बनानेमें लग जाते थे और मैं शौचसे फुर्सत पा अपने 'तिब्बेतन् मेनुअलके पाठमें आठ बजेके करीब थुक्पा (=लेई) तैयार हो जाता था। सभी तीन-तीन चार-चार प्याले पीते थे। मैं भी अपने लकड़ीके प्यालेसे थुक्पा पीता था। यह थुक्पा मकई मँडुए या जौके सत्तूको उबलते पानीमें डालकर पकानेसे बनाया जाता था। कभी-कभी उसमें जङ्गलसे कुछ साग लाकर डाल देते थे। ऊपरसे थोड़ा नमक पड़ जाता था। दोपहर-को इसी तरह गाढ़ा सत्तू पकाया जाता था, साथ ही जङ्गली पत्तोंकी सब्जी होती थी, शामको सात बजे फिर वही थुक्पा। अधिकतर मँडुए और मकईका ही सत्तू होता था। मँडुएके सत्तूको ये लोग ग्यगर् चम्पा (=भारतीय सत्तू) कहते थे, मैं इसपर बड़ी टिप्पणी किया करता था।

इस वक्त मेरा घनिष्ठ मित्र (=रोकूपो) एक चार पाँच वर्षका लड़का तिन्-ज़िन् (=समाधि) था। यह मुझे भाषा सिखलाया करता था। कभी-कभी मेरी भाषा सम्बन्धी गलती भी दूर किया करता था। थोड़े ही दिनोंमें मै ग्यगर् चम्पासे ऊब गया। फिर मैंने मक्खन, चावल और जौ का सत्तू मँगा लिया। मेरे खानेमें मेरा मास्टर तिन्-जिन् भी शामिल रहता था। उस समय जङ्गली स्ट्राबरी[1] बहुत पक रही थी। मैं रोज़ चुन चुनकर ले आता था। तिन्-ज़िन् बड़ा खुश होता था। वह डुकूपा लामाकी चचेरी बहिनका लड़का था। इस एक मासके साथ रहनेमें सचमुच ही वह मेरा बड़ाप्रिय मित्र बन गया और चलते वक्त मुझे उसके वियोगका दुःख भी हुआ।

बड़े कुत्तोंकी नसल यहा शुरू होती है। इसलिए यहाँ अब गांवोंमें, या चरवाहोंके डेरोंमें, जाना आसान नहीं था। मैं गावमें दो-तीन ही बार गया। किन्तु रोज़ एक दो बार पहाड़के नीचे ऊपर काफी दूर तक टहलने जाया करता था। खेतोंमें जौ और गेहूँ लहरा रहे थे, किन्तु उनके तैयार होनेमें अभी एक मासकी देर थी। ठण्ढकको वजहसे यहा मकई और धान नहीं होता; आलू काफ़ी होता है। लेकिन वह सालमे बोया गया था। कभी कभी पुराना आलू और पिछले सालकी मूली तर्कारीके लिये मुझे भी मिल जाती थी। वेचारे डुकूपा लामाके चेले भी कुछ दिनोंमें मकई मडुएके सत्तूसे तङ्ग आगये। एक दिन चार पाच मीलपरके एक गावमे एक बैल मरनेकी खबर पाकर गये। लेकिन वहाँ उसका मूल्य छः सात रूपया मागा गया, और उसमें चर्बी भी नहीं थी। लाग यहा यह आशा कर रहे थे, कि आज पेटभर मास खायेंगे, किन्तु उनके खाली हाथ लौटनेपर बड़ी निराशा हुई। पीछे शामके वक्त उन्होने किसी-किसी दिन मकई भूनकर खाना शुरू किया, और कड़वा तेल डालकर चाय पीना शुरू किया। मक्खन उनके लिये

---

१. स्ट्राबरीके लिए कुमाऊँ गढ़वालका हिन्दी शब्द हिसालू है

आसान न था, इसलिये उन्होंने तेलका आविष्कार किया था। कहते थे, अच्छा लगता है। मैं तो दोपहर बाद कुछ खाता ही न था। खानेका सामान मँगा लेनेसे आराम हो गया था।

हमारी गुम्बासे प्रायः एक मील ऊपरकी ओर देवदारूके घने जङ्गलमें एक कुटी थी, वहाँ एक लामा कितने ही वर्षोंसे आकर बैठा था। ऐसे लामा प्रायः बस्तीसे बाहर ही रहा करते हैं। उनके एकान्त-वासके वर्ष और दिन भी नियत रहते हैं। सफेद कुटी देखनेमें बड़ी सुन्दर मालूम होती थी। अपना दिल कई बार ललचाया, कि क्यों न कुछ दिन यहीं रमा जाय। लेकिन फिर ख्याल आया—'आई थी हरिभजन को ओटन लगी कपास' वाली बात नहीं होनी चाहिए। इसी गावके ठीक ऊपरकी तरफ़ कुछ हटकर, एक खम्पा (खम्=चीन की सीमा परका भोटिया प्रदेश) लामा कई वर्षोंसे वास करते थे। एक दिन वे इस गुम्बामें आये। मुझसे भी बात हुई। फिर उन्होने मुझसे अपने यहाँ आनेके लिए आग्रह किया। यहा मैं इस गुम्बाका कुछ वर्णन कर दूँ। मैं नीचेके तलमें प्रधान देवालयमें था। मेरे सामने खून पीती, अँतड़ियाँ चबाती, लाल लाल अङ्गारोंकी सी आखों वाली मिट्टीकी एक मूर्ति थी। इस मन्दिरमे और भी कितने ही देवताओं और लामाओंकी मूर्त्तियां थीं। मुख्य मूर्त्ति लोबन् रिम्पो-छे या गुरु पद्मसम्भवकी थी। यह निःसङ्कच कहा जा सकता है कि इनकी बनावट सुन्दर थो कलाकी कोमलता भी थी। छतसे कितने ही चित्र लटक रहे थे। गुम्बाके ऊपरी तलमें भी कुछ मूर्तिया और शतसाह-स्रिका प्रज्ञापारमिताकी भोटिया भाषामें बड़ी सुन्दर हस्तलिखित पुस्तकें थीं। कभी यहाँ भिक्षु रहा करते थे, किन्तु पीछे उनके चेलोंने ब्याह कर लिया। अब उनकी सन्तान इस गुम्बाकी मालिक है। गुम्बाकी बगलमें थोड़ा खेत भी है। इसीपर ये लोग गुजारा करते हैं। पूजासे कुछ अधिक आमदनी होती होगी, इसकी आशा नहीं मालूम होती।

१२ मईको मैं खम्पा लामाके पास गया। उन्होंने मेरा बहुत स्वागत

किया। उनके सादगीके साथ निकले हुए शब्द 'तू भी बुद्ध का चेला मैं भी बुद्ध का चेला' अब भी स्मरण आते हैं। रातको वहीं रहना हुआ यह लामा न्यूमा (=उपवास) व्रत करते हैं। एक दिन अनियम भोजनके साथ पूजा, दूसरे दिन दोपहरके बाद भोजन न करके पूजा, और तीसरे दिन निराहार रहकर पूजा—वही न्यूमा है। ऊपरसे रोज हजारों दंडवत् भी करने पड़ते हैं। लोगोंका अवलोकितेश्वरके इस व्रतमें बहुत विश्वास है। खम्पा लामाके पास कुछ और भी श्रद्धालु स्त्री-पुरुष इसी व्रतको करते हैं। यह लामा व्रतके साथ कुछ झाड़-फूँक भी जानते हैं, फिर ऐसे आदमीको क्या तकलीफ़ हो सकती है? रातको मुझे खाना नहीं था। पर मक्खन डालकर चाय उन्होंने अवश्य पिलाई। बड़ी देर तक भोटके और भोटके धर्मके बारेमें बातचीत होती रही। उन्होंने खम् देश जानेके लिए भी मुझे बहुत कहा।

दूसरे दिन उनका निराहार था, किन्तु मेरे लिए उन्होंने अपने हाथसे चावल और आलूकी तरकारी बनाई। भोजनकर मध्यान्हके उपरान्त मैं अपनी गुम्बामें आ गया। उसी दिन शामको काठमाण्डवसे डुक्पा लामाके बाकी चेले आ गये। उनसे मालूम हुआ कि डुक्पा लामा काठमाण्डवसे सीधे कुतीको रवाना हो गये; वे इधर अब नहीं आयेंगे। डुक्पा लामा अब जीवन भरके लिए भोटिया सिद्ध और कवि जेसुन् मिला-रेपाके सिद्ध स्थान लप्चीमें बैठने जा रहे थे। इसकी खबर पाते ही शिष्यमण्डलीमें कितनोंने ही फूट-फूटकर रोना शुरू किया। मेरे लिये तो अब विषम समस्या थी। पूछने पर मालूम हुआ कि मेरे बारे में उन्होंने कुछ नहीं कहा। दो महीने तक मैं उनकी प्रत्याशा में बैठा रहा, और अब इस तरहका बर्ताव! दर-असल यह चित्तको धक्का लगानेवाली बात थी; लेकिन इतने दिनोंमें मैं भोटिया स्वभावसे कुछ परिचित हो गया था। मैंने उसी समय निश्चितकर लिया, कल यहाँसे चल दूँगा, और कुतीके रास्तेमें ही कहीं उन्हें पकड़ूँगा। मुझे एक साथीकी तलाश थी। मालूम हुआ आजकल बहुत

लोग कुतीकी ओर नमक लाने जाते हैं। यही साल भरके नमक लानेका समय है। मालूम हुआ दो चार दिन ठहरने पर ही आदमी मिल सकेगा। किन्तु मुझे तो डुक्पा लामाके साथ नेपालकी सीमाको पार करना था।

रात तक किसी आदमीका प्रबन्ध न हो सका। उसी गुम्बामें रहने वाला एक नवयुवक नमकके लिए कुती जानेवाला था, लेकिन उसे अपना पका खेत काटना था। इस प्रकार आदमीके अनिश्चय और जानेके निश्चयके साथ ही मैं सो गया।

तीसरी मंजिल

सरहद्के पार

१. तिब्बतमें प्रवेश

आज (१४ मई) सवेरे थोड़ा पानी बरस रहा था। बड़े सवेरे ही शौच आदिसे निवृत्त हो मैंने तमङ्ग तरुणसे साथ चलने को कहा। उसे पके खेतको काटना था, इसलिए अवश्य कठिनाई थी। अन्तमें मैंने उसे तातपानी तक ही चलनेके लिए कहा। उसके मनमे भी न जाने क्या ख्याल आया, और वह चलनेको लिये तैयार हो गया। तब तक आठ बज गये थे। बूँदे भी कुछ हल्की हो गई थीं। मैंने सबसे विदाई ली। गाँवसे थोड़ा मक्खन और सत्तू लेना था। मक्खन तो न मिल सका, सत्तू ही लेकर हम चल पड़े। मालूम हुआ, हमारे रास्तेके बगल में ही चरवाहोंका डेरा है, वहाँ मक्खन मिल जायगा। हमारा रास्ता पहाड़के ऊपरी हिस्सेपरसे जारहा था यहाँ चारों ओर जङ्गल था। रास्ता कहीं-कहीं तो काफी चौड़ा था। इस रास्तोंकी मरम्मत आदि गाँवके लोग ही किया करते हैं।

छः घण्टे बाद हम चरवाहोंके डेरेमें पहुँच गये। मोटी जजीरमें

ताजा ही लगा हुआ था। ऊपर कह चुका हूँ, यल्मो लोगोंमें लामा-धर्म बहुत जागृत है, और वे खाने-पीनेसे भी खुश हैं।

एक बजेके करीब हम डाँडेके किनारेपर आये। यहाँसे हमें दूसरी ओर जाना था। ऐन 'ला' (घाटा, जोत)[1] पर बड़ी मानी थी। दूसरी ओर पहुँचते ही सीधी उतराई शुरू हुई। थोड़ा नीचे उतरनेपर जङ्गल आँखोंसे ओझल हो गया। चारों ओर खेत ही खेत थे। थोड़ी ही देर में पके जौ और गेहूँके खेत भी ऊपर छूट गये। जितना ही हम नीचे जाते थे, उतना ही तापमानका स्पष्ट प्रभाव खेतों पर दिखाई पड़ता था। मैं भी अब चलने में कमजोर न था, मेरे साथीको भी खेत काटनेके लिए जल्द लौटना था। इसलिए हम खूब तेजीसे उतर रहे थे।

तमङ्गोंके कितने ही गाँवोंको पारकर, निचले हिस्सेमें गोर्खों के गांव मिले। यहा मकई एक-एक बालिश्त उगी थी। तीन चार बजे हम नीचे नदीके पुलपर पहुच गये। यहा भी एक सरकारी सिपाही रहता था, किन्तु उसे एक भोटिया लामासे क्या लेना था? पार होकर चढाई शुरू हो गई। चढाईमें अब उतनी फुरती नहीं हो सकती थी। पाँच बजेके बाद थकावट भी मालूम होने लगी। हमने सबेरे ही बसेरेका निश्चयकर लिया। पासके गाँवमें एक ब्राह्मणका घर मिला। गृहपतिने लामाको आसन दे दिया। साथीने भात बनाया। रात बिता कर हम ऊपरकी ओर बढे। कितने ही गाँवों और नालोंको पार करते दोपहरके करीब हम डाँडेपर पहुचे। डाँडेको पार करते ही फिर वृक्षोंसे शून्य पहाड़ मिला। बारह बजेके बाद दूसरा डाँडा भी पार कर लिया, और अब हम काठमाण्डवसे कुती जानेवाले रास्तेपर थे। यह रस्ता

---

१. पहाड़के एक तरफ चढकर, दूसरी तरफ जहाँ उतरा जाता है, वहाँ उसके शिखरको कुमाऊ-गढवालमें घाटा, नेपाल भञ्याङ, कुल्लू, कागड़ामें जोत, अफगानिस्तानमें कोतल या गर्दन, महाराष्ट्रमें घाट और राजपूतानामें घाटी कहते हैं। यही तिब्बती ला है।

ऊपरसे जाने वाला है। नीचेसे एक दूसरा भी रास्ता है, लेकिन वह बहुत गर्म है।

इस डाँडेको पार करनेपर फिर हमें घना जंगल मिला। आज-कल कुतीसे नमक लानेका मौसम था, इसलिए झुंडके झुंड आदमी या तो मकई चावल लेकर कुतीकी ओर जा रहे थे, या नमक पीठपर लादे पीछे लौट रहे थे। दो बजेके करीबसे फिर उतराई शुरू हुई। अब भी हम शर्वोकी बस्तीमें थे। यल्मो लोग भी शर्वा-भोटियोंकी एक शाखा हैं। ये शर्वा भोटिये दार्जिलिंग तक बसते चले गये हैं, शर्वाका मतलब है पूर्व-वाला। एक शर्वासे पूछनेसे मालूम हुआ कि डुक्पालामा अभी इधरसे नहीं गुजरे हैं। विश्वास हो चला, शायद पीछे ही हैं। एक घंटेकी उतराईके बाद मालूम हुआ, डुक्पालामा अगले गाँवमें ठहरे हुये हैं। बड़ी प्रसन्नता हुई। तीन बजे हम जाकर उनके सामने खड़े हुए। मेरा उनका कोई झगड़ा तो था नहीं, सिर्फ जातीय स्वभावके कारण उन्होंने मेरी उपेक्षाकी-थी। सभी लोग 'पंडिता'को देखकर बड़े प्रसन्न हुए। उस रातको वहीं रहना हुआ। गाँव तमंगोंका था। ये लामा धर्मके माननेवाले कहे जाते हैं, लेकिन डुक्पा लामा ऐसे बड़े लामाके लिए भी उनको कोई श्रद्धा न थी। दाम देनेपर मुश्किलसे चीज़ मिलती थी। मेरे दिलमें अब पूर्ण शान्ति थी। कुल्लूके रिञ्चन् साथ थे। डुक्पा लामका शरीर बहुत भारी था, और चलनेमें बहुत कमजोर थे, इसलिए बीच-बीचमें उनको ढोनेके लिए दो आदमी साथ ले लिये थे। हमारी जमातमे चार लामा और चार गृहस्थ थे। इस प्रकार सब मिलकर हम आठ आदमी थे।

सवेरे फिर उतराई शुरू हुई। यहाँ नदीपर लोहेका झूले वाला पुल था। आम रास्ता होनेसे यहाँ चट्टीपर दूकानें थीं। खानेकी और कोई चीज तो न मिली, हाँ आग में भुनी मछलियाँ मिलीं। चढ़ाई फिर शुरू हुई। शाम तक चढाई चढ़ते हम तमंगोंके बड़े गाँवमें पहुँचे। वहाँ रात बिता गुरुको ढोनेके लिए दो आदमी ले फिर सबेरे चल

बडे। एक डाँडा और पार करना पड़ा, फिर उतराई शुरू हुई। अन्तमें हम काली नदीके किनारे पहुँच गये। अब हम काठमाण्डवसे आने वाले बडे मार्गपर आ गये। सड़कपर नमक वालोंका मेलासा जाता हुआ मालूम होता था। अब हम शर्वा लोगोंके प्रदेशमें थे। १८ मईको हम काली नदीके ऊपरी भागपर शर्वोंके एक बडे गाँवमें ठहरे। साथियोंने वतलाया, कल हम नेपालकी सीमान्त चौकी पार करेंगे।

इस यात्रामें और लोग तो थुक्पा सत्तूसे काम चला लिया करते थे, किन्तु मेरे और डुक्पा लामाके लिये भात बना करता था। कभी कोई जंगली साग मिल जाया करता। कभी भुनी मछलीका झोल मिल जाता था। आज तो इस गाँवमें मुर्गीके अंडोंकी भरमार थी। हमने चालीस-पचास अंडे खरीदे, और रातको ही सबने उन्हें चट कर दिया। नीचे तो मुझे इन चीजोंसे कुछ सरोकार न था, किन्तु मैंने इस यात्रामें मासका परहेज छोड़ दिया था। लड़कपनमें तो इसका अभ्यास था ही, इसलिए घृणाकी कोई बात नहीं। उसी रातको मैंने यल्मोमें लिखे कुछ कागज़ोंको जला दिया। मैंने सोचा कि तातपानीमें कोई देख-भाल न करने लगे।

हम काली नदीके ऊपरी भागपर थे। धीरे-धीरे नदीकी धारकी ऊँचाईके साथ-साथ हम भी ऊँचेपर चढ़ते जाते थे। नदीके दोनों ओर हरियाली थी। सभी जगह जंगल तो नहीं था, किन्तु नङ्गा पर्वत कहीं न था। दो बजेके करीब हम तातपानी पहुंचे। गर्म पानीका चश्मा होनेसे इसे तातपानी कहते हैं। गाँवमें नेपाली चुङ्गी-घर और डाकखाना है। मेरी तबीयत घबरा रही थी। डर था, 'तुम मधेसका आदमी कहाँ से आया' तो नहीं कहेगा। हमारे लामा पीछे आ रहे थे। चुङ्गीवालोंने पूछा—लामा कहाँसे आते हो। ? हमने बतला दिया, तीर्थ से[१]। चुङ्गीसे छुट्टी मिल गयी। रिञ्चन्‌ने कहा—अब हो गया न

[१. अर्थात् भारतके बौद्ध तीर्थोंकी यात्रासे।]

कान खतम ! उसी वक्त मुझे मालूम हुआ कि फौजी चौकी आगे है। मैंने कहा—भाई ! असली जगह तो आगे है।

थोड़ी देरमें लामा भी आ गये। इस वक्त वर्षा हो रही थी। थोड़ी देर एक झोपड़ीमें हमें बैठना पड़ा। फिर चल पड़े। आगे एक ऊँचे पर्वत-बाहुसे हमारा रास्ता रुकसा गया। नदीकी धार भी किधरसे होकर आती है, नहीं मालूम पड़ता था। अब मेरी समझमें आया, क्यों तातपानीकी फौजी चौकी तातपानीमें न होकर आगे है। वास्तवमें यह सामनेकी महान् पार्वत्य दीवार सैनिक दृष्टिसे बड़े महत्वकी है। नीचेसे जानेवाली बड़ी पल्टनको भी कुछ ही आदमी इस दीवार परसे रोक सकते हैं। थोड़ी देरमें चढाई चढते हम वहाँ पहुंच गये जहाँ रास्तेमें पहरे-वाला खड़ा था। पहरेवालेने सबको रोककर बैठाया फिर हवल्दार साहेबको बुला लाया। यही वह असल जगह थी, जिससे मैं इतना डरा करता था। मैं अपनेको साक्षात् यमराजके पास खड़ा समझ रहा था। पूछनेपर हमारे साथीने कह दिया, हम लोग केरोङ्के अवतारी लामाके चेले हैं। लामा भी थोड़ी देरमें आ गये। हवल्दारने जाकर कप्तानको खबर दी। उन्होंने सूबेदार भेज दिया। आते ही एक-एकका नाम ग्राम लिखना शुरू किया। उस समय यदि किसीने मेरे चेहरेको देखा होता, तो उसे मैं अवश्य बहुत दिनोंका बीमार सा मालूम पड़ता। भर सक मैं अपने मुँहको उनके सामने नहीं करना चाहता था। अन्तमें मेरी बारी भी आयी। रिछेनूने कहा —इनका नाम छुनूछुबड् है। सबको छुट्टी मिली। मैं भी परीक्षामें पास हो गया। पेट भर-कर साँस ली। शाम करीब थी, इसलिए अगले ही गाँवमें ठहरना था। सूबेदारने गाँवके आदमीको कह दिया कि अवतारी लामाको अच्छी जगह पर टिकाओ और देखो तकलीफ न हो। हम लोग उनके साथ अगले गाँवमें गये। यह गाँव फौजी चौकीके पासमें ही था। गाँवमें रहनेके लिए एक अच्छा कोठा मिल गया।

आज (१६ मई) डुक्पा लामाने देवताकी पूजा आरम्भ की। सत्तू की पिण्डियों पर लाल रङ्ग डालकर मांस तैयार किया गया।[1] घरसे बढ़िया अरक (=शराब) आया। घीके बीसों दीपक जलने लगे। थोडे मन्त्रोंके जापके बाद डमरू गड़गड़ाने लगा। रातके दस बजे तक पूजा होती रही। प्रसाद बाँटनेका समय आया। शराबकी प्रसादी मेरे सामने भी आयी। मैंने इन्कारकर दिया। इसपर देवताके रोष आदिकी कितनी ही दलीलें पेश की गयीं; लेकिन यहाँ उन देवताओंको कौन मानता था? इधर चढाईसे ही मैंने दोपहरके बाद न खानेका नियम तोड़ दिया था। लाल सत्तूसे मैंने इन्कार नहीं किया।

दूसरे दिन सवेरे चल पड़े; दो घण्टेमें हम उस पुलपर पहुंच गये, जो नेपाल और तिब्बतकी सीमा है। तिब्बत की सीमामें पैर रखते ही चित्त हर्षसे विह्वल हो उठा। सोचा, अब सबसे बड़ी लड़ाई जीत ली।

+ २० कुतीके लिए प्रस्थान

बीस मईको दस बजेसे पहले ही हम भोट-राज्यकी सीमामें प्रविष्ट हो गये। यहाँ भोटिया-कोसी नदीपर लकडीका पुल है, यही नेपाल और भोटकी सीमा है। पुल पार करते ही चढाईका रास्ता शुरू होता है। नमकका मौसम होनेसे आने-जाने वाले गोर्खा लोगोंसे रास्ता भरा पड़ा था। बीच-बीचमें एकाध भोटियोंके घर भी मिलते थे। सभी घरोंमें यात्रियोंके ठहरनेका प्रबन्ध था। उनके लिए मक्केकी शराब सदा तैयार रहती थी। गृहस्थोंके लिए यह पैसा पैदा करनेका समय है। चारों ओर घना जङ्गल होनेसे रात-दिन धूनी जलती ही रहती है। यात्रियोंके झुण्ड मल मूत्रका उत्सर्गकर रास्तेके किनारेकी भूमिको ही

[१. अर्थात् उसमें मांसकी कल्पना कर ली गई

नहीं बल्कि चैत्यों और मानियोंकी परिक्रमाओंको भी गन्दा कर देते हैं। उस दिन दोपहरका भोजन हमने रास्तेमें एक यल्मोके घरमें किया। यह पति-पत्नी यल्मोसे आकर यहाँ बस गये हैं।

अब हम बड़े मनोहर स्थानमें जा रहे थे। चारों ओर उत्तुङ्ग शिखरवाले हरियालीसे ढके पहाड़ थे जिनमें जहा-तहा झरनोंका कलकल सुनाई देता था। नीचे फेन उगलती कोसीकी वेगवती धार जा रही थी। नाना प्रकारके पक्षियोंके मनोहर शब्द सारी दूनको जादूका मुल्क सिद्धकर रहे थे। इस सारे ही आनन्दमें यदि कोई डर था, तो वह जगह जगह उगे बिच्छूके पौधोंका। इस समय डुक्पा लामाको ढोनेवाला कोई न था। इसलिए उन्हें बार-बार बैठना पड़ता था। हमें भी जहाँ-तहाँ इन्तजारी करनी पड़ती थी। मेरे बुद्ध गयाके परिचित मङ्गोल भिक्षु लोब्-सङ्-शे-रब् (=सुमति-प्रज्ञ) कल एका-एक आ मिले थे। वे भी अब हमारे साथ चल रहे थे। चढाई यद्यपि कहीं-कहीं दूर तक थी, तो भी मैं खाली हाथ था इसलिए कुछ कष्ट मालूम न होता था। दोपहरके बाद हमारा रास्ता छोटे-छोटे बांसोंके जङ्गलमेंसे जारहा था।

चार बजेके करीब हम डामूग्रामके सामने आ पहुंचे। यहाँपर एक चट्टी सी बसी थी। लोगोंको मालूम हो गया कि डुक्पा लामा आ रहे हैं। उन्होंने पहलेसे ही इन्तिजामकर रखा था। उनके आते ही स्त्री-पुरुष शिर नवानेके लिए आगे बढे। लामा अपना दाहिना हाथ उनके सिरपर फेर देते थे।

कुछ लोग धूप जलाकर भी आगे-आगे चल रहे थे। रास्तेसे हटकर एक कालीन बिछाया गया, जिसके सामने प्याला रखनेकी एक छोटी चौकी रखी गयी। बैठते ही चाय आयी। मैंने तो छाछ पसन्द किया डुक्पा लामाको चावल और नेपाली मुहरोंकी भेंट चढ़नी शुरू हुई। उन्होंने मन्त्र पढ पढ़कर लाल पीले कपडेकी चिटोंको बाँटा। आध घण्टेमें यह काम समाप्त हो गया और हम आगे बढे। धीरे-धीरे हम

कोसीकी एक छोटी शाखा पर आये, जिसकी धार घोर कोलाहल करती बड़े ऊँचेसे वहाँ गिर रही थी। यहाँ लोहेकी जञ्जीरोंपर झूलेका लम्बा-पुल था जो बीचमें जानेपर बहुत हिलता था। बहुतोंको तो पार होनेमें डर मालूम होता था। हमारे साथका नेपाली लड़का गुमा जू बहुत मुश्किलसे पार हुआ। इस पुलकी रक्षाके लिए रङ्गबिरंगी झण्डियों-वाला देवता स्थापित है।

पुलके पास ही डाम् गाँव है। ऊपर नीचे खेत भी हैं। गाँवमें बीस-पच्चीस घर हैं। घर अधिकतर पत्थरकी दीवारोंके हैं और लकड़ीके पटरोंसे छाये हुए हैं। मकान दो तल्ले तिन-तल्ले हैं। कुछ ही ऊपर देवदारुका जङ्गल है। इसलिए छाने पाटने सभीमें देवदारुकी लकड़ीका प्रयोग किया गया है। यहाँ हमारे ठहरनेके लिए एक खास मकान पहलेसे ही तैयार किया गया था। नमकके समय सभी घरवालोंको यद्यपि नमकवालोंके टिकानेमें नफा था, तो भी लामाका डर और सम्मान कम चीज न थी। गाँवमें घुसते ही यहाँ भी डुक्पा लामाको सिर छुआनेके लिए नर-नारी दौड़ने लगे। मकानपर पहुँचनेपर तो आदमियोंसे घर भर गया। दो-तल्लेपर हम लोगोंको टिकाया गया। डुक्पा लामाके लिए मक्खनमें शराब बघारी गई। हम लोगोंके लिये मक्खन डालकर अच्छी चाय तैयार हुई।

रातको ही रिन् चेन्‌ने कह दिया था कि कलसे अवलोकितेश्वरका महाव्रत आरम्भ होगा। सब लोग व्रत रखने जा रहे थे। मैंने कहा, मैं भी व्रत रखूँगा। यह-व्रत तीन दिनका होता है। पहले दिन दोपहर-के बाद नहीं खाते, दूसरे दिन मौन और निराहार रहते हैं, तीसरे दिन पूजा-मात्र की जाती है। व्रत के साथ मन्त्र जाप और पाठ होता है। पचासो दीपक जलाना, सत्तू और मक्खनके तोर्मा (=बलि) बनाकर सजाना होता है। अनेक बार सैकड़ों साष्टाङ्ग दण्डवतें भी करनी पड़ती हैं। अवलोकितेश्वरके इस व्रत (=न्यूमा)में शराब और माँसकी सर्वथा मनाही है। दूसरे दिन दोपहरको चावलका भोजन

हुआ। सबके साथ मैंने भी सैकड़ों साष्टाङ्ग दण्डवतें कीं। इन दण्डवतों से मैं तो थक गया। झूठ-मूठकी परेशानी कौन उठावे सोच दूसरे दिन सवेरे ही मैंने सत्तू और चाय ग्रहण कर ली। दोपहरको एक भोटिया सज्जन मुझे अपने घर लेगये। वहाँ उन्होंने मुर्गीके अण्डेकी नमकीन सेवइयाँ तैयार कराई थीं। भोजनके बाद उनसे नाना विषयोंपर बात होती रही। वे ल्हासामें रह चुके थे। इन्होंने वर्षों तक चीनकी सीमा परके खाम् प्रदेशमें रहकर अध्ययन किया है। गोर्खा भाषा भी अच्छी तरह जानते हैं। तीसरे दिन वैसाखकी पूर्णिमा[1] थी। हमारे पूर्व परिचित सज्जनने आज बुद्धोत्सव मनाया। उनसे मालूम हुआ कि इस दिन सारे भोटमें बुद्धोत्सव मनाया जाता है।

इन तीन दिनोंमें लोगोंकी भेंट-पूजा भी समाप्त हो गई। चौबीस मईको नाश्ताकर हम आगे चले। कुछ ही दूर आगे बढ़नेपर हम देवदारु-काटबन्धमें पहुँच गये। नदीके दोनों तरफ इधर-उधर देवदारु-के ही वृक्ष दिखाई देते थे। दो बजेसे पहले ही हम चिना गाँवमें पहुँचे। यह एक बड़ा गाँव था। लोगोंको खबर पहलेसे ही मिल गई यहाँ डुक्पा लामाका स्वागत बाजे-गाजेसे हुआ। आसनपर बैठते-बैठते दर्जनों थाल चावल नेपाली मुहरों तथा खाता (=चीनका बना सफेद रेशमी कपड़ा जो मालाके स्थानपर समझा जाता है)के साथ आ गया। शामको रिन्चेन्ने कहा--गुरुजी यहाँ तीन-दिन और पूजा करेंगे। यह बीच बीच का रुकना मुझे बुरा तो मालूम होता था। लेकिन उपाय ही क्या था? सौभाग्यसे गाँववालोंने लामासे रहनेका आग्रह नहीं किया। अन्दाजसे मालूम हुआ कि देनेवाले असामी अपनी-अपनी पूजा चढ़ा चुके हैं। पहरभर रात गये, रिन्चेन्ने कहा कि कल चलना होगा। उसकी यह बात मुझे बहुत ही मधुर मालूम हुई।

---

१. बुद्धके जन्म, बोध और निर्वाण तीनोंकी तिथि वैशाखपूर्णिमा है। वह बौद्धके लिए सबसे पवित्र तिथि।

दूसरे दिन आठ-नौ बजेके करीब हम चले। खाली हाथ होनेसे मैं बीच बीचमें आगे बढ जाता था। अब भी हमारे चारों ओर देवदारुका जङ्गल था। कहीं कहीं कुछ छोटी-छोटी गायें चरती दिखाई पड़ती थीं। आगे एक नया घर मिला। घरसे जरा आगे बढकर मैं पीछेवालोंकी प्रतीक्षा करने लगा। देर तक न आते देख घरमें गया। घरवालोंको मैंने बतलाया कि डुक्पा लामा रेन्पो-छे आ रहे हैं। फिर क्या था, उन्होंने भी झट चाय डालकर पतीली आगपर चढा दी। लामाके आते ही मैंने कहा कि चाय तैयार हो रही है। गृहपतिने प्रणामकर नये घरमें लामाकी पधरावनी कराई। घरके एक कोनेमें पानीका छोटासा चश्मा निकल आया था। लामाने उसके माहात्म्यपर एक वक्तृता दी। यहाँ भी एक थाली चावल और कुछ मुहरें मिलीं। थोड़ी देरमें मक्खन डालकर गाढी चाय बनी। सबने चाय पीकर आगे कदम बढाया।

दोपहरके बाद देवदारुके वृक्ष छोटे होने लगे। वनस्पति भी कम दिखलाई पड़ने लगी। अन्तमें नदीकी धारको रोके विशाल पर्वत भुजा दिखाई पड़ी। इसके पार होते ही हरियालीका साम्राज्य विलुप्तसा हो गया। अब बहुत ही छोटे-छोटे देवदारु रह गये थे। घास भी उतनी न थी। चार बजेके करीब हम चक्-सुम् गाँवके पास पहुँचे। सुमति-प्रज्ञ पहले ही गाँवमें पहुँच चुके थे। वह मक्खन डाल गर्म चाय बनवाकर अगवानीके लिए आये। मुझसे कुछ देर बाद और लोग भी पहुंच गये। सब लोग एक-एक दो-दो प्याला चाय पीकर फिर आगे चले। यहाँ ऊपर नीचे बहुत-सी चमरी गायें (=याक्) चरती दिखाई पड़ीं। मालूम हुआ, यह वनस्पतियोंका अन्तिम दर्शन है। वर्ष दिन बादही मुझे फिर आँख भर हरियाली देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ।

चक् सुम् गाँव भी खासा बड़ा है। यहाँ गाँवसे नीचे नदीके पास गर्म पानीके दो चश्मे हैं, इसलिये इसे छु-कम् (=गर्म पानी) भी कहते हैं। यहाँ सबसे अच्छे मकानमें लामाजीको ठहराया गया।

रातको लकड़ीकी मशाल जलाकर हम गर्म चश्मेमें स्नान करने गये। मेरे साथी सभी नङ्गे नहा रहे थे। उस समय तो खैर रात थी। दूसरे दिन जब मैं दिनमें भी नहाने गया, तो देखा कि भोटिया लोग स्त्रियोंके सामने नग्न नहा रहे हैं। वस्तुतः इसके देखनेसे तो मालूम होता था कि यदि सर्दीका डर न होता, तो ये लोग भी कांगोके हब्शियोंकी तरह नङ्गे घूमा करते।

ग्राम बड़ा था; पूजा अभी काफी नहीं आई थी। इसलिये डामसे आये भद्र पुरुष यद्यपि लामाके ढोनेके लिए आदमीका प्रबन्धकर थोड़ा आगे जानेके विचारसे ही रवाना हुए थे,लेकिन उनके जाते ही लामाने कह सुनकर उस आदमीको दूसरे दिनके लिए चलनेको राजीकर लिया। वह दिन लामाने गर्म पानीमें स्नान करने, गर्म-गर्म शराब पीने, भक्तोंका भाग्य देखने तथा मन्त्र-तन्त्रके उपदेश करनेमें बिताया।

छब्बीस मईको चकुसुम्से हम लोग रवाना हुए। यहाँ मैंने रिन्-चेनसे मांगकर भोटिया भिक्षुओंका कपड़ा पहन लिया। तो भी रह-रहकर कलेजेमें ठण्डी हवाका झोंका पहुंच जाता था। आज (कुती) पहुंचना है। ऐसा न हो कि यहाँसे लौटना। पड़े! चकुसुमूसे थोड़ा ही आगे पहुंचनेपर वनस्पतियाँ लुप्त हो गयीं आस-पास नंगे पहाड़ थे। कहीं-कहीं दूर-दूरपर उगी छोटी छोटी घासोंको विशालकाय चमरियां चर रहीं थीं। रास्ते में दो जगह हमें बर्फ़के ऊपर से भी चलना पड़ा। दोपहरकी चाय हमने जिस घर में पी, वहां आग कण्डेसे जलायी गयी। लकड़ी यहाँ दुर्लभ हो गई थी। अब रास्ता उतना कठिन न था। दाहिनी तरफ़ बर्फ़से ढकी रुपहली गौरी शङ्करकी चोटी दिखाई पड़ती थी। कुती (नेनम्का नेपाली नाम)के एक मील इधर ही डुक्पा लामाके चढ़नेके लिए घोड़ा आ गया आज तो उन्हें ढोनेके लिए आदमी मिल गया था, इसलिए उन्होंने सवारी न की। कुछ अनुचर आगे भेजे गये। मुझे भी लामाने उनके साथ ने आगे जाको कहा। किन्तु मैंने लामाके साथ ही जानेका आग्रह किया। दिलमें तो दूसरा

ही डर लग रहा था। अन्तमें वह भी समय आ गया, जब पांच बजेके करीब हम कुतीमें दाखिल हुए। नई माणीकी प्रतिष्ठाके लिए लामाके पास चावल आये। उन्होंने "सुप्रतिष्ठ वज्र स्वाहा" करके माणीके चारों ओर चावल फेंक दिया। हम लोगोंको एक अच्छे मकानमें ठहराया गया। पहुँचते ही हमारे लिए गर्म चाय और लामाके लिए घोंमें छ्रौंकी शराब तैयार मिली। लामाके ही कमरेमें मेरे लिए भी आसन लगाया गया।

३. राहदारीकी समस्या

दुक्पा लामाको लप्-चीमें एकान्त-वासके लिए जाना था। लप्-चीं तिब्बतके महान् तान्त्रिक कवि और सिद्ध जेन्चुन् मिला-रे-पाके एकान्त-वासका स्थान है। इसलिए भोटिया लोग इसे बहुत ही पवित्र मानते हैं। दुक्पा लामा शेष जीवन वहीं बितानेके लिए जा रहे थे। अभी मालूम हुआ कि लप्-चींके रास्ते वाले ला (घाटे) पर बर्फ पड़ गई है, इसलिए वह अभी जा नहीं सकते थे। कुती भी अच्छा खासा कस्बा है और आजकल नमकका मौसम होनेके कारण दूर-दूरके आदमी आये हुए थे इसलिए भी अभी कुछ दिन तक उन्हें यहीं विश्राम करना था। कुतीमें पहुँचनेके दूसरे ही दिन मैंने अपने साथ आये आदमीको नेपाली तेरह मुहरें (=५ रु० ४।। आना) दे दी। तातपानी तक आनेके लिए उसे चार मुहर देना ही निश्चय हुआ था। उस हिसाबसे उसे चार ही मुहर और मिलनी चाहिए थीं। वह अपनी मेहनतका मूल्य उतना थोड़े ही लगा सकता था, जितना कि मैं समझता था, इसलिए वह बहुत सन्तुष्ट हुआ और उसका नमक खरीद लाया।

बरसात अब आनेवाली थी। इससे पूर्वके दो तीन मासोंमें कुतीका रास्ता नागोंसे भरा रहता है। नेपाली लोग चावल मकई या दूसरा अनाज लेकर कुती पहुँचते हैं, और भोटिया लोग भेड़ों तथा चमरियों पर नमक लादकर पहुँचते हैं। कुतीमें अनेक दूकानें नेपाली सौदागरों

की हैं। ये नमक और अनाज खरीद लेते हैं। कोई-कोई सीधे भी अनाजसे नमक बदल लेते हैं। नमकके अतिरिक्त भोटिया लोग सोडा भी लाते हैं। यह सभी चीजें तिब्बतकी कुछ झीलोंके किनारे मिलती हैं। इनके ऊपर कुछ राज-कर भी है। गोर्खा लोग तो घरोंमें जहाँ-तहाँ ठहर जाते हैं; लेकिन भोटियोंके पास सैकड़ों चमरियाँ होती हैं, इस वजहसे वे बाहर ही ठहरते हैं।

जिस दिन मैं कुती पहुंचा उस दिन कुछ नेपाली सौदागर भी शीगर्ची (टशी-ल्हुन्‌पो) जानेके लिए कुतामें थे। इस रास्तेसे शीगर्ची ल्हासा जाने वाले नेपाली लोग यहाँसे घोड़ा किरायेपर करते हैं। यहाँसे घोड़ेका किराया टशी ल्हुन-पो तकका ४०, ४५ साङके करीब था; रुपयेका मूल्य उस समय लगभग डेढ़ साङ्के था। एक ही घोड़ा शुरूसे आखिर तक नहीं जाता। जगह-जगह घोड़े बदले जाते हैं। इसी किरायेमें घोड़ेवाला खाना पीना भी देता है। मैंने और मेरे साथियोंने बहुत कोशिशकी कि किसी तरह इन्हीं नेपाली सौदागरोंके साथ चले जावें किन्तु उन्होंने इन्कार कर दिया।

चारों ओर निराशा ही मालूम हो रही थी। इधर डुक्‌पा लामाकी पूजाके लिए बराबर लोग आते रहते थे। चावलों और खातोंका ढेर लगता जा रहा था। हर थालीके साथ कुछ नेपाली मुहरें भी अवश्य आती थीं। कोई-कोई मांस और अण्डा भी लाते थे।

२६ मईको डुक्‌पा लामाको जोङ्-पोन् (=ज़िला मजिस्ट्रेट का बुलावा आया। मेरे साथियोंमें किसी किसीने मुझे भी चलनेको कहा। कहा—लदाखी कह देंगे। भला मैं कहाँ आ बैल, मुझे मार करने जा रहा था? वे लोग डुक्‌पा लामाके साथ गये। ज़ोङ्पोन् डुक्‌पा लामाका नाम पहले ही सुन चुका था। उसने बड़ी खातिरकी। डुक्‌पा लामाने भी भाग्य-भविष्य देखा और कुछ मन्त्र-पूजा की। शामको लोग लौट आये। उनसे मालूम हुआ इस वक्त एक ही ज़ोङ्-पोन् है, दूसरा जोङ्‌पोन् मर गया है। उसकी स्त्री फ़िलहाल कुछ काम देखती

है। अभी नया जोङ्-पोन् नहीं आया है। तिब्बतमें हर गाँवमें मुखिया (=गोबा) होते हैं। इनके ऊपर इलाके—इलाकेका जोङ्-पोन् (=जिला-अफसर) होता है जोङ्का अर्थ किला है, और पोन्का अर्थ 'अफसर'। जोङ् अधिकतर पहाड़की छोटी टेकरीपर बने हैं। कुतीके पास ऐसा कोई पहाड़ न होनेसे जोङ् नीचे ही है। प्रदेशके छोटे बड़े होनेके अनुसार जोङ्-पोन्का दर्जा छोटा बड़ा होता है। हर जोङ्में दो जोङ्-पोन् होते हैं, जिनमें एक गृहस्थ और दूसरा साधु हुआ करता है। कहीं-कहीं इसका अपवाद भी देखा जाता है, जैसे आजकल यहाँ कुतीमें ही। जोङ्-पोन्के ऊपर दलाई लामाकी गवर्नमेण्टका ही अधिकार है। न्याय और व्यवस्था दोनोंमें ही जोङ्-पोन्का अधिकार बहुत है। एक तरह उन्हें उस प्रदेशका राजा समझना चाहिए। प्रायः सारे ही जोङ्-पोन् ल्हासाकी ओरके होते हैं। उनमें भी अधिकांश दलाई लामाके कृपापात्रोंके सम्बन्धी या प्रेमी होते हैं। जिस जोङ्-पोन्की जगह आजकल खाली है, उसके खिलाफ इस प्रदेशकी प्रजाके कुछ लोग ल्हासा पहुँच गये थे। उन्होंने दर्बारमें अपनी दुःख-गाथा सुनायी। सर्कारकी नजर अपने खिलाफ देखकर, कहते हैं वह जोङ्-पोन् ल्हासाकी नदी में डूब मरा।

लोग खचरा कहते हैं। इस खचरा सन्तान तथा उसकी माँका कुछ भी हक पिताकी सम्पत्तिमें नहीं होता। पिता जो खुशी से दे-दे, वही उनका हक है। इसपर भी जिस अपनपौके साथ ये अपनी नेपाली पिता या पतिके कार-बारका प्रबन्ध करती हैं, वह आश्चर्यजनक है।

३० मई तक हम सब उपाय सोचकर हार गये। कोई प्रबन्ध आगे जानेका न हो सका। कुतीके पास वाली नदीपर पुल है; यहीं राहदारी (=लम्-यिक=पासपोर्ट) देखने वाला रहता है इसके पार होनेपर आगे या लेप्में एक बार और राहदारी देखी जाती है। जब सब तरफसे मैं निराश हो गया, तो सोचा कि अब मङ्गोली भिक्षु सुमति-प्रज्ञके साथ ही जानेका प्रबन्ध करना चाहिये। सुमति-प्रज्ञ अब भी कुतीमें ठहरे थे। उनसे मैंने कहा कि मुझे अपने साथ ले चलिये। वे बड़े खुश हुए, और बोले कि मैं कल लम्-यिक लाऊँगा, और कल ही हम लोग यहाँसे चलेंगे। वे तो निश्चिन्त थे, किन्तु मुझे अबभी बड़ा सन्देह था। मैंने एक भारतीय साधु बाबाको भी देखा, जो दो माससे यहीं ठहरे हुए थे न आगे जा सकते थे न पीछे लौट सकतेथे। खैर, एक बार हिम्मत करनेकी ठान ली। उसी रात एक नेपाली सौदागरके घरमें डुक्पालामाको भूत-प्रेत हटाने और भाग्य बढानेके लिए पूजा करनेका बुलावा था। मैं भी साथ गया। अनेक स्त्री पुरुष और बच्चे जमा हुए थे। दीपककी धीमी रोशनीमें मनुष्यकी जाँघकी हड्डीका बीन बाजा, जुड़ी खोपड़ीपर मढ़ा डमरू तथा दूसरी इसी प्रकारकी भयावनी सामग्री लेकर डुक्पा-लामा और उनके चेले पूजा-स्थान पर बैठे। चिराग और भी धीमाकर दिया गया। पूजा करने वालोंको पर्देमें कर दिया। उन्होंने मन्त्र पाठ शुरू किया। बीच-बीचमें डमरूकी कड़खती आवाज, तथा चन्द महीनोंके बच्चेके करुणापूर्ण रोदन जैसे हड्डीकी बीनके शब्द सुनाई पड़ते थे। ऐसे वायुमण्डलमें मन्त्र-मुग्ध न होना सबका काम नहीं है। यह पूजा आधी रातके बाद तक होती रही। पूजाके बाद फिर पूजाके जलसे नर–

नारियों और बच्चोंका अभिषेक हुआ। इसके बाद सब लोग सोनेके लिए आसनपर गये।

३१ मईको सवेरे मैं ता यात्राकी आवश्यक चीजोंको जमा करनेमें लगा और सुमति-प्रज्ञको लम् यिकके लिये छोड़ रखा। मेरे पास उस समय साठ या सत्तर रुपये थे। मैंने तीस रुपयेका नाट अलग बांधकर बाकीमेंसे कुछका सामान खरीदा और कुछका भोटिया टङ्का भुनाया। इस समय कुतीमें रुपयेका भाव नौ टङ्का था। सिक्का सभी आधे टङ्का वाला (=छी-के) मिला। सर्दी के ख्यालसे यहाँ चार रुपयेका एक भोटिया कम्बल भी लिया डामूके सज्जनने जो यहाँ आ चुके थे, एक ऊनी पीली टोपी दी। कुछ चिउड़ा चावल, चीनी, चाय, सत्तू और मसाला भी खरीद कर बाँधा। चूंकि अब सब चीजें अपनी पीठपर लाद कर चलना था, इसलिए उन्हें थोड़ा ही थोड़ा खरीदा। डुक्पा-लामाने मेरे लिए एक परिचय-पत्र भी दे दिया। इसी समय सुमति-प्रज्ञभी दोनों आदमियोंके लिए लम्-यिक् लेकर चले आये। दो माससे अधिककी घनिष्ठताके कारण मेरे सभी साथियोंको मित्र वियोगका दुःख हुआ। डुक्पा लामाने भी बड़ी सहृदयताके साथ अपनी मङ्गल-कामना प्रकट की। उन्होंने कुछ चाय तथा दूसरी चीज़ें भी दीं।

४. टशी गङ्की यात्रा

ढोनेकी लकड़ी (=खुर-शिङ्)के बीचमें सामान बाँधकर पीठपर ले, हाथमें लम्बा डंडा लिये दोपहरको एक बजेके करीब हम दोनों कुतीसे निकले। पुल पर पहुँचते देर न लगी। उस समय वहाँ कोई लम् यिक भी देखने वाला न था। साधारण लकड़ी पाटकर पुल बनाया गया है। पार होकर थोड़ा ऊपर चढ़ना पढा। जिन्दगीमें आज यह पहले ही पहल बोझा उठाकर चलना पड़ा था, इसलिए चढाईकी कड़ुआहटके बारेमें क्या कहना? रह-रहकर ख्याल आता था, मनुष्य-को इसका भी अभ्यास करके रखना चाहिए। जराही चढाईके बाद

हम कोसीकी दाहिनी मुख्य धार के साथ-साथ ऊपर चढ़ने लगे। रास्ता साधारण था। बोझ बीस-पच्चीस सेरसे ज्यादा न था, तो भी थोड़ी ही देरमें कान्धा और जाँघे दुखने लगीं। सुमतिप्रज्ञ अपने ३०, ३५ सेरके बोझके साथ मजेमें बातें करते चल रहे थे। मुझे तो उस समय बातें भी सुननेमें कड़वी मालूम हो रही थीं। नदीकी दून काफ़ी चौड़ी थी, किन्तु कहीं वृक्ष नहीं थे। रास्तेमें एकाध घर भी दिखाई पड़े, लेकिन वह देखनेमें पत्थरके ढेरसे मालूम होते थे। जहाँ तहाँ कुछ जोते हुए खेत भी थे।

डाम्के सज्जन लप्‌ची जा रहे। आज वह सबेरे ही कुतीसे चल चुके थे, उन्हें आज टशी गङ् में रहना था। सुमति-प्रज्ञकी भी सलाह आज वहीं रात्रिवास करनेको हुई। सन्ध्याके करीब फ़र ग्ये लिङ मठ (=गुम्बा) दिखाई पड़ा। गुम्बाके पहले ही एक छोटासा गाँव आया। हमने वहाँसे किसी आदमी को बोझा ले चलनेके लिए लेना चाहा, किन्तु कोई भी तैयार न हो सका। वहाँसे फिर गुम्बामें पहुँचे। बाहरसे देखनेमें यह बहुत सुन्दर मालूम होती है। भिक्षुकोंकी संख्या ३ ,४०से ज्यादा नहीं है सामान बाहर रखकर हम देव दर्शनकेलिये गये। बुद्ध, बोधिसत्व, महायान और तन्त्रके नाना देवी देवताओंकी सुन्दर मूर्त्तियाँ, नाना प्रकारके सुन्दर चित्रपट, तथा ध्वजा आदि अखण्ड दीपके प्रकाशसे प्रकाशित हो रहे थे। मठमें जेचुन-मिलाके सामने बर्तनमें छङ् (=कच्ची शराब) देखकर मैंने सुमतिप्रज्ञसे पूछा—यह तो गे-लुक्-पा-(=पीली टोपी वाले लामाओंके सम्प्रदाय) का मठ है, फिर क्यों यहाँ शराब है? उन्होंने बतलाया कि जे-चुन्-मिला सिद्ध पुरुष हैं। सिद्ध पुरुषों और देवताओंके लिये गे लुक् पा लोग भी शराबको मना नहीं करते! मनाही सिर्फ अपने पीनेकी है। मन्दिरसे बाहर आनेपर हमारे लिए चाय बनकर आ गयी थी। आँगनमें बैठकर हमने एक-दो प्याले चाय पी। भिक्षुओंने निवास-स्थान पूछा। सुमति-प्रज्ञ ल्हासा डेपुङके कुम्बाके थे ही, और मैं था लद्दाखका। हम लोगों-

ने कहा कि ग्य-गर् (=भारत) दोर्जे-दन् (=बुद्ध गया)[1] से तीर्थ करके हम ल्हासा जा रहे हैं।

मैं इस समय थक गया था। कुतीसे हम लोग यद्यपि पाँच ही मीलके करीब आये थे तो भी मेरे लिए नेक क़दम आगे चलना कठिन मालूम होता था। उस समय वहाँ टशी-गङ् का एक लड़का था। उसने बतलाया, डाम्के कुलोक (=साहेब) टशी-गङ् में पहुँचकर ठहरे हुए हैं। सुमति-प्रज्ञने वहाँ चलनेको कहा। मैंने भी सोचा कल शायद आदमीका कोई प्रबन्ध हो जाय, इस आशासे चलना स्वीकार-कर लिया। मठपर ही अँधेरा हो चला था हम लोग लड़केके पीछे-पीछे हो लिये। नदोके किनारे-किनारे कितनी दूर जाकर, हम पुलसे उस पार गये। कितनी ही देर बाद बोये खेत मिले, जिससे विश्वास हो चला, अब पासमें जरूर बाद कोई गाँव होगा। थोड़ी देर आगे बढ़नेपर कुत्ते भूँकने लगे। मालूम हुआ, गाँव है, लेकिन हमारा गन्तव्य गाँव थोड़ा आगे है। अन्तमें जैसे-तैसे करके डाम्के सज्जनके ठहरनेकी जगहपर पहुँचे।

उस समय वह लोहेके चूल्हे में आग जलाकर थुक्पा (=चावल-की पतली खिचड़ी) पका रहे थे। हमको देखकर बड़े प्रसन्न हुए। जल्दीसे मेरे लिए आसन बिछा दिया। मैं तो बोझेको अलग रख आसनपर लेट गया। चाय तयार थी, थोड़ी देरमें थुक्पा भी तयार हो गया। फिर मैंने दो तीन प्याला गर्मागर्म थुक्पा पिया। फिर चाय पीते हुए अगले दिनके प्रोग्रम पर बातें शुरू हुई। सुमति-प्रज्ञए कहा—लप्-ची जे-त्सुन् मिलाका सिद्ध स्थान है, चा-छेन्-बो (=महातीर्थ) है, हम भी इनके साथ वहाँ चलें। लप्-ची जानेके लिए हमें इस सीधे रास्तेको छोड़कर एक बड़े ला (घाटे)को पारकर पूर्वकी ओर तुम्बा

---

[1] दोर्जे-दन्‌का शब्दार्थ वज्रासन। यध्यकालके संस्कृत अभिलेखों-में बुद्ध-गयाके लिए वही शब्द आता है।

कोसीकी घाटीमें जाना पड़ता था। यहांसे फिर दो ला पारकर तब तिङ्-री जाना पड़ता था। रास्तेमें एक ज़ोङ् भी था। इन सारी कठिनाइयोंको देखते मेरा दिल तो जरा भी उधर जानेको न था, किन्तु वैसा कहकर नास्तिक कौन बनता? उन्होंने बोझा ढोनेके लिए आदमीका भी प्रबन्धकर देनेके लिए कहा; फिर मेरे पास बहाना ही क्या था? अन्तमें मुझे भी स्वीकृति देनी पड़ी। निश्चय हुआ कि कल भोजनकर यहांसे चलेंगे।

दूसरे दिन भोजन करके दोपहरके करीब हम लोग टशी गङ् से लप्-चीकी ओर रवाना हुए। मै खाली हाथ था, इसलिए चलनेमें बड़ा फुर्तीला था। धीरे-धीरे हम ऊपर चढते जा रहे थे। घण्टे डेढ़ घण्टेकी यात्राके बाद बूँदा बाँदी शुरू हुई। ऊनी पोशाक होनेसे भोटिया लोग वहाँकी वर्षासे डरते नहीं। आगे एक जगह रास्ता जरा-सा तिर्छा ढालू पर्वत-पार्श्वपरसे था। मिट्टी भी इसपर नर्म थी। रह रहकर कुछ मिट्टी-पत्थर भी ऊपरसे कई सौ फुट नीचेकी ओर गिर रहे थे। मुझे तो इस दृश्यको देखकर रोमाञ्च हो गया—रह-रहकर यह ख्याल होता था कि कहीं इस मिट्टी-पत्थरके साथ मैं भी न कई सौ फुट नीचेके खड्डमें चला जाऊँ। मेरे साथी दनादन बोझा उठाये पार हो रहे थे। मुझे सबसे पीछे देखकर एक साथीने हाथ पकड़कर पार करना चाहा, लेकिन उधर मैं अपने को निर्भय भी प्रकट करना चाहता था। खैर, किसी प्रकार जी पर खेलकर उसे पार किया। हिचकिचानेका कारण था अपने ढीले भोटिया जूतेके ऊपर थोपा।

और ऊपर चलनेपर बूँदकी जगह छोटे-छोटे इलाइचीदानेकी-सी सफेद नर्म बर्फ पड़ने लगी। हम लोग बे-पर्वाह आगे बढ़ रहे थे। दो बजेके समय ल्हसें (=ला के नीचे टिकावकी जगह)पर पहुँच गये। अब बर्फ रूईके छोटे-छोटे फाहेकी तरह गिरने लगी। साथियोंमें कुछ लोग पत्थरोंसे रस्सियोंको दबाकर छोलदारी खड़ी करने लगे। यहा हम चौदह-पन्द्रह हजार फुटसे ऊपर हो रहे होंगे। बर्फकी वर्षा भी

चढ़ती जा रही थी, जिससे सर्दी बढ़ती जा रही थी। किसी प्रकार छोलदारी खड़ीकर धोकनी भाथी (धोंकनी)की सहायतासे कण्डेकी आग जलायी गयी। लोग चारों ओर घेरकर बैठ गये। चाय डालकर पानी चढ़ा दिया गया। उस वक्त आगको भी सर्दी लग रही थी। धीरे-धीरे सारी-भूमि बर्फसे ढँकती जा रही थी। छोलदारीपरसे बर्फ-को रह-रहकर गिराना पड़ता था। बड़ी देरमें मुश्किलसे चाय तैयार हुई। उस वक्त मक्खन डालकर चायको कौन मथे? मक्खनका टुकड़ा लोगोंके प्यालोंमें डाल दिया, और बड़ी कलछीसे चायका नमकीन काला पानी बाँटा जाने लगा। कुशोक् (=भद्र पुरुष)के पास छोटा बिस्कुट तथा नारङ्गी-मिठाई भी थी, उन्होंने उसे भी दिया। आगकी उस अवस्थामें थुक्पा पकाना तो असम्भव था, इसलिए सबने थोड़ा थोड़ा सत्तू खाया। मैंने चायमें डालकर थोड़ा चिउड़ा खाया।

धीरे-धीरे अँधेरा हो चला। कुशोक्ने अपनी लालटेन जलवायी; और मुझे "बोधि-चर्यावतार"से कुछ पढ़नेको कहा मेरे पास संस्कृतमें "बोधि-चर्यावतार"की पुस्तक थी। कुशोक्को भोटियामें सारे श्लोक याद थे। मैं संस्कृत श्लोक कहकर, अपनी टूटी-फूटी भोटिया भाषामें उसका अर्थ करता था, फिर कुशोक् भोटियामें श्लोक कहकर उसे समझाते थे। इस प्रकार बड़ी रात तक हमारी धर्म चर्चा होती रही। उसके बाद सभी लोग सिमिट सिमिटकर उसी छोटी छोलदारीके नीचे लेट रहे। सर्दीके कारण मैलकी दुर्गन्ध तो मालूम न होती थी; किन्तु सवेरा होते होते मुझे विश्वास होने लगा कि मेरी जुँओंमें कई सौकी वृद्धि हुई है। देखनेमें कुछ असाधारण मोटे ताजे लाल छुपा (=भोटिया चपकन)के हाशियेमें छिपे पाये गये। बर्फ रात भर गिरती ही रही छोलदारीपरसे कई बार बर्फको झाड़ना पड़ा।

प्रातःकाल उठकर देखा तो सारी भूमि, जो कि कल नङ्गी थी, आज एक फुटसे अधिक बर्फसे ढँकी हुई है। बर्फसे पिघलकर बहती पतलीधारमें जाकर हाथ मुँह धोया। आगके लिए तो कण्डा अब

मिलने ही वाला न था। खानेके लिए कुछ बिस्कुट और थोड़ी मिठाई मिली। सुमति-प्रज्ञने नीचे-ऊपर चारों-ओर श्वेत हिम-राशिको देखकर आप ही आकर मुझसे कहा—यहाँ जब इतनी बर्फ है, तो लापर तो और भी होगी। और अभी हिम वर्षा हो ही रही है; इसलिये हमें लप्-ची जानेका इरादा छोड़ देना चाहिए। मैं तो यह चाहता ही था अन्तमें कुशोक्से कहकर हमने बिदाई ली। उन्हे तो लप्-ची जाना था। अब फिर मुझे अपना बोझा लादना पड़ा। रास्ता बर्फसे ढँक गया था, दूनके सहारे अन्दाज़से हम लोग नीचेकी ओर उतर रहे थे। उतराईके साथ-साथ बर्फकी तह भी पतली होती जारही थी। अन्तमें बर्फ-रहित भूमि आ गयी। अब बर्फकी जगह छोटी-छोटी जलकी बूँदें बरस रही थीं। दस बजेके करीब भीगते-भागते हम दोनों फिर टशी-गङ्में पहुँचे। आसन गोवा (=मुखिया)के घरमें लगाया। मुखियाने अगले पडाव तकके लिए बोझा ले चलनेवाले आदमीका प्रबन्धकर देनेको कहा। इस प्रकार २ जूनको टशी-गङ्में ही रह जाना पड़ा। हम दोनोंके जूतेका तला फट गया था इसलिये मुखियाके लड़केसे कुछ पैसा देकर नया चमड़ा लगवाया। दिनको चमरीकी छाछमें सत्तू मिलाकर खाया तथा चाय पी, रातको भेड़की चर्बी डालकर सुमतिप्रज्ञने थुक्पा तैयार किया। पीछे मालूम हुआ कि कुशोक्की पार्टीके कुछ लोग रास्ता न पा बर्फकी चकाचौंधसे अन्धे होकर लौट आये। सुमति प्रज्ञने कहा—हम लोगोंकी भी यही दशा हुई होती, यदि आगे गये होते।

२. थोङ-ला पारकर लङ्कोरमें विश्राम

चाय-सत्तू खाकर, आदमीके ऊपर सामान लाद ३ जूनको सात-आठ बजेके करीब हम रवाना हुए। रास्ता उतराई और बराबरका था; उसपर मैं बिलकुल खाली, और सुमति-प्रज्ञका बोझा भी हल्का था। आदमीके लिए एक-डेढ मन बोझा तो खेल मात्र था। आगे चलकर

कोसीके बायें किनारे मुख्य रास्ता भी आ मिला। ग्यारह बजेके करीब हम तर्ग्ये-लिङ् गांवमें पहुँच गये। सुमति-प्रज्ञ चौथी बार इस रास्तेसे लौट रहे थे। इसलिए रास्तेके पड़ावोंपर जगह-जगह उनके परिचित आदमी थे। यहाँ भी मुखियाके घरमें ही हमने आसन लगाया। गृह पत्नी पचास वर्षके ऊपरकी एक बुढिया थी, किन्तु गृह पति उससे बहुत कम उम्रका था। तिब्बतमें ऐसा अकसर देखनेमें आता है। मुझे तो पहले उनका पति पत्नीका सम्बन्ध ही नहीं मालूम हुआ। जब गृहपतिने गृह-पत्नीके बालकोंको खोल दिया, और उनके धोये जानेपर चाङ् प्रदेशके धनुषाकार शिरोभूषणको केशोंमें संवारनेमें मदद दी, तब पूछनेपर असल बात मालूम हुई।

सुमति-प्रज्ञ वैद्य तान्त्रिक और रमल फेंककर भाग्य बतलाने वाले थे। चाय पीकर वह गांवमें घूमने गये। थोड़ी देरमें आकर उन्होंने मुझे साथ चलनेके लिए कहा। पूछनेपर मालूम हुआ कि वे पचास वर्षकी एक धनाढ्य बांझ स्त्रीको सन्तान होनेके लिए यन्त्र देने जारहे हैं। उनको भोटिया अक्षर लिखना नहीं आता था। इसलिए मेरी जरूरत पड़ी। मैं सुनकर हँसने लगा। मैंने कहा—बुढ़ियापर ही आपको अपना यन्त्र आजमाना है? उन्होंने कहा—वहाँ मत हँसना, धनी स्त्री है, कुछ सत्तू मक्खन मिल जायगा, और जो कहीं तीर लग गया, तो आगेके लिए एक अच्छा यजमान हो जायगा। मैंने कहा—तीर लगनेकी बात तो जाने दीजिये; हां! तत्कालको देखिये। घरके दर्वाजेके भीतर गये। लोहेकी जञ्जीरमें बंधा खूँख्वार महाकाय कुत्ता ऊपर टूटने लगा। खैर! घरका छोटा लड़का अपने कपड़ेसे कुत्तेका मुंह ढांककर बैठ गया, और तब हम सीढ़ीपर चढ़न पाये। सुमति-प्रज्ञने गृहपत्नीको औषध-यन्त्र और पूजा मन्त्र दिया। गृह-पत्नीने दक्षिणा सत्तू कुछ चर्बी और चाय दी। वहांसे लौटकर हम अपने आसनपर आये।

दूसरे दिन सबेरे आदमीके साथ आगे चले। यहाँ गांवोंके पास

भी वृक्ष न थे। खेत अभी अभी बोये जा रहे थे। लाल ऊनके गुच्छोंसे सुसज्जित बडे-बडे चमरोंके हल खेतोंमें चल रहे थे कहीं-कहीं हलवाहे गीत भी गारहे थे। दोपहरके करीब हम या लेप् पहुँचे। यालेप्से थोड़ा नीचे पुरानी नमककी सूखी झील है। या लेप्में पुराना चोनी किला है। थोड़ी दूरपर नदीके दूसरे किनारेपर भी कच्ची दीवारोंका एक टूटा किला है। चीनके प्रभुत्वके समय या लेप्के किलेमें कुछ पल्टन रहा करती थी। कुछ सर्कारी आदमी रहते तो आज भी हैं, किन्तु किला श्रीहीन मालूम होता है। घर और दीवार बेमरम्मतसे दिखाई पडते हैं। एक परिचित घरमें सत्तू खाया और चाय पी। सुमति-प्रज्ञने गृह पत्नीको बुद्ध-गयाकी प्रसादी - कपडेकी चिट —दी। लम्-यिक =राहदारी) यहा ले लिया जाता है, आगे उसकी खोज नहीं होती, इसलिए एक आदमीको ठिकानेपर पहुचानेके लिए कहकर दे दिया। गाँवसे बाहर निकलते ही एक बडा कुत्ता हड्डी छोड़कर हमारी ओर दौड़ा। इन अत्यन्त शीतल स्थानोंके कुत्तोंको जाड़ोंमें लम्बे बालोंकी जड़में मुलायम पशम उग आती है, जिसमें उनपर सर्दीका प्रभाव नहीं होता। गर्मीमे यह पशम बालोंसे साँपकी केचुलकी भाति निकल निकलकर गिरने लगती है। आजकल गर्मीकी वजहसे उसकी भी पशमकी छल्ला गिर रही थी। खैर हम लोग तीन थे। कुत्तेसे डर ही क्या? या-लेप्से प्रायः तीन मील आगे जानेपर ले-शिङ् डोल्मा गुम्बा नामक भिक्षुणियोंका विहार दाहिनी ओर कुछ हटकर दीख पडा। अब नदीकी धार बहुत ही क्षीण हो गयी थी। थोड़ा आगे जाकर नदीको पारकर हम दूसरे किनारेसे चलने लगे। यहा दूर तक जोते हुए खेत थे, जिनमें छोटी-छोटी नहरों द्वारा नदीका सारा पानी लाया जारहा था। कुछ दूर और आगे जाकर हम थोलिङ् गाँवमें पहुँचे। गावमें बीस पचीस घर हैं। यह स्थान समुद्र तलसे तेरह चौदह-हजार फुटसे कम ऊँचा न होगा। तर्ग्यँ-लिङ् से यहाँ तकके लिए आदमी किया था। पहले वह अपने परिचित घरमें लेगया।

जब कभी राज-कर्मचारी तथा दूसरे बड़े आदमी आते हैं वे इसी घरमें ठहराये जाते हैं। हमें यह सुनसान बड़ा घर पसन्द न आया। अन्तमें सुमति-प्रज्ञ अपने परिचितके घर लेगये। यह गावके बीचमें था। कुछ स्त्री-पुरुष धूपमें बैठे ताना तनते, और सूत कातते थे। सुमति प्रज्ञने जाते ही जू दन्‌ज (आगन्तुकका सलाम) किया। उनके परिचित कई आदमी निकल आये। अन्तमें एक घरमें हमारा आसन लगा। घर दो-तल्ला था। चारों ओर कोठरियाँ थीं। धुँआ निकलनेके लिए भट्टीकी छतमें बड़ा छेद था।

सुमति-प्रज्ञने चाय निकालकर गृहपत्नीको पकानेको दी। गृह-पत्नीके मुँह-हाथपर तेल मिले काजलकी एक मोटी तह जमी हुई थी, वही हालत उनके ऊनी कपड़ोंकी भी थी। उन्होंने झट उसे कई मुँहोंके चूल्हेपर पानी डालकर चढा दिया, और भेडकी लेंड़ी झोंककर भाथीसे आग तेज करना शुरू किया। चाय खौलने लगी। तब उसमें ठण्डा पानी मिलाया गया। लकडीके लम्बे पोंगेमें चायका पानी डालकर नमक डाला, फिर सुमति-प्रज्ञने एक लोंदा मक्खनका दिया। मक्खन डालकर आठ दस बार मथनी घुमाई गयी, और चाय मक्खन सब एक हो फेन फेंकने लगा। वस्तुतः यह चाय मथनेकी एक दो ढाई हाथ लम्बी पिचकारीसी होती है जिसका एक ही ओरका खुला हिस्सा ढक्कनसे बन्द रहता है। मथनीको नीचे ऊपर खींचनेसे हवा भीतर जाती है उससे और पिचकारीकी भीतरी गोल चिप्पीसे भी चाय और मक्खन जल्द एक हो जाते हैं।

यहाँसे हमें थोङ्-ला (=थोङ् नामक घाटा) पार करना था। आदमी ले चलनेकी अपेक्षा दो घोडे लेना ही हमने पसन्द किया। यहासे लङ्-कोरके लिए अठारह टङ्के (=दो रुपये) पर हमने दो घोडे किरायेपर किये। दूसरे दिन आदमीके साथ घोडेपर सवार हो हम आगे चले। इस बहुत ही विस्तृत वनमें—जिसके दोनो ओर वनस्पति-हीन अधिकतर मिट्टीसे ढँके पर्वतोंकी छोटी शृङ्खला थी—

कोसीकी क्षीण-धारा धीमी-गतिसे वह रही थी। रास्तेमें कई जगह हमें पुराने उजडे घरों और ग्रामोंके चिह्न मिले कुछ की दीवारें तो अब भी खड़ी थीं। मालूम होता है, पहले यह दून बडी आवाद थी। तब तो कोसीकी धार भी बड़ी रही होगी, अन्यथा इन विस्तृत खेतोंको वह सींच कैसे सकती? गावमें सुना था कि पिछले साल थोङ्-लाके रास्तेमें दो यात्रियोंको किसीने मार डाला। भोटमें आदमीकी जान कुत्तेकी जानसे अधिक मूल्यवान् नहीं। राज-दण्डके भयसे किसीकी रक्षा नहीं हो सकती। सुमति-प्रज्ञ इस विषयमें वहुत चौकन्ने थे।

ज्यों-ज्यों हम ऊपर जारहे थे,वैसे-वैसे दून सँकरी होती जाती थी। अन्तमें हम लहर्से (=लाके नीचे खान-पान करनेके पड़ाव)पर पहुँचे। कुछ लोग पहले ही 'ला"के उसपारसे इधर आकर वहाँ चाय बना रहे थे। भोटमें भाथी अनिवार्य चीज है उसके बिना कण्डों और भेडकी लेंडियोंसे जल्दी खाना नहीं पकाया जा सकता; बाज वक्त तो कण्डे गीले मिलते हैं,जो भाथीके सहारे ही जलाये जा सकते हैं। हमारे पास भाथी न थी, इसलिए हमने अपनी चाय भी दूसरोंकी चायमें मिला दी। फिर घोड़ोंको तो थोड़ा चरनेके लिए छोड़ दिया गया, और हम लोग चाय पीने और गप करनेमें लग गये। मालूम हुआ, लापर बर्फ नहीं है। इन आये हुए लोगोंका मुँह पुराने ताँबेका-सा हो गया था। तिब्बतमें (जोत-ला) पार करते समय शरीरका जो भी भाग खूब अच्छी तरह ढँका नहीं रहेगा, वही काला पड़ जायेगा; और यह कालापन एक डेढ हफ्ते तक रहता है।

चाय पीनेके बाद हम लोग फिर घोडेपर सवार हुए। अब चढ़ाई थी, तो भी कड़ी न थी, या यह कहिये कि हम दूसरों की पीठपर सवार थे। आगे चलकर घाटी बहुत पतली हो गयी। वह नदीकी धार मात्र रह गयी, जिसमें जगह-जगह और कहीं-कहीं लगातार पुराने बर्फकी सफेद मोटी तह जमी हुई थी। हमारा रास्ता कभी नदीके इसपारसे था, कभी उसपारसे। फिर धार छोड़कर दाहिनी ओर तिर्छी पहाड़ीपर भूल-

सुलइयाँ करते हम चढने लगे। घोडे रह-रहकर अपने-आप रुक जाते थे, जिससे मालूम होता था कि हवा बहुत हल्की है। अन्तमें हमें काले-नीले सफेद कपड़ोंकी झण्डियाँ दिखाई पड़ीं। मालूम हुआ लाका शिखर आ गया। भोटमें हर लाका कोई देवता होता है। उसके पास आते ही लोग घोडेपरसे उतर जाते हैं, जिसमें देवता नाराज न हो जाय। हम भी उतर गये। सुमति प्रज्ञ और दूसरे भोटियोंने 'शो शो शो" कह देवताकी जय मनायी। इस लापर खडे हो हमने सुदूर दक्षिण और दूर तक हिमाच्छादित पहाड़ों को देखा, यही हिमालय है। और तरफ भी पहाड ही पहाड़ देखे, किन्तु उनपर वर्फ न थी। दूसरी ओरकी दूनमें अवश्य कहीं कहीं थोड़ी बर्फ देखी। यहाँ अब उतराई शुरू हुई। मेरा घोड़ा सुस्त था, और मैं मार न सकता था, इसलिए मैं थोड़ी ही देरमें पिछड़ गया। सुमति-प्रज्ञ दूसरे भोटियोंके साथ आगे बढ गये। रास्तेमें आदमी भी न मिलता था, इस प्रकार धीरे-धीरे चलते, कभी-कभी आस-पासकी बस्तियोंमें पूछते, उन लोगों-के पहुँचनेके तीन घण्टे बाद चार बजे मैं लङ्कोर पहुंचा। यह कहनेकी जरूरत नहीं कि सुमति-प्रज्ञ बहुत खफा हुए।

६ लंकोर-तिङ्-री

लकोर एक छोटासा गाँव है, जोकि तिङ्-रीके विशाल मैदानके सिरेपर बसा हुआ है। लङ्-कोरकी गुम्बा (= विहार) बहुत प्रसिद्ध थी। तन्जूर[१]की कुछ पुस्तकोंका यहाँ संस्कृतसे भोट भाषामें अनुवाद किया गया था। गाँवके पासके पहाड़ पर अब भी पुराने मठकी दीवारे खड़ी देख पड़ती हैं। यह विहार पहले गोर्खा भोट युद्धमें गोर्खों द्वारा लूटा और उजाड़ा गया, तबसे फिर आबाद न हो सका। पुराने भिक्षुओंके वंशज अब भी लकोर गाँवमें हैं। इन्होंने एक छोटा

---

१. कजूर बौद्ध त्रिपिटकका तिब्बती अनुवाद, तजूर—कजूरसे सम्बद्ध या उसकी व्याख्या आदिके ग्रन्थोंका संग्रह।

मन्दिर भी बनवाया है। ये भोटके सबसे पुराने बौद्ध सम्प्रदाय निग-मा-पा (=पुरातन)के अनुयायी हैं जिसका आरम्भ आठवी शताब्दीमें हुआ। ग्यारहवी शताब्दीमें कर् युग्-पा सम्प्रदायका आरम्भ हुआ; तेरहवींमें सक्या पाका, और सोलहवींमें गेलुक्पाका। यही चार तिब्बत-के प्रधान वौद्ध संप्रदाय हैं। छः जूनको भी सुमति-प्रज्ञ यहीं रहे। पूछनेपर उन्होंने अपनी कठिनाई कही, कि हमको इस यात्रामें कुछ जमा भी करना पडता है, नही तो ल्हासामें जाकर खायेंगे क्या ? इसपर मैंने कहा – यदि आप जल्दी ल्हासा चलें, और रास्तेमे देरी न करे, तो मैं आपको ल्हासामें पचास टङ्का दूँगा। उन्होंने इसे स्वीकार किया।

दूसरे दिन सात जूनको चलना निश्चय हुआ। आदमीकी इन्तजारमे दोपहर हो गयी, आखिर आदमी मिला भी नहीं। लङ्कोरसे हमने अपने साथ कुछ सूखा मास और कुछ मक्खन ले लिया। दोपहर के वाद मैंने बोझा पीठपर उठाया और दोनों आदमी चले। लङ्कोरसे तिङ्-री चार-पाँच मीलसे कम नही है लेकिन देखनेमें पूर्व और तिङ्-रीका किला बहुत ही पास मालूम होता था। इसका कारण हवाका हल्कापन हो सकता है। यद्यपि यह मैदान समुद्र-तलसे चौदह हजार फीटसे अधिक ऊँचाईपर है, तो भी निखरी धूपमें चलते हुए हमें बहुत गर्मी मालूम हो रही थी। मैदानमें जहाँ तहाँ कुशकी तरह छोटी छोटी घास भी उगी हुई थी। चरने वाले जानवरोंमें भेड़ बकरी और गायके अतिरिक्त कहीं-कही जङ्गली गदहे (=क्याङ्) भी थे। इधरके कुत्ते बहुत बडे और खूँख्वार थे। मैं गाँवमें जानेसे बराबर परहेज किया करता था। धूपमें प्यास लग आयी। सुमति-प्रज्ञने चाय पीनेकी सलाहकी। आगे हमें छोटासा गाँव मिला। घर छोटे छोटे थे। एक गरीब बूढा हमें अपनी झोपडीमें लेगया। वहाँ चाय बनने लगी। बूढ़ेने मेरे साथीसे और सब बातें पूछते-पूछते रुङ् ग्ये ओपामें (अमिताभ बुद्ध के बारेमें भीपूछा। भोटिया लोग टशी लामाको अमि-

ताभ बुद्धका अवतार मानते हैं, इसलिए उन्हें अमिताभ भी कहते हैं। जब उसने सुना कि वे चीनमें हैं और अभी उनके लौटनेकी कोई आशा नहीं है, तो उसने बड़े करुण स्वरसे कहा—क्या "सङ ग्ये ओपामे" फिर भोट न आयेंगे? साधारण भोटियोंमें ऐसे सरल विश्वास वाले लोग बहुत हैं। अजनबियोंको देखकर कुत्तोंने आकर दर्वाजा घेर लिया। गृहपतिने उन्हें डण्डा लेकर दूर भगाया।

चाय पीते हुए सुमति-प्रज्ञने कहा पासके गाँवमें शेकर्-विहारकी खेती होती है। उसके प्रधान भिक्षु नम्-से मेरे परिचित् हैं, वहाँ चलनेसे रास्तेके लिए थोड़ा मास-मक्खन भी मिल जायगा। वहाँसे बोझा ढोनेके लिए आदमीके मिल जानेकी भी आशा है। अन्तिम बात मेरे मतलबकी थी। इसलिये मै भी गे-लोड् (=भिक्षु) नम्सेके पास जानेके लिए राजी हो गया। चाय पीनेके बाद हम गे-लोड् नम्सेके मठकी ओर चले, जो कि गाँवसे दिखलाई देता था। कुत्तोंसे बचानेके लिए बेचारा बूढा पानीकी धार तक हमारे साथ आया। गे लोड् नम्सेके मठके चारों ओर भी तीन चार कुत्ते बँधे हुए थे। दूर-से ही हमने आवाज दी। एक आदमी आया और कुत्तोंसे हमारी रक्षा करते हुए घरपर ले गया। गे लोड् नम्सेने खिड़कीसे झाँककर देखा और कहा—आ हो! सोग्-पो (=मगोल) गे-लोड् (=भिक्षु) हैं। हम लोगोंने अपना आसन नीचे रसोईके मकानमें लगाया। चाय और सत्तूका बर्तन सामने रखा गया। सत्तू खानेकी तो मुझे इच्छा न थी, मैंने केवल चाय पी। थोड़ी देर हम वही बैठे। यहाँ शेकर् गुम्बाकी जागीर है जिसमें खेती भी होती है। इस समय मुनीम साहब हिसाब लगा रहे थे। देखा—हड्डी और पत्थरके टुकड़ोंको गिन-गिन-कर हिसाब लगाया जारहा है। फिर गिन-गिन कर उन टुकड़ोंको अलग-अलग बर्तनोंमें रखा जा रहा है। हम लोग जरूर उनकी इस गिनतीपर हँसेंगे, किन्तु मुझे यह भी विश्वास है कि उनके हिसाबके तरीकेको सीखनेमें भी हमें कुछ समय लगाना पड़ेगा।

चाय पीनेके वाद हम कोठेपर गे लोड्_ नम्-सेके पास गये। नम्-से वडे प्रेमसे मिले। अभी वे विशेष पूजामें लगे हुए थे। उनके पूजाके कमरेमें मूर्त्तियाँ और सत्त् मक्खनके तोर्मा (=वलि-पिण्ड) बड़ी सुन्दरतासे सजाये गये थे। इन्होंने फिर चाय पीनेका आग्रह किया। गङ्गा-जमुनी प्याला-दानपर असली चीनका प्याला रखा गया। मुझे थोड़ी चाय पीनी पड़ी। सुमति प्रज्ञने कहा—आप दो तीन दिन यहाँ ठहरें, मैं पासके गाँवोंमे अपने परिचितोंसे मिलना चाहता हूँ। हमारा आसन कजूरके पुस्तकालयमें लगाया गया। यहाँ एक पुराना हस्त लिखित कजूर है। मैंने उसे खोलकर जहाँ-तहाँ पढ़ना शुरू किया। कजूरमें एक सौसे अधिक वेष्ठन हैं। इसका हर एक वेष्ठन दस-सेरसे कम न होगा। सुमति-प्रज्ञने पूछा, यदि तुमको दे दिया जाय, तो तुम इसे ले जाओगे? मैंने कहा - बड़ी ख़ुशीसे।

दूसरे दिन सुमति प्रज्ञ तो गाँवोंकी ओर चले गये, और मै वहाँ बैठा पुस्तक देखने लगा। दोपहर तक वह लौट आये और कहा—अब आगे चलना है। उसी दिन (आठ जूनको) दोपहरके वाद हम वहाँसे तिङ्_रीकी ओर चले जिसका फ़ासला दो मीलसे कम ही था। सुमति प्रज्ञने कहा—पुराना जोङ्_पोन् (=जिलाधीश) मेरा परिचित है, उसीके घर ठहरेंगे। मैंने वहुतेरा विरोध किया, लेकिन उन्होंने कहा—कोई डरनेकी वात नहीं है, यहाँ कोई आपको ग्य गर्-पा (=भारतीय नहीं समझेगा। तिङ्-री आस-पासके पर्वतोंसे अलग एक छोटी पहाड़ी है। इसके ऊपर एक किला है, जो अब वे मरम्मत है। थोड़ी सी पल्टन अब भी इसमें रहती है। इसी पर्वतके मूलमे तिङ्-री कस्वा वसा हुआ है। यह कुत्तीसे वड़ा है। पुराने चीनियों-की कुछ सन्तान अब भी यहाँ वास करती है। नेपालियोंकी दूकानें यहाँ नहीं हैं। पुराने जोङ्_पोनका मकान वस्तीके एक किनारेपर था हम लोग उनके मकानमें गये। सुमति प्रज्ञको देखते ही वह आगे वढकर पीठ से बोझा उतारने लगे। पीछे नौकरोंने आकर हमारा बोझा

तिब्बतमें भोजन-सामग्रीका उलटना-पलटना सब चम्मच और कड़छीके सहारे होता है। हाथका सीधा छूना बहुत कम होता है। थुक्पा-चाय पीते नौ-दस बज गये। तब गृहपति वीणा बजाते लौटे। हम लोगोंके खाने-पीनेके बारेमें पूछा। सुमति-प्रज्ञने ल्हासा चलनेको कहा। उन्होंने कहा—क्या करें! चाम् (=चाम-कुशोक=उच्च श्रेणीकी महिला) नहीं जाती है। मेरे ल्हासामें रहते वक्त भोटिया नव-वर्षके समय ये दम्पती ल्हासा पहुँचे थे। वहाँपर मामूली कपड़ोंमें थे और मैं लाल रेशमको साटकर बनाये हुए पोस्तीन तथा बूट पहिने था। मैंने पहचान लिया और उन्होंने भी मुझे पहचान लिया। उस वक्त फिर उन्होंने मुझे लदाखी कहा। मैंने तब सब बात कह दी और साथ ही उनके सद्-व्यवहारके लिए बड़ी कृतज्ञता प्रकटकी। ल्हासामें बहुधा लोगोंको अपनी हैसियतसे कमकी वेश-भूषामें रहना होता है जिसमें कहीं अधिकारियोंकी दृष्टि उनके धनपर न पड़े। तिङ्-रीमें इन्होंने अब कई खच्चर पाल लिये हैं और कुत्ती तथा ल्हासाके बीच व्यापार करते हैं।

दूसरे दिन हमने चलनेके लिए कहा। गृहपतिने और दो-चार दिन रहने का आग्रह किया। लेकिन जब हम रुकनेके लिए तैयार न हुए तो उन्होंने कुछ सूखा मास चर्बी सत्तू और चाय रास्तेके लिए दी। सवेरे नाश्ता करके हम तिङ्-रीसे चले। वहाँ भी कोई आदमी बोझा लेजाने वाला न मिल सका। इसलिये मुझे अपना असबाब पीठपर लादना पड़ा। रास्ता चढ़ाईका न था। हम फुङ् नदीके दाहिने किनारे पूर्वकी ओर चल रहे थे। यहाँ आस-पासके पहाड़ बहुत छोटे-छोटे हैं घण्टों चलनेके बाद हमें नदीकी बाईं ओर शिव्-रीका पहाड़ दिखाई पड़ा। जहाँ तिब्बतके और पहाड़ अधिकतर मिट्टीसे ढँके रहते हैं वहाँ इस पहाड़में पत्थर ही पत्थर मिलता है। इस विशेषताके कारण कहावत है कि यह पहाड़ भोटका नहीं है, ग्य-गर् (—भारत)का है। यह भोट देशमे बहुत ही पवित्र माना जाता है। आजकल इसकी

परिक्रमाका समय था। इसकी परिक्रमामें चित्रकूटकी परिक्रमाकी भाँति जगह-जगह अनेक मन्दिर हैं। कितने ही लोग साष्टाङ्ग दण्डवत् करते हुए परिक्रमा करते हैं। आठ बजेसे चलते-चलते दोपहरके बाद हमें गाँव मिला। वहाँ हम चाय पीने लगे। थक तो मैं ऐसे ही गया था, चाय पीते और गप करते देर हो गयी। यह भी मालूम हुआ कि अगला गाँव बहुत दूर है, इसलिए वहीं रह गये। सन्ध्या समय गृह स्वामीने कहा—यहा जगह नहीं है। गावके मध्यमें एक खाली घर है, आप वहा जाय। इसपर हम लोग वहा चले गये। मकानमें दो कोठरिया थीं। एकमें कोई बीमार भिखमङ्गा था, एकमें हमने आसन लगाया। अँधेरा होते-होते सुमति-प्रज्ञने कहा—हमारा यहा रहना अच्छा नहीं। गावमें बहुत चोर हैं। धनके लोभसे रातको हमपर हमला होगा। क्या जानें इसी खयालसे उसने अपने घरसे सूने घरमें भेजा है। मैंने उनके बचनोंका विरोध नहीं किया। उन्होंने जाकर एक बुढियाके घरमें रहनेका प्रबन्ध किया और हम अपना आसन वहा उठा लेगये। बुढ़ियाके घरमें दो और मेहमान ठहरे हुये थे। वे लोग शिव्‌रीकी परिक्रमा करके आये थे। उन्होंने अबकी साल बहुत भीड़ बतलाई। सुमति प्रज्ञका मन परिक्रमा करनेके लिये ललचाने लगा। मैंने कहा — अबकी बार ल्हासा चलें अगले साल हम दोनों आयेंगे। उस वक्त कोई चिन्ता भी यात्रा करनेमें न होगी। मैंने वहीं कुछ पैसे उनमेंसे एकको दिये कि वह इन्हें हमारी ओरसे शिव-री रेन् पो-छेको चढा दे। इसी गावमें हमने एक बहुत सुन्दर वज्र-योगिनीकी पीतलकी मूर्ति देखी। मालूम हुआ कि अङ्ग्रेजोंके साथ जो लड़ाई हुई थी उसमें जब लोग इधर-उधर भाग रहे थे, तो इस गावके किसी सिपाहीने इसे अपने कब्जेमें किया था। उस युद्धमें तो वस्तुतः अंग्रेजी सेनाकी अपेक्षा भोटिया सेनाने ही अधिक लूटकी थी।

प्रातः काल हमने प्रस्थान किया दस बजे हमें अगला गाँव मिला। यहाँ सुमति-प्रज्ञका परिचित पुरुष था। हम पहले एक घरमें

गये, किन्तु सुमति-प्रज्ञको वह घर पसन्द न आया। गावमें बड़े-बड़े कुत्ते थे और उस बडे घरमें एक विशाल काला कुत्ता दर्वाजेपर ही बँधा था। हम एक लड़केको लेकर उधर चले लड़का आगे-आगे था, बीचमें सुमति-प्रज्ञ और मैं सबसे पीछे। कुत्ता देखते ही भूँकने लगा। पास जाते ही जञ्जीरपर जोर मारने लगा और पास पहुँचते पहुँचते वह जञ्जीर तुड़ाकर हमारे ऊपर टूट पड़ा। सुमति-प्रज्ञ तो आगे बढकर कोठेकी सीढ़ीपर पहुंच गये। लड़का बाहर भाग गया उसके साथ ही मैं भी बाहर भाग गया। सुमति-प्रज्ञके पास कुत्ता पहुँच गया लेकिन तब तक घरके आदमी आ गये। पीछे मुझे भी लोग ले गये। सुमति-प्रज्ञ बहुत नाराज हुए और यह वाजिब भी था; लेकिन वे यह भूलते थे कि चौदह वर्ष भोट में रहकर उन्होंने यह निर्भयता पायी है। वह बराबर हमें समझाते थे कि कुत्तेका जितना बडा शरीर होता है, उसके अनुसार उसका दिल नही होता।

चाय और भोजनके बाद हम चलनेके लिए तैयार हुए। गृह-स्वामी तो नहीं था, लेकिन गृह-स्वामिनीने तीन चार सेर सत्तू देना चाहा। सुमति प्रज्ञका बोझा भारी था, उन्होंने मुझे उसे बाँध लेने के लिए कहा। बेचारे समझते थे कि मुझे भी अपने डील डौलके मुताबिक बोझा ले चलना चाहिए। उन्हे क्या पता था कि इतने ही बोझेसे मुझपर कैसी बीत रही है। सत्तू आखिर वहीं छोड़ना पडा जिसके लिये वे बहुत ही कुपित हुए। वहा से चलकर हम चा-कोरके पास पहुँचे। चा-कोरके पासके पहाड़पर अब भी पुराने राज्य-प्रासादकी दीवारें हैं। इसके ऊपरी भागपर पत्थर जोड़कर किला भी बना था। देखनेसे मालूम होता है चा-कोरका राजवंश किसी समय बड़ा प्रभावशाली रहा होगा। किलेके पहले ही हमें कुछ टूटी-फूटी मिट्टीकी दीवारें मिलीं। मालूम हुआ पहले यहाँ चीनी फौज रहा करती थी। यहाँ बड़ा कड़ा पहरा रहता था। बिना आज्ञा-पत्रके कोई पार नहीं हो सकता था। चा-कोर गाँवकी कुछ इमारते भी बतलाती हैं कि यह

दिन पर-दिन अवनतिको प्राप्त होता गया है। यहां सुमति-प्रज्ञका परिचित पुरुष तोघर पर नहीं मिला, किन्तु किसी प्रकार बहुत कहने-सुनने पर हमें रहनेकी जगह मिली। सन्ध्याको पहले कुछ छोटे छोटे ओले पड़े और फिर खूब वर्षा भी हुई। बाहरके आँगनमें पानी भर गया और मिट्टीकी छतमी जहा-तहाँ टपकने लगी। शामको घरकी बुढिया भी आ गयी। वह सुमति-प्रज्ञको जानती थी। सुमति-प्रज्ञ मुझसे बहुत चिढे थे, इसलिये बुढ़ियासे मेरी निन्दा भी करते रहे। मैंने उसका ख्याल भी न किया। मैं इतना अच्छी तरह जानता था कि वह दिलके अच्छे आदमी हैं।

ग्यारह जूनको सवेरे ही हम चले। थोड़ी दूर पूर्व और चल कर हमने फुङ् नदी पारकी। धार काफ़ी चौडी तथा जाँघभर गहरी थी। मालूम होता था, पानीकी ठण्डकमें जाघ कटकर गिर जायगी। बड़ी तकलीफके साथ धार पारकी। धार पारकर भेड़ोंके चरवाहोंके पास जाकर चाय पी और फिर आगे बढे। इधर मुझे बोझा लेकर चलना पड़ रहा था। सत्तूसे मुझे स्वभावतः रुचि नहीं है। दूसरी चीज पेटभर खानेके लिए प्राप्त नही हो रही थी, इसलिये शरीर कमज़ोर हो गया था। रास्तेमें एक जगह और हमने चाय पी। उस समय लङ्कोरके कुछ आदमी शे-कर्-जोङ्को जा रहे थे। हम भी उनके साथ हो लिये। मैं इस वक्त हिम्मतपर ही चल रहा था। रास्तेमें दो छोटी-छोटी जोतें (=ला) मिलीं। दूसरी जोतको पार करते करते मै चलनेमें असमर्थ हो गया। आखिर लङ्-कोर वाले एक आदमीने मेरा बोझा लिया। खाली चलनेमें मुझे कोई कठिनाई न थी। पहाड़से उतरकर हमने एक छोटी सी धार पार की। मालूम हुआ, अगले पतले पहाड़की आड़में शे कर्-जोङ् है। थोड़ी देर एक जगह विश्रामकर हम फिर चले, और तीन-चार बजेके करीब शे-कर् पहुच गये।

९७. शे-कर् गुम्बा

शे-कर्में जहाँ लङ्कोर वाले लोग उतरे, वहीं हम भी उतर

गये। यह एक भूतपूर्व भोटिया फौजके सिपाहीका घर था। सुमति-प्रज्ञका परिचित भिक्षु भी शेकर्-गुम्बामें था, लेकिन वे यहाँ नहीं गये। इस समय मेरा पैर भी फूट गया था। आगे बोझा ढोकर चलने की हिम्मत भी न थी। यहाँसे टशी ल्हुन्पो तकका घोड़ा किरायेपर लेनेकी बात की। उसीकी इन्तजारमें ग्यारहसे चौदह जूनके दोपहर तक यहाँ पड़े रहे, लेकिन कुछ न हो सका। आनेके दिन ही हम शे-कर् मठके अवतारी लामाका निवास देखने गये। मन्दिर बहुत सुन्दर मूर्तियों और चित्रपटोंसे सज्जित है। लामा इस समय यहाँ नहीं हैं। उनका निवास राजप्रसाद की तरह सजा हुआ है। सामने सफेदाका एक छोटा बाग भी लगा है। गमलोंमें भी कितने ही फूल लगाये हुए हैं। तेरह जूनको हम शे-कर् गुम्बा देखने गये। गुम्बा बहुत भारी है। यहाँ पाँच छः सौ भिक्षु रहते हैं। गुम्बा एक पहाड़के नीचेसे शिखर तक चली गयी है। मन्दिर भी बडे-बडे सोने चाँदीके दीपकोंसे प्रकाशित हो रहा था। सुमति-प्रज्ञकी यद्यपि इच्छा न थी, तो भी हम यहाँके कुशोक् खेम्बो (=प्रधान पण्डित)को देखने गये। कुछ बौद्ध दर्शन सम्बन्धी बात हुई। पीछे तन्त्र और विनयपर बात चली। मैंने कहा—जहाँ विनय मद्य पान, जीव-हिंसा, स्त्री-संसर्ग आदिको वर्जित करता है, वहाँ तन्त्र (=वज्रयान में इनके विना सिद्धि ही नहीं हो सकती। यह दोनो साथ साथ कैसे चल सकते हैं? उन्होंने कहा—यह भिन्न-भिन्न अवस्थाके लोगोंके लिए हैं। जैसे रोगीके लिए वैद्य कितने खाद्योंको अखाद्य वतलाता है, लेकिन उसी पुरुषके नीरोग हो जानेपर उसके लिए वही भोजन पदार्थ खाद्य हो जाते हैं, ऐसे ही विनय साधारण-जनोंके लिए है और वज्रयान पहुँचे हुए लोगोंके लिए। ये प्रधान पण्डित ल्हासाकी सेरा गुम्बाके शिक्षित हैं तथा इनका जन्म स्थान चीन-सीमाके पास खाम् प्रदेशमें है। उन्होंने ल्हासा जाने वाले व्यापारीसे हम लोगोंको अपने साथ लेजानेकी सिफारिश की, और

तैयार होकर गुम्बामें आनेके लिए कहा। दूसरे दिन हम अपना सामान लेकर गुम्बामें आये, लेकिन मालूम हुआ कि सौदागर चला गया है। वहाँसे हम खच्चरवालोंके पास गये, वहाँ भी कोई प्रबन्ध न देखा। अन्तमें सुमति प्रज्ञने लङ्कोरके एक ढावा (=भिक्षु)को मुफ़्तमें ल्हासा-का तीर्थ करानेका लालच दिया। वह साथ चलनेके लिए तैयार हो गया।

१४ जूनको दोपहरके बाद लङ्कोरके आदमीको अपना बोझा दे हम रवाना हुए। नदी पार कर हमारा रास्ता नदीके बायें बायें नीचेकी ओर चला, फिर दूसरी आने वाली धारके दायें किनारेसे ऊपर की ओर। यह दून भी काफी चौड़ी थी। आगे नदीके किनारे कुछ छोटे छोटे वृक्ष भी दिखाई पड़े। खेतोंमें जौ गेहूँ एक बालिश्त उग आये थे और उन्हें नहरके पानीसे सींचा जा रहा था। चार बजेके करीब हम ये-रामें पहुँचे। यहाँ एक धनाढ्य गृहस्थ सुमति-प्रज्ञका परिचित था। उसका घर-गाँवसे अलग है। मकानके चारों कोनोंपर जंजीर-में चार महाकाय काले कुत्ते बँधे हुए थे। दूरसे आवाज देनेपर एक आदमी आया। वह द्वार वाले कुत्तेको अपने कपड़ेसे छिपाकर बैठ गया, फिर हम भीतर गये। वहाँ पहुँचते ही लङ्कोर वाला आदमी रोने लगा—अपनी माताका मैं अकेला पुत्र हूँ,—वह मर जायगी, ये भयङ्कर कुत्ते मुझे काट खायेंगे! मैंने बहुत समझाया। असाध्य देख कर मैंने जाने देनेके लिए कहा। सुमति-प्रज्ञ उसे धमका रहे थे। अन्तमें मैंने उसे जाने देनेके लिए जोर दिया। दिन थोड़ा था, इसलिये जल्दीमें वह अपनी चीजोंके साथ सुमति-प्रज्ञकी छ सात सेर सत्तूकी थैली भी लेता गया। हम दोनोंको गृह स्वामी घरके भीतरी भागमें ले गया। वहाँ चाय पीते वक्त सत्तू निकालने लगे तो थैली गायब थी। सुमति-प्रज्ञ वापिस जानेकी तैयारी करने लगे। मैंने कहा—जाने दो, गया सो गया। सुमति प्रज्ञ बोले— तुमने उस दिनका सत्तू भी नहीं लेने दिया, आज इस सत्तूके बारेमें भी ऐसा ही कह रहे हो।

मैंने कहा—उसको गये घण्टा भर हो गया है, उससे भेंट शे-कर् में ही हो सकेगी और वहाँ पहुँचनेसे पहले ही रात हो जायगी। हमारी बात सुनकर गृह स्वामीने पाँच छः सेर सत्तू लाकर हमारे सामने रख दिया। मैंने कहा लो, जितना गया उतना मिल गया। तब वह कुछ शान्त हुए। उस समय एक दर्जी उस घरमें कपड़ा सी रहा था। पूछनेपर मालूम हुआ, वह उसी गाँवका है जिस गाँवके मुखियाके नाम शे कर्के खेम्बोने घोड़े का प्रबन्धकर देनेके लिए चिट्ठी दी थी। घरके मालिकसे मालूम हुआ कि यहाँ आदमी या घोड़ा नही मिल सकता। आखिर हमने उसी दिन उस दर्जीके साथ उस गाँवमें जानेका निश्चय किया। सूर्यास्तके समय हम उस घरसे निकले। उस आदमी ने मेरा सामान आग्रह-पूर्वक स्वयं उठा लिया। कुछ रात जाते-जाते हम उस गाँवमें पहुंच गये और उसने हमें मुखियाके घर पहुँचा दिया। मुखियाको हमने चिट्ठी दी। उसने पढ़कर कहा—घोड़ा तो इस समय नहीं है। मैं कल आदमीसे आपको लो-लो पहुंचवा दूंगा और वहाँसे घोड़ा मिल जायगा।

दूसरे दिन बडे सवेरे ही आदमीपर सामान रखकर हम चल पडे। आठ बजेके करीब हम लो-लो पहुंच गये। गाँव तो बीस पचीस घरोंका मालूम होता है किन्तु लकड़ीके अभावसे मकान सभी छोटे-छोटे हैं। आदमीने हमे ले जाकर एक छोटेसे घरमे पहुंचा दिया और घरवालेको मुखियाका सन्देश कह सुनाया। चाय पानी हो जानेपर उसने कहा कि घोड़ा मिल जायगा। ल्हसे जोङ् तक्के लिए अठारह टङ्का लगेगा। यद्यपि वहाँके हिसाबसे यह अधिक था, तो भी मैंने स्वीकारकर लिया। वह घोड़ा लानेके लिए चरागाहकी ओर गया और तीन बजे तक लौट आया। आने पर उसने कहा कि ल्हसे में बहुत गर्मी है, घोड़ा वहाँ तक नहीं जा सकता। घोड़ेका मालिक कहता है कि हम "चासा ला" पार करा एक दिनके रास्तेमे इधर ही छोड़ देंगे। मैंने उसका पहला दाम एक ही बारमें स्वीकारकर लिया था,

पर अब इस तरहकी बात देखकर अस्वीकार कर दिया। हमारा गृह-स्वामी पहले सैनिक रह चुका था। तिब्बतमें छोटे भाई अलग शादी नहीं करते, लेकिन उसने अपनी अलग शादी कर ली थी, जिससे भाइयोंने उसे घरसे निकाल दिया था। अभी एक छोटासा नया घर बनाकर वह अपनी स्त्री सहित रह रहा था। मैंने उसकी दौड़-धूपके लिये कुछ पैसे दिये, जिसपर वह सन्तुष्ट हो गया। उस समय शे-कर जोङ्से ल्हासे-जोङ्को जाने जानेवाले कुछ गदहे वहा आ पहुँचे। सुमति-प्रज्ञने जाकर गदहे वालोंसे बात-चीतकी। उन्होंने पाच टङ्का (=प्रायः आठ आने)में ल्हसे-जोङ् तक हम दोनोंका समान ले जाना स्वीकारकर लिया। उन्होंने सवारीके लिए एक बड़ा गदहा भी देना चाहा, किन्तु खाली हाथ पैदल चलनेसे तो मैं हिचकने वाला न था। रातको ही हम दोनों अपना सामान ले गदहे वालोंके पास पहुँच गये।

८. गदहोंके साथ

१६ जूनको कुछ रात रहते ही हमारे गदहे चल पडे। गदहोंपर नेपाली चावल लदकर ल्हासा जारहा था। साथमें चावलके सौदागरका आदमी भी दो-हाथ लम्बी तलवार बाँधे जारहा था। हम ऊपरकी ओर जारहे थे। दस बजे खाने-पीनेके लिए मण्डली बैठ गयी। गदहोंको चरनेके लिये छोड़ दिया गया। कण्डा जमाकर धौंकनीसे आग धौंकी जाने लगी। हमारे चारों ओरकी भूमिमें सैकड़ों बर्फ़ानी चूहोंके बिल थे। हम लोगोंके वहाँ रहते भी वह दौड़-दौड़कर एक बिलसे दूसरे बिलमें घुस जाते थे। इनका आकार हमारे खेतके चूहोंके बराबर ही था, लेकिन इनकी नर्म रोओंसे भरी खाल बहुत ही मुलायम थी तथा पूँछ बिलकुल ही न थी। नाश्ते के बाद आदमियोंने गदहोंको भिगोया हुआ दला मटर दिया और वहाँसे प्रस्थान किया। अब तो मैं खाली हाथ था, इसलिये पन्द्रह सोलह हज़ार फ़ीटकी ऊँचाईपर भी चलनेमें

मुझे कोई तकलीफ़ न थी। मैं आगे बढ़ता जोतपर पहुँच गया। वस्तुतः यह जोत नहीं है, क्योंकि पहले वाली नदीके किनारे ही हमें आगे भी जाना था। सिर्फ़ एक ऊँचे पहाड़की बाहींको पार करना पड़ा, जिसको नदी भी काटती है, किन्तु नदीके किनारे-किनारे रास्ता नहीं है। जोतके बाद फिर कुछ उतराई पड़ी। यहाँ जगह-जगह चमरियोंका झुण्ड चर रहा था। बीचमें एक जगह थोड़ा ठहरकर हम आगे बढ़े। आगे चलकर हम नदीके पाटमेंसे चलने लगे। नदीके दूसरी ओर कुछ हिरन पानी पी रहे थे, हमें देखते ही वे पहाड़के ऊपर भाग गये। और आगे चलनेपर स्लेटका पहाड़ मिला, जिसके नीचेकी नम ज़मीनमें मिट्टीके तेलका सन्देह हो रहा था। चार बजेके क़रीब हम बक्चा ग्राममें पहुँचे। गाँवमें सात-आठ घर हैं। मकान क्या हैं, पत्थरोंके ढेर हैं। आस-पास कहीं खेत नहीं हैं। यहाँ इस ऊँचाईपर खेती हो भी नहीं सकती। इस गाँवकी जीविका भेड़ बकरी और चमरी हैं। सुमति प्रज्ञके पास थोड़ी चाय थी। एक घरमें जाकर हमने चाय बनवाकर पी, और सथियोंके लिये भी हमनेचाय तयार करायी। थोड़ी देरमें गदहे भी पहुँच गये।

१७ जूनको कुछ रात रहते ही हम बकचासे चले। गदहोंका सर्दार घण्टा बजाते आगे चल रहा था, उसके पीछे दूसरे चल रहे थे। ऊपर पहाड़ छोटे और दून चौड़ी होती जाती थी। रास्तेके आस-पास कहीं-कहीं बर्फ़की शिला भी पड़ी थी। कहीं-कहीं चमरियों और भेड़ोंके गोठ भी थे, जिनके काले तम्बुओंके बीचसे धुआँ निकल रहा था। दस बजेके करीब हम छोटे-छोटे पर्वतोंसे घिरी विस्तृत दूनमें पहुँचे। इसमें कितनी ही जगह चरवाहोंके काले तम्बू दिखाई पड़ रहे थे। बाईं ओर रास्तेसे थोड़ी दूर पर लोहेके पत्थरोंका पहाड़ था। हम लोग चाय पीनेके लिए बैठ गये। सबने अपने-अपने प्यालेमें मक्खन डालकर चाय पी और सत्तू खाया। व्यापारीने फटे चमड़ेके थैलोंपर गीली मिट्टी लगाई। अब हम दोनों फिर आगे चले। दूनको समाप्त-

कर अब पहाड़की चढ़ाई शुरू हुई। सुमति-प्रज्ञ पिछड़ गये; मैं आगे बढ़ता गया। यद्यपि चाखा-ला अठारह हजार फीटसे थोड़ा ही कम ऊँचा है, तो भी मुझे जोतपर पहुँचनेमें कोई तकलीफ़ न हुई। लासे नीचे उतरकर मैं थोड़ा लेट गया। थोड़ी देर बाद सुमति-प्रज्ञ आये। गदहे वाले अब भी पीछे थे। थोड़ी देर विश्रामकर हम लोग उतरने लगे। चाखा ला की उतराई बहुत ज्यादा और कई मीलकी है। इस बार कहीं कहीं पहाड़ोंके अधोभागमें बर्फ थी। आस पासमें चमरियाँ हरी घास चर रही थीं। हम लोग दो बजेके करीब ज़िग् चेन् गाँवमें पहुँचे। दो ढाई घण्टे बाद गदहे वाले भी पहुँचे। आने जाने वालोंको टिकाना गाँव वालोंका प्रधान व्यवसाय है इसके अतिरिक्त ये लोग कुछ पशु-पालन भी करते हैं। रातको यहीं पड़ाव रहा।

२८ जूनको फिर रात रहते ही हम चल पड़े। रास्ता कड़ी उतराई-का था। जैसे जैसे हम नीचे जा रहे थे, वैसे वैसे स्थान गर्म भी मालूम होता था। प्रभात होते समय हमारे आस पास जङ्गली गुलाबके छोटे छोटे झुरमुट भी दिखाई देने लगे। सात बजे चाय पीनेके लिए बैठ गये। एक घण्टा और चलनेपर ब्रह्मपुत्रका कछार दिखायी देने लगा। यहा जगह-जगह बड़े बड़े वृक्षोंके बाग लगे हुए थे। दस बजेके करीब हम कछारमें आ गये। इस वक्त काफी गर्मी मालूम हो रही थी। ब्रह्मपुत्रका कछार बहुत चौड़ा है और प्रायः हर जगह खेती तथा मकानके काम लायक वृक्षोंका बाग लगाया जा सकता है, लेकिन भूमि बहुत-सी परती पड़ी हुई है। एक बजेके करीब हम गदहोंके साथ ख-चौड् गाँवमें पहुँचे। यह गदहे वालोंका गाँव था। आज उन्होंने यहीं रहनेका निश्चय किया।

सुमति-प्रज्ञ और हमने एक बुढ़ियाके घरमें अपना डेरा डाला। चाय पानीके बाद सुमति प्रज्ञ गाँवमें घूमनेके लिए निकले। अभी वे हातेके दर्वाजेसे जरा ही आगे बढ़े थे कि चार बड़े बड़े कुत्ते उनपर टूट पड़े। उनके हाथमें छाता था। आवाज सुनते ही मैंने चाहारदीवारी

के पास आकर देखा तो सुमति-प्रज्ञ कुत्तोंके मुँहमें थे। मैंने पत्थर मारना शुरू किया। कुत्ते लुढकते पत्थरके पीछे क्रोधसे भरे दौड़-दौड़कर मुँह लगाने लगे। इस प्रकार सुमति-प्रज्ञको घरमें लौट आनेका मौका लगा। उस गाँवमें उन्होंने फिर घरसे बाहर जानेका नाम नहीं लिया।

१९ जूनको सामान बाँध गदहे वालोंके हवालेकर हम ल्हर्से ज़ोङ्को चल पडे। इस कछारमें गाँवोंकी कमी नहीं है। जगह-जगह सींचनेके लिए चौड़ी-चौड़ी नहरें भी हैं। हम एक बड़ी नहर पारकर एक छोटी नदीके किनारे पहुँचे। सुमति प्रज्ञने बतलाया कि यह नदी स-क्या गुम्बासे आ रही है। नौ दस बजेके करीब हम ल्हर्से पहुंच गये। पहले हम गुम्बा (=मठ)में गये। रास्तेमें लोगोंके आम तौरपर मुझे लदाखी कहनेसे, मैं अब अपनेको लदाखी ही कहता था। गुम्बामे चाय पीकर मैंने कहा कि नदीके किनारे चलना चाहिए, वहाँ गदहे आयेंगे। लेकिन सुमति प्रज्ञने कहा - अभी ठहरें, फिर चलकर सामान ले आयेंगे। उनका कुछ इरादा यहाँ रहनेका था और मेरा जल्दी जानेका। पूछनेसे मालूम हुआ कि क्वा (=चमड़ेकी नाव) शीगर्ची चली गई है, दो-एक दिनमें आयेगी। मेरे बहुत जोर देने पर सुमति-प्रज्ञ घाटपर गये। वहाँ दो और सौदागर अपना माल लिये क्वाका इन्तज़ार कर रहे थे। उन्होंने बतलाया क्वा दो-तीन दिनमें आयेगी। गुम्बामें जगह-जगह खुले हुए कुत्ते थे, इसलिए मैं वहाँ नहीं रहना चाहता था, किन्तु सुमति-प्रज्ञका वहीं रहनेका आग्रह था। अन्तमें सौदागरोंके साथ ब्रह्म-पुत्रके किनारे ही रह गया और सुमति-प्रज्ञ गुम्बामें चले गये।

———

ब्रह्मपुत्रकी गोदमें

१. नदीके किनारे

ल्हर्से-जोङ्से शी-गर्चो तक ब्रह्मपुत्रमें चमडेकी नाव चलती है। यह नाव याकके चमडेके कई टुकड़ों को जोड़कर लकड़ीके ढाँचेमें कसकर बनाई जाती है। चमडेकी होनेसे इसे क्वा कहते हैं। एक नावमें तीस-चालीसमन माल आ जाता है। हमारे साथी तीन सौदागर थे। उनमेंसे एक टशी-ल्हुन्पोका ढाबा (=साधु) था, एक सेरा मठ (ल्हासा)का ढाबा, और तीसारा ल्हासाका गृहस्थ था। भोटमें साधु दो भागोंमें विभक्त हैं—एक तो मठोंमें रहकर पढ़ते-लिखते या पूजा-पाठ करते हैं, दूसरे व्यापार तथा अन्य व्यवसाय करते हैं। यह कोई कड़ा विभाग नहीं है। सौदागर ढाबोंका कपड़ा गृहस्थोंसा होता है, सिर्फ सिरपर बाल नहीं होता। एक श्रेणीका आदमी जब और जितने दिनके लिए चाहे दूसरी श्रेणीमें जा सकता है। सौदागर ढाबा खुले तौरसे शराब पीते हैं, औरत रखते हैं, और जानवर भी कभी कभी मारते हैं। मेरे साथियोंमें दोनों ढाबा तो खम् पा (= खाम् देश-निवासी) और गृहस्थ ल्हासा-पा (ल्हासा-निवासी) था। सेराका ढाबा वहीं था, जिसके साथ हमें भेजनेके लिए शे-कर् मठके खेम्बोने प्रबन्ध किया था। टशी-ल्हुन्पोका ढाबा आयुमें बड़ा था, इसलिए वही उनका नेता था। अठारह-बीस नाव भरका माल उनके पास था। मालमें चावलके अतिरिक्त लोहा, पीतलके बर्त्तन, तथा प्याला बनानेकी लकड़ी अधिक थी। सभी मालका ढेरकर दीवार बना दी गई। बीचमें आग जलाने तथा सोनेकी जगह थी। ऊपरसे चमरीके बालोंकी छोलदारी लगा दी

गई थी। गाँवसे बाहर नदीके तीरपर इस तरह माल लेकर ठहरना खतरनाक है, लेकिन भोटिया चोरभी डाबोंसे डरते हैं। उनके पास भी लम्बी सीधी भोटिया तलवारें तथा भोटिया कृपाण था। दिनमें तो सब लोग टूटे-फूटे सामानकी मरम्मत करते थे, और कभी नाव पाटनेके लिए जङ्गलसे लकड़ी काटने भी चले जाते थे। यहाँ ब्रह्मपुत्रके किनारे कहीं-कहीं छोटे-छोटे काँटेदार दरख्तोंका जङ्गल है। रातको नेतातो सदा सोनेके लिए गाँवमें चला जाता था, कभी-कभी उन दोनोंमेंसे किसीको साथ ले जाता था। इस प्रकार मैं और उनमेंसे एक आदमी और रखवालीके लिए रह जाते थे। भोटमें लज्जा बहुत कम है। इसी लिए स्त्री-पुरुषोंके अनुचित सम्बन्ध अधिक प्रकट हैं। रास्ते चलते चलते भी आदमी पड़ावपर स्त्रियोंको पा सकता है। कुमारियाँ और बाल कटाकर घरमें बैठी अनी बहुत स्वतन्त्र हैं। यह मेरा मतलब नहीं है कि भोटमें दूसरे देशोंसे व्यभिचार अधिक है। मेरी तो यह धारणा है कि यदि सभी गुप्त और प्रकट व्यभिचारोंका जोड़ लगाया जाय तो सभी देशोंमें बहुत ही कम अन्तर पड़ेगा। जो व्यापारी किसी रास्तेसे बराबर आया-जाया करते हैं, उनको तो हर पड़ावपर परिचित स्त्रियाँ हो गई रहती हैं। हमारे नेता ढावाका तो इस रास्तेसे बहुत व्यापार होता था। इसीलिए वह बराबर रातको गाँवमें चला जाया करता था. दिनमें रोज मटकेमें छङ् (=कच्ची शराब) भरकर चली आती थी और लोग पानीकी जगह उसीको पीते रहते थे। ये लोग नदीमें बंसी भी फेंकते, लेकिन किसी दिन कोई मछली नहीं फँसी।

उन्नीससे चौबीस जून तक मैं नदीके किनारे ही रहा। नाव दो ही तीन दिनमें लौटने वाली थी, लेकिन धीरे धीरे इतनी देर लग गई। नौका जानेमें तो दो दिन में ही शी-गर्चा पहुँच जाती है क्योंकि उसे वेगवती ब्रह्मपुत्रकी धारके रुख जाना पड़ता है। लेकिन आनेमें, चमड़े और लकड़ीको अलग गदहों पर लाना होता है, जिसमें चार-पाँच दिन लग जाते हैं। उस समय ब्रह्मपुत्रके तटपर बैठे हुए घण्टों

साथियोंके साथ भोट खाम्, अम्‌दो (=मङ्गोलियाके दक्खिन चीनी प्रान्तके दक्खिनका प्रदेश) आदिकी बात सुनाता था। वह लामाओंके नाना चमत्कारोंकी बात सुनाते थे। तब भी दिन बहुत लम्बा मालूम होता था। मैंने समय काटनेका एक तरीका निकाला। तिब्बतमें नर-नारी, सभीके हाथमें प्रायः माला देखी जाती है। इनमेंसे अधिकांश चलते फिरते बैठते उसे फेरते रहते हैं। अधिक श्रद्धालु तो एक हाथमें माला और दूसरेमें माणी घुमाते हैं। इस माणीमें ताँबे या चाँदीके चोंगेमें एक लाखसे अधिक मन्त्र कागजपर लिखकर मोड़कर रखते हैं जिसके भीतर कील रहती है। कीलके एक सिरेमें हत्था लगा रहता है। चोंगेमें ताँबे या पीतलकी एक भारी सी गुरदी जञ्जीरसे बँधी रहती है। हाथसे घुमानेमें वह बहुत जल्दी-जल्दी घूमने लगता है। एक बार घूमनेमें भीतर लिखे सभी मन्त्रोंके उच्चारणका फल होता है। यह तो हाथकी माणी हुई। तिब्बतमें बहुत बड़ी बड़ी माणियाँ होती हैं, जो हाथसे चलाई जाती हैं, और कहीं कहीं गिरते पानीके जोरसे पन-चक्कीकी तरह चलाई जाती हैं, और कहीं कहीं कन्दीलके भीतर चिराग रखकर ऊपर मन्त्र लिखा कागज या कपड़ेका छाता लटका देते हैं। इस छातेमें पङ्खा होता है, जो गर्म होकर ऊपर उठती हवाके बलसे चलने लगता है। यदि तिब्बतमें बिजली चल जाय, तो इसमें शक नहीं कि बहुत सी बिजलीकी भी माणियाँ लग जायेंगी। हमारे यहाँ जीभ हिलाकर मन्त्र-पाठ होता है, कोई कोई मन्त्रोंको पुण्य सञ्चयके लिए कागजपर भी लिख लेते हैं। एकाध जगह हजारों राम-नामकी छपी पुस्तकें भी वितरित होने लगी हैं; तो भी हमारी पुण्य-सञ्चयकी गति बहुत मन्द है। शायद सैकड़ों वर्षोंमें भी इस विषयमें हम तिब्बती लोगोंका मुकाबला न कर सकेंगे।

अस्तु, मेरे पास माणी तो थी नहीं, लेकिन मैंने नेपालमें एक माला ले ली थी। नेपालमें और रास्तेमें भी खाली वक्तमें कभी-कभी जप करता था, लेकिन यहाँ तो इसका खास मौका था। तिब्बती लोग

प्रायः अवलोकितेश्वरके मन्त्र (ओं मणि पद्मे हुं) या वज्रसत्त्वके मन्त्र (ओं वज्रसत्त्व हुं, ओं वज्र गुरु पद्मसिद्धि हुं, ओं आ हुं)का जप करते हैं। मैंने इनकी जगह पर "नमो बुद्धाय"रखा। भोटिया मालामें एकसौ आठ मनके होते हैं और एक सुमेरु। इसके अतिरिक्त चाँदी या दूसरी धातुके दस-दस मनकोंके तीन लच्छे भी मालाके सूतके साथ लटकते हैं। एक बार माला फेर लेनेपर पहले लच्छेका एक मनका ऊपर खिसका दिया जाता है। लच्छा बकरी या हिरनके मुलायम चमडेमें कसके पिरोया रहता है, इसलिये मनका चढा देनेपर वहीं ठहरा रहता है। पहले लच्छेके सभी मनकोंके ऊपर चढ़ जानेपर दस मालाएँ खतम हो जाती हैं प्रत्येक मालाके आठ मनकोंको भूले भटकेमें डाल देनेसे पहले लच्छेकी समाप्ति एक सहस्र जप बतलाती है। पहले लच्छेकी समाप्तिपर दूसरे लच्छेका एक मनका ऊपर चढा दिया जाता है, और पहले लच्छेके सभी मनके गिरा दिये जाते हैं। इस प्रकार पहिले लच्छेकी समाप्तिकर दूसरे लच्छेका एक एक मनका ऊपर चढा दिया जाता है। दूसरे लच्छेके प्रत्येक मनकेका मूल्य एक हजार जप है। तीसरे लच्छेके प्रत्येक मनकेका मूल्य दस हज़ार जप है, अर्थात् तीसरा लच्छा समाप्त हो जानेपर एक लाख जप समाप्त हो जाता है। यहाँ रहते-रहते मैंने कई लाख जप किये। खाली बैठे रहनेसे कुछ पुण्य कमाना अच्छा था।

यह कह ही चुका हूँ कि ब्रह्मपुत्रका यह कछार बहुत विस्तृत है। हमारे सामने दो धार हो गई हैं। दोनों ही धारोंपर रस्सीसे झूलेका पुल बना हुआ है। आदमी इससे पार उतरते हैं। जानवरोंके उतरनेके लिए थोड़ा और नीचे जाकर लकड़ीकी नावका घाट है। घाटसे कुछ हटकर गाँवके छोरपर एक पहाड़की अकेली टेकरीपर जोङ् (=कलक्टरी) है। आजकल उसमें कुछ नये मकान बन रहे थे। भोटमें सर्कारी मकान प्रायः बेगारसे बनते हैं। प्रत्येक घरसे एक-एक आदमीको कुछ-कुछ समयके लिए काम करना पड़ता है। जो

लोग धनी हैं वे अपनी तरफसे किसीको मजदूरी देकर भी रख सकते हैं। इस वक्त झुण्डके झुण्ड स्त्री-पुरुष (जिनमें स्त्रियाँ ही अधिक थीं) चमरीके बालके थैलोंमें नदीके कछारसे पत्थर चुन-चुनकर गीत गाते जोट में लेजाते थे। पत्थरके लेआनेपर घण्टों खेल कूद और हंसी-मजाक किया करते थे। स्त्रियों तकको नङ्गा कर देना उनके मज़ाकमें शामिल था। नदीमें स्त्रियोंके सामने तो नङ्गे नहाते ही थे; एक दूसरेके ऊपर कीचड़ फेंकनेके लिए भी देर तक पानीके बाहर नङ्गे दौड़ते रहते थे। यद्यपि गर्मीके दिन थे तो भी पानी ठण्डा था। मैं नहानेके लिए कुछ मिनटोंसे अधिक पानीमें ठहर नहीं सकता था; किन्तु कोई-कोई भोटिया लड़के देर तक तैरते रहते थे।

ल्हत्सें गाँवमें कुछ घर भोटिया मुसलमानोंके भी हैं। पहले पहल दिनमें एक एक बार मुझे अज़ाँकी आवाज सुनाई पड़ी। मैंने उसे भ्रम समझा, किन्तु पीछे मालूम हुआ कि कुछ मुसलमान हैं। ल्हत्सें ल्हासासे लदाख जानेके रास्ते पर है, ये लोग लदाखी मुसलमानोंकी भोटिया स्त्रियोंसे उत्पन्न हैं। ये अन्य भोटियोंकी अपेक्षा मजहबके बड़े पक्के हैं।

बाइस जूनको कुछ झा आयीं। उनपर जानेका इन्तजाम हो सकता था किन्तु साथियोंने अपने साथ चलनेके लिए जोर दिया। तेईस जून-को हमारे साथियोंकी भी झा आ गई। दो दिन नावमें जाना था,इसलिये कुछ पाथेय तैयार करना चाहा। उस दिन मैंने भेड़का सूखा मांस मँगवाया। भोटिया लोग सूखे मांसको स्वयपक्व मानते हैं। लेकिन मैं अभी वहाँ तक पहुँचा न था। इसलिये उसे पानीमें उबाला। साथी कहने लगे, इससे तो मांसका असल सार निकल जायगा। मांस तैयार हो जाने पर मैंने मांसके टुकड़ोंको तो गठरीमें बाँध लिया और शोर्वा ढाबाको देना चाहा। उन्होंने नहीं लिया। उस समय मैं उनके इन्कार करनेका कोई अर्थ नहीं समझा। लेकिन दूसरोंसे मालूम हुआ कि मैंने जो मांसका टुकड़ा न दिया, उससे वे बहुत नाराज हो गये हैं।

मैं उस वक्त मांस खाने वाला न था। मैं समझता था कि रास्तेमें खानेके समय इन्हें भी बाँटूँगा, इसी ख्यालसे मैं समझ न सका कि मैं कोई बड़ी भूलकर रहा हूँ। खैर, वह भूल तो हो चुकी, अब उसके मिटानेका उपाय नहीं था। रास्तेमें आनेसे नावका चमड़ा सूख गया था। मल्लाहोंने पत्थर रखकर उसे पानीमें भिगो दिया। दूसरे दिन सबेरेसे लकड़ी के ढाँचेमें चमड़ा कसा जाने लगा। कस जानेपर नाव पानीमें डाल दी गयी; उसके नीचे हमारे साथियोंकी लायी लकड़ियाँ भी बिछा दी गयीं। उसपर फिर माल रखा जाने लगा। आज सबेरे ही प्रमुख ढाबाने मुझसे कहा—नावमें जगह नहीं है, आप न जा सकेंगे। मैं इसे हँसी समझता था। दोपहर तक नावपर माल रख दिया गया। फिर उन्होंने वही बात कही, किन्तु फिर भी मैं कुछ समझ न सका। फिर छङ्के मटके मँगाये गये और मल्लाहोंका भोज शुरू हुआ। थोड़ी देरमें लाल हरे-पीले कपड़ोंके छोटे छोटे टुकड़ोंकी पताकायें नावपर लगानेके लिए आ गईं। दो-दो नावोंको जोड़कर अगली नावके सामने झण्डी लगा दी गयी। इस बीचमें शीगर्ची जानेवाले कुछ मुसाफ़िर आ गये। उनके जानेका भी प्रबन्ध हो गया। सुमति-प्रज्ञ भी चलनेके लिए आये पर उनका और मेरा कोई प्रबन्ध न हो सका। दूसरे सौदागरोंने मुझसे कहा कि हमारे मुखिया आपको ले चलना नहीं चाहते, इसलिए हम क्या करें। इसपर मैंने एक शब्द भी उनसे न कहा। चुपकेसे अपने सामानका कुछ भाग सुमति प्रज्ञको दिया और कुछ अपनी पीठपर लाद हम गुम्बामें चले आये।

‡ २. शीगर्चीकी यात्रा

गुम्बामें आकर मैं चाय पीने लगा और सुमति-प्रज्ञको घोड़ा या खच्चर ढूढ़नेके लिए भेजा। उनके जानेके थोड़ी देर बाद ल्हासावाले दोनों सौदागर मेरे पास आये। उन्होंने कहा—हमने कह सुनकर उन्हें

मना लिया है, आप चलें। मैंने कहा—मेरा साथी भी मेरे साथ जायगा। उन्होंने कहा—साथीके लिए तो जगह नहीं है। इसपर मैंने कहा—मैं फिर तुमसे ल्हासामें मिलूँगा, मैं तुमसे जरा भी नाराज नहीं हूँ, लेकिन इस समय मैं साथीको छोड़कर जा नहीं सकता। उन्होंने बहुत कहा किन्तु मैंने स्वीकार न किया। वे चले गये। सुमति प्रज्ञने थोड़ी देरमें आकर कहा—ल्हासाके तीस-बत्तीस खच्चर आये हुए हैं, वे यहाँसे ल्हासाको लौटे जा रहे हैं; मैंने यहाँसे शीगर्चा तकके लिए दो खच्चरोंका भाड़ा चार नाङ् (= प्राय. ३ रुपया) दे दिया, वे लोग कल सवेरे यहाँसे चलेंगे।

२६ जूनको सवेरे चाय पीकर जल्दी ही हम अपना सामान लेकर खच्चरवालोंके पास आये। उन्होंने कहा—यहाँके अफसरकी कुछ चीज ले जानी है, इसलिये कल जाना होगा। हम लोग गुम्बासे चले आये थे। खच्चरोंकी जगहमें ठहरनेका कोई स्थान न मिला। इसपर सामान तो हमने उनके पास छोड़ दिया, और वहाँ से एक डेढ़ मील आगे रास्तेपर सुमति-प्रज्ञके एक परिचित गृहस्थके घरपर चले गये। चाय पीनेके बाद सुमति-प्रज्ञ तो चाङ्-शोमो विहार जिसका महास्तूप वहाँसे दिखाई देता था, किसीसे मिलने चले गये और मैं अकेला वहाँ रह गया। कुछ देर तो मैं घरकी बहूकी करघेकी बिनाई देखता रहा। तिब्बतमें ऊनकी कताई बुनाई घर घरमें होती है। उनकी पट्टीका अर्ज एक बालिश्त ही होता है। आसानीसे वह अर्जको बढ़ा सकते हैं लेकिन उनका ध्यान इस ओर नहीं है। बुनाईमें भाप (पैडल) कई कई लगाते हैं, पट्टी बहुत सुन्दर और मजबूत बनाते हैं। यह घर ब्रह्मपुत्रके कछारमें न था, तो भी दून बहुत विस्तृत और समतल थी, लेकिन नदी का पानी न था। खेतोंमें छोटे छोटे पौधे उगे हुए थे। इनकी सिंचाई वर्षापर निर्भर थी। गांवोंमें भी पानी पीनेके लिए कुआँ खुदा हुआ था, जिसमें पानी बहुत नीचे न था। पानी चमड़ेके डोलोंसे निकाला जाता था। अकेले ऊबकर मैं फिर

छतपर चला गया। थोड़ी देर रहनेपर घरकी बुढ़ियाने नीचे उतर आनेके लिए कहा। पीछे मालूम हुआ कि छतपर चढ़ना भी इस इलाकेके लोग बुरा मानते हैं। शाम तक सुमति-प्रज्ञ लौट आये। रातको घरवालोंने थुक्‌पा पकाकर दिया। सुमति-प्रज्ञने घरभरके लिए बुद्ध गयाका प्रसाद कहकर रास्तेमें लिये हुए कपडेकी चिट फाड़ कर दी।

दूसरे दिन चाय-पानी करके हम दो-तीन घण्टे तक इन्तजार करते रहे। खच्चर-वाले नहीं आये। सन्देह हुआ कि आज भी तो कहीं रुक नहीं रहे हैं। अब हम लोग फिर लौटकर खच्चरोंके पास चले। गाँवके पास आनेपर खच्चर आते मिल गये। एक खच्चरपर मैं चढ़ा और एकपर सुमति प्रज्ञ। हमारे खच्चरोंके मुँहमें लगाम न थी, इसलिए हम खच्चरोंके क़ाबूमें थे, खच्चर हमारे क़ाबूमें नहीं थे। हमारा रास्ता ब्रह्मपुत्रके कछारको छोड़कर दाहिनी ओरसे था। थोड़ा आगे चलनेपर जहाँ तहाँ बालू भी दूर तक मिलने लगी। कहीं-कहीं उसीमें कुशकी तरह घास उगी हुई थी। मामूली ढालू चढाई चढ़कर, दोपहरके पूर्व ही हम एक जोत को पारकर गये। उतराई भी हल्की थी। पहाड़ यहाँ भी सब नङ्गे थे। यहाँ दाहिने और बायें कुछ दूर पर्वत शिखरपर दो गुम्बाओंका ध्वंसावशेष देखा। कई हाथ ऊँची दीवारें अब भी खड़ी थीं। बायें ध्वंसाशेषके बहुत नीचे एक नयी गुम्बा दिखाई पड़ी। उसी पर्वतके अधोभागमें कुछ विशाल हरे हरे वृक्ष भी दिखाई पडे, वृक्ष अखरोट या बीरीके जान पड रहे थे।

उस दिन दो बजे तक हम चलते ही गये। उस वक्त हम कुछ चढाई चढकर एक गाँवमें पहुँचे। वहा खच्चरोंके सामने भूसा डाल दिया गया और हम चाय पीने लगे। थोड़ी देर बाद फिर खच्चर कसे गये और रवाना हुए। गाँवसे ही चढाई थी। एक छोटी-सी धार आ रही थी, जिसके खेतोंकी सिंचाई हो रही थी। घण्टे भरकी चढाई-के बाद हम जोतके ऊपर पहुँच गये। यह जोत चौरस नहीं है, रीढकी

भाँति आड़े पत्थरोंकी है। उतराईमें हम कुछ दूरतक उतरकर पैदल चले। यहा एक प्रकारके काले रङ्गके पत्थर बहुत देखनेमें आये। इन पत्थरोंके समीप अकसर सोनेकी खानें मिलती हैं। बहुत देरकी उतराईके बाद हमें पत्थरोंकी मोटी दीवारोंवाला एक छोटा-सा किला मिला। इसे किला न कहकर फ़ौजी चौकी कहना चाहिए। आजकल उजाड़ है, किन्तु इमारत पुरानी नहीं मालूम होती। जोतकी ओर मुँह करके छोटी तोपोंके रखनेके सूराख भी हैं। कुछ और उतरनेपर पड़ाव करनेके लिए हम जलधाराको छोड़कर बायीं ओरकी छोटी पहाड़ीपर चले और थोड़ा और आगे बढकर एक नालेको पार हो च्या-अ्रड-चारो गाँवमें पहुँचे। गाँवमें पाँच छ. घर हैं। एक अच्छा बड़ा किसी धनीका घर है और बाकी बहुत छोटे-छोटे। सुमति प्रज्ञ और मैं एक बुढ़ियाके घरमें चले गये, और खच्चर वालोंने खलियानमें लोहेके खूँटे गाड़ उनमें बड़ी रस्सी बाँधकर, उसमें बँधी छोटी रस्सीसे खच्चरोंके पैर पाँतीसे बाँध दिये। खच्चरोंका बोझ उतार लिया गया। थोड़ा भूसा खा लेनेपर उनकी काठी भी हटा ली गयी। शामको खोल-कर और ले जाकर उन्हें पानी पिलाया, फिर दानेका तोबड़ा मुँहमें बाँध दिया। दाना यहाँ अधिकतर दली हुई हरी मटर या बकलेका देते हैं। हमलोगोंको बुढियाने बिछानेके लिए गद्दा दे दिया; रातको पीनेके लिए थुक्-पा पका दिया।

सवेरे चलते समय हमने एक टङ्का नं छड (=ब स करनेका इनाम) दिया और खच्चरोंके पास चले आये। थोड़ी देरमें खच्चर कसकर तैयार हो गये और हम रवाना हुए। उतराई बहुत दूर तक है। जगह-जगह चमकते काले पत्थरोंकी भरमार थी। अपने लोहेके घण्टोंसे दूनको गुँजाते हुए हमारे खच्चर जल्दी जल्दी उतरते जा रहे थे। दस-ग्यारह बजे तक हम उतराई उतर चुके थे। दाहिनी ओर एक लाल रङ्गकी गुम्बा दिखलाई पड़ी। वहाँ उतरते ही एक नदी पड़ी। नदी पार हो, दहिने किनारेसे हम नदीके ऊपरकी ओर चले। अगले

गाँवमें चाय पानीके लिए उतर गये । वहासे फिर हमने इस नदीको छोड़ दिया, और बहुत मामूली चढ़ाई चढ़कर दूर तक चौरस चले गये और लापर चलने लगे। इसकी मिट्टी बड़ी चिकनी और पीलापन लिये हुए है। यदि पानी हो तो यहा खेती अच्छी हो सकती है। आगे चलकर कुछ खेत बोये हुए थे, किन्तु उन्हें वर्षापर ही अवलम्बित होना होगा। बहुत दूर तक इस प्रकार चलते उतरते हम शब्-की नदीके किनारेके बड़े गाँवमें पहुँचे। गाँवमें कई अच्छे अच्छे घर तथा सफेदा और बारीके बाग़ थे। नहरके पानीको भी इफ़ात थी। यहाँ नदीपर बहुत भारी पत्थरका पुल है। पत्थर बिना चूनेके जमाये गये हैं, बीच-बीचमें कहीं कहीं लकड़ी इस्तेमाल हुई है। खम्भोंकी रक्षाके लिए धार वाला चबूतरा बना हुआ है। यह नदी ल्हासाके पास वाली नदीके बराबर है। इस नदीका कछार भी आगे बहुत चौड़ा है, किन्तु सभी नदीके पाटके सम-तल नहीं है। हम नदीको दायें रखते चले। थोड़ी देरमें नदी हमसे बहुत दूर हो गई। चार बजेके करीब हमने-चोङ गाँवमें पहुंचे। इन गाँओंमें खच्चरों और गदहोंके ठहरनेके लिए बड़े बने हुए हैं। भूसा बेचने तथा चाय आदि पकानेसे घरवालोंको पैसा मिलता है, इसलिए वे खच्चर वालोंकी आवभगत करते हैं। हम दोनोंके लिए घरमें एक कोठरी मिल गई। आज भी यात्रा बड़ी लम्बी हुई थी, खच्चरपर चढ़े-चढ़े पैर दर्दकर रहा था। मैं तो जाकर बिछौना बिछा लेट रहा। सुमति प्रज्ञने मुझे दा-चार बात सुना चाय तैयारकी। थुक्पा पकानेमें भी उन्होंने दो-चार बातें सुनायीं। उनमें यही तो एक दोष था, पर मैं चुप रहा।

२६ जूनको आठ या नौ बजे हम ने चोङ्से चले। रास्ता बराबरका था। दस बजेके करीब हम लापर पहुंच गये। इसमें चढाई कुछ भी नहीं है, इसलिए इस ट-लाको ला कहना ही अनुचित है। हाँ, चोरका भय इस लापर रहता है। लासे उतरनेपर मामूली सी उतराई थोड़ी दूर तक रही; फिर मामूली ढलुआँ जमीन और दून बहुत ही विस्तृत।

बारह बजेके बाद हम नार्-थङ् पहुँचे। यहाँ कञ्जूर-तञ्जूरका विशाल छापाखाना है। इसका वर्णन मुझे आगे करना है, इसलिए यहाँ छोड़ता हूँ। नार्-थङमें जरासा उतरकर हमने चाय पी और फिर आगे चले। दो बजेके बाद हमने पहाड़के चरणपर टशी-ल्हुन्पोका मठ देखा। यहीं टशी-लामाका मठ है।

३. शीगर्चा

देखते ही सब लोग खच्चरोंसे उतर गये। दूर तक ऊपर नीचे बने हुए इन घरोंकी छतोंके बीचमें, मन्दिरोंकी सुनहली चीनी ढङ्गकी छत बहुत ही सुन्दर मालूम हो रही थी। मठके सबसे नीचे भागसे लगा हुआ टशी-लामाका बगीचा है। इसीकी चहार-दीवारीके किनारेसे हम लोग टशी-ल्हुन्पोके दरवाजेके सामने आये। यहाँ छोटी कियारियों और गमलोंमें मूली तथा दूसरे प्रकारके साग लगे हुए थे। टशी-ल्हुन्पो मठसे शीगर्चाका कस्बा कुछ सौ गजपर है। सबसे पहले पुराने चीनी किलेकी मिट्टीकी नङ्गी दीवारें हैं, बगलमें लम्बी मणियाँ हैं। पत्थरोंपर मन्त्र तथा देवमूर्तियाँ खुदवाकर मोटी दीवारोंपर रख देते हैं। इन्हें माणी कहा जाता है। अवलोकितेश्वरका सर्व-प्रधान मन्त्र ओं मणि पद्मे हुं है, इसी के माणी शब्दके कारण जप-यन्त्र और इस मन्त्रका नाम माणी पड़ गया है। माणीको दाहिने रखकर हम शीगर्चामें पहुँचे। खच्चर वालोंने पड़ावपर जाकर हमारा सामान हमें दे दिया। स्थान ढूढ़नेके लिए पहले सुमति-प्रज्ञ अपने एक परिचितके घर गये, किन्तु आवाज देनेपर भी वहाँसे कोई न निकला। फिर कई जगह रहनेके लिए स्थान माँगा, लेकिन भिखमङ्गों जैसी सूरत वालोंको स्थान कौन दे? अन्तमें हम एक सरायमें गये। वहाँ बड़ी मुश्किलसे आदमी पीछे एक टङ्का रोजाना भाड़ेपर बरामदेमें जगह मिली और रातको वहीं विश्राम किया।

इस रातको भी सुमति-प्रज्ञने खुलकर कुटूक्तियोंका प्रयोग किया। मैंने विचारा कि अब इनके साथ चलना मुश्किल है। आदत इनकी

छूट नहीं सकती, मैं जवाब तो नही दे सकता, किन्तु अपनी आन्तरिक शान्तिको अटूट भी रख नहीं सकता। सवेरा होते ही सामान वहीं रख दिया और मैं किसी नेपालीका घर ढूंढने निकला। नेपालमें ही एक सज्जनने दो-भाई नैपालियोकी शीगर्चीकी दूकानका पता बतलाया था। मुझे नाम तो याद नहीं था, किन्तु एक नेपाली सज्जनसे मैंने दो-भाई सौदागरोंका पता पूछा। शीगर्चीमें बीस-बाइस ही नेपाली दूकानें हैं, उनमे भी बड़ी कोठियाँ चार पाच ही हैं। मुझे उन्होंने नाम और स्थान बतला दिया। मैं वहाँ पहुंचा। सात बजे दिनको भी साहु अभी सो रहे थे। निकलकर बातचीत की। उन्होने बड़े प्रेमसे स्वागत किया और अपने आदमीको मेरे साथ सामान लेनेके लिए भेज दिया। मैंने आकर सरायमें दोनों आदमियोंका भाड़ा दे दिया, और सुमति प्रज्ञके लिए अपना पता देकर कोठीमें चला आया। गर्म पानी और साबुनसे मुँह-हाथ धोया। तब तक चाय मास तैयार हो गया। सत्तूके साथ भोजन किया।

भोजनोपरान्त श्री आनन्द तथा कुछ दूसरे मित्रोको पत्र लिखकर भेजनेके लिए उनके हाथमें दिया। साहुजीसे मैंने जल्दी अपने ल्हासा चलनेकी बात कही। उन्होंने आठ-दस दिन विश्राम करनेको कहा। मैने कहा—मुझे शीघ्र ल्हासा पहुंचना चाहिए; अभी मैं चोरीसे जा रहा हूँ; ऐसा न हो कि किसीको मालूम हो जाय, और मुझे यहींसे ही लौट जाना पडे, ल्हासा जाकर मैं दलाई-लामाको अपने आनेकी सूचना दे दूँ; पीछे फिर कभी निश्चिन्त होकर आऊँगा। इसपर वे मुझे साथ ले खच्चरोंके रहनेकी जगहोंपर चले। इन जगहोंमें कोई ल्हासा जाने वाला खच्चर न मिला। अन्तमें ल्हासेसे आये खच्चरवालोंके ही पास गये। वे लोग नही मिले, लेकिन घरवालेसे उनको भेज देनेके लिए कहकर हम लौट आये। शीगर्ची भोट देशमें ल्हासाके बाद दूसरी बड़ी बस्ती है। आबादी दस हज़ारसे ऊपर होगी। कोई-कोई मकान बहुत बडे और सुन्दर हैं। यहाँ नेपाली व्यापारियोंकी बीस दुकाने हैं;

इतनी ही मुसल्मानोंकी भी दूकानें हैं। दूकानें अधिकतर सड़कपर खुले मुँह न रखकर घरोंमें रखी जाती हैं। बाहरकी तरफ रुख होनेसे लूट-पाटका डर रहता है। हर एक नेपाली कोठीमें कई फायरकी दो तीन पिस्तौलें हैं। आत्म-रक्षाके लिए यह अनिवार्य हैं। मकानकी छतोंपर अक्सर बड़े कुत्ते रखे जाते हैं, जिसमें चोर छतके रास्ते न आ सकें। सवेरे नौ बजेसे ग्यारह बजे तक बड़ी माणीके पीछे हाट लगती है। इसमें साग, सब्जी, मक्खन, कपड़ा, बर्तन आदि सभी चीजें बिकती हैं। खरीदने वाले इन्हीं दो घण्टोंमें खरीद लेते हैं, नहीं तो फिर दूसरे दिनके लिए ठहरना होता है। हाटकी जगहसे पश्चिम तरफ पोतला[1] के आकारका बना हुआ "जोङ्" है। यहांकी सभी स्त्रियोंका शिरोभूषण धनुषाकार होता है। इसके दोनों छोरोंपर नकली बालोंकी वेणी लटकती है। हैसियतके अनुसार इसमें मूँगे और मोती भी लगे रहते हैं। पहले पहल भोटमें हमने यहाँ सूअरोंकी भरमार देखी।

पहली जुलाईको रामपुर-बुशहर (शिमला पहाड़) राज्यका एक तरुण मेरे पास आया। आयु तेइस-चौबिस वर्षकी है। उर्दू हिन्दी खूब बोल लेता है। घरपर स्कूलमें अपर प्राइमरी तक इसने उर्दू पढ़ी थी। चार-पाँच वर्षसे यहीं आकर भोटिया पढ़ रहा है। कुत्ती छोड़नेपर यहीं आकर हिन्दी बोलनेका मौका मिला। उससे यह भी मालूम हुआ कि मेरा एक लदाखका परिचित युवक, जो घर और अपनी मुहर्रिरीकी अच्छी नौकरी छोड़कर धर्म सीखनेके लिए तिब्बत आया था, दो वर्षमें धर्म सीख सिद्ध बन ल्हासाकी एक तरुण योगिनी-को लेकर इसी रास्तेसे कुछ दिन पूर्व लौटा है। रघुवरने (यही उस बुशहरी तरुणका नाम है) उसे खेपड़ोमें छङ् पीते और लोगोंका दुःख-सुख देखते देखा था। उसी समय खच्चरवाले भी आ गये। शीगर्चा-से ल्हासाका आठ साङ् (पाँच रुपयेसे कुछ अधिक, भाड़ा) तै हुआ।

---

१. ल्हासामें दलाई लामाका महल।

उन्होंने ग्याञ्ची होकर बारह दिनमें ल्हासा पहुँचा देनेको कहा। सीधा जानेमें सात दिनमें पहुँचा जा सकता है। ग्याञ्चीमें अंग्रेज़ वाणिज्य दूत रहता है, इसलिए मैं उधरसे जाना खतरेसे खाली नहीं समझता था, लेकिन जल्दी जानेका दूसरा कोई उपाय न था, और मुझे अपने वेषपर भी अब पूरा विश्वास हो गया था।

दो जुलाईको दोपहर बाद बस्तीके बाहर नदी किनारे नाचका जल्सा था। सभी श्रेणीके लोग शराब और खाने-पीनेकी चीज़ें ले बन-ठनकर जा रहे थे। भोटिया लोग नाच-उत्सवके बड़े प्रेमी हैं। उस वक्त वे सब भूल जाते हैं। नाच स्त्रियोंका होता है, बाजा बजानेवाले पुरुष रहते हैं। यहाँ भी प्रायः सभी नेपालियोंने भोटिया स्त्रियाँ रख ली हैं। वे भी इस उत्सवमें जा रही थीं। शाम तक यह तमाशा होता रहा। फिर लोग अपने अपने घर लौटने लगे। तिब्बतमें चावल नहीं होता। तो भी नेपाली सौदागर कमसे कम रातको अवश्य चावल खाते हैं। मांस तो तीनों वक्त खाते हैं। रातको शराब पीना एक आम बात है।

तीन जुलाईको यहाँसे चलना निश्चय हुआ था। बड़े तड़के ही साहुके साथ मैं टशी-ल्हुन्पो गुम्बा (= मठ) देखने गया। टशी-ल्हुन्पोमें वैसे तो बहुत देवालय हैं, लेकिन उनमें पाँच मुख्य हैं। इन पाँचोंपर सुनहरी छतें भी हैं। पहले हम मैत्रेयके मन्दिरमें गये। मैत्रेय आने वाले बुद्ध हैं। मैत्रेयकी प्रतिमा बड़ी विशाल है; कोठेपरसे देखनेसे मुख अच्छी तरह दिखाई पड़ता है। मुख्य प्रतिमा मिट्टीकी है, किन्तु ऊपरसे सोनेका पत्र चढाया हुआ है। यह देखनेमें बहुत शान्त और सुन्दर है। नाना वर्णकी रेशमी ध्वजायें बड़ी सुन्दरतासे लटकायी हुई हैं। प्रतिमाके सामने विशाल सोने-चाँदीके घीके दीपक अखण्ड जल रहे हैं। मूर्तिके आस पास और भी छोटी मूर्तियाँ हैं। इसी मन्दिरके बगलके कोठेमें कई सौ छोटी छोटी पीतलकी सुन्दर मूर्तियाँ सजी देखीं। इन मूर्तियोंमे भारतके बडे बडे बौद्ध आचार्य

और सिद्ध भी हैं। अङ्गहीनको साधु बनाना विनयके नियमके विरुद्ध है, तो भी यहाँ मैंने काने श्रामणेरोंको देखा। एक जगह भोटिया भाषामें सूत्र गाये जा रहे थे। गानेकी लय नेपाली लोगोंके सूत्र-गायन-से बहुत मिलती थी। दूसरे मन्दिर भी बहुत ही सुन्दर और सोना चाँदी और रत्नोंसे भरे हुए थे। आज जल्दी ही जाना था, और फिर एकबार मुझे टशील्हुन्पो आना ही था, इसलिए जल्दी-जल्दी देखकर हम लौट आये। आनेपर खच्चर वालोंको रास्तेमें पाया।

४. ग्यांचीकी यात्रा

भोजन तैयार था, किन्तु जल्दीमें मैंने उसे भी न खाया। सामान लेकर खच्चरोंके पास आया, और नौ बजेके करीब हम शीगचासे निकल पडे। आज थोड़ी ही दूर जाना था। चारों ओर हरे हरेखेत थे जिनमें जगह-जगह नहरका पानी वह रहा था। खेत चरनेके डरसे खच्चरोंके मुँहमें लकडीका जाला लगा दिया गया था। जौ-गेहूँकी कोई-कोई बाल फूट रही थी। सरसोंके फूलोंसे तो सारा खेत पीला हो रहा था कहीं-कहीं लाल फूलोंवाले मटरके खेत भी थे। कृषक लोग कहीं खेतमें पानी दे रहे थे और कहीं घास निकाल रहे थे। यह खेत हमारे चारों ओर लगातार मीलों तक दिखाई पड़ते थे। गावोंके पास सफेद छाल तथा बड़े-बड़े हरे पत्तोंवाले सफेदेके दरख्तोंके छोटे-छोटे बाग दिखाई पड़ते थे। कटी बीरीके सिरपर पतले बेंतकी तरह लम्बी डालियाँ, पतली-लम्बी हरी पत्तियोंसे ढँकी, किसी पशाचीके सिरके बाल-सी दिखाई पड़ती थी। उस वक्त मैं अपनेको माघमें युक्त-प्रान्तके किसी गाँवमें जाता हुआ समझ रहा था। घण्टेके भीतर ही हम तुरिङ् गावमें पहुँच गये। आज यहीं रहना था।

हमारे तीन खच्चर वालोंमें एक सर्दार था। उसके पास खच्चर भी अधिक थे। वह थोड़ा लिखना-पढना भी जानता था। अपने ऊँचे

खान्दानको जतलानेके लिए उसने बायें कानमें फ़ीरोज़ा-जटित दो-ढाई तोले सोनेकी वाली पहन ली थी; हाथके बायें अँगूठेमें अङ्गुल भर चौड़ी हरे पत्थरकी मुँदरी पहन रखी थी। बाकी दोके एक-एक कानमें पाँच-पाच छः छः तोले चाँदीकी फीरोजा-जटित अँगूठी-नुमा बालिया पड़ी थीं। सिरपर पुरानी फेल्टकी अङ्ग्रेजी टोपी तो तिब्बतमें आम चीज़ है ही। खच्चराको उन्होंने दर्वाजेके बाहर आँगनमें बाँध दिया और चारा डाल देनेके बाद, हम रईसके घरमें चले गये। उनके बायें कानमें फ़ीरोजा और मूगे मोतीकी नुकीली लम्बी सुनहली पेंसलसी लटक रही थी, जो बतला रही थी कि वह भोट-सर्कारके कोई अधिकारी हैं। जाते ही साथियोंने जीभ निकाल दाहिने हाथमें टोपी ले उसे दो-तीन बार नीचे ऊपर किया। इस प्रकार सलामी देनेके बाद सब लोग बिछे गद्दे पर बैठ गये। यद्यपि मेरी पोशाक भिखमङ्गोंकी थी, तो भी नेपाली साहुका मेरे प्रति विशेष सम्मान देखकर खच्चरवाले कुछ लिहाज करते थे। मैं भी भिखमङ्गोंका कपड़ा पहननेपर भी अनेक बार अपनेको भिखमङ्गा समझना भूल जाता था। मेरे लिए विशेष आसन दिया गया और चाय पीनेके लिए चीनी मिट्टीका प्याला लाकर रखा गया। उन लोगोंके लिए सूखा मास और छङ्का वर्तन लाया गया। सर्दार छङ् नही पीता था, उसने तो चाय पी और बाकी दो छङ् पीने लगे। बीच बीचमें वे खच्चरोंको देख आते थे, नहीं तो रईसकी नौकरानी ताँबे पीतलके छङ् दानमें शराब उडेलनेके लिए खड़ी ही रहती थी। वे लोग पीते जाते थे और रईस साहब और उडेलवाते जाते थे। शाम तक वे तग आकर पीते ही रहे। आँखे उनकी लाल हो गयी थीं। पेटमें जगह न थी इसलिए वे बार-बार टोपी उतार और जीभ निकाल कर सलाम करते थे; लेकिन "और दो" लगा ही रहा। सूर्यास्तके साथ उनकी छङ् भी बन्द हुई।

भोटिया लोगोंमें कलाकी ओर रुचि सार्वजनीन है। इस घरमें भी दीवारपर सुन्दर हाशिया, उसके ऊपर लाल-हरे रङ्गमें सुन्दर झालर

साहेब देर तक "मेरे जन्म-स्थान" लदाखके बारेमें बहुत कुछ पूछते रहे, फिर कुछ धर्म-चर्चा भी हुई। बड़ी रातको मण्डली सोनेके लिए बर्खास्त हुई। उस वक्त रईसके दोनो लड़के चुक्टू (थुलमे)[1] के बोरेमें पड़े खर्राटे ले रहे थे। भोटमें स्त्री पुरुष सभी नङ्गे सोते हैं। यदि पति अकेला एक ही भाई है तो प्रायः चुक्टूके बोरेमें दोनों साथ सोते हैं। इसमें वहाँ कोई सङ्कोच नहीं माना जाता। इस प्रकार सोते माता-पिताको लड़के लड़की चाय आदि भी दे आते हैं। लड़केकी यदि बहू हुई तो वह पति-पत्नी भी एक ओर उसी प्रकार बे-तकल्लुफ़ीसे सो रहते हैं। यदि पति कई भाई हैं, तो एक लिहाफके अन्दर प्रायः सभी अपनी अकेली भार्याको बीचमे करके सो रहते हैं।

४ जुलाईको खा पीकर दस बजे हम लोग तुरिङ्से रवाना हुए। खेतोंके रास्तेसे दो बजेके करीब हम जुग्या गावमें पहुँचे। जुग्याके बहुत पहले ही रास्ता एक गहरी पतलीसी नहरमेंसे था। खच्चर कमबख्त कभी ठीकसे चलना पसन्द नहीं करते। एक बुड्ढा खच्चर खेतकी ऊंची मेंडके ऊपर चढ़ गया पीछे मारके डरसे नहरमें गड्ढेकी जगह कूदा, और चावलके बोझके साथ बैठ गया। पहली बार तो उसका मुँह भी नीचेको हो गया। मैंने तो समझा मरा, किन्तु खच्चरवालोंने झट उसका मुँह ऊपरकर चावलके थैलेकी रस्सी खोल दी। चावल भीग गया। ऐसे तो हर एक चावलके बोरेपर लाहकी मुहर लगी रहती है। लेकिन यदि मुहर टूटनेके डरसे चावल खोलकर न सुखाया जाता, तो ल्हासा पहुँचते-पहुँचते जाने लायक न रहता। जुग्यामें उन्होने चावलको निकालकर कम्बलपर फैला दिया। मज़दूरीमें उन्होंने दो-तीन दिनके थुक्पा लायक चावल निकाल लिये। शीगर्चीसे ही हम ब्रह्मपुत्रकी दून छोड़कर ग्याँचीसे आने वाली नदीकी दून

---

१. बालों वाले मुलायम कम्बलको कुमाऊँ गढ़वालमें थुलमा और काँगड़ा-कनौरमें गुदमा कहते हैं।

वहाँ होने वालीनाटक लीलाको भी देखना था। पा-चामें जिसकी गोशालामें हम उतरे, वह इस इलाकेका बड़ा जागीरदार है। यद्यपि उसके मकानके भीतर मैं नहीं गया, तो भी बाहरसे देखनेसे बडा सुन्दर मालूम होता था।

६५. भोटिया नाटक

चाय पीनेके बाद हम लीला देखनेके लिए गये। यह गाँवसे उत्तर-पच्छिम प्रायः एक मीलपर नदीके कछारमें हो रही थी। इस लीलाको यहाँ अची-ल्हामो (स्त्री-देवी)की।तेमू (=लीला) कहते हैं। इसे भोटिया धार्मिक नाटक समझना चाहिए। हमारे साथ दो बडे कुत्ते थे। उन्हे दर्वाजे़पर बाँधकर, तथा दर्वाजे़में ताला लगाकर, हम तमाशा देखनेको चले। लीलाकी जगह हरी घासपर थी। पासमे ही भोटिया बबूलका जङ्गल था। लीला पा-चाके जागीरदार ही प्रतिवर्ष अपने खर्चसे कराते हैं। इसमें नाटक-मण्डलीके भिक्षु-पात्रोंको ही खाना पीना तथा पारितोषिक हीं नहीं देना पड़ता बल्कि आगन्तुक सम्भ्रान्त व्यक्तियोंके लिए भी भोजन-छादनका इन्तजाम करना पडता है। नाटकके लिए अच्छा बड़ा चौकोर शामियाना खडा था। दूर-दूर तक चारों ओर तरह-तरहके शामियाने खड़े थे, जिसमें दूरके तमाशा देखनेवाले लोग ठहरे हुए थे। जगह-जगह लोगोंके सवारीके घोडे भी बंधे हुए थे। रङ्ग-भूमिसे दक्षिण छोटी छोटी सुन्दर छोलदारियोंमे सम्भ्रान्त स्त्री-पुरुष बैठे हुए थे।पूर्व दिशामें भी धूपमें कुछ फर्श बिछे हुए थे। बाक़ी सब तरफ़ लोग अपना फर्श बिछाकर बैठे हुए थे। दर्शकोंमेंस्त्रियोंकी संख्या काफ़ी थी। पा-चाके जगीरदारने हमारे साथीको देखते ही, आदमी भिजवाकर, पूर्व-दिशाके फ़र्शपर बैठाया। तमाशा देखते हुए लोग चाय और छड्का भी दान-आदानकर रहे थे। हम लोगोंके लिए भी चाय आयी मैंने अपने चोगेमेंसे अपना लकड़ीका प्याला

वैद्य और एक मन्त्र-विशारदका था। कुछ अश्लील अंश तो था, किन्तु लोग देखकर हँस-हँसकर लोट जाते थे। पात्र सभी प्रायः देवताओंके थे। उनके नाट्यमें ही शराबका पीना भी आता था। चांदीकी शराब-दानियोंमें शराब लिये राज परिचारकके वेशमें सुसज्जित स्त्री पुरुष एक जगह खड़े थे। दो बजेके करीब प्रतिष्ठित व्यक्तियोंमें खाना बाँटा जाने लगा। खानेमें मांसके साथ अण्डेकी सेवइयाँ थीं। क्या मास था सो निश्चय न होनेसे मैंने तो नहीं लिया। लकड़ीकी चौकोर किश्तियोंमें चीनी प्यालोंमें खाद्य, चीनी लोगोंके खानेकी लकड़ी[1]के सा वितरण किया जाता था। चीनियोंसे बहुत घना सम्बन्ध रहनेके कारण, भोटिया लोगोंने खाने-पीनेकी कितनी ही रीतियाँ चीनियोंसे सीख ली हैं।

चार बजे हम तमाशा देखकर लौटे। यहाँ मुझे देखकर एक भोटियाको मैंने "भारतीय है" कहते सुना। इसलिए मैं कुछ शङ्कित साथ हो गया, यद्यपि ऐसी शङ्काकी आवश्यकता न थी। ग्यांची करीब होनेसे यहाँ कोई-कोई भारतीय सिपाहियोंको देखे हुए हैं, इसलिए वे सन्देह करते हैं; तो भी बुशहर-वासियों और भारतीयोंकी आकृतिके सादृश्यसे उस ख्यालको हटाया जा सकता है।

दोनों कुत्ते अब मेरे परिचित हो गये थे। बड़े-बड़े कुत्तोंको देखकर मैं समझता था, भोटिया लोग कुत्तोंको खूब खिलाते होंगे। लेकिन मैंने देखा कि डेढ़-दो सेर गर्म पानीमें सवेरे छटाँक डेढ छटांक सत्तू डालकर पिला देते थे, और उतना ही शामको भी। यही बात सभी कुत्तोंकी है। तिसपर उन्हें दिन रात लोहेकी जजीरमें बाँधकर रखा जाता है। मैं दोबारा तमाशा देखने नहीं गया। दूसरे दिन मैं अकेला डेरेपर रह गया। मेरे पास सत्तू बहुत बँधा था, मैंने सत्तू गूँधकर उन्हें खिलाना शुरू किया। एक-एक कुत्तेने एक सेरसे कम

---

१. यूरोपियन लोग जैसे छुरी-काँटेसे खाते हैं, वैसे ही चीनी लोग लकड़ीकी पेंसिलोंसे। हमारे आसाममें भी वही चीनी प्रथा है।

सत्तू न खाया होगा। मालूम होता है, प्रायः सभी भोटिया कुत्तोंको ऐसे ही भूखा रहना पड़ता है। हमारे साथके कुत्ते रास्ता चलते वक्त छोड़ दिये जाते थे, इसलिए रास्तेमें उन्हें कभी-कभी खरगोश या दूसरे छोटे जानवरका शिकार मिल जाता था। जिस जगह हम ठहरे थे वहा एक असाधारण डील-डौलके कुत्तेकी भुस-भरी खाल छतसे लटक रही थी। कहीं-कहीं याक (= चमरी) या भालूकी भी ऐसी लटकती खाल मैंने देखी थी। लोग इसे भी यन्त्र-मन्त्रसा समझते हैं। भोटिया लोग अक्सर अपने घरकी छतपर रातको खुला हुआ कुत्ता छोड़ रखते हैं। एक दिन मैं गलतीसे छतपर जाकर सो गया, उस वक्त मेरा एक साथी भी सो रहा था। सवेरे वह पहले ही उठकर चला आया। सोते आदमीको न पहचाननेसे कुत्ता कुछ नहीं बोलता था, लेकिन मैं अच्छी तरह समझ रहा था कि उठते ही मुझे लड़ाई लेनी पड़ेगी। मैं फिर कितनी ही देर लेटा रहा। जब साथियोंमेंसे एक किसी कामके लिए ऊपर आया, तो उसके साथ नीचे उतरा।

सुमति-प्रज्ञने एक दिन कहा था कि भोटिया लोग जूँ भी खाते हैं। मैंने उसी समय इन्हीं खच्चर वालोंसे पूछा तो इनके सर्दारने इन्कार कर दिया था। उस दिन सर्दारकी रिश्तेदार एक धनी तरुण स्त्री उनके डेरेपर आयी थी। भोटिया लोग नहाते नहीं हैं, इसलिए जूँ पड़ जाना स्वाभाविक है। स्त्रियोंका छुपा (= लम्बा चोगा) ऊनी पट्टीका होता है और उसमें बाँह नहीं होती। उसके नीचे स्त्रियां लाल पीले या किसी और रङ्ग की लम्बी बाँहकी जाकट पहनती हैं। यह जाकट अण्डी या सूती कपड़ेकी होती है। छुपा टखनों तक होता है, उसके भीतर कमरसे ऊपर जाकट होती है, और नीचे टखनों तक सूती या अण्डीकी घघरी होती है। भीतरके कपड़े चूंकि शरीरके पास होते हैं, इसलिए जूँएं इन्हींमें रहती हैं। उस दिन वह स्त्री अपनी जाकट निकालकर उसमेंसे चुन-चुनकर, मसूरके बराबर काली-काली जूँओंको खाने लगी। आगे एक आदमीसे पूछनेपर पता लगा कि

हुए खानेमें खट्टी लगती हैं और जूँ खानेका रिवाज भोटमें आम है।

आठ जुलाईको सवेरे चाय-सत्तू खाकर हम लोग चले। गाँवसे बाहर निकलते ही एक खच्चरका खच्चरोंकी पिछली टांग पर बाधनेके डण्डेके चार बन्धनोंमेंसे एक टूट गया। खच्चरने कूद-कूदकर दूसरे बन्धनको भी तोड़ दिया और चावलका थैला लटककर पेटपर आ गया। अब मालूम हुआ कि खच्चर वाले क्यों लकड़ीकी दुम ची लगाते हैं। गाँवसे दक्खिन पहले हम खेतोंसे बाहर आये। फिर पूर्वकी ओर मुड़े। यहा एक देवालय है।। इसकी बगलसे नहरके किनारे-किनारे हमारा रास्ता था। आगे अब हम खेतोंसे बाहर बाहर पहाड़के किनारे-किनारे ऊपरकी ओर चल रहे थे। चढ़ाई मालूम न होती थी। चार बजेके पूर्व ही हम स-चा गावमें पहुंचे। गाँवके पास ही पहाड़की जड़में नेशा नामक एक छोटा सा मठ है। कई दिन साथ रहनेसे अब खच्चरवालोंने कुछ छेड़-छाड़ शुरूकी। उत्तर देनेकी प्रवृत्तिको तो रोक लेता था, किन्तु मनपर उसका असर न होता हो ऐसी बात न थी। कहीं-कहीं मैं उनके आशयको भी नही समझता था कि कैसे रहनेसे वे खुश रहेंगे, और कही वे मुझसे न होने लायक कामकी आशा रखते थे। मै समझता था कि यदि मैं खच्चरोंकी पीठपर माल रखने उठानेमें मदद देता, तो वे अवश्य खुश रहते, किन्तु मैं उस समय उसके लायक अपने में शक्ति न देखता था। यह दोष उन्हीं का नहीं था किन्तु प्रायः सभी भोटिया ऐसे ही होते हैं। शामको उन लोगोंने कहा, कल सवेरे ही चलेंगे, ग्याञ्चीमें चाय पीकर आगे चलकर ठहरेंगे, ग्याञ्चीमे भूचा-चारा महँगा मिलता है।

नौ जुलाईको सूर्योदयके जरा ही बाद हम स-चासे रवाना हुए। नहरें यहाँ अधिक और काफी पानी बहाने वाली थी। खेतोंकी हरियालीसे आंख तृप्त हो रही थी। नदीकी धारके पास भोटिया बबूलके जङ्गल थे। गाँवोंके मकान अच्छे दो मजले थे। इनकी दीवारोंपरकी सफेद मिट्टी, छतपर लकड़ी व कण्डेका काला हाशिया, लम्बी

बजायें, और सरल रेखामें सभी दर्वाजे तथा खिड़कियाँ दूरसे देखने-में बहुत सुन्दर मालूम होती थीं। नहरें ऐसे तो मध्य भोट देशमें सभी जगह हैं, किन्तु इधरकी अधिक बाकायदा मालूम होती हैं। नहरोंके अन्तमें सत्तू पीसनेकी पनचक्की प्रायः सभी जगह देखनेमें आती है। गावमें भी पनचक्की मिली। यहां कई अरब मन्त्रोंसे भरी एक विशाल माणी पानीके जोरसे चलती देखी। माणीके ऊपर बाहर की ओर निकली एक लम्बी लकड़ी थी जो हर चक्करमें छतसे लटकते घण्टेकी जीभपर टकराती थी और इस प्रकार हर चक्करके समाप्त होनेपर घण्टेकी एक आवाज होती था। मैं समझता हूँ, एक चक्करमें एक सेकण्ड भी न लगता था। इस प्रकार एक सेकण्डमें एक खरब मन्त्रोंका जप हो जाता था। ये साधारण मन्त्र नहीं थे। भारतके उत्तमसे-उत्तम मन्त्रोंके भी करोड़ों जप उनके एक वारके उच्चारणकी बराबरी नहीं कर सकते। फिर अवश्य ही इस पुण्यका, जो कि उस गावमें प्रति सेकण्ड उपार्जित किया जा रहा था, अङ्क-गणितकी बड़ीसे-बड़ी राशिमें बतलाना असम्भव है। मैं सोच रहा था, यदि इस सारे पुण्यको माणी लगानेवाला व्यक्ति अपने ही लिए रखे, तो उसे एक सेकण्डके पुण्यको ही भोगनेके लिए असङ्ख्य कल्पों तक इन्द्र और ब्रह्माके पदपर रहना होगा। फिर एक मास और दो मासके पुण्यकी वात ही क्या ? लेकिन यह सुनकर गणितके चक्करमें घूमते हुए मेरे दिमागको शान्ति मिली कि तिब्बती लोग महायानके मानने वाले होते हैं, और अपने अर्जित सभी पुण्यको पूँजी वालोंकी तरह अपने लिए न रखकर प्राणिमात्रको प्रदान करते हैं। कौन कह सकता है कि घोर पाप सङ्कटमें जिस भूमण्डलके मनुष्योंको समुद्रके गर्भमें विलीन हो जाने तथा पृथ्वीके उदरमें समा जानेसे बचा रखनेमें तिब्बतकी यह हजारों माणियां कितना कामकर रही हैं ? काश ! यन्त्रवादी दुनिया भी इसके महत्त्वको समझती, और अल्लाह; क्राइष्ट, राम, कृष्णके लाख-दो-लाख नाम मशीनके

पहियोंमें अङ्कित कर रखती ! माहात्म्य-सहित श्रीमद्भगवद्गीता तो घड़ीके पहियोंपर अङ्कित करायी जा सकती है । अस्तु ।

दस बजेके करीब हम ग्याञ्ची पहुँचे । काठमाण्डव (नेपाल)के धर्ममान् साहुकी अपार धर्म श्रद्धाको तो मुझे एक लंदाखी मित्रने सिंहलमें ही लिख भेजा था । शीगर्चीमें किसीने मुझे बतलाया कि इस समय कुछ कालके लिए उनकी यहाँकी दूकान बन्द हो गई है । ग्याञ्चीमें उनकी दूकानका नाम ग्यो-लिङ-छोक्-पा है । अभी ल्हासा आठ-दस दिनमें पहुँचना था, इसलिए मैंने खच्चर वालोंसे कहा मैं ग्यो-लिङ् छोक्-पामें दोपहरको ठहरकर कुछ खानेका सामान लेता हूँ, फिर चलेंगे । तिब्बतके कस्बों और शहरोंमें हर घरका अलग अलग नाम होता है, जो कि हमारे शहरोंके घरके नम्बर तथा मुहल्लेकी जगह काम आता है । ग्या-लिङ् छोक् पा ऐसा ही नाम है । मेरे ठहर जानेपर थोड़ी देरमें खच्चर वालोंने आकर कहा—आज हम लोग ग्याञ्चीमें ही ठहरेंगे, कल चलेंगे ।

ग्याञ्ची ल्हासा और भारतके प्रधान रास्तेपर है, जो कि कलिम्पोङ् हो सिली-गोडीके स्टेशनपर ई० बी० रेलवेसे आ मिलता है । यहाँ भारत सरकारका "वृटिश वाणिज्य-दूत" तथा नेपाल-सरकारका वकील (=राजदूत)के साथ सहायक वाणिज्य दूत, डाक्टर, तथा एकाध और अंग्रेज अफ़सर रहते हैं । सौके करीब हिन्दुस्तानी पल्टन भी रहती है । ग्याञ्चीके विषयमें मुझे आगे लिखना ही है, इसलिए इस वक्त इतने हीपर सन्तोष करता हूँ ।

६. ल्हासा।

रातको उस दिन कुछ वर्षा हुई; वह दूसरे दिन (१० जूलाई) दस बजे तक होती रही । ग्याञ्चीमें भी हाट सवेरे आठसे बारह बजे तक लगती है । मैंने रास्तेके लिए हरी मूली, चिउड़ा, चीनी, चावल, चाय और मिठाई ले ली थी । कुछ मीठे पराठे तथा उबला माँस भी ले लिया था । पश्चिमकी पर्वत-श्रृङ्खलाकी एक बाँहीं ग्याञ्ची मैदानके

ग्रीवमें आ गई है, जिसके अन्तिम सिरेपर ग्याञ्चीका जोङ् (=दुर्ग) है। इस वाहींके तीन तरफ ग्याञ्चीका कस्वा बसा हुआ है। मुख्य बाजार वाहींके दक्खिन तरफ बसा हुआ है जो कि वाहींके घुमावपरके पर्वतपर बनी गुम्बाके दर्वाजेपर लम्बा चला गया है। ग्या-लिङ्-छोक् या वाली सड़कपर माणीकी लम्बी दीवार है। दोपहरके बाद हम लोग वाहींकी ही छोटी रीढ पार हो दूसरी तरफ़की बस्तीमें आये। बस्तीसे बाहर निकलनेपर रास्तेमें कहीं कहीं पानी वह रहा था। गेहूँ और जौके पौधोंकी हरियाली पानीके धुल जानेसे और भी निखर आई थी। रास्तेमें चीनी सिपाहियोंके रहनेकी कुछ टूटी-फूटी जगहें मिलीं। यहाँ मैदान बहुत लम्बा-चौड़ा था, जिसमें दूर तक हरियाली दिखाई पड़ती थी। रास्तेसे पूर्व ओर बृटिश दूतावासकी मटमैले रङ्गकी दूरतक चली गई इमारत देखी। थोड़ा और आगे बढनेपर तारके लकड़ीके खम्मे दिखाई पड़ने लगे। ग्याञ्ची तक अँग्रेजोंका तार और डाकखाना है। यहाँसे आगे ल्हासा तक भोट-सर्कारका तार है। ऐसे तो भोट सर्कार-का डाकखाना फरी-जोङ्से आगे तक है। ग्याञ्चीसे एक मील दूर जाते ही हमने भोटिया डाक ले जानेवाले दो डाकियोंको देखा। हाथमें घुंघरू-बँधा छोटा-सा भाला था, पीठपर पीले ऊनी कपड़ेमें बँधी डाक थी। एक तो उनमेंसे ग्यारह-बारह वर्षका लड़का था। जहाँ ग्याञ्ची तक अँग्रेजी डाकके लिए दो घोडे रखने पड़ते हैं, वहाँ इधर दो छोटी-सी पोटली लिये हुए महज दो आदमी रहते हैं। इससे ही मालूम हो रहा था कि भोटिया डाकमें लोगोंका कितना विश्वास है। अँग्रेजी डाकमें यद्यपि इधर बीमा नहीं लिया जाता, तो भी नेपाली सौदागर बडे-बडे मूल्यवान् पदार्थ डाकसे भेजते और मँगाते हैं, किन्तु भोटिया डाकमें (बीमा होनेपर भी) वे बहुत ही कम अपने पार्सलोंको उनकी मार्फ़त ग्याञ्ची भेजते हैं।

घण्टे भर चलनेके बाद फिर वर्षा शुरू हुई। उस समय मालूम हुआ कि हमारे साथका एक कुत्ता ग्याञ्चीमें ही भूल गया। कुत्तेवाला

उसे लानेके लिए ग्याछ्री लौटा और हम आगे बढ़े। गाँव और खेत रास्तेके अगल-बगल कई जगह दिखाई पडे। गाँवोंके पास बीर (=कश्मीरी बीरी) और सफेदाके दरख्त हर जगह ही थे। हमें रास्तेमें एक पहाड़ी बाँही मिली। इसमें कोई वैसी चढ़ाई न थी। लेकिन उसके पार वाला फ़ौजी मोर्चा बतला रहा था कि यह भी पहले सामरिक महत्वका स्थान रह चुका है। बाँही पार करनेपर कच्चा किला-सा मिला। अब इसकी कुछ हाथ ऊँची मिट्टीकी दीवारें भर रह गई हैं। यहाँसे कुछ देर हम पूर्व-उत्तरकी ओर चले और थोड़ी ही देरमें दि-की-ठो-मो पहुँच गये। यहाँ एक धनी गृहस्थका घर है। हमारे साथी माल ढोनेके कामके साथ साथ चिट्ठी-पत्री ले जानेका काम भी करते थे। डाकके न रहनेके ज़मानेमें हमारे देशमें भी बनजारे व्यापारी ऐसा किया करते थे। घरके बाहर खलिहानका बड़ा अहाता था। हमारे स्वागतके लिए एक बड़ा काला कुत्ता आया। भोटिया लोग ऐसे कुत्तोंकी पर्वा नहीं किया करते। मैंने भी खच्चरोंके रोकने और माल उतारनेमें मदद दी। बूँदे पड़ रही थी। इसलिए छोलदारी खड़ी की गई। खूँटोंकी रस्सीके सहारे खच्चरोंको बाँध दिया गया और भूसा लाकर उनके सामने डाल दिया गया। खच्चरोंसे निवृत्त हो सर्दारके साथ मैं रईसके घरमें गया। एक भयङ्कर कुत्ता बडे खूँटेमें मोटी जञ्जीरके सहारे बँधा हुआ था। हमें देखते ही "हौ" "हौ" कर पिंजरेके शेरकी तरह चक्कर काटने लगा। द्वारके भीतर सीढीपर चढ़नेकी जगह वैसा ही एक दूसरा कुत्ता बंधा हुआ था। ये दोनों ही कुत्ते डील-डौलमें असाधारण थे। भेड़िया इनके सामने कुछ न था। मैंने समझा था, इनका मूल्य बहुत होगा, किन्तु पूछनेपर मालूम हुआ, दस पन्द्रह रुपयेमें इनके बच्चोंकी जोड़ी मिल सकती है। घरका लड़का कुत्तेको दबाकर बैठ गया और हम कोठेपर गये। जाकर रईसके घरमें गद्दे पर बैठे, सत्तू और चाय आई। मैंने थोड़ी छाछ भी पी। यहाँ भी गृहपतिने लदाखकी बातचीत पूछी। उस समय कुछ भिक्षु भी गृह-स्वामीके

मङ्गलार्थ पूजा-पाठ करनेके लिए आये हुए थे। उन्होंने भी 'लदाखी भिक्षु' का हाल पूछा। वहाँसे फिर लौटकर मैं डेरेमें आ गया। कुछ देर बाद हमारा साथी भी कुत्ता लेकर चला आया। घरसे उत्तर तरफ़ लगी हुई ही नदीकी धार है; जिसके दूसरी तरफ खेतीके लायक बहुत-सी जमीन पड़ी हुई है। घरसे दक्षिण-पश्चिम एक स्तूप है। सन्ध्या कालमें वृद्ध गृह-पति माला और माणी हाथमें लिए उस स्तूपकी परिक्रमा करने लगे। धीरे-धीरे सन्ध्या हो गई। मेरे साथी तो घरमें चले गये, मैं अकेला डेरेमें रह गया। उस समय आस्मान बादलोंसे घिरा था, बूँदें टप्-टप् पड़ रही थीं। रह-रहकर बिजली चमक उठती थी। अकेले डेरेमें बैठा मैं सोच रहा था—चलो ग्याञ्चीसे भी पार हो गया, अब ल्हासा पहुँचनेमें सिर्फ़ कुछ दिनोंकी ही देरी है यात्राका विचारकर नेपाल तक जिसे लोग बड़ा भयावना बतलाते थे, मुझे तो उसमें वैसी कुछ भी कठिनाई न पड़ी, थोड़े ही दिनोंमें रहस्योंसे भरी ल्हासा नगरीमें भी मैं इसी प्रकार पहुँच जाऊँगा और तब कहूँगा कि झूठ ही लोग इस यात्राको इतना भयानक कहा करते हैं। समय बीत जाने पर मनुष्य ऐसा ही सोचा करता है। जब मैं इस प्रकार अपने विचारोंमें तल्लीन था, उसी समय वह खुला कुत्ता मेरे पास आकर भूँकने लगा। मेरी विचार-शृङ्खला टूट गई और मैं डण्डा सभालकर बैठ गया। वह दूरसे ही कुछ देर तक भूँकता रहा और फिर चला गया। कुछ रात और जानेपर मेरे साथी काफ़ी छङ् पीकर लौट आये और रातको छोलदारीके नीचे सब लोग सो रहे।

———

पाँचवीं मंजिल

अतीत और वर्त्तमान तिब्बतकी झाँकी

१. तिब्बत और भारतका सम्बन्ध

तिब्बत ऐसा अल्पज्ञात संसारमें कोई दूसरा देश नहीं। कहनेको तो यह भारतकी उत्तरी सीमापर है, किन्तु लोगोंको, साधारण नहीं शिक्षितोंको भी, इसके विषयमें बहुत कम ज्ञान है मैंने अपने एक मित्रको पुस्तक लिखनेके लिए कुछ कागज डाकसे भेजनेके लिए लिखा था। उन्होंने पूछा कि डाककी अपेक्षा रेलसे किफ़ायत होगी, स्टेशनका पता दें[१]। तिब्बतकी वास्तविक स्थितिकी जानकारीका ऐसा ही हाल है। हमारे लोगोंको यह मालूम नहीं कि हम हिमालयकी तलौटीके अन्तिम रेलवे स्टेशनोंसे चलकर बीस-बीस हजार फुट ऊँची जोतोंको पारकर एक महीनेमें ल्हासा पहुँच सकते हैं, यदि ब्रिटिश और भोट सरकारकी अनुमति हो। कलिम्पोङसे प्रायः दो तिहाई रास्ता खतमकर लेनेपर ग्याञ्ची मिलता है। ब्रिटिश राज्यका प्रतिनिधि यहीं रहता है। और यहीं अगरेजी डाकखाना है, जिसका सम्बन्ध भारतीय डाक-विभागसे है, और जहाँ भारतीय डाक-दरपर चिट्ठी-पार्सल जा-आ सकते हैं। तार भी ल्हासा तक भारतीय ही दरपर पहुँच सकता है।

तिब्बतके सभ्य संसारसे पूर्ण-रूपसे अपरिचित होनेका एक कारण इसकी दुर्गमता भी है। दक्षिण और पश्चिम ओर वह हिमालयकी पर्वतमालासे घिरा है। इसी प्रकार ल्हासासे सौ मील दूरीपर जो विशाल मरुभूमि फैली हुई है वह इसको उत्तर ओरसे दुर्गम बनाये

---

१ कमसे कम इस उदाहरणमें तो तिब्बतका दोष नहीं, लेखकके मित्रका है, या हमारे ऐंग्लो-इण्डियन शिक्षणालयोंकी शिक्षाका।

हुए हैं। संसारका यह सर्वोच्च पठार है। इसका अधिकाश समुद्रकी सतहसे १६,५०० फुट ऊंचा है। यहाँ ८ महीने वर्फ जमीनपर जमी रहती है। भारतसे आनेवाले लोग दार्जिलिङ्ग या काश्मीरके मार्गसे यहाँ आते हैं। ल्हासा को दार्जिलिङ्गसे मार्ग गया है। वह वहाँसे ३६० मील दूर है।

तिब्बत बड़ा देश है। यह नाममात्रको चीन-साम्राज्यके अन्तर्गत है। यहाँके निवासी बौद्ध-धर्मावलम्बी हैं। परन्तु सामाजिक आदि बातोंमें एक प्रान्तके निवासी दूसरे प्रान्तके निवासियोंसे मेल नहीं खाते हैं। तथापि यहाँ धर्मको बड़ी प्रधानता प्राप्त है। यहाँके शासक दलाई लामा बुद्ध भगवान्के अवतार माने जाते हैं। लोगोंका विश्वास है कि जब नया आदमी दलाई लामाकी गद्दीपर बैठता है तब उसमें बुद्ध भगवानकी आत्माका आविर्भाव होता है। फलतः सारे देशमें जगह-जगह बौद्ध मठ पाये जाते हैं। ल्हासामें तीन ऐसे मठ हैं जिनमें कोई चार पाँच हजार भिक्षुक निवास करते होंगे। उनके सिवा और जो मठ हैं उनमें भी सैकड़ोंकी संख्यामें भिक्षुक रहते हैं।

देशकी प्राकृतिक अवस्थाके कारण तिब्बतियोंका देश दूसरे देशोंसे अलग पड़ गया है। इस परिस्थितिका वहाँके निवासियोंपर जो प्रभाव पड़ा है, उससे वे स्वयं एकान्तप्रिय हो गये हैं। तिब्बती लोग शान्त और शिष्ट होते हैं। वे अपने रङ्गमें रंगे रहते हैं। विदेशियोंका सम्पर्क अच्छा नहीं समझते। अपने पुराने धर्मपर तो उनकी अगाध श्रद्धा है ही, साथ ही पुराने ढङ्गसे खेती-बारी तथा जरूरत भरका रोजी-धन्धा करके वे सन्तोषके साथ जीवन बिता देना ही अपने जीवनका लक्ष्य समझते हैं। इस २०वीं सदीकी सभ्यतासे वे बहुत ही झिझकते हैं। यही कारण है कि वे विदेशियोंको अपने देशमें घुसने नहीं देते हैं। तो भी अतिथि सत्कारमें वे अद्वितीय हैं।

तिब्बती लोग चाय बहुत पीते हैं। नाचने गानेका भी उन्हें बड़ा शौक होता है। पुरुष अधिक नाचते हैं, स्त्रियोंमें उसका उतना

प्रचार नहीं है। यहाँकी स्त्रियोंमें भारतकी तरह पर्देका रवाज नहीं है। वे रोज़ी-धन्धे करके धनोपार्जन भी करती हैं।

तिब्बत—विशेषकर ल्हासाकी तरफ़ वाले प्रदेश—में पहुँचना कितना कठिन है, यह जिन्होंने तिब्बत-यात्रा-सम्बन्धी पुस्तकोंको देखा है वे भली प्रकार जानते हैं। इसका अनुमान इसीसे हो सकता है कि भारत-सीमाको फागुन सुदी ६ को छोड़कर आषाढ़ सुदी त्रयोदशीको मैं ल्हासा पहुँच सका।

मेरी यह यात्रा भूगोल-सम्बन्धी अन्वेषण या मनोरञ्जनके लिए नहीं हुई है, बल्कि यह यहाँके साहित्यके अच्छे प्रकार अध्ययन तथा उससे भारतीय एवं बौद्ध-धर्म-सम्बन्धी ऐतिहासिक तथा धार्मिक सामग्री एकत्र करनेके लिए हुई है। इतिहास-प्रेमी जानते हैं कि सातवी शताब्दीके नालन्दाके आचार्य शान्त-रक्षितसे आरम्भ करके ग्यारहवीं शताब्दीके विक्रमशिलाके आचार्य दीपङ्कर श्रीज्ञानके समय तक तिब्बत और भारत (उत्तरी भारत)का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। तिब्बतको साहित्यिक भाषा अक्षर और धर्म देनेवाले भारतीय हैं। उन्होंने यहाँ आकर हज़ारों सस्कृत तथा कुछ हिन्दीके ग्रन्थोंके भी भाषान्तर तिब्बती भाषामें किये। इन अनुवादोंका अनुमान इसीसे हो सकता है कि संस्कृत-ग्रन्थोंके अनुवादोंके कंग्यूर और तग्यूरके नामसे जो यहाँ दो सग्रह हैं उनका परिमाण अनुष्टुप् श्लोकोंमें करनेपर २० लाखसे कम नहीं हो सकता। कग्यूरमें उन ग्रन्थोंका सग्रह है जिन्हें तिब्बती बौद्ध भगवान बुद्धका श्रीमुख वचन मानते हैं। यह मुख्यतः सूत्र, विनय और तन्त्र तीन भागोंमें बाँटा जा सकता है। यह कग्यूर १०० वेष्टनोंमें बँधा है, इसीलिए कग्यूरमें सौ पोथियाँ कही जाती हैं, यद्यपि ग्रन्थ अलग-अलग गिननेपर उनकी सख्या सात सौसे ऊपर पहुँचती है। कंग्यूरमें कुछ ग्रन्थ सस्कृतसे चीनीमें होकर भी भोटियामें अनुवाद किये गये हैं। तंग्यूरमें कग्यूरस्थ कितने ही ग्रन्थोंकी टीकाओंके अतिरिक्त दर्शन, काव्य, व्याकरण, ज्योतिष, वैद्यक, तन्त्र-मन्त्रके कई-सौ ग्रन्थ

हैं। ये सभी संग्रह दो सौ पोथियोंमें बँधे हैं। इसी संग्रहमें भारतीय-दर्शन-नभोमण्डलके प्रखर ज्योतिष्क आर्यदेव, दिङनाग, धर्मरक्षित, चन्द्रकीर्ति, शान्तरक्षित, कमलशील आदिके मूल-ग्रन्थ, जो संस्कृतमें सदाके लिए विनष्ट हो चुके हैं। शुद्ध तिब्बती अनुवादमें सुरक्षित सुरक्षित हैं। आचार्य चन्द्रगोमीका चान्द्रव्याकरण सूत्र, धातु उणादि पाठ, वृत्ति, टीका, पंचिका आदिके साथ विद्यमान है। चन्द्रगोमी "इन्द्रश्चन्द्रः काशकृत्स्नः' वाले श्लोकके अनुसार आठ महावैयाकरणोंमेंसे एक महावैयाकरण ही नहीं थे, बल्कि वे कवि और दार्शनिक भी थे, यह उनकी तंग्यूरमें वर्तमान कृतियों—लोकानन्द नाटक, वादन्यायटीका आदि—से मालूम होता है। अश्वघोष, मतिचित्र (मातृचेता), हरिभद्र, आर्यशूर आदि महाकवियोंके कितने ही विनष्ट तथा कालिदास दंडी हर्षवर्द्धन, क्षेमेन्द्र आदिके कितने ही संस्कृतमें सुलभ ग्रन्थ भी तंग्यूरमें हैं। इसीमें अष्टाङ्गहृदय, शालिहोत्र आदि कितने ही वैद्यक ग्रन्थ टीका उपटीकाओंके साथ मौजूद हैं। इसी मतिचित्रका पत्र महाराज कनिष्कको, योगीश्वर जगद्दलका महाराज चन्द्रको दीपङ्कर श्रीज्ञानका राजा नयपाल (पालवंशी)को तथा दूसरे भी कितने ही लेख पत्र) हैं। इसीमें ग्यारहवीं शताब्दीके आरम्भके बौद्ध सन्ताना योगी सरह, अवधूती आदिके दोहा कोष आदि हिन्दी-ग्रन्थोंके भाषान्तर हैं।

इन दोनों संग्रहोंके अतिरिक्त भोट भाषामें नागार्जुन, आर्यदेव, असङ्ग, वसुबन्धु, शान्तरक्षित, चन्द्रकीर्ति, धर्मकीर्ति, चन्द्रगोमी, कमलशील, शील, दीपङ्कर श्रीज्ञान आदि अनेक भारतीय पण्डितोंके जीवनचरित्र हैं। तारानाथ, बुतोन, पद्मकरपो, वेदुरिया सेरपो, कुन्ग्यल आदिके कितने ही छं जुङ (धर्मेतिहास) हैं, जिनसे भारतीय इतिहासके कितने ही ग्रन्थोंपर प्रकाश पड़ता है। इन नम्थर जीवनी, छोजुङ (धर्मेतिहास), कंग्यूर तंग्यूरके अतिरिक्त दूसरे भी सैकड़ों ग्रन्थ हैं, जिनका यद्यपि भारतीय इतिहाससे साक्षात् सम्बन्ध

नहीं है, तो भी वे सहायता पहुँचा सकते हैं।

उक्त ग्रन्थ अधिकतर कैलाश-मानसरोवरके समीप वाले थोलिङ् गुम्बा (विहार), मध्य तिब्बतके मक्या, समये आदि विहारोंमें अनूदित हुए थे। इन गुम्बाओं (विहारों)से हमारे मूल संस्कृत ग्रन्थ भी मिल जाते, यदि वे विदेशियों-द्वारा जलाये न गये होते। तो भी खोजनेपर ग्यारहवीं शताब्दीसे पूर्वके कुछ ग्रन्थ देखनेको मिल सकते हैं।

२. आचार्य शान्तरक्षित

(लगभग ६५० — ७५० ई०)

सिंहलमें बौद्ध धर्मकी स्थापना जिस प्रकार सम्राट् अशोकके पुत्रने की, उसी प्रकार भोट (तिब्बत)में बौद्ध धर्मकी दृढ स्थापना करनेवाले आचार्य शान्तरक्षित हैं। इसमें सन्देह नहीं कि शान्तरक्षितके आनेसे पहले भोट सम्राट् स्रोङ्चन स्गोम-पोके ही समय (६१८—५० ई०)में, जिसने नेपाल विजयकर अंशुवर्माकी राजकुमारीसे विवाह किया तथा चीनके अनेक प्रान्तोंको अपने साम्राज्यमें मिला चीन सम्राट्की कन्याका पाणिग्रहण किया, तिब्बतमें बौद्ध धर्म प्रवेश कर चुका था। स्रोङ्चनकी ये दोनों रानियाँ बौद्ध थीं और इन्हींके साथ बौद्ध धर्म भी भोटमें पहुंचा। इसी सम्राट के बनवाये ल्हासाके सबसे पुराने दो मन्दिर रमोछे और चोरेम्योछे हैं। तो भी उस समय बौद्ध-धर्म तिब्बतमें दृढ न हो पाया था। उस समय न कोई भिक्षु-विहार था, न कोई भिक्षु ही बना था। सारे भोटपर बौद्ध धर्मकी पक्की छाप लगानेवाले आचार्य शान्तरक्षित ही थे। उन्हीं आचार्यका संक्षिप्त जीवन-चरित भोटिया ग्रन्थोंके आधारपर पाठकोंके सम्मुख रखता हूँ।

मगध देशकी पूर्व सीमापरका प्रदेश (मुंगेर, भागलपुरके जिले) पाली और संस्कृत ग्रन्थोंमें अङ्गके नामसे प्रसिद्ध था। इसी प्रदेशका पूर्वी भाग मध्य कालमें सहोरके नामसे प्रसिद्ध था। भोटिया लोग

सहोरको जहोर लिखते और बोलते हैं। सहोर[1] का दूसरा नाम भोटिया ग्रंथोंमें भंगल या भगल भी मिलता है। इस भगल नामकी छाया आज भी इस प्रदेशके प्रधान नगर भागलपुरमें पाई जाती है। इसी प्रदेशमें गङ्गा-तटकी एक छोटी पहाड़ीके पास पालवंशीय राजा (देव-पाल ८००—८३७ ई०) ने एक विहार बनवाया, जो पासकी नगरी विक्रमपुरीके कारण विक्रमशिला के नामसे प्रसिद्ध हुआ। यह विहार विक्रमपुरीके समीप उत्तर तरफ़ था। विक्रमपुरीके दूसरे नाम भागलपुर तथा विक्रमपुर भी भोटिया ग्रन्थोंमें मिलते हैं। विक्रमपुरी एक माण्डलिक राजवंशकी राजधानी थी, जिसे भोटिया ग्रन्थकार लाखों घरोंकी बस्ती बतलाते हैं। अस्तु इसी राजवंश में जिसने भोटके दूसरे महान् धर्म-प्रचारक दीपंकर श्रीज्ञान या अतिशा (जन्म ९८२, मृत्यु १०५४ ई०)को जन्म दिया, सातवीं शताब्दीके मध्यमें (अन्त सन् ६५० ई०, आचार्य शान्तरक्षितका जन्म हुआ था।

नालन्दा तथागतकी चरणधूलिसे अनेक बार पवित्र हो चुका था। भगवान् बुद्धने यहाँ एक वर्षा-काल भर वास भी किया था। इसीके अत्यन्त सन्निकट नालकग्राम था, जिसने भगवान्‌के सर्वोपरि शिष्य धर्मसेनापति आर्य सारिपुत्रको जन्म दिया था। इससे इस स्थानकी पुनीतता अच्छी तरह समझमें आ सकती है। यहाँ बुद्ध जीवन हीमें प्रावारक सेठने अपना प्रावारक आम्रवन प्रदान कर दिया था। इस प्रकार यहाँ पूर्व हीसे एक विहार चला आता था। सम्राट् अशोकके समयमें तृतीय धर्म सङ्गीति (सभा) में सर्वास्तिवाद आदि निकाय (सम्प्रदाय) स्थविरवादसे निकाल दिये गये थे। इसपर सर्वास्ति-वादियों और दूसरोंने अपनी सभा नालन्दा[3]में की। इसके बाद नालन्दा

---

१ सहोर, बङ्गालमें नहीं विहारमें है। इस विषयपर सप्रमाण लेख मैं पटनाके "युवक"को भेज चुका हूँ।

२ भागलपुर जिलेका सुलतानगंज ही विक्रमशिला प्रतीत होता है।

३ पटना जिलेका बड़गाँव।

सर्वास्तिवादियोंका केन्द्र बन गया। बौद्ध धर्मानुयायी मौर्यों के राज्य-को हटाकर बौद्ध-द्वेषी ब्राह्मण मतानुयायी शुंगोंने अपना राज्य (ई० पू० १८८) स्थापित किया। उस समय सभी बौद्ध निकायोंने विपरीत परिस्थितिके कारण मगध छोड़ अपने केन्द्र अन्य प्रदेशोंमें स्थापित किये। सर्वास्तिवादियोंने मथुराके पासके गोवर्धन पर्वतको अपना केन्द्र बनाया। इसी समय सर्वास्तिवादने अपने पिटकको संस्कृतका रूप दिया। इतिहासमें यह सर्वास्तिवाद आर्य सर्वास्तिवादके नामसे प्रसिद्ध है। पीछे कुषाणोंके समय कुषाण राजाओंका यह बहुत हो श्रद्धाभाजन हो गया और इस प्रकार इसका केन्द्र मथुरासे हटकर कश्मीर-गन्धारमें जा पहुँचा। कश्मीर-गन्धारका सर्वास्तिवाद मूलसर्वास्तिवाद कहलाता है। सम्राट कनिष्क मूलसर्वास्तिवादके लिए दूसरे अशोक थे; जिन्होंने तक्षशिलाके धर्मराजिका स्तूपको आचरियाणं सब्बत्थिवदिन परिग्गहे[1] शब्दोंके अङ्कितकर उत्सर्ग किया। कनिष्क-की संरक्षतामें एक महती चौथी बौद्ध धर्म-परिषद् हुई, जिसमें मूल-सर्वास्तिवादके अनुसार त्रिपिटककी विस्तृत टीकायें बनीं। इन टीकाओंका नाम विभाषा हुआ। इस प्रकार मूलसर्वास्तिवादियोंका दूसरा नाम वैभाषिक पड़ा।

इसी मूलसर्वास्तिवादसे पीछे महायानकी उत्पत्ति हुई, जिसने वैपुल्य पाली—वेतुल्ल), अवतंसक आदि सूत्रोंको अपना अपना सूत्र-पिटक बनाया। किन्तु विनयपिटक मूल सर्वास्तिवादियों वाला ही रक्खा[2]. महायानसे वज्रयान और भारतमें बौद्ध धर्मकी नौका डूबनेके के वक्त (१२वीं शताब्दी सहजयान (घोर वज्रयान)का उदय हो जाने पर भी नालन्दा उदन्तपुरी[3] और विक्रमशिलाके महाविहारोंमें मूल-

---

१. सर्वास्तिवादी आचार्योंके परिग्रह (trust) में।

२. त्रिपिटकमें तीन पिटक हैं—विनय पिटक, सुत्त पिटक और अभिधम्म पिटक।

३. पटना जिलाके विहार शरीफ कसबेके पास वाली पहाड़ीपर

सर्वास्तिवाद हीका विनयपिटक माना जाता था। भोटिया भिक्षु आज भी इसीको मानते हैं और बड़े अभिमानसे कहते हैं कि हम विनय (मूलसर्वास्तिवाद विनय), बोधिसत्व (महायान) और वज्रयान तीनोंके शीलको धारण करते हैं, यद्यपि यह बात एक तटस्थकी समझमें नहीं आ सकती। शील तो मनुष्य हजारों धारण कर सकता है। अनुयोगी और प्रतियोगी प्रकाश और अन्धकारको एक स्थानमें जिस प्रकार रखना असम्भव है, वैसे ही परस्पर विरोधी दो शीलोंका भी रखना सम्भव नहीं। इसके कहनेकी आवश्यकता नहीं कि विनय और वज्रयानके शील अधिकतर परस्पर विरोधी हैं। अस्तु।

शान्तरक्षितके समय नालन्दाकी कीर्ति दिगन्तव्यापिनी थी। य्वन्-चुवाङ् थोड़े ही दिनों पूर्व वहाँसे विद्या ग्रहणकर चला गया था। वहाँ वज्रयान या तन्त्रयानका अच्छा प्रचार था। शान्तरक्षितने घर छोड़ वहीं आचार्य ज्ञानगर्भके पास (अन्दाजन ६७५ ई०में) मूलसर्वास्तिवाद विनयके अनुसार प्रव्रज्या और उपसंपदा ग्रहण की। इसी समय इनका नाम शान्तरक्षित पड़ा। नालन्दामें अपने गुरुके पास ही शान्तरक्षितने साङ्गोपाङ्ग त्रिपिटकका अध्ययन किया। त्रिपिटककी समाप्तिके बाद बोधिसत्व मार्गीय (महायानिक) ग्रन्थ अभिसमयालङ्कार आदिके पढ़नेके लिए आचार्य विनयसेनके पास उपनीत हुए जिनसे उन्होंने महायान मार्गीय विस्तृत और गम्भीर दोनों क्रमोंके अध्ययनके साथ आर्य नागार्जुन[1]के माध्यमिक सिद्धान्तका

था, जहाँपर आज-कल एक बड़ी दर्गाह खड़ी है। मुहम्मद बिन बख्तियार खिलजाने इसीको लूटा था।

१. नागार्जुन दूसरी शताब्दी ई० के मध्यमें दक्षिण कोशल (छत्तीसगढ) में हुए थे। वे बहुत बड़े दार्शनिक और वैज्ञानिक थे। भारतीय दर्शन, वैद्यक आदिकमें उन्होंने अनेक नये विचार चलाये। महायानके प्रवर्तक यही हैं। देखिए—भारतीय वाङ्मयके अमर रत्न, पृ० २५, ३२-३३।

भी अध्ययन किया। पीछे इसीपर उन्होंने मध्यम कालङ्कार नामक अपना ग्रन्थ टीका सहित लिखा।

जिस समय आचार्य शान्तिरक्षित नालन्दा में थे, उसी समय चीनी भिक्षु ई-चिड[1] (३७१-६५ ई०) नालन्दामे कई वर्ष रहे। किन्तु उन्होंने अपने ग्रन्थमे शान्तरक्षितके विषयमें कुछ नहीं लिखा, यद्यपि और कितने ही विद्वानोंके विषयमें बहुत कुछ लिखा। इसका कारण उस समय शान्तरक्षितकी प्रतिभाकी अप्रसिद्धि ही हो सकती है। विद्या-समाप्तिके बाद शान्तरक्षितने नालन्दामें ही अध्यापनका कार्य शुरू किया। उनके शिष्योंमें हरिभद्र और कमलशील थे, जो दोनों ही यशस्वी लेखक हुए हैं। इन दोनोंके कितने ही ग्रन्थ संस्कृतमें नष्ट हो जानेपर भी तंग्यूरमें भोटिया अनुवादके रूपमें मिलते हैं। आचार्य शान्तरक्षितने अनेक ग्रन्थ बनाये, जिनमे दर्शन सम्बन्धी निम्नलिखित ग्रन्थ तग्यूरमें अब भी मिलते हैं यद्यपि तत्वसंग्रहके अतिरिक्त सभी मूल संस्कृतमें नष्ट हो चुके हैं।

१ सत्यद्वयविभगपञ्जिका; अपने गुरु ज्ञानगर्भके ग्रन्थ पर टीका।

२—मध्यमकालङ्कारकारिका; नागार्जुनके माध्यमिक सिद्धान्त-पर।

३—मध्यमकालङ्कारवृत्ति, मध्यमकालंकारकारिकाकी टीका।

---

१ कश्मीरी पठान, नेपाली, तिब्बती, चीनी लोग च का एक दबा सा उच्चारण करते हैं—च और स के बीचका। इस ग्रन्थके लेखक और सम्पादक उसे च के नीचे बिन्दु लगाकर प्रकट करते हैं; उसका टाइप अभी नहीं ढलने लगा। अँग्रेज़ीमें उसके लिए ts संकेत है, जिसे न समझकर हमारे बहुत से हिन्दी लेखक ई-चिडको इत्सिंग, त्वान् च्वाड् को हुएन त्सांग और चाडपोको त्सांगपो या सानपो लिखा करते हैं।

४—बोधिसत्वसंवरविंशिकावृत्ति; महावैयाकरण दार्शनिक महा-कवि चन्द्रगोमीके ग्रन्थपर टीका।

५—तत्त्वसंग्रहकारिका।

६—वादन्यायविपंचितार्थ, बौद्ध महानैयायिक धर्मकीर्तिके वादन्यायपर टीका।

इनके अतिरिक्त आचार्यने तन्त्रपर भी अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। किन्तु आजकल मूल संस्कृतमें उनके दो ही ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं; तत्त्वसंग्रहकारिका और ज्ञानसिद्धि। पहला अभी दो वर्ष पूर्व गायकवाड प्राच्य ग्रन्थ माला[1]में प्रकाशित हुआ है और दूसरा भी वहीं छप रहा है।

ये सब काम आचार्य शान्तरक्षितके भारतमें रहनेके वक्तके हैं। अब हम उनके जीवनके उस अंशको देखेंगे जो उन्होंने भोटमें धर्म-प्रचार करते समय बिताया। भोट-सम्राट् स्रोङ्-चन्-स्गेम् बोका पाँचवाँ उत्तराधिकारी खि-स्रोङ्-ल्दे ब्चन (ठि-सोङ्-देचन्)[2](७१६—८० ई०) हुआ। यह अभी बालक ही था, तभी उसका पिता खि ल्दे-गचुग् ब्र्तन् (७०५—१६ ई०) स्वर्गवासी हुआ और उसे अपने बापका सिंहासन मिला। भोट-देशमें बौद्ध धर्मके लिए यही धर्माशोक हुआ। इसकी प्रवृत्ति स्वभावतः धर्मकी ओर थी। उस समय भोट राजवंशका चीन राजवंशसे घनिष्ठ वैवाहिक सम्बन्ध था। ल्हासा[3]में उस समय

---

१ गायकवाड़ ओरियंटल सीरीज, बड़ोदा।

२ खि स्रोङ् ल्दे ब्चन् नामका मूल रूप है जैसाकि वह लिखा जाता है। उस रूपसे मूल धातु प्रकट होते हैं। किन्तु उसके कई अक्षरोंका अब उच्चारण नहीं होता। उच्चारित रूप कोष्ठमें है। आगे भी जहाँ एक शब्दके दो रूप दिये हों, वहाँ कोष्ठके बाहर या अन्दरके रूपोंमेंसे एकको उच्चरित रूप समझना चाहिए।

३ ल्हासाको राजधानी बनानेवाला स्रोङ्-चन् है।

बहुतसे चीनी बौद्ध भिक्षु थे, किन्तु उसकी उनसे तृप्ति न हुई। उसने धर्मग्रन्थ और धर्मके जानकार किसी आचार्यको लानेके लिए भारत आदमी भेजे। पहले राजपुरुष वज्रासन (बुद्ध गया) गये, और वहाँ राजाकी ओरसे महाबोधिकी पूजा की,फिर वहासे नालन्दा पहुँचे। उन्हें वहाँ पता लगा कि आचार्य इस समय नेपालमें हैं। इसपर वे नेपाल पहुँचे और आचार्यके सामने भोट राजकी भेंट रख राजाकी प्रार्थना कह सुनाई। आचार्यने प्रार्थना स्वीकृत की। इस प्रकार आचार्य शान्तरक्षित बड़े सत्कार-पूर्वक नेपालसे ल्हासा (अन्दाज़न ७२४ ई०में) लाये गये। यहाँ आचार्यके उपदेशोंका बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा, विशेषकर तरुण राजा तो बहुत प्रभावित हुआ। तो भी कितने ही दरबारी तथा दूसरे लोग इससे असन्तुष्ट थे। इसी समय देशमे कुछ बीमारियां तथा दूसरे उपद्रव हुए। विरोधियोंने यह कहना आरंभ किया कि भोटके देवो-देवता और आचार्य उनकी शिक्षासे असन्तुष्ट हैं। इसपर आचार्य शान्तरक्षित नेपाल लौट गये।

उनके लौट जानेपर चीनके सङ्-शी प्रदेशके कितने ही बौद्ध विद्वान् ल्हासा पहुँचे। कुछ दिनों तक उनका प्रभाव भी राजापर अच्छा रहा। दरबारमे उनका बहुत सम्मान होने लगा। किन्तु कुछ ही दिनों बाद राजाको फिर वृद्ध भारतीय आचार्यको बुलानेकी इच्छा हुई। इस प्रकार राजा द्वारा निमन्त्रित हो आचार्य शान्तरक्षित दूसरी बार (अन्दाज़ ७२६ ई०) ल्हासा पहुँचे भोट ऐतिहासिक लिखते हैं कि आचार्यको फिर देवी देवताओंके प्रकोपका भय हुआ,उन्होंने राजा को उड़ीसाके राजवंशोत्पन्न आचार्य पद्मसंभव[1] को बुलानेकी राय दी। कहलाता है कि पद्मसम्भवने मन्त्र-बलसे भोटके सभी देवी देवता,

१. पद्मसंभवकी उत्पत्ति भी कबीर साहबकी भांति कमलसे बतलाई जाती है, उड़ीसाका विख्यात वज्रयानी राजा इन्द्रभूति तो सिर्फ उसका पालन करने वाला था। यह धारणा, मालूम होती है, पद्म-

डाकिनी, योगिनी, खसर्विणी, यक्षिणी, भूत, प्रेत, वैताल आदिको पराख कर उन्हें बौद्ध धर्मका सहायक होनेके लिए प्रतिज्ञा बद्ध कराया।

आचार्य शान्तरक्षितने राजा खि-स्रोङ्-ल्दे व्चनकी सहायतासे ल्हाससे दो दिनके रास्तेपर दक्षिणमें, ब्रह्मपुत्रके तटपर ब्सम् यस (सम-ये) का बिहार अग्नि-स्त्री-शश वर्ष (प्रभव नाम संवत्सर = ७२७ ई०)मे बनवाना आरम्भ किया। ११ वर्षके बाद भूमि स्त्री शश वर्ष [माथी संवत्सर, ७३८ ई०] में वह बनकर तैयार हुआ। सम् येका बिहार उदन्तपुरीके विहारके नमूनेपर बना, और इसमें १२ खंड [आँगनवाले] थे। भोट देशका यही सबसे पुराना विहार है। विहार की समाप्तिकर, तथा बौद्ध धर्म का अच्छे प्रकार प्रचार कर लेनेके बाद भोटवासी कैसे भिक्षु बनते है, इसके देखनेके लिए उन्होंने १२ मूलसर्वास्तिवादियोंको बुलाकर जल मेष वर्ष) सुभानु संवत्सर, ७४२ ई०)मे ये शेस वङ्-पो (ज्ञानेन्द्र) आदि सात भोटियाको भिक्षु बनाया।

आचार्य शान्तरक्षित और उनके भोटिया शिष्योंने कुछ संस्कृत ग्रंथोंका भोटिया भाषामें अनुवाद भी किया था, किन्तु एकाध तन्त्र ग्रंथोंको छोड़ दूसरोंका पता नहीं मिलता। कहते हैं अन्तिम समय आचार्यने अपने शिष्य खि-स्रोङ से कहा था—भोटमें तीर्थिकों (अबौद्ध मतों) का प्राबल्य नहीं होगा, आपस हीमें विवाद शुरू होगा, उस समय तुम मेरे शिष्य कमलशीलको बुलाना। वह सब शान्तकर देगा। आचार्य शान्तरक्षितकी अवस्था उस समय सौ वर्षके करीब थी। इसी समय (अन्दाज़न ७५० ई०में) किसी दुर्घटनासे उन्होंने सम् येमें इस लोककी सुदीर्घ और यशस्विनी यात्राको समाप्त किया। आचार्य शान्तरक्षितका पवित्र शरीरावशेष आज भी सम्-येमे एक

सभव नामके कारण हुई। कहते हैं, इसने सहोर-राजवंशमें शादी की थी और शान्तरक्षितका बहनोई था। भोटिया लोग पद्मसंभवको आल्हा और भर्थरीकी तरह अमर मानते हैं।

चैत्यमे वर्तमान है, जो पूर्वकालके भारतीय वृद्धोंके साहसका ज्वलन्त प्रमाण है। आचार्य शान्तरक्षितके दिवंगत होनेपर भिक्षुओं ह्व-शङ् ने फिर विवाद आरम्भ किया, जिससे राजाने आचार्य कमलशीलको निमन्त्रित किया और उन्होंने ल्हासामें शास्त्रार्थकर विवादका अन्त किया।

भोट-निवासी आचार्य शान्तरक्षितको भोटमे बौद्ध धर्मका संस्थापक मानते हुए भी उनकी स्मृतिका वैसा उत्सव नहीं करते, जैसा कि सिंहल-निवासी महेन्द्रके लिए करते हैं। कारण ढूँढ़नेको दूर जानेकी आवश्यकता नहीं। भोटमे भगवान् बुद्धके मधुर स्वाभाविकता-पूर्ण सीधे हृदयके अन्तस्तल तक पहुँच जानेवाले सूत्रोंका उतना मान नहीं है, जितना भूत प्रेत जादू-टोनेके मंत्रोंका। यद्यपि आचार्य शान्तरक्षित तन्त्र ग्रन्थोंके भी लेखक हैं, तो भी वस्तुतः वे गम्भीर दार्शनिक थे। इसीलिए वे भोटवालाके जादू-टोनेकी भूखको शान्त न कर पाये। यह काम पद्मसम्भव और दूसरों ने, मालूम होता है, किया, और इसीलिए जहाँ कुछ एक बडे गुम्बाओं (विहारों)के अतिरिक्त महापडित बोधिसत्व (शान्तरक्षित)की मूर्ति या तसवीर देखनेको नहीं मिल सकती, वहाँ गुरु रेम्पोछे या लोबन् रोम्पोछे (पद्मसम्भव)की मूर्ति या चित्रसे शायद ही भोटका कोई साधारण चित्त वाला घर भी वचित हो।

बौद्ध धर्ममें चार दार्शनिकवाद हैं वैभाषिक, सौत्रान्तिक, योगाचार और माध्यमिक। क्षणिकवादको मानते हुए भी पहले दो बाह्य पदार्थोंकी सत्ता उस क्षणमे स्वीकार करते हैं इसीलिए इन्हे बाह्यार्थवादी भी कहते हैं। ये दोनों वाद श्रावकयान या हीन यानमें गिने जाते हैं। वैभाषिकोंका मूल दार्शनिक ग्रन्थ कात्यायनी पुत्रका ज्ञानप्रस्थान शास्त्र, उसके छः अंग तथा वसुबन्धुके अभिधर्मकोशके उत्तर में लिखा गया संघभद्रका न्यायानुसार शास्त्र है। सौत्रान्तिकोंका प्रधान ग्रन्थ आचार्य वसुबन्धुका अभिधर्मकोश है। वैभाषिक दर्शन

चीनी भाषा (या लिपि) हीमें मिलता है। वसुवन्धुका अभिधर्मकोश[1] कई टीकाओं तथा भाष्यसहित भोटिया भाषामें भी मिलता है। योगाचार विज्ञानवादी है और माध्यमिक शून्यवादी। योगाचारके प्रधान आचार्य वसुबन्धुके ज्येष्ठ भाई पेशावर-नगरोत्पन्न असंग हैं और शून्यवादके नागार्जुन। ये दोनों ही वाद महायानमें गिने जाते हैं। चीन-जापानके बौद्धोंका अधिक झुकाव विज्ञानवादकी ओर है, और भोटके बौद्धोंका शून्यवादकी ओर। शून्यवाद वज्रयानका अधिक सहायक है, इसलिये भी ऐसा होना स्वाभाविक है। अस्तु।

आचार्य शान्तरक्षितने यद्यपि माध्यमिक सिद्धान्तपर भी मध्यमकालकार जैसा प्रौढ़ ग्रन्थ लिखा है, तो भी वे स्वयं विज्ञानवादी थे, यह उनके तत्वसंग्रहसे पता लगता है, आचार्य शान्तरक्षितको भोटिया जीवनी लेखकोंने स्वपरतन्त्र निष्णात लिखा है यह बात उनके तत्वसंग्रहसे भी प्रकट होती है। यह अनमोल ग्रन्थ जिसमें ग्रन्थकर्त्ताने अपने और अपनेसे पूर्व सभी दार्शनिकोंकी गम्भीर आलोचनाकी है, शान्तरक्षितके अगाध पाण्डित्यका अच्छा परिचायक है। इसमें ३६४६ कारिकायें या श्लोक तथा २६ अध्याय हैं। इसके अध्याय 'परीक्षा' कहे गये हैं। इस पर आचार्य कमलशीलकी सविस्तर पंजिका है। परीक्षायें इस प्रकार हैं

१—प्रकृति परीक्षा (सांख्यमतखंडन)।

२—ईश्वर-परीक्षा (नैयायिकमतखंडन—आविद्धकर्ण, प्रशस्तमति, उद्योतकरके मतोंका प्रत्याख्यान)।

---

१ अभिधर्मकोशको बेलजियमके प्राच्य महापंडित डाक्टर वले दि ला पूसिन्के चीनसे फ्रेंचमें किये गये अनुवाद तथा उद्धृत कारिकाओंके सहारे पर पूर्ण कर, एक सरल टीका तथा विस्तृत भूमिकाके साथ संस्कृतमें मैंने तैयार किया है, जो काशी विद्यापीठकी ओरसे प्रकाशित हुआ है।

३—(प्रकृति ईश्वर) उभयपरीक्षा (योगमतखंडन)।

४—स्वाभाविक जगद्वादपरीक्षा।

५—शब्दब्रह्मपरीक्षा (वैयाकरणमतख०)

६—पुरुषपरीक्षा (उपनिषद् मतख०)

७—आत्मपरीक्षा (वैशेषिक-नैयायिकमतख० उद्योतकर शंकर-स्वामी आदिका प्रत्याख्यान)।

८—स्थिरभावपरीक्षा (अक्षणिकवादख०)

९—कर्मफलसम्बन्धपरीक्षा (कुमारिल आदिके मतका ख०)

१०—द्रव्यपदार्थपरीक्षा (वैशेषिकमतख०)

११—गुणपदार्थपरीक्षा ,,

१२—कर्मपदार्थपरीक्षा ,,

१३—सामान्यपरीक्षा ,,

१४—विशेषपरीक्षा ,,

१५—समवायपरीक्षा ,,

१६—शब्दार्थ परीक्षा (भामह, कुमारिल, उद्योतकरका प्रत्या०)।

१७—प्रत्यक्षलक्षण परीक्षा (सुमति, कुमारिलका प्रत्या०)।

१८—अनुमानपरीक्षा (वैशेषिक, अविविक्त, उद्योतकर, आविद्ध-कर्णका प्रत्या०)।

१९—प्रमाणान्तपरीक्षा।

२०—स्वयाद्वादपरीक्षा (जैनमत खंडन)।

२१—त्रैकाल्यपरीक्षा (बौद्ध आचार्य धर्मत्रात, घोषक, बुद्धदेव, वसुमित्रके मतोंका खंडन)।

२२—लोकायतपरीक्षा (चार्वाकमतखंडन)।

२३—बहिरर्थपरीक्षा (वैभाषिक सौत्रान्तिकमतखंडन)

२४—श्रुतिपरीक्षा (मीमांसामत-खंडन कुमारिलका प्रत्या०)।

२५—स्वतः प्रामाण्यपरीक्षा ,, ,,

२६—अतीन्द्रियदर्शिपुरुष-परीक्षा ,, ,,

३. आचार्य दीपंकर श्रीज्ञान

भोट देशकी विद्वन्मण्डलीमें जिन दो भारतीय आचार्योंका अधिक सम्मान है वे शान्तरक्षित और दीपकर श्रीज्ञान हैं। दीपकरको तिब्बतमें अधिकतर अतिशा, जोवो (स्वामी तथा जोवो जे (स्वामी भट्टारक) कहते हैं। शान्तरक्षित और अतिशा दोनों ही सहोर प्रदेशके एकही राजवंशमें उत्पन्न हुए थे। वङ्गदेशीय विद्वान् अतिशाको वङ्ग-वासी बतलाते हैं।'बौद्ध गान ओ दोहा' नामक पुस्तककी भूमिकामें महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्रीने बङ्गला साहित्यको सातवीं-आठवीं शताब्दीमें पहुँचाते हुए लूसुकु, जालधरी, कान्ह, सरह आदि सभी कवियोंको बङ्गाली कहा है। यह कोई नवीन बात नहीं है। विद्यापति भी बहुत दिनों तक बङ्गाली ही बने रहे। कान्ह, सरह आदि चौरासी सिद्ध हिन्दीके आदि कवि हैं। जिस प्रकार गोरखनाथ आदि एक-आध को छोड़कर उन चौरासियोंके नाम भी हमें नहीं मालूम हैं, उसी प्रकार हम उनकी कविताको भी भूल गये हैं। चौरासी सिद्धोंकी बात दूसरे वक्तके लिए छोड़ता हूँ[1]।

सहोर बङ्गालमें नहीं बिहारमें है। सहोर वहीं है, जहाँ विक्रमशिला है। अभी तक किसीने विक्रमशिलाको बङ्गालमें ले जानेका साहस नहीं किया, फिर उसके दक्षिण 'नाति दूर' बसा नगर कैसे बङ्गालमें जा सकता है? महामहोपाध्याय सतीशचन्द्र विद्याभूषणने भागलपुर जिलेके सुल्तानगंजको विक्रमशिला निश्चित किया है,जो मुझे भी ठीक जंचता है।

मुसलमानोंके आगमनसे पूर्व विक्रमशिला वाला प्रदेश (भागल-पुर जिलेका दक्षिणी भाग) सहोर या भागल नामसे प्रसिद्ध था।

---

१. लेखकका चौरासी सिद्धों विषयक तिब्बती वाङ्मयपर आश्रित अत्यन्त मौलिक लेख अब सुल्तानगंज, भागलपुरकी 'गङ्गा'के पुरातत्वाङ्कमें निकल चुका है और उसका फ्रेंच अनुवाद भी यूर्नाल आजयातीक (Journal Asiatique)के लिए हो रहा है।

सहोर मांडलिक राज्य था, जिसकी राजधानी वर्तमान कहल गाँव या इसके पास ही कहीं थी। दशवीं शताब्दीके उत्तरार्द्ध में राजा कल्याणश्री इसके शासक थे। उस समय विहार-वङ्गाल पर पालवंशकी विजय-ध्वजा फहरा रही थी। राजा कल्याणश्री भी उन्हींके अधीन थे। राज-धानी विक्रमपुरी-भगलपुरी या भागलपुर, के 'काचनध्वज' राजप्रासादमें रानी श्रीप्रभावतीने भोटिया जल-पुरुष-अश्व वर्ष (चित्रभानु सवत्सर, ९८२ ईसवी, में एक पुत्र रत्नको जन्म दिया, जो आगे चलकर अपने ऐतिहासिक दीपंकर श्रीज्ञान नामसे प्रसिद्ध हुआ। राजा कल्याणश्रीके तीन लड़कोंमें यह मंझला था। राजाने लड़कोंके नाम क्रमशः पद्म-गर्भ चन्द्रगर्भ और श्रीगर्भ रक्खे थे। थोड़े दिन बाद चन्द्रगर्भको रथमें बैठा पाँच सौ रथोंके साथ माता-पिता उन्हे 'उत्तर तरफ़' 'नाति-दूर' विक्रमशिला विहारमें ले गये। लक्षणज्ञोंने बालकको देखकर अनेक प्रकार की भविष्यद्वाणियाँ कीं। तीन वर्षकी आयुमें राजकुमार पढ़नेके लिए बैठाये गये; ग्यारह वर्षकी आयुमें उन्होंने लेख व्याकरण और गणित भली भाँति पढ़ लिया।

आरम्भिक अध्ययन समाप्त कर लेनेपर कुमार चन्द्रगर्भने भिक्षु बनकर निश्चिन्तता-पूर्वक विद्या पढ़नेका संकल्प किया। वे एक दिन घूमते हुए जङ्गलमें एक पहाड़के पास जा निकले। वहाँ उन्होंने सुना कि यहाँ एक कुटियामें महावैयाकरण महापंडित जेतारि रहते हैं। राजकुमार उनके पास गये। उन्हें देख कर जेतारि ने पूछा – तुम कौन हो? उन्होंने उत्तर दिया—मैं इस देशके स्वामीका पुत्र हूँ। जेतारिको इस कथनमें अभिमान सा प्रतीत हुआ, और उन्होंने कहा—हमारा स्वामी नहीं, दास नहीं, रक्षक नहीं; तू धरणीपति है तो चला जा। महावैरागी जेतारिके विषयमें राजकुमार पहले ही सुन चुके थे, इसलिए उन्होंने बड़े विनयपूर्वक अपना अभिप्राय उन्हें बतलाया और गृहत्यागी होनेकी इच्छा प्रकट की। इस पर जेतारिने उन्हें नालन्दा जाने का परामर्श दिया।

बौद्ध धर्ममें माता-पिताकी आज्ञाके बिना कोई व्यक्ति साधु (श्रामणेर या भिक्षु) नहीं बन सकता। चन्द्रगर्भको इस आज्ञाकी प्राप्तिमें कम कठिनाई नहीं हुई। आज्ञा मिल जाने पर वे अपने कुछ अनुचरोंके साथ नालन्दाको गये। नालन्दा पहुँचनेसे पूर्व वे नालन्दाके राजाके पास (विहार शरीफ, पटना जिला) गये। राजाने सहर्ष राजकुमारकी बड़ी खातिर की और पूछा—विक्रमशिला विहार पासमें छोड़कर, यहाँ क्यों आये? कुमारने इसपर नालन्दाकी प्राचीनता और विशेषतायें बतलाईं। राजाने नालन्दा विहारमें कुमारके रहनेके लिए सुन्दर आवासका प्रबन्ध करा दिया। वहाँसे राजकुमार नालन्दाके स्थविर बोधिभद्रके पास पहुँचे। अभी वे बारह वर्षसे भी कम उमरके थे। बौद्ध नियमानुसार वे श्रामणेर ही बन सकते थे, भिक्षु होनेके लिए २० वर्षसे ऊपरका होना अनिवार्य था। आचार्य बोधिभद्रने कुमारको श्रामणेर-दीक्षा दी, और पीले कपड़ोंके साथ उनका नाम दीपङ्कर श्रीज्ञान पड़ा।

उस समय आचार्य बोधिभद्रके गुरु अवधूतीपाद (दूसरे नाम अद्वयवज्र, अवधूतीपा, मैत्रीगुप्त और मैत्रीपा) राजगृहमें काल-शिलाके दक्षिण ओर एकान्तवास करते थे। वे एक बड़े पण्डित तथा सिद्ध थे। बोधिभद्र दीपङ्करको आचार्य अवधूतीपाके पास ले गये, और उनकी स्वीकृतिसे उन्हें पढ़नेके लिये वहीं छोड़ आये। १२से१८ वर्षकी अवस्था तक दीपङ्कर राजगृहमें अवधूतीपादके पास पढ़ते रहे। इस समय उन्होंने शास्त्रोंका अच्छा अध्ययन किया।

१८ वर्षकी अवस्था हो जानेपर दीपङ्कर मन्त्रशास्त्रके विशेष अध्ययनके लिए अपने समयके बड़े तान्त्रिक, चौरासी सिद्धोंमें एक सिद्ध, विक्रम-शिलाके उत्तर-द्वारके द्वार पण्डित नारोपा (नाडपाद)के पास पहुँचे। तब से २९ वर्ष तक उन्हींके पास पढ़ते रहे। दीपङ्करके अतिरिक्त प्रज्ञारक्षित, कनकश्री तथा मनकश्री (माणिक्य) भी नारोपाके प्रधान

शिष्य थे। तिब्बतके महासिद्ध महाकवि जेचुन् मिला-रे-पाके गुरु मर वा लोचवा भी नारोपाके ही शिष्य थे।

उस समय बुद्धगया महाविहारके प्रधान एक बड़े विद्वान् भिक्षु थे। इनका नाम तो और था, किन्तु वज्रासन (बुद्धगया)में वासके कारण ये वज्रासनीय (दोर्जे-दन्-पा)के नामसे प्रसिद्ध थे। नारोपाके पास अध्ययन समाप्तकर दीपङ्कर वज्रासनके 'मतिविहार'-निवासी महास्थविर महाविनयधर शीलरक्षितके समीप पहुँचे और उनको गुरु बना उपसम्पदा (=भिक्षु-दीक्षा) प्राप्तकी।

३१ वर्षकी आयुमें दीपङ्कर तीनों पिटकों तथा तन्त्रके पण्डित हो चुके थे, तो भी उनकी ज्ञानपिपासा शान्त न हुई थी। उन्होंने सुवर्णद्वीप (सुमात्रा)के आचार्य धर्मपालकी प्रसिद्धि सुनी थी। महापंडित रत्नाकर-शांति (शांतिपा, चौरासी सिद्धोंमें एक ज्ञानश्रीमित्र, रत्नकीर्ति आदि उनके शिष्योंसे वे मिले थे। अब उन्होंने स्वर्णद्वीपीय आचार्यके पास जाकर पढ़ने का निश्चय किया। तदनुसार बुद्धगयासे विदा हो वे समुद्रतट पर पहुँचे और जहाज पर चढ़ अनेक विघ्न-बाधाओंके बाद १४ मासमें सुवर्णद्वीप पहुँचे।

सुवर्णद्वीपके आचार्यके पास किसीका शीघ्र पहुँच जाना सहज बात नहीं थी, इसलिए दीपङ्कर एक वर्ष तक एकांत जगहमें वास करते रहे। बीच समयमें कोई-कोई भिक्षु उनके पास आया-जाया करते थे। इस प्रकार धीरे-धीरे उनकी विद्वत्ताका पता लोगोंको लग गया; और अंतमें बिना किसी रुकावटके वे सुवर्णद्वीपीय आचार्यके शिष्योंमें दाखिल हो गये। आचार्य धर्मपालके पास उन्होंने १२ वर्ष तक विद्याध्ययन किया। यहाँ विशेष करके उन्होंने दर्शन-ग्रन्थ पढ़े। 'अभिसमयालङ्कार' बोधिचर्य्यावतारको समाप्त कर उन्होंने दूसरे गम्भीर ग्रन्थ पढ़े।

अध्ययन-समाप्तिपर रत्नद्वीप तथा दूसरे पासके देशोंको देखते हुए दीपङ्कर फिर भारत लौट आये और विक्रमशिला-विहारमें रहने लगे। विशेष योग्यताके कारण वे वहाँ ५१ पंडितोंके ऊपर १०८

देवालयोंके तत्त्वावधायक बना दिये गये। उनके आचार्योंमें तन्त्र रहस्य बतलाने वाले सिद्ध डोम्बी भी थे। भूति-कोटिपाद, प्रज्ञाभद्र तथा रत्नाकरशांति (शांतिपा)से भी उन्होंने पढ़ा था। उनके गुरु अवधूतिपा सिद्धाचार्य डमरूपाके शिष्य थे, जो महान् सिद्ध तथा महाकवि कण्हपा (कृष्णाचार्यपाद, सिद्धाचार्य जलंधरीपाके शिष्य) के शिष्य थे। कण्हपा तथा उनके गुरु जलंधरीपा ८४ सिद्धमें अपना खास स्थान रखते हैं। कण्हपा अपने समयके हिन्दीके एक उच्च कोटिके छायावादी (सध्यावादी) कवि थे।

गुप्त सम्राटोंमें जो स्थान समुद्रगुप्तका है, पाल राजाओंमें वही स्थान धर्मपाल का है। गंगातटपर एक छोटीसी सुन्दर पहाड़ीको देखकर महाराज धर्मपालने उसपर विक्रमशिला विहार स्थापित किया। इतने बड़े राजाकी सहायता होनेसे यह विहार एकदम विशाल रूपमें लोगोंके सामने आया। नालन्दाकी भाँति इसे धीरे धीरे उन्नति करनेकी ज़रूरत नहीं हुई। विक्रमशिलामें आठ महापण्डित तथा १०८ पण्डित रहते थे। इनके अतिरिक्त बहुत से देशी-विदेशी विद्यार्थी विद्याभ्यास के लिए आकर निवास करते थे। दीपङ्करके समय वहाँके संघ-स्थविर रत्नाकर थे। शांतिभद्र, रत्नाकरशांति, मैत्रीपा (अवधूतीपा) डोम्बीपा स्थविरभद्र, स्मृत्याकर सिद्ध (कश्मीरी) तथा अतिशा आदि आठ महापण्डित थे। विहारके मध्यमें अवलोकितेश्वर (बोधिसत्व) का मन्दिर था। परिक्रमा में छोटे-बड़े ५३ तान्त्रिक देवालय थे। यद्यपि राज्य में नालन्दा, उडन्तपुरी (उडन्त = उड़ती) और वज्रासन (बोधगया) तीन और महाविहार थे, तथापि विक्रमशिला पालवंशियों का विशेष कृपा-भाजन था। उस घोर तान्त्रिक युग में यह मन्त्र तन्त्र का गढ़ था। चौरासी सिद्धों मे प्रायः सभी पालों के ही राज्यकाल में हुए हैं, उनमें अधिकांशका सम्बन्ध इसी विहार से था। अपने मन्त्र-तन्त्र, बलिप्रदान आदि हाथियारों से इसने आक्रमणकारी 'तुरुष्कों' (तुर्कों) के साथ भी अच्छा लोहा लिया था। तिब्बती लेखकों के अनुसार यहाँ के

सिद्धों ने अपने देवताओ और यक्षों की सहायता से उन्हें अनेक बार मार भगाया था।

तिब्बत-सम्राट् स्रोङ्-च्न्-गम्बो और ठि स्रोङ्-दे च्न् तथा उनके वंशजों ने तिब्बतमें बौद्ध धर्म फैलाने के लिए बहुत प्रयत्न किया था। अनुकूल परिस्थिति के न होने के कारण पीछे उन्होंके वंशज ठि क्यि-दे-जीमा-गोन् ल्हासा छोड़कर ङरी प्रदेश (मानसरोवरसे लदाखकी सीमा तक में चले गये। वहाँ उन्होंने अपना राज्य स्थापित किया। इन्होंका पौत्र राजा ख्ङ दग् खोरे हुआ, जो अपने भतीजे ल्ह-लामा येशे-ओको राज्यभार सौंप अपने दानों पुत्रों—देवराज तथा नागराज—के साथ भिक्षु हो गया (दशम शताब्दी ई०)।

राजा येशे-ओ (ज्ञानप्रभ)ने देखा कि तिब्बतमें बौद्ध धर्म शिथिल होता जा रहा है, लोग धर्मतत्वको भूलते जा रहे हैं। इन्होंने अनुभव किया कि अगर कोई सुधार न किया गया तो पूर्वजों द्वारा प्रज्वलित यह सुखद प्रदीप बुझ जायगा। यह सोच रत्नभद्र (रिन्-छेन् सङ्-पो, पीछे लो-छेन्-रिम्पो-छे) प्रभृति २१ होनहार भोटिया बालकों को दस वर्ष तक देशमें अच्छी शिक्षा दिलाकर विद्याध्ययनके लिए कश्मीर भेज दिया। यहाँ पहुंचकर वे सब पंडित रत्नवज्रके पास पढ़ते रहे। किन्तु जब उन २१मेंसे सिर्फ दो—रत्नभद्र तथा सुप्रज्ञ (लेग्-प-शे-रब्) जीते लौटकर आये तब राजाको बड़ा खेद और निराशा हुई। फिर भी राजाने हिम्मत न हारी। उन्होंने सोचा, भारत जैसे गर्म देशमें ठंढे देशके आदमियों का जीना मुश्किल है, इसलिए किसी अच्छे पंडितको ही भारतसे यहाँ बुलाना चाहिए। उस वक्त उन्हें यह भी मालूम हुआ कि इस समय विक्रमशिला-महाविहार-में दीपंकर श्रीज्ञान नामक एक महापंडित हैं, यदि वे भोट-देश में आ जायँ तो सुधार हो सकता है। इसपर बहुत सा सोना देकर कुछ आदमियोको विक्रमशिला भेजा। वे लोग वहाँ पहुंचकर दीपंकरकी सेवामें उपस्थित हुए, किन्तु उन्होंने भोट जाना अस्वीकारकर दिया।

भोट-राज येशे-ओ फिर भी हताश न हुए। उन्होंने अब की बार बहुत सा सोना जमाकर किसी पंडितको भारतसे लानेके लिए आदमियोंको फिर भेजनेका निश्चय किया। उस समय उनके खजानेमें पर्याप्त सोना न था, इसलिए सोना एकत्र करनेके लिए वे आदमियों-सहित सीमान्त-स्थान में गये। वहाँ उनके पड़ोसी गरलोग् देशके राजा ने उन्हें पकड़ लिया।

पिताके पकडे जानेका समाचार पा ल्हा-लामा चङ्-छुप-ओ (बोधि-प्रभ) उनको छुड़ानेके लिए गर-लोग् गये। कहते हैं, गर-लोग्-के राजाने राजाको छोड़नेके लिए बहुत परिमाणमें सोना माँगा। चङ्-छुप्-ओने जो सोना जमा किया वह अपेक्षित परिमाण से थोड़ा कम निकला। इस पर और सोना ले आनेसे पूर्व वे कारागारमें अपने पितासे मिलने गये और उनसे सारी कथा कह सुनाई। राजा येशे ओ ने उन्हें सोना देनेसे मना किया। कहा—तुम जानते हो, मैं बूढ़ा हूँ; यदि तत्काल न मरा तो भी दश वर्षसे अधिक जीना मेरे लिए असम्भव है, सोना दे देनेपर हम भारतसे पंडित न बुला सकेंगे और न धर्मके सुधारका काम कर सकेंगे; कितना अच्छा है यदि धर्मके लिए मेरा अन्त यहीं हो, और तुम सारा सोना भारत भेजकर पंडित बुलाओ, राजाका भी क्या विश्वास है कि वह सोना पाकर मुझे छोड़ ही देगा? अतः पुत्र, मेरी चिन्ता छोड़ो और सोना देकर आदमियोंको भारतमें अतिशाके पास भेजो; भोटमें धर्म चिरस्थिति तथा मेरी कैदसे, आशा है, वे महापंडित हमारे देश पर कृपा करेंगे; यदि वे किसी प्रकार न आसकें तो उनके नीचेके किसी दूसरे पंडितको हो बुलाना। यह कह धर्मवीर येशे-ओने पुत्रके सिरपर हाथ फेर आशीर्वाद दिया। पुत्रने भी उस महापुरुषसे अन्तिम बिदाई ली।

ल्हा लामा चङ्-छुप्-ओने राज्य-भार सभालनेके साथ ही भारत भेजनेको आदमी ठीक किये। उपासक गुङ्-थङ्-पा भारतमें पहले भी दो वर्ष रह आये थे, उन्हींको राजाने यह भार सौंपा। गङ्-थङ-पाने

नग्र-छो निवासी भिक्षु छुल्-ठिम्-ग्यल्-व (शीलविजय)को कुछ दूसरे अनुयायियोंके साथ अपना सह-यात्री बनाया। ये दस आदमी नेपालके रास्तेसे सीधा विक्रमशिला पहुँचे। (डोम-तं न् रचित गुरु-गुण धर्माकर, पृष्ठ ७७)। जिस समय वे गंगाके घाटपर पहुँचे, सूर्यास्त हो चुका था। मल्लाह फिर आनेकी बात कह भरी नावको दूसरे पार उतारने गया। यात्री गंगा पार विक्रमशिलाके ऊंचे 'गंधोला'को देखकर अपने मार्ग-कष्टको भूल गये थे। परन्तु देर होनेसे उन्हें सन्देह होने लगा कि मल्लाह नहीं लौटेगा। सुनसान नदी तटपर बहुत सा सोना लिये उन्हें भय मालूम होने लगा। उन्होंने सोनेको बालूमें दबा दिया, और रात वहीं बितानेका प्रबन्ध करना शुरू कर दिया। थोड़ी देरमें मल्लाह आ गया। यात्रियोंने कहा—हम तो तुम्हारी देरीसे समझने लगे थे कि अब नहीं आओगे। मल्लाहने कहा—तुम्हें घाट पर पड़ा छोड़ मैं कैसे राज नियमोंका उल्लंघनकर सकता हूँ। नाव आगे बढ़ाते हुए मल्लाहने उन्हें बतलाया कि इस वक्त फाटक बन्द हो गये हैं, आप लोग पश्चिम फाटकके बाहरकी धर्मशालामें विश्राम करें, सवेरे द्वार खुलने पर विहारमें जायें।

यात्री आखिर पश्चिमी धर्मशालामें पहुंच गये। वे वहाँ अपने रात्रिवासका प्रबन्धकर रहे थे कि उसी समय फाटकके ऊपरवाले कोठेसे भिक्षु ग्य-चोन्-सेङ् ने उनकी बात-चीत सुनी। अपना स्वदेशी जान उसने उनसे बात चीत करते हुए पूछा कि आप लोग किस अभिप्रायसे यहाँ आये हैं। उन्होंने कहा- अतिशाको ले जानेके लिए यहाँ आये हैं। ग्य-चोनने उन्हें सलाह देते हुए कहा—आप लोग कहें कि पढ़नेके लिए आये हैं; नहीं तो यह बात और लोगोंको मालूम हो जाने पर अतिशाको ले जाना कठिन हो जायगा; मौका पाकर मैं आप लोगोंको अतिशाके पास ले जाऊंगा; फिर जैसी उनकी सम्मति हो, वैसा करना।

आनेके कुछ दिनोंके बाद पण्डितोंकी सभा होने वाली थी। ग्य-

चोन् सबको पंडितोंका दर्शन करानेके लिए ले गया। वहाँ उन्होंने विक्रमशिलाके महापंडितों तथा अतिशाके नीचेके रत्नकीर्ति, तथागतरक्षित, सुमतिकीर्ति, वैरोचनरक्षित, कनकश्री आदि पंडितोंको देखा। उसी समय उन्हें यह भी मालूम हो गया कि यहाँकी पंडितमंडलीमें अतिशाका कितना सम्मान है।

इसके कुछ दिन बाद एकान्त पा ग्य-चोन् उन्हें अतिशाके निवास-पर ले गया। उन्होंने अतिशाको प्रणामकर सारा सुवर्ण रख दिया, और भोट-राज येशे ओके बन्दी होनेकी बात तथा उनकी अन्तिम कामना कह सुनाई। दीपंकर इससे बहुत ही प्रभावित हुए। उन्होंने कहा—निस्संदेह भोट-राज येशे-ओ बोधिसत्व थे, मैं उनकी कामना भंग नहीं कर सकता, किन्तु तुम जानते हो मेरे ऊपर १०८ देवालयों के प्रबन्धका भार तथा दूसरे बहुतसे काम हैं, इनसे छुट्टी लेनेमें १८ मास लगेंगे, फिर मैं चल सकूंगा; अभी यह सोना अपने पास ही रक्खें।

इसके बाद भोट-यात्री पढ़नेका बहाना करके वहाँ रहने लगे। आचार्य दीपंकर भी अपने प्रबन्धमें लगे। समय पा उन्होंने संघस्थविर रत्नाकरपादसे सब बातें कहीं। रत्नाकर इसके लिए सहमत होनेको तैयार न हो सकते थे। उन्होंने एक दिन भोट-सज्जनोंसे भी कहा—भोट आयुष्मन, आप लोग अपनेको पढ़नेके लिए आया कहते हैं; क्या आप लोग अतिशाको ले जानेको तो नहीं आये हैं? इस समय अतिशा 'भारतीयोंकी आँख' हैं; देख नहीं रहे हो, पश्चिम-दिशामें 'तुरुष्कों'का उपद्रव हो रहा है[1]; यदि इस समय अतिशा चले गये तो भगवान्का धर्मसूर्य भी यहाँसे अस्त हो जायगा।

बहुत कठिनतासे संघस्थविरसे जानेकी अनुमति मिली। अतिशा-

---

१. तब महमूद ग़ज़नवीकी मृत्यु हुए कुछ ही बरस बीते थे, मध्य एशियामें भी इस्लाम और बौद्ध-धर्मका मुकाबला जारी था।

ने सोना मँगाया। उसमेंसे एक चौथाई पंडितोंके लिए, दूसरी चौथाई वज्रासन (बुद्धगया)में पूजाके लिए, तीसरी रत्नाकरपादके हाथ में विक्रमाशिला-संघके लिए और शेष चौथाई राजाको दूसरे धार्मिक कृत्योंके लिए बाँट दिया। फिर अपने आदमियोंको कुछ भोट-जनोंके साथ ही पुस्तकें तथा दूसरी आवश्यक चीज़ें दे नेपालकी ओर भेज दिया। और आप अपने तथा लोचवा[१]के आदमियोंके साथ—कुल बारह जन बुद्धगयाकी ओर चले।

वज्रासन तथा दूसरे तीर्थस्थानोंका दर्शनकर पंडित क्षितिगर्भ आदिके साथ बीस आदमियोंको मण्डली ले आचार्य दीपकर भारत-सीमाके पास एक छोटेसे विहारमें पहुँचे दीपंकरका शिष्य डोम् तोन् अपने ग्रन्थ गुरु-गुणधर्माकरमें लिखता है—स्वामीके भोट-प्रस्थानके समय भारतका (बुद्ध) शासन अस्त होने वाला सा था। भारतकी सीमाके पास अतिशाको किसी कुतियाके तीन अनाथ छोटे-छोटे बच्चे पड़े दिखाई दिये। साठ वर्षके बूढे संन्यासीने किन्हीं अनिर्वचनीय भावोंसे प्रेरित हो मातृभूमिके अन्तिम चिह्न स्वरूप इन्हें अपने चीवर (भिक्षु परिधानवस्त्र)में उठा लिया। कहते हैं, आज भी उन कुत्तों की जाति डाङ् प्रदेशमें वर्तमान है।

भारत सीमा पार हो अतिशाकी मंडली नेपाल राज्यमें प्रविष्ट हुई। धीरे-धीरे वह राजधानी में पहुँची। राजाने बहुत सम्मानके साथ उसको अपना अतिथि बनाया। उसने अपने देशमें रहनेके लिए बहुत आग्रह किया। इसी आग्रहमें अतिशाको एक वर्ष नेपालमें रह जाना पड़ा। उस वक्त और धार्मिक कार्योंके अतिरिक्त उन्होंने एक राजकुमारको भिक्षु बनाया, तथा वहींसे गौडेश्वर महाराज नेपालको एक पत्र लिखा, जिसका अनुवाद आज भी तञ्जूरमें वर्तमान है।

---

१. भारतीय पंडितके सहायक तिब्बती दुभाषिये लोचवा कहलाते थे।

नेपालसे प्रस्थानकर जिस वक्त दीपकर अपने अनुचरों सहित थुङ् विहारमें पहुँचे, भिक्षु ग्य-चोन-सेङ् की बीमारीसे उन्हें वहाँ ठहरना पड़ा। बहुत उपाय करने पर भी ग्य-चोन् न बच सके। ग्य-चोन् जैसे विद्वान् बहुश्रुत दुभाषिया प्रिय शिष्यकी मृत्युसे आचार्य-को अपार दुःख हुआ। निराश होकर उन्होंने कहा—अब मेरा भोट जाना निष्फल है, बिना लोचवाके मैं वहाँ जाकर क्या करूँगा। इस पर शीलविजय आदि दूसरे लोचवोंने उन्हें बहुत समझाया।

मार्गमें कष्ट न होने देनेके लिए राजा चङ्-छुप्-ओने अपने राज्य-में सब जगह प्रबन्ध कर दिया था। भोट-निवासी साधारण गृहस्थ भी इस भारतीय महापण्डितके दर्शनके लिए लालायित थे। इस प्रकार भोट-जनोंको धर्म-मार्ग बतलाते हुए आचार्य दीपकर श्रीज्ञान जल-पुरुष अश्व वर्ष (चित्रभानु संवत्सर, १०४२ ई०)में ६१ वर्षकी अवस्थामें ङरी (=पश्चिमी तिब्बत)में पहुँचे। राजधानी थोलिङ्में पहुँचनेसे पूर्व ही राजा अगवानीके लिए आया। बड़ी स्तुति और सत्कारके साथ उन्हें वह थोलिङ् विहारमें ले गया। इसके बाद आचार्य दीपकर ६ मास इसी विहारमें रहे। इस वक्त उन्होंने धर्मोपदेशके अतिरिक्त कई ग्रन्थोंके अनुवाद तथा रचनाका काम किया। यहीं उन्होंने अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ बोधिपथ-प्रदीप लिखा था।

ङरी प्रदेशके तीन वर्षके निवास-कालमें दीपकरने कितने ही अन्य ग्रन्थ लिखे और अनुवाद किये। द्रुम-पुरुष वानर वर्ष (हेमलम्ब, १०४४ ई०)में वे पुरङ् पहुँचे। यहीं अतिशाका प्रिय गृहस्थ शिष्य डोम्-तोन उनके पास पहुँचा। तबसे मरणपर्यन्त छायाकी भाँति वह अपने गुरु के साथ रहा, और मरनेके बाद गुरु-गुण-धर्माकर नामक अतिशाकी जीवनी लिखी। भोटमें बीच बीचमें ठहरते हुए भी आचार्य बराबर विचरते ही रहे। उनका ग्रन्थ-प्रणयन तथा अनुवादका काम बराबर जारी रहा अग्नि पुरुष शूकर वर्ष (सर्वजित, १०४७ ई०)में सम्-ये तथा लोह पुरुष-व्याघ्र वर्ष (विकृत, १०५० ई०,में वे येर्-वा

गये। अपने चौदह वर्षके भोट-निवासमें प्रथम यात्राके अतिरिक्त वे तीन वर्ष ङरी-प्रदेशमें चार वर्ष उइ और चाङ् प्रदेशमें, एवं ६ वर्ष ञेथङ् में रहे। द्रुम-पुरुष अश्व वर्ष (जय, १०५४ ई०)के भोटिया नवें मासकी अठारहवीं तिथि (कार्तिक-अगहन कृष्ण ३, ४)को ञेथङ्के तारा-मन्दिरमें ७३ वर्षकी अवस्थामें इन महापुरुषने अपना नश्वर शरीर छोड़ा। डोम्-तोन् इस समय इनके पास था। ल्हासासे लौटते वक्त २५ अप्रेल १६३०को मैं इस पवित्र स्थान पर गया। अतिशाके समयसे अब तक बहुत ही कम इस मन्दिरमें परिवर्तन हुआ है। इस बातका साक्ष्य उसके जर्जर विशाल रक्त चन्दन-स्तम्भ ही दे रहे हैं। अब भी वहाँ दीपंकरका भिक्षापात्र, धर्मकारक (कमण्डलु) तथा खदिर दंड, राजमुद्रालांछित एक पिंजड़ेमें सुरक्षित रक्खे हैं और बतला रहे हैं कि अभी कल तक भारतकी बूढ़ी हड्डियोंमें कितना साहस था।

भोट देशके वर्तमान चारों बौद्ध सम्प्रदाय आचार्य दीपंकरको एक सा पूजनीय मानते हैं। उनकी डोम्-तोन द्वारा चली हुई तान्त्रिक परम्परामें ही चोङ्-ख-पा शिष्य हुए थे। ये वही चोङ्-ख-पा हैं जिनके अनुयायी पीली टोपीवाले लामा भोट देशमें धर्म और राज्य दोनोंके प्रधान हैं। ये लोग अपनेको अतिशाका अनुयायी मानते हैं और अतिशाकी शिष्य परम्परा का दम्-पा लोगोंका उत्तराधिकारी-अपने को नवीन का-दम्-पा बतलाते हैं।

आचार्य दीपंकरकी कृतियाँ मूल संस्कृत तथा मातृ-भाषामें लुप्त हो चुकी हैं, यद्यपि उनके अनुवाद अब भी तिब्बती तंज्यूर संग्रहमें सुरक्षित हैं। धर्म तथा दर्शन पर उन्होंने ३५से ऊपर ग्रन्थ लिखे हैं। उनके तान्त्रिक ग्रन्थोंकी संख्या सत्तरसे अधिक है, यद्यपि इनमें देवता-साधनके कितने ही बहुत छोटे-छोटे निबन्ध हैं। बहुतसे ग्रन्थोंको तिब्बती भाषामें उन्होने अनूदित भी किया है। कंज्यूर संग्रहमें ही भिन्न भिन्न लोचवों (दुभाषियों) की सहायतासे उनके ६ ग्रन्थ अनूदित हैं। तंज्यूरके-

सूत्र विभागमें उनके अनुवाद किये हुए २१ ग्रन्थ हैं, और रत्न-विभागमें इनकी संख्या ३०से ऊपर है।

४. तिब्बतमें शिक्षा

गृहस्थ और भिक्षु दोनों श्रेणियोंके अनुसार तिब्बतमें शिक्षाका क्रम भी विभाजित है। भिक्षुओंकी शिक्षाके लिए हजारों छोटे बडे मठ या विद्यालय हैं। कहीं, कहीं गृहस्थ विद्यार्थी भी व्याकरण, साहित्य, वैद्यक और ज्योतिषकी शिक्षा पाते हैं, लेकिन ऐसा प्रबन्ध कुछ धनी और प्रतिष्ठित वंशों तक ही परिमित है। हाँ, कितनी ही बार पढ लिखकर भिक्षु भी गृहस्थ हो जाते हैं और इस प्रकार गृहस्थ श्रेणी उनकी शिक्षासे लाभ उठाती है। मठोंके पढे हुए भिक्षु गृहस्थों के बालकोंके शिक्षकका काम भी करते हैं। किन्तु नियमानुसार धनी या गरीब गृहस्थ जन इन मठोंमें,जिनमें कितने ही बडे-बडे विश्वविद्यालय हैं प्रवेश नहीं पाते।

भिक्षुओंकी शिक्षा

तिब्बत भिक्षुओंका देश है। यही नहीं कि इसका शासन भिक्षु संघके प्रधान और बडे मठाचार्यों द्वारा होता है, बल्कि प्रायः जन संख्याका पंचमांश गृहत्यागी भिक्षुओंके रूपमें है। शायद ही ऐसा कोई गाँव हो, जहाँ एक दो भिक्षु और पर्वतकी बाँही पर टगा एक छोटा मठ न हो। आठसे बारह बरसकी अवस्थामें भिक्षु बनने वाले बालक मठोंमें चले जाते है। अवतारी लामा तो—जोकि किसी प्रसिद्ध महात्मा या बोधिसत्वके अवतार समझे जाते हैं—और भी पहले ही अपने मठमें चले जाते हैं। छोटे मठोंमें वे अपने गुरुके पास पढते है। आरम्भ हीसे उनको सुन्दर अक्षर लिखनेकी शिक्षा विशेष तोरसे दी जाती है। वे डाँड़ी और वे डाँड़ी वाले (ऊचन, ऊमे) दोनों ही प्रकार के अक्षरों का अभ्यास करते हैं। लिखने में वे बहुत अधिक समय देते हैं, इसीलिये तिब्बती लोगों में सुलेखक बहुत मिलेंगे। पढने के लिए दूसरी बात है

श्लोकोंका रटना; व्याकरण, काव्य, तर्क, धर्मशास्त्र सभी चीजें तिब्बती भाषामें उनके लिए श्लोकबद्ध हैं। इससे उन्हें याद करनेमें बहुत आसानी होती है। मामूली गिनतीके अतिरिक्त गणितकी शिक्षा नहीं सी है। जो लोग ज्योतिषी या सरकारी दफ्तरोंके अधिकारी बनना चाहते हैं वही विशेष तौरसे गणित सीखते हैं। विद्या सीखनेमें छड़ी वहाँ बहुत सहायक समझी जाती है। फुलाये गालों और सिरको प्रहारके लिए उपयुक्त स्थान माना जाता है। अवतारी लामोंको छोड़ सभी विद्यार्थियोंको अपने अध्यापककी कोई न कोई सेवा अवश्य करनी होती है। बहुधा अध्यापक अपने विद्यार्थीके भरण-पोषणका भी प्रबन्ध करता है।

लिखने-पढने और कुछ धार्मिक पुस्तिकायें याद करनेके प्रारम्भिक अध्ययनके बाद व्याकरण नीति पद तथा धार्मिक श्लोकोंको पढ़ते हैं। चार पाँच वर्ष इसीमें लग जाते हैं। इसके बाद वे उच्च शिक्षाकी ओर कदम बढ़ाते हैं। यदि उनका मठ छोटा है और वहाँ उपयुक्त अध्यापक सुलभ नहीं हैं, तो विद्यार्थी बड़े मठोंमें भेजे जाते हैं। जो विद्यार्थी किसी मठीय विश्वविद्यालयमें प्रवेश करना चाहते हैं उन्हें पहले किसी ऐसे ही मध्यम श्रेणीके मठ या योग्य अध्यापकके पास विशेष शिक्षा लेनी पड़ती है। इस शिक्षाको हम लोग अपने यहाँकी माध्यमिक शिक्षा कह सकते हैं। इस समय वे तर्क बौद्ध-दर्शन और काव्यके प्रारम्भिक ग्रन्थोंको पढ़ते हैं। पुस्तकोंका स्मरण खास कसौटी है। यद्यपि विद्यार्थी अक्सर श्रेणियोंमें विभक्त होकर पढ़ते हैं लेकिन छमाही नौमाही परीक्षाओंकी प्रथा नहीं है। इसकी जगह अक्सर गुट्ट बाँधकर विद्यार्थी अपने अपने विषयपर शास्त्रार्थ करते हैं। समय-समय पर अध्यापक पठित विषयमें विद्यार्थीसे कोई प्रश्न पूछ लेता है। उत्तर असतोष-जनक होनेपर वह उसे दण्ड देता है और नया पाठ नहीं पढ़ाता। पुस्तक समाप्त हो जानेपर विद्यार्थी उस विषयके उच्चतर ग्रन्थको लेता है। इस समय यदि विद्यार्थीकी रुचि चित्रण, मूर्त्ति-

निर्माण या काष्ठ-तक्षण कलाकी ओर होती है तो वह इनमें भी अपना समय देता है। इन विषयोंके सीखनेका प्रबन्ध सभी मठोंमें होता है।

और भी ऊँची शिक्षा पानेके इच्छुक विद्यार्थी किसी मठीय विश्वविद्यालयमें चले जाते हैं जिनकी सख्या चार है—(१) गन्-दन् (ल्हासासे दो दिनके रास्ते पर), (२) डे-पुङ् (ल्हासाके पास, १४१६ ई०में स्थापित), (३) से-र (ल्हासाके पास, १४१६ ई०में स्थापित), (४) ट शि-ल्हुन-पो (चङप्रदेशमें १४४७ ई०में स्थापित) थे। चारों विश्वविद्यालय मध्य तिब्बतमें हैं। सम् येका मठ तिब्बतमें सबसे पुराना है। यह ल्हासासे तीन दिनके रास्तेपर अवस्थित है। इसकी स्थापना ७७१ ई०में नालन्दाके महान् दार्शनिक आचार्य शान्तरक्षित द्वारा हुई थी। शताब्दियों तक यह तिब्बतकी नालन्दा रही। लेकिन अब उसका वह स्थान नहीं रहा। उक्त चार विश्वविद्यालयोंके अतिरिक्त पूर्वी तिब्बतमें तेरगी (१५४८ ई० में स्थापित) और चीनी सीमाके पास अम्-दो प्रदेश में स्कू बुम् (१५७८ ई० में स्थापित) दो और विद्या-केन्द्र हैं। तिब्बतके इन विश्वविद्यालयोंमें बड़ी बड़ी जागीरें लगी हुई हैं और यात्री लोग भी छोटा-मोटा दान देना अपना धर्म समझते हैं। कुछ हद तक ये अपने विद्यार्थियोंको भी आर्थिक सहायता देते हैं। प्रतिभाशाली विद्यार्थियोंके लिये बहुत गुञ्जाइश है, क्योंकि अध्यापक और मूखन्-पो (प्रमुख अध्यापक, डीन) अपने ऐसे विद्यार्थियोंसे बहुत प्रेम रखते हैं, और उन्हें आगे बढानेमें अपना और अपनी सस्था का गौरव समझते हैं। कम प्रतिभाशाली विद्यार्थियोंको अपने परिवार या गुरूके मठकी सहायता पर निर्भर रहना पड़ता है।

तिब्बतके ये मठीय विश्वविद्यालय विशाल शिक्षण सस्थायें हैं, जिनमें हजारों विद्यार्थी दूर-दूरसे आकर पढते हैं। डे पुङ् सबसे बड़ा है, जिसमें सात हजार सात सौसे ऊपर विद्यार्थी रहते हैं। से-रा विश्वविद्यालयमें इनकी सख्या साढे पाँच हजारसे ऊपर है। गन् दन् और ट-शि-ल्हुन्-पो विश्वविद्यालयोंमेंसे प्रत्येकमें तीन हजार तीन-सौसे

अधिक विद्यार्थी वास करते हैं। ट-शि-लामाके चले जानेके कारण ट-शि ल्हुन्-पोके छात्रोंकी संख्या कुछ कम हो गई है। इनके महाविद्यालयों और छात्रावासोंके विषयमें मैंने अन्यत्र लिखा है, इसलिए उसे यहाँ दोहरानेकी आवश्यकता नहीं। इनमें उत्तरमें साइबेरिया, पश्चिममें अस्त्राखान (दक्षिणी रूस) और चीनके जेहोल् प्रान्त तकके विद्यार्थी देखनेमें आते हैं। महाविद्यालयोंकी तरह इनके छात्रावासोंमें भी छोटी-मोटी जागीरें लगी हुई हैं और उनके अलग पुस्तकालय और देवालय हैं। अपने अपने छात्रावासोंका प्रबन्ध वहाँके रहने वाले विद्यार्थी और अध्यापक करते हैं। छोटे-से-छोटे छात्रावासमें भी कुछ सामूहिक सम्पत्ति जरूर रहती है।

ऊपरी श्रेणियोंमें अध्ययन अधिक गम्भीर है। ग्रन्थोंके रटनेकी यहाँ भी वैसी ही परिपाटी है। विद्यार्थियोंके न्याय और दर्शन सम्बन्धी शास्त्रार्थोंमें लोग वैसी ही दिलचस्पी लेते हैं जैसे हमारे यहाँ क्रिकेट और फुटबालोंके खेलोंमें। यद्यपि ड-सड् या महाविद्यालयोंके मूखन्-पो सदा ही उच्च कोटिके विद्वानोंमेंसे चुने जाते हैं, तो भी वे अध्यापनका काम बहुत कम करते हैं। अध्यापनका कार्य गेर्-गेन् (लेक्चरर) और गे-शे (प्रोफ़ेसर) करते हैं। अध्ययन समाप्त हो जानेपर विद्वन्मंडलीकी शिफारिश पर योग्य व्यक्तिको ल्ह रम्-पा या डाक्टरकी उपाधि मिलती है। फिर छात्र अपने मठोंको लौटते हैं। जिन्हें पढ़ने-पढानेका अधिक शौक होता है वे अपने विश्वविद्यालय हीमें गे-शे या गेर्-गेन् होकर रह जाते हैं।

भिक्षुणियों का शिक्षा

तिब्बतमें भिक्षुणियोंके भी सैकड़ों मठ हैं जहाँपर भिक्षुणी विद्यार्थिनियोंके पढनेका प्रबन्ध है। ये भिक्षुणी-मठ भिक्षु-मठोंसे सर्वथा स्वतंत्र और दूरी पर अवस्थित हैं। साधारण शिक्षाका यद्यपि इनमें भी प्रबन्ध है तो भी भिक्षु-विश्वविद्यालयों जैसा न इनमें उच्च शिक्षाका प्रबन्ध है, और न भिक्षुणियाँ

भिक्षु-विश्वविद्यालयोंमें जाकर पढ सकती हैं। उनकी शिक्षा अधिकतर साहित्य धर्म और पूजा-पाठके विषयकी होती है।

यद्यपि जैसा कि ऊपर कहा, गृहस्थ-छात्र मठीय विश्व-विद्यालयोंमें दाखिल नहीं हो सकते तो भी मठोंके पढे छात्र घरोंमें जाकर अध्यापनका कार्य कर सकते हैं। कोई भी गृहस्थ-छात्र इन विश्व-विद्यालयोमे पुस्तक तो पढ सकता है किन्तु नियमानुसार छात्रावासोंमें रहनेके लिये स्थान नहीं पा सकता। इसलिए वे उनसे फायदा नही उठा सकते। बहुत ही कम ऐसा देखनेमे आता है कि कोई कोई उत्कृष्ट विद्वान् भिक्षु आश्रम छोड़कर गृहस्थ हो जाता हो क्योंकि विश्वविद्यालयों और सरकारी नौकरियोंमें (जिनमें भिक्षुओंके लिए आधे स्थान सुरक्षित हैं) इनकी बड़ी माँग है। तिब्बतमें जिला मजिस्ट्रेटसे लेकर सभी ऊंचे सरकारी पदोंपर जोडे अफ़सर होते हैं, जिनमे एक अवश्य भिक्षु होता है। उदाहरणार्थ ल्हासा नगरके तारघरको ले लीजिए, जिसके दो अफसरोंमें एक मेरा मित्र कुशो-तन् दर् भिक्षु हैं। धनी खानदानोंके बालक-बालिका अपने घरके लामासे लिखना पढना सीखते हैं। बालिकाओंकोइस आरंभिक शिक्षापर ही संतोष करना पड़ता है। हाँ भिक्षुणी होनेकी इच्छा होनेपर कुछ और भी पढती हैं। साधारण श्रेणीकी स्त्रियोंमें लिखने-पढनेका अभाव-सा है। धनी लोग अपने लड़कोंको पढनेके लिए खास अध्यापक रखते हैं, लेकिन गरीबोंके लड़के या तो अपने बड़ोंसे लिखना पढना सीखते हैं अथवा गाँवके मठके भिक्षु से। ल्हासा और शी-ग-र्चे जैसे कुछ नगरोंमें अध्यापकोंने अपने निजी विद्यालय खोल रखे हैं। इनमें लड़कोंको कुछ शुल्क देना पड़ता है। यहाँ भी पढनेका क्रम भिक्षुओ जैसा ही है। हाँ यहाँ दर्शन और न्यायका बिल्कुल अभाव रहता है। ल्हासामें अफसरोंकी शिक्षाके लिए ची-खन् नामक एक विद्यालय है, जिसमें हिसाब-किताब और बही खाताका ढग सिखलाया जाता है। इन्हीं विद्यालयोंमेंसे सरकार अपने

गृहस्थों की शिक्षा

अफ़सर चुनती है। कई वर्ष पहले सरकारने ग्यान-चीमें एक अंग्रेजी स्कूल खोला था और उसमें बहुतसे सरदारोंने अपने लड़के पढ़नेके लिए भेजे थे, किन्तु आरम्भ हीसे मोटी-मोटी तनख्वाहके अंग्रेज तथा दूसरे अध्यापक नियुक्त किये गए, जिसके कारण सरकार उसे आगे न चला सकी। दो-चार विद्यार्थी विद्याध्ययनके लिए सरकार की ओरसे इङ्गलैण्ड भी भेजे गए। किन्तु उनकी शिक्षा आशानुरूप न हुई, इसलिए सरकारने इस क्रमको भी बन्द कर दिया।

सक्षेपमें तिब्बतमें शिक्षाकी अवस्था यह है। और बातोंकी तरह शिक्षाके विषयमें बाहरी दुनियाँका तिब्बतमें बहुत कम असर पड़ा है। इससे शक नहीं कि तिब्बतमें वह सब मशीन मौजूद है जिनमें नई जान डालकर तिब्बतको बहुत थोड़े समयमें नये ढङ्ग से शिक्षित किया जा सके।

५. तिब्बती खानपान, वेषभूषा

पूर्व में चीनकी सीमासे पश्चिममें लदाख तक फैला हुआ तिब्बत देश है। यह चारों ओर पहाड़ोंसे घिरा और समुद्रतलसे औसतन बारह हजार फुटसे अधिक ऊँचा है। इसीसे यहाँ सर्दी बहुत पड़ती है। इस सर्दीकी अधिकता तथा अधिक ऊँचाईसे वायुके पतला होनेके कारण यहाँ वनस्पतियोंकी दरिद्रता है। सर्दीका कुछ अनुमान तो इससे ही हो जायगा कि मई और जूनके गर्म महीनोंमें भी ल्हासाको घेरने-वाले पर्वतोंपर अक्सर बर्फ पड़ जाती है; जाड़ेका तो कहना ही क्या? हिमालय की विशाल दीवार मार्गमें अवरोधक होनेसे भारतीय समुद्रसे चली हुई मेघमाला स्वच्छन्दतापूर्वक यहाँ नहीं पहुँच सकती; यही कारण है जो यहाँ वृष्टि अधिक नहीं होती है, बर्फ ही ज्यादा पड़ती है। सर्दी हड्डीको छेदकर पार हो जाने वाली है।

ऋतुकी इतनी कठोरताके कारण मनुष्योंको अधिक परिश्रमी और साहसी होना आवश्यक ही ठहरा। सिंहलकी भाँति एक साराङ

(वहनत, लुङ्गी,में तो यहांका काम नहीं चल सकता, यहां दो बारहों मास मोटी ऊनी पोशाक चाहिये। जाड़ेमें तो इससे भी काम नहीं चलनेका। उस समय तो पोस्तीन आवश्यक होती है। साधारण लोग भेड़को खालकी पोस्तीन बाल नीचे और चमड़ा ऊपर करके पहिनते हैं। धनी लोग जंगली भेड़ियों, लोमड़ी, नेवले तथा और जन्तुओं की खाल पहिनते हैं, जिसकी कीमत भी बहुत अधिक होती है। संक्षेपतः तिब्बती लोग मामूली कपड़ोंमें गुजर नहीं कर सकते। पैरमें घुटनों तकका चमड़े और ऊनका बना बूट होता है, जिसे शोम्पा कहते हैं। उसके ऊपर पायजामा फिर लम्बा कोट (छुपा) और शिर पर फेल्टका हैट। साधारण भोटियाकी यही पोशाक है। हैटका रिवाज पिछले पन्द्रह-सोलह वर्षोंसे ही है, किन्तु अब सार्वदेशिक है। बच्चा बूढ़ा-जवान, धनी, गरीब, किसान चरवाहा सभी बिना संकोच हैट लगाते हैं। यह फेल्ट हैट यहाँ कलकत्तेसे आती है। फ्रांस, बेल्जियम आदि यूरोपीय देशोंसे लाखों पुरानी हैट धुल-धुलाकर कलकत्ता पहुँचती है और वहाँसे सस्ते दामोंपर यहाँ पहुँच जाती है।

स्त्रियाँ भी शोम्पा पहिनती हैं। इनका छुपा बिना बाँह का होता है, जिसके नीचे चौड़ी बाहों वाली सूती या आसामी अण्डीकी कमीज होती है। कमरसे नीचे सामनेकी ओर एक चौकोर कपड़ा लटकता है जो फ्राकका काम देता है। शिरको बहुत प्रयत्नसे भूषित किया जाता है। यदि यह कहा जायकी भोटिया गृहस्थकी सम्पत्तिका अधिक भाग उसकी स्त्रीके शिरमें होता है, तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। शिर की पोशाकसे यह भी आसानीसे मालूम हो जा सकता है कि वह स्त्री तिब्बतके किस भागकी है। ट्शी लामाके प्रदेशकी (जिसे चाङ कहते हैं) स्त्रियोंके शिरका आभूषण धनुषाकार होता है। यह लकड़ीको नवा कर उसपर कपड़े लपेटकर बनाया जाता है। इसके ऊपर मूंगे और फ़िरोज़ोंकी कतार होती है। धनी स्त्रियाँ सच्चे मोतियों की लड़ियोंसे इसके निचले भागको घेर देती हैं। जेवरोंमें फ़िरोज़ा

और मूँगा सबसे अधिक व्यवहार किया जाता है। ल्हासाकी स्त्रियोका शिरोभूषण त्रिकोण होता है। इस पर मूँगों और फ़ीरोज़ोंकी घनी कतार होती है और उसके ऊपर सच्चे मोतियों की पंक्तियाँ। इस त्रिकोणके नीचे बनावटी बाल खुले हुए, कानोके ऊपरसे पीठके ऊपर लटकते रहते हैं। ये बाल चीनसे आते हैं। इन पर पचास-पचास, सौ-सौ रुपये खर्च किये जाते हैं। ल्हासा और उसके आस-पास वाले अधिक सभ्य प्रदेशकी स्त्रियाँ ही इस अधिक महत्वपूर्ण अलंकार-से अपनेको अलकृत करती है। बालोंसे फ़िरोज़ेका कर्ण भूषण लटकता रहता है। गलेमें फ़ीरोजोंसे जड़ा हुआ चौकोर ताविज़दान होता है, जिसमें भूत प्रेतसे बचनेके लिए यत्र रहता है। इस ताबीजके पास बाँई ओर कमर तक लटकती मोतियोंकी लड़ी होती है। मुसलमानोंको छोड़कर सभी भोटिया दाहिने हाथमें शख पहनते हैं। शखमें हाथ जाने लायक रास्ता बना दिया जाता है। तो भी उसे शंख की चूड़ी नहीं कह सकते।

तिब्बत की विशेष पैदावार ऊन है। ऊन, कस्तूरी, फर (समूरी खाल) यहाँसे विदेशोंको जाती हैं। ये चीजे विशेपकर भारत ही-के रास्ते जाती हैं। गेहूँ बिना छिलकेका, जौ, मटर, बकला, जई तथा सरसों भी काम लायक हो जाते हैं। फसल साल भरमें एक ही होती है, जो भिन्न-भिन्न ऊँचाईके अनुसार भिन्न भिन्न समयमें बोई जाती है। सितम्बर तक सभी जगह फ़सल कट जाती है। अक्तूबर में वृक्षोंको पत्तियाँ पीली पड़कर गिरने लगती हैं, जो शरद ऋतुके आगमन की सूचना है।

गेहूँ काफ़ी पैदा होने पर भी भोटिया लोग रोटी नहीं खाते। ये लोग गेहूँ, जौ, भूनकर पीस लेते हैं। इसे चम्बा कहते हैं। राजासे लेकर भिखारी तकका यही प्रधान खाद्य है। नमक, मक्खन, मिश्री, गर्म चायको प्यालेमें डालकर, उसमें चम्बा रख हाथसे मिलाकर ये लोग खाते हैं। घरके हरएक आदमीका प्याला अलग-अलग

होता है। जो प्रायः लकड़ीका होता है। यह छोटा प्याला इनकी तश्तरी थाली गिलास सब कुछ है। खानेके बाद जीभसे इस प्यालेको साफकर छातीपर चोगेमें डाल लेते हैं; हाथ, मुँह देह, धोना कभी ही कभी होता है। विहारों के भिक्षुओं तकके हाथ मुँहपर मैल की मोटी तह जमी रहती है। तिब्बतमें ऐसे आदमी आसानीसे मिल सकते हैं जिन्होंने जिन्दगी भर अपने शरीरपर पानी नहीं डाला। चाय और चम्बाके अतिरिक्त इनका प्रधान खाद्य मांस है। मांस तिब्बतियों का प्रधान खाद्य है। अधिकतर सूखा और कच्चा ही खाते हैं। मसाला डालना शहरके अमीरोंका काम है, जिन पर चीनी और नेपाली अफसरों और सौदागरोंका प्रभाव पड़ा है। ये लोग चीन वालोंकी भाँति दो लकड़ियोंको खाते वक्त चम्मचकी भाँति इस्तेमाल करते हैं। चीनियोंसे दो एक तरहकी आटेकी चीज खानेके लिये भी इन लोगों ने सीखा है। चायका खर्च सबसे अधिक है। यह चीनसे आती है, और जमाकर ईंटकी शकलकी बनी रहती है। यद्यपि भारत और लंकाकी चाय आसानीसे जल्दी पहुँच सकती है, तो भी तीन महीने चलकर चीनी चाय सस्ती पड़ती है। तिब्बती लोग दूध और चीनी डालकर चाय नहीं बनाते। चायको सोडा और नमकके साथ पहले पानीमें खूब खौलने दिया जाता है, फिर उसे काठके लम्बे ऊखलमें डालकर मक्खन डाल खूब मथा जाता है। इसके बाद मक्खन मिल जानेपर चायका रंग दूधवाली चाय सा हो जाता है। फिर इसे मिट्टीकी चायदानियोंमें डालकर अगीठीपर रख देते हैं। दूकानदार, अफसर भिक्षु, सबके यहाँ चायदानमें चाय बराबर तैय्यार रहती है। सूखा मांस, चाय या कच्ची शराब (छङ्) यही आगन्तुकके लिए पहली खातिर होती है। जौकी सड़ाकर घर घरमें छङ बनती है। छोटे-छोटे बच्चे तक भी दिनमें कई बार छङ पीते हैं। यद्यपि एक आध हजारको छोड़कर सभी भोटिये बौद्ध हैं तो भी थोडेसे पीली टोपी वाले गेलुक्पा भिक्षुओंको छोड़कर सभ

भोटिया शराब पीने वाले हैं। इनकी पूजा शराबके बिना नहीं हो सकती, उपोसथ, पञ्च शील,[1] अष्ट शील जानते ही नहीं; गेलुक-पा भिक्षु भी पूजाके समय देवताका प्रसाद समझकर अगूठेकी जड़के गढे भर छड़्‌ न पीनेसे देवताके कोपित होनेका भय समझते हैं। दुनियामें बहुत ही कम जातियाँ ऐसी शराबकी आदी होगी।

तिब्बतके ऊनी कपड़े मोटे मजबूत और सुन्दर भी होते हैं। पुरानी चालके अनुसार अभी तक ये लोग पतली पट्टियाँ ही बनाते हैं, चौडे अर्जके कपडे नहीं बनाते। बिना कुछ किये स्वभावतः ही यहाँकी ऊन बहुत नर्म होती है। यद्यपि हिन्दुस्तानी मिलोंके लिए हर साल लाखों रुपयेकी ऊन भेजी जानेसे कपड़ोंकी दर अधिक हो गयी है, तो भी अभी सस्तापन है। मोजे, दस्ताने बनियानोंके बनानेका रवाज उतना नहीं है, यद्यपि नेपाली सौदागरोंके ससर्गसे ल्हासामें कुछ भद्दे भद्दे ये भी बनने लगे हैं। भोटिया लोग शिक्षा और अन्य बातोंमें चाहे कितने ही पिछडे हों, कला प्रेमी हैं। ल्हासाके परले प्रदेशमें अखरोटके पेड़ होते हैं। इनकी लकड़ी बहुत ही दृढ और साफ होती है। विहारों और मकानोंमें इसपर की गई बारीक तथा सुन्दर कारीगरीको देखकर इनकी कला-विज्ञताका पता लगता है। सम्पूर्ण त्रिपिटक और अट्ठकथासे भी बडे संग्रह अखरोटकी तख्तियों पर खोदकर छापे जाते हैं। यहाँकी चित्रकला सेगिरिया[2] तथा अजिंठा की शुद्ध आर्य चित्रकलासे अविच्छिन्नतया सम्बद्ध है। रंगोंका सनावेश तथा समिश्रण बहुत सुन्दर रीतिसे होता है। विदेशी रंगोंके प्रचाराधिक्यसे अब वे उतने चिरस्थायी नहीं हो सकते। यह चित्रकला बौद्धधर्मके साथ-साथ भारतके नालन्दा और विक्रम-

---

१. उपोसथ = व्रत: पचशील हमारे पाँच नियमोंकी तरह हैं, अष्ट शील श्रामणेरों (तरुण भिक्षुओं)के लिए होते हैं।

२. प्राचीन भारतकी अजिंठाकी गुहाओंकी तरह सिंहलमें सेगिरियामें पुराने चित्र हैं।

शिला विश्वविद्यालयोंसे यहाँ आयी है। इस कलामें भी रूढ़ि और नियमोंके आधिक्यसे अब यद्यपि उतनी सजीवता नहीं है, और न भोटिया चित्रकार दृश्योंके प्रति-चित्र तथा स्वच्छन्द कल्पित प्रतिभा सम्पन्न चित्र ही बना सकते हैं, तो भी भारत और सिंहलकी आधुनिक सामान्य चित्रकलासे तुलना करनेपर यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि ये लोग ऊपर हैं। सबसे बड़ी विशेषता यहाँकी चित्रकलाकी सार्वजनीनता है। धातु तथा मिट्टीकी मूर्तियाँ अंगानुकूल सुन्दर बनती हैं। इन कलाओंको सीखनेके लिए प्राचीन समयकी भाँति ही शिष्य शिल्पाचार्योंके पास वर्षों सेवा सुश्रूषा करके सीखते हैं। यद्यपि यहाँकी चित्र-कलाका स्रोत उतना स्वच्छन्द और उन्मुक्त नहीं है, तो भी भारतवासी यदि अपनी राष्ट्रीय कलाको पुनरुज्जीवित करना चाहते हैं तो उन्हें यहाँसे बड़ी सहायता मिल सकती है।

घरों, मनुष्यों कपड़ोंके अत्यन्त मैले होनेपर भी घरों और घरकी वस्तुओंको सजानेमें उनकी रुचि भद्दी नहीं कही जा सकती। कपड़ोंकी झालरोंमें रंगोंका उचित समावेश, छतों और खिड़कियोंपर फूलोंके गमलोंकी सुन्दर कतारें, खिड़कियोंके कपड़े या कागजसे ढके जालीदार सुन्दर पल्ले, भीतरी दीवारोंकी रंग-बिरंगी रेखाएँ, फूल-पत्तियाँ, कपड़ोंकी छतें, चाय रखनेकी चौकियोंकी रंगाई और सुन्दर बनावट, चम्पा (सत्तू) दानाकी रंगबिरंगी बनावट इत्यादि इनके कला प्रेमको बतलाती हैं।

खानेमें मांस, मक्खन तथा पहिननेको ऊनी कपड़े ही भोटिया लोगोंके लिए अधिक आवश्यक वस्तुएँ हैं। इसीलिए तिब्बती जीवनमें खेतीसे अधिक उपयोगी और आवश्यक पशु-पालन है। भेड़, बकरियाँ और चमरी (याक) ही यहाँका सर्वस्व है। भेड़से इन्हें मांस कपड़ा और पोस्तीन मिलती है। बकरीसे मांस और चमड़ा। भेड़ बकरियाँ इसके अतिरिक्त बोझा ढोनेका भी काम देती हैं, खास कर दुर्गम स्थलोंमें। चमरीसे मांस, मक्खन, दूध मिलता है। इसके

बड़े-बड़े काले बालोंसे खेमा और रस्सी बनायी जाती है। जूता, थैला आदि घरकी सैकड़ों चीजोंके लिए इसके चमड़ेकी आवश्यकता है। चमरी ठंडी जगहोंमें ही रहना पसन्द करती है। मई जून जुलाई अगस्तके महीनेमें चरवाहे चमरियोंको लेकर पहाड़ोंके ऊपरी भागमें चले जाते हैं। चमरी बोझा ढोनेका भी काम देती है। अठारह बीस हजार फुटकी ऊँचाई पर, जहाँ हवाके पतली होनेसे घोड़ों, और खच्चरोंका बोझा लेकर चलना बहुत मुश्किल होता है, चमरी भारी बोझा लिये बिना प्रयास अपनी जातीय मन्द गतिसे चढ़ जाती है। दुर्गम पहाड़ोंपर छिपकिलीकी भाँति इन्हें चढ़ते देखकर आश्चर्य्य होता है। तिब्बतमें भेड़ोंके बाद अत्यावश्यक चीज़ चमरी है। खच्चर घोडे और गदहे भी यहाँ बहुत हैं। रेल, मोटर, बैलगाड़ियाँ तो यहाँ हैं नहीं इसलिए सभी चीजोंको एक जगहसे दूसरी जगह ले जानेके लिए इनकी बड़ी आवश्यकता है। घोड़े यद्यपि ठिगने होते हैं, पर पहाड़ी यात्राके लिए ये अत्युपयोगी तथा देखनेमें तेज और सुन्दर होते हैं। खच्चर मंगोलिया और चीनके सीलिङ्ग प्रान्तसे भी आता है। घरेलू जन्तुओंमें कुत्तोंका महत्त्व कम नहीं है। भेड़ बकरी वालोंके लिए तो इसकी अनिवार्य आवश्यकता है। बड़ी जातिके भोटिया कुत्ते अधिकांश काले होते हैं। आँखें इनकी नीली और भयङ्कर होती हैं। शरीरपर रीछ की तरह लम्बे लम्बे बाल, जिनकी जड़में जाड़ेमें पशम जम आती है। यह भेड़ियोंसे लम्बे-चौड़े होते हैं, अनभ्यस्त यात्रीके लिए ये सबसे डरकी बात है। ये कुत्ते बड़े ही खूंखार होते हैं। एक ही कुत्तेके होनेपर आदमी आनन्दसे बेफिक्र सो सकता है। मजाल नहीं कि चोर या अपरिचित आदमी उधर कदम बढ़ा सके। तिब्बतमें आने वालेको पहिला सबक कुत्तोंसे सावधानीका पढ़ना पड़ता है। भोटिया लोग हड्डी तकको कूट कर थागू बना डालते हैं, फिर कुत्तोंको मांस कहाँसे मिल सकता है? सवेरे शाम थोड़ासा चम्बा (सत्तू) गर्म पानीमें घोलकर पिला देते हैं। बस

इसी पर ये स्वामि-भक्त कुत्ते लोहेकी जंजीरमें बंधे पड़े रहते हैं। पिंजड़ेसे बाहर जंजीरमें बंधे बाघके समीप जाना जैसा मुश्किल मालूम होता है, वैसे ही यहाँके कुत्तोंके समीप जाना। इन बड़ी जातिके कुत्तोंके अतिरिक्त छोटी जातिके भी दो तरहके कुत्ते हैं। इनमें ल्हासाके मुँह पर बाल और बे बाल वाले छोटे कुत्ते बहुत ही सुन्दर और समझदार होते हैं। यहाँ दो तीन रुपयेमें मिलनेवाले कुत्ते दार्जिलिङ्गमें ६०, ७० रुपये तक बिक जाते हैं। ये छोटे कुत्ते अमीरोंके ही पास अधिक रहते हैं, इसलिये इनकी आव-भगत अधिक होती है।

६. तिब्बतमें नेपाली

नेपाल और तिब्बतका सम्बन्ध बहुत पुराना है। ईसाकी सातवीं शताब्दीसे एक प्रकारसे तिब्बतका ऐतिहासिक काल शुरू होता है। उस समय भी नेपाल और तिब्बतका सम्बन्ध बहुत पक्का दिखाई पड़ता है। यही समय तिब्बतके उत्कर्षका है। इस समय तिब्बतके सम्राट् स्रोङ्-चन-गम्बो ने जहाँ एक तरफ नेपालपर अपनी विजय-वैजयन्ती फैला वहाँकी राजकुमारीसे ब्याह किया, वहाँ दूसरी ओर चीनके कितने ही सूबोंको तिब्बत साम्राज्यमें मिला चीन सम्राटको अपनी लड़की देने पर मजबूर किया। इससे पूर्व, कहते हैं, भोटमें लेखन-कला न थी। स्रोङ्-चन ने सम्भोटाको अक्षर सीखनेके लिए नेपाल भेजा जहाँसे वह अक्षर सीखकर पीछे तिब्बती अक्षर निर्माण करनेमें समर्थ हुआ। नेपाल राजकुमारीके साथ ही तिब्बतमें बौद्ध धर्म ने प्रवेश किया, और राजनीतिक विजेताका धार्मिक पराजय हो गया। आज भी नेपालकी वह राजकुमारी तारा देवी अवतारकी तरह तिब्बतमें पूजी जाती है। तिब्बतको सभ्यतामें दीक्षित करनेमें नेपाल प्रधान है।

इसके अलावा नेपाल उपत्यकाके पुराने निवासी नेवारोंकी भाषा तिब्बती भाषाके बहुत सन्निकट है। भाषा तत्त्वज्ञोंने नेवारी भाषा

को तिब्बत-बर्मी शाखाका भाषाओंमेंसे माना है। तिब्बतीमे सिउ मा री (कोई नहीं है) कहेंगे तो नेवारीमे सु मारो। नेपाल और तिब्बत-का सम्बन्ध प्रागैतिहासिक है, इसमें सन्देह नहीं। सम्राट्स्रोङ्-चैन ने ही ल्हासाको राजधानी बनाई। उसके १०० वर्ष बाद आठवीं शताब्दी के मध्यमें भोट राज स्रोङ्-दे-चनने नालन्दाके आचार्य शान्तरक्षित-को धर्मप्रचारके लिए बुलाया, और इस प्रकार भारतीय धर्म प्रचारको-के लिए जो द्वार खुला वह बारहवीं शताब्दीमें भारतके मुसलमानो द्वारा विजित होने तथा नालन्दा, विक्रमशिला आदि विश्वविद्यालयोंके नष्ट होने तक बन्द न हुआ। इन शताब्दियोंमे आजकलका दार्जिलिंग-ल्हासा वाला छोटा रास्ता मालूम न था। भोटसे भारतके लिए तीर्थ-यात्रा करने वाले तथा भारतसे भोटमें प्रचार करनेके लिए जाने वाले सभीको नेपालके मार्गसे ही जाना पड़ता था धर्मके सम्बन्धमें जैसा नेपाल मध्य स्थान रखता था, वैसा ही व्यापारके सम्बन्धमें भी। भोटकी चीजोंको भारत और भारतकी चीजोंको भोट भेजनेका काम नेपाल सहस्र शताब्दियोंसे कर रहा है।

यद्यपि बौद्ध ग्रंथोंको संस्कृतसे भोट भाषामें अनुवाद करनेमे नेपालके पंडितोंका हाथ, भारतीय तथा काश्मीरी पंडितोंके समान नही रहा, तो भी इस अंशमे भी उन्होंने कुछ काम न किया हो ऐसा नहीं। शान्ति भग, अनन्त श्री, जेतकर्ण, देव पुण्यमति, सुमति कीर्ति, शान्तिश्री आदि नेपाली बौद्ध पंडितोंने भी नवीं दसवीं शताब्दियों मे कितने ही ग्रंथोंका, विशेष कर तन्त्र ग्रंथोंका संस्कृतसे भोटिया अनुवाद किया। अनुवादमें नेपालियोंका कम हाथ होनेका कारण, मालूम होता है, भारतसे बड़े-बड़े पंडितोंका आसानीसे मिल जाना था। इसमें सन्देह नहीं कि नेपाली व्यापारी ल्हासाके राजधानी होनेके साथ ही आये, तो भी तिब्बतके इतिहासकी सामग्री जिन ग्रंथोंसे मिलती है, वे धार्मिक हैं, या धार्मिक दृष्टिसे लिखे गये हैं, इसीलिए उनमें व्यापारकी विशेष चर्चा न होना स्वाभाविक है। रोमनके

कैथोलिकोंके कपुचिन सम्प्रदायके पादरियोंके वृत्तान्तमें तो ल्हासा-में नेपाली व्यापारियोंका रहना स्पष्ट लिखा है। सन् १६६१से १७४५ तक कपुचिन-पादरी ल्हासामें रहे। इन्होंने अपने विवरणमें कुछ नेपालियोंके ईसाई होनेकी बात भी लिखी है। उनके समयके गिरजे का एक घंटा १९०४में बृटिश मिशनके ल्हासा पहुँचनेपर मिला था। कपुचिन पादरियोंके ल्हासा लौटनेके ४५ वर्ष बाद १७९०में व्यापारियोंकी शिकायतसे ही तो तिब्बतपर नेपालको चढ़ाई करनी पड़ी थी।

आजकल तिब्बतमें व्यापार करनेवाले नेपाली व्यापारियोंके विशेष अधिकार हैं। ये अधिकार १७९० और १८५६को दो लड़ाइयोंके बाद मिले हैं। पहली लड़ाईमें नेपाली सेना सभी घाटोंको पार करती ल्हासासे सात दिनके रास्ते पर शिगचे (टशील्हुन्पो) पहुंच गई थी, और यदि चीनसे बहुत भारी सेना न आती तो इसमें शक नहीं कि वह ल्हासा भी ले लेती। चीनी सेना नेपालियोंको हराते हराते नेपाल राजधानी काठमाण्डूके समीप पहुँच गई, जिसपर नेपालने चीन की अधीनता स्वीकार की, और नेपाल और तिब्बत दोनो चीन साम्राज्यके अन्तर्गत माने जाकर आपसमें सुलह हो गई। इस युद्धके विजयके उपलक्ष्यमें चीन सम्राट्का लिखवाया लेख आज भी ल्हासामें पोतलाके सामने मौजूद है। दूसरी लड़ाई वर्तमान नेपाल के महामन्त्रि-वंशके संस्थापक महाराजा जंगबहादुरके समय १८५६में हुई थी। इस लड़ाईमें नेपालको घाटोंसे आगे बढ़नेका मौका न मिला, और चीनके बीचमें पड़ जानेसे सुलह हो गई। सुलहनामेके अनुसार भारत सरकारको प्रतिवर्ष प्रायः १० हजार रुपया वार्षिक नेपालको देना पड़ता है। इसके अतिरिक्त दूसरी शर्तें ये हैं (१) संकट पड़ने पर एक दूसरेकी सहायता करना, (२) एक दूसरे देशके व्यापारियो पर जकात न लगाना, (३) ल्हासामें नेपाली राजदूत रखना, (४) नेपाली प्रजाका मुकदमा नेपाली न्यायाधीश द्वारा निर्णय किया जाना,

इत्यादि इस प्रकार इस सुलहनामेके द्वारा नेपालको उसी प्रकारका बहिर्देशीय प्रभुत्व (Extra territorial right) मिल गया, जैसा यूरोपियन जातियोंने चीनमें लिया था, और जिसके छुड़ानेके लिए चीन प्रयत्न कर रहा है।

द्वितीय युद्धके पूर्व ल्हासाके नेपाली व्यापारी प्रायः १० गिरोहोंमें बंटे थे। हर एक गिरोह अपना सरदार चुनता जिसको ठाकूली कहते हैं। ये ठाकूली आज भी हैं, यद्यपि संख्या अब सात ही रह गई है, उनका पहला वाला अधिकार भी नहीं रहा। हर एक गिरोहकी एक बैठककी जगह है, जिसको पाला कहते हैं। ल्हासामें व्यापार करनेवाले नेपाली व्यापारी प्रायः सभी बौद्ध हैं। नेपाली बौद्ध तान्त्रिक हैं, इस प्रकार ये पाले उनके तान्त्रिक पूजा तथा दूसरे कामके लिए भी व्यवहृत होते हैं। इन पालोंमें सौ सौ वर्ष पुरानी ल्हासामें लिखी गई कुछ संस्कृत पुस्तकें भी हैं।

आजकल नेपालकी ओरसे ल्हासामें एक वकील (राजदूत), एक डीठा (मुन्सिफ) तथा कुछ सिपाही रहते हैं। ल्हासाके अतिरिक्त ग्याँची शीगर्ची, नेनयू (कुती) केरङमें भी मुकदमा देखने तथा नेपाली प्रजाके हकोंकी रक्षाके लिए एक एक डीठा रहते हैं। नेपाली प्रजामें सिर्फ नेपालमें उत्पन्न व्यापारी ही नहीं बल्कि उनकी भोटिया रखेलियोंसे होने वाले सभी बालक भी होते हैं। इस प्रकार यद्यपि ल्हासामें नेपालियोंकी संख्या दो सौसे अधिक शायद ही होगी, तो भी नेपाली प्रजा वहाँ कई हजार है। भोटिया स्त्रीसे पैदा हुई नेपाली सन्तानको खचरा कहा जाता है। लड़का पैदा होते ही नेपालका हक हो जाता है। किन्तु ऐसे लड़के या [illegible] जायदादमें कोई हक नहीं। नेपाली [illegible] [illegible] जो दे, बस वही उसका हक है। अकसर लड़का पैदा होने पर, इन्कार करके स्त्रीको घरसे निकाल दिये जाते देखा गया है। चूंकि नेपाली राजनियमके अनुसार कोई नेपाली अपनी स्त्रीको तिब्बतमें [illegible] नहीं सकता, इस लिए भोटिया रखेली रखना नेपालियों

के लिए आम बात है। तिब्बतमें बहुपतिक विवाह तो नियमके तौरसे है ही, इसलिए किसी भोटिया पुरुषसे भाईचारा करके किसी नेपालीको उसकी स्त्रीसे सम्बन्ध करते देखा जाता है।

यह पहले कह आये हैं, कि नेपालको भोटमें व्यापार करते शताब्दी नहीं सहस्राब्दी बीत चुकी। नेपाली व्यापारी तथा भोटिया लोगोंका धर्म एक ही तान्त्रिक बौद्ध धर्म है। कुछ राष्ट्रीय बातोंको छोड़ देनेपर बहुत सी बातें मिलती-जुलती हैं। जहाँ नेपालमें इतना छुआछूतका विचार है, वहाँ भोटमें आनेपर नेपाली सौदागर छुआछूतका कोई विचार नही करता। शराब पीनेमें दोनों एकसे हैं। यहाँ रहनेवाले बहुतसे नेपाली याक (चमरी)को गायमें शुमार नही करते, और उसका मास खानेमें कोई विचार नहीं रखते हाला कि नेपालमें हरगिज ऐसा नहीं हो सकता। रसोई बनाने वाले तो आमतौरसे भोटिया हैं, लेकिन मुसलमानके हाथसे रोटी खानेमें कोई विचार नहीं। स्मरण रहना चाहिए कि नेपालमें ये सभी बातें भयानक अपराध गिनी जाती हैं। एक बार भोटकी तरफ आनेपर नेपाली सौदागरको ३,४ वर्षसे पहले देश लौटनेको नहीं मिलता। लौटनेपर प्रायश्चितके लिए कुछ नियमित रुपया देना पड़ता है।

नेपाली (नेपार) लोग बडे ही व्यापार कुशल हैं। अगरेजी शिक्षा का अभाव होनेसे यद्यपि उनके व्यापारका ढङ्ग बहुत कुछ पुरानासा ही है, तो भी उसका प्रबन्ध एक ऐसे देशमें, जहाँ रेल मोटरकी बात कौन कहे, कोई पहले वाली चीज भी नहीं, बहुत सुन्दरतासे कर रहे हैं। आधुनिक ज्ञानके अभावसे यद्यपि जितना मौका उनको अपने व्यापारके बढानेका है उतना नहीं कर सकते, तथापि अधिकांश ल्हासा की नेपाली कोठियाँ अपनी एक शाखा कलकत्तामें रखती हैं। कुछकी शाखायें शीगर्ची, ग्याची, फरीजोङ्, कुती आदिमे भी हैं। व्यापारमें 'फर' कस्तूरी, ऊन बाहर भेजते हैं और मूगा, मोती, फीरोजा बनारस; चीनके रेशमी कपडे, विलायती, जापानी सूती कपड़े, शीशेकी चीज़ें,

खिलौने आदि बाहरसे मंगाते हैं। चीजोंके असली उत्पत्ति-स्थान और खपत स्थानके साथ व्यापारका ढङ्ग न जाननेसे उनको अपना सब काम कलकत्तामें करना पड़ता है। ऐसा होनेका कारण आधुनिक व्यापारिक शिक्षाका अभाव है। नेपाली व्यापारियोंमें अब भी वह शिक्षा प्रवेश नहीं कर रही है, इसलिए उनके व्यापारके ढङ्गमें कब परिवर्तन होगा नहीं कहा जा सकता। सौभाग्यसे व्यापारिक क्षेत्रमें उनका कोई उतना जबर्दस्त प्रतिद्वन्दी नहीं है। मुसलमान व्यापारियोंका ढङ्ग इनसे कोई अच्छा नहीं है। चीनके प्रभुत्वके हटनेके साथ-साथ चीन व्यापारियोंका भी कुछ नहीं रहा। हिन्दुस्तानी व्यापारियोंको मैदानमें आना ही निषिद्ध-सा है। ऐसी अवस्थामें कितने ही वर्षों तक तिब्बतके व्यापारपर नेपालियोंका एकाधिपत्य रहेगा। नेपाली व्यापारियोंके पास कुछ ऐसे साधन भी हैं जिनसे थोड़ेसे परिश्रमसे वे इस व्यापारको बड़ा रूप दे सकते हैं। उदाहरणार्थ धर्ममान साहुकी कोठीको ले लीजिए। इनको ल्हासामें अपना कोठी खोले करीब डेढ-सौ वर्ष हो गया। इसकी शाखायें ग्याची, फरी, कलकत्ता, काठमाडू और लदाखमें हैं। मूँगा, मोती, रेशम, रुई लाखका हर साल मँगाते हैं, और यहाँकी चीजें बाहर भी भेजते हैं। पूँजी भी काफी है। चीन, जापान, सिंहल, मंगोलिया, चीनी तुर्किस्तानसे ये बड़ी आसानीसे अपना सम्बन्ध जोड़ सकते हैं। किन्तु नहीं जोड़ते। कारण है आवश्यक शिक्षाका अभाव। व्यापारमें नेपाली लोग बड़े सच्चे हैं। उनका बर्ताव मीठा होता है। धर्म एक होनेसे यहाँके पुरोहितोंका भी वे पूरा सम्मान करते तथा मन्दिरों और पूजाओंके लिए काफी भेंट चढाते हैं। इन्हीं बातोंको लेकर यहाँ नेपालियोंका वही स्थान है जो भारतमें मारवाड़ियोंका तथा सिंहलमें गुजराती मुसलमानोंका। नेपाली लोग जैसा देश वैसा भेसके सिद्धान्तको बहुत आसानीसे जीवनमें धारणकर सकते हैं। यद्यपि नेपालमें इनका प्रधान खाद्य चावल है, तो भी यहाँ वे सत्तूको उसी आनन्दसे खाते हैं जैसे भोटिया। हाँ, रातके वक्त अवश्य डेढ-दो महीने--

के रास्तेसे लाये गए चावलको खाते हैं। आजकलके नौजवान सौदागर तो कोट, पैजामा, टोपी, बूट नेपालका-सा पहनते हैं, तो भी पहलेके लोग लम्बी बाँहवाला चोगा, बालवाली एक तरहकी टोपी अब भी पहिनते हैं। पहले तो ये लोग भोटियोंकी भाँति लम्बी चोटी, तथा वैसा ही हंगा (भोटिया जूता) भी लगाते थे। आजकल जाड़ेके दिनोंमें तो नौजवानोंको भी लम्बा ऊनी पोस्तीनका चोगा पहनना पड़ता है।

७. तिब्बतमें भूटानी

आजकल १९०४ ई०के अंग्रेजी मिशनके बादसे तिब्बतका प्रधान व्यापार-मार्ग कलिम्पोङ (दार्जिलिंगके पास)से ल्हासा है। यह मार्ग ग्याची तक तो अंग्रेजी संरक्षतामें है। ग्याची तक अंग्रेजी तारघर और डाकखाना भी है। ग्याचीसे ल्हासा तक भोटिया सरकारका तार टेलीफोन और डाकखाना है। अधिकांश व्यापार आयात निर्यात दोनों हीका इसी रास्तेसे होता है। सिर्फ चाय और कुछ चीनी रेशमी कपड़ोंका व्यापार पूर्वके रास्तेसे होता है। इसी कलिम्पोङ-ल्हासा-मार्गके एक तरफ थोड़ा हटकर नेपाल है, और दूसरी (पूर्व) तरफ भूटान। ल्हासामें दो ही वकील रहते हैं एक नेपालका, दूसरा भूटानका। तिब्बती और भोटियामें बहुत अन्तर नहीं है। इनकी भाषाओंमें अत्यन्त थोड़ा अन्तर है। धर्म, धर्मपुस्तक, धर्माचरण एक हैं। भूटानसे ल्हासा नेपालकी अपेक्षा बहुत समीप है; और उक्त प्रधान व्यापारिक मार्गसे भी नेपालके व्यापारिक केन्द्रकी अपेक्षा भूटान बहुत समीप है। भूटानको भी व्यापारिक सुविधाएं वही हैं जो नेपालको, तो भी भूटानी लोग यदि उतना लाभ न उठा सकें, तो कारण उनमें व्यापारिक बुद्धिका अभाव है।

भूटानी लोगोंका भी व्यापार तिब्बतके साथ है, किन्तु नेपालियों और लदाखी मुसलमानोंकी भाँति उनकी उतनी दूकानें नहीं हैं। वे अपनी चीजें ले आते हैं और बेचकर दूसरी आवश्यक चीजें लेकर

अपने देशका रास्ता लेते हैं। भूटानी लोग अधिकतर अंडी और रेशम आसाम और स्वय भूटानसे भी लाते हैं, और अधिकतर ऊनी कपड़े यहाँसे अपने देशको ले जाते हैं।

ल्हासाके बाजारोंमें जाड़ेके दिनोंमें आपको देश-विदेशके लोग दिखलाई पड़ेंगे। उत्तरमें साइबेरिया और मंगोलिया तकके यात्री पूर्वमें चीनके कुछ प्रदेशोंके, तथा पश्चिमसे लदाखी लोग भी इसी समय पहुँचते हैं। स्वय तिब्बतके भी कोने-कोनेके आदमी दिखाई पड़ते हैं। भूटानी लोग भी इस समय काफी आते हैं। उनके विशाल-काय, स्त्री-पुरुष दोनोंके मुंडे शिर, घुटनोंसे ऊपर चोगा, तथा प्रायः नंगे पैर (जाडेमें नही) दूर हीसे बतला देंगे ये भूटानी हैं। धार्मिक बातें एक-सी होनेपर भी भूटानी घोर तान्त्रिक हैं। भूटानीको भोटिया बोलीमें ब्रुग-युल बोलते हैं, और देशवासियोंको ब्रुग्-पा (उच्चारण डुग्पा)। तिब्बती बौद्ध धर्ममें डुग्पा एक सम्प्रदाय ही है। ल्हासामें भूटानी दूतागार है, और भूटानी वकील कुछ सिपाहियोंके साथ रहता है; भूटानी प्रजाकी सख्या तथा स्वार्थ उतना न होनेसे नेपाली दूतागार-का-सा उसका कार्य नही है।

८. तिब्बत और नेपालपर युद्धके बादल

नेपाल और तिब्बत पडोसी देश हैं। इनका आपसका सम्बन्ध भी पुराना है। तिब्बतके प्रथम ऐतिहासिक सम्राट् स्रोङ चन्-गेम्बोने सातवी सदीमें नेपालके राजा अंशुवर्माकी लडकीसे शादीकी थी। इसके बाद तिब्बतका भारतसे वाणिज्य यातायात सभी नेपाल द्वारा ही होने लगा और आज तक वैसा ही है। नेपाली सौदागर तिब्बतके मारवाड़ी हैं। १८वी और १९वीं शताब्दियोंमें नेपालने तिब्बतसे युद्ध किया, जिसके फलस्वरूप कुछ हजार वार्षिक भेंटके अतिरिक्त नेपाली प्रजाको तिब्बतके कुछ स्थानोंमें वे हक प्राप्त हुए जो योरपीय राष्ट्रोंको चीनमें मिले हैं। ल्हासा, ग्याची, फरी, शीगर्चा, नेनम् (कुती), केरोङ् आदि

भी बसे हुए हैं। वाह्यदेशिक अधिकारसे उन्हें वंचित रखनेके लिए कितनी ही बार तिब्बती अफसर उन्हे भोट प्रजा कहने लगते हैं। इसका ताजा उदाहरण ल्हासाका शर्वा ग्यंल्पो व्यापारी था। ल्हासाके नेपाली कहते थे कि शर्वा नेपाली-प्रजा है। वह धनी और सफल व्यापारी था, किन्तु अपनेको नेपाली-प्रजा समझनेसे वह भोटके बड़े-बड़े अधिकारियो पर भी टीका टिप्पणी किया करता था। भोटिया अधिकारी इससे जलते थे, और मौकेकी ताकमें रहते थे। कुछ दिनोंके वाद उन्होंने भोट-शासक दलाई लामाके पास एक शिकायत पहुँचाई, और कहा कि शर्वा सरकारके सम्बन्धमें भी खरी-खोटी बाते कहता रहता है। इधर उन्होंने शर्वाके जन्म-प्रदेशवासी कुछ शत्रुओंको फुसलाकर यह भी कहलवा दिया कि शर्वा वस्तुतः नेपाली-प्रजा नहीं है, बल्कि भोट-प्रजा है। फिर क्या था? शर्वा पकड़कर भोटिया हवालातमें डाल दिया गया। ल्हासा स्थित नेपाली राजदूतने इसपर भोट सरकारको समझाया। उसकी बात न माननेपर नेपाल-सरकारने स्वयं तहकीकात करके लिखा कि शर्वा नेपाली-प्रजा है। लेकिन तिब्बत-सरकारका कहना था कि वह भोट-प्रजा है, इसलिए नेपाल-सरकारको बीचमें दखल देनेका कोई अधिकार नहीं है। नेपाल-सरकारने फिर भोट सरकारको अपने आदमी भेजकर शर्वाके गाँवमें तहकीकात करनेके लिए कहा, किन्तु भोट-सरकार टालती रही। इस प्रकार शर्वा प्रायः दो साल तक जेलमें पड़ा रहा।

जुलाई (१६२६ ई०)के तीसरे सप्ताहमें मैं ल्हासा पहुंचा था, उस समय शर्वा ग्यंल्पो जेल या हवालातमें था। अगस्तके दूसरे सप्ताहमे सिपाहियोंकी असावधानीसे शर्वा भागकर नेपाली दूतावासमें चला गया। १४ अगस्तको मै नेपाली राजदूतसे भेट करने गया तब एक गोरे घुटे सिरवाले बड़े लम्बे-चौड़े अधेड़ पुरुषको आँगनमें टहलते देखा; यही शर्वा ग्यंल्पो था। शर्वाके भागनेसे बड़ी सनसनी फैल गई। जिन अफसरोंको शर्वाको स्वतन्त्र प्रकृति और खरी बातें

पसन्द नहीं थी उन्होंने इसमें बड़ी लज्जाका अनुभव किया। जिन अफसरोंके अधिकारमें शर्वा रक्खा गया था उन्हें दंड दिया गया। महागुरुके पास शिकायतोंके ढेर लगने लगे। भोट सरकारने नेपालके राजदूतको कहा कि वे शर्वाको हमारे हवाले कर दें। यह बात राजदूतके वशके बाहर थी। ल्हासामें नेपाली सौदागरोंकी छोटी बड़ी सब मिलाकर सौसे ऊपर दूकानें हैं। इस घटनाके बाद अब नेपाली अधिक शङ्कित हो उठे। वे कहते थे, राजदूत शर्वाको हवाले नहीं करेंगे, भोट-सरकारके जबर्दस्ती करनेपर यदि जरा भी छेड़छाड़ हुई तो दूतावास-के लोगोंको पकड़ने और मारनेमें तो देर भी लगेगी, किन्तु नेपाली प्रजाका जानमाल तो कुछ घंटोंमें ही नष्ट कर दिया जायगा। २३ अगस्तको परेड करते वक्त भोटिया सैनिक आपसमें लड़ पड़े। शहरमें हल्ला हो गया कि सैनिक नेपाल-दूतावासमें शर्वाको पकड़ने पहुँच गये। फिर क्या था ? कुछ ही मिनटोंमें सारी नेपाली दूकानें बन्द हो गईं। लोग अपनी दूकानोंके ऊपर जाकर प्रतीक्षा करने लगे कि अब लूट मंडली आना ही चाहती है। उस समयकी बात कुछ न पूछिए। लोग महाप्रलयके दिनको मिनटोंमें आया गिन रहे थे। मैं भी नेपाली लोगों-के साथ रहता था और अधिकांश-जन मुझे भी नेपाली ही समझते थे। इसलिए मैं भी उसी नैयाका यात्री था। दो बजे दिन दूकानें बन्द हुईं। रातको किस वक्त तक वह दशा रही इसे मैं नहीं बता सकता। रातको कोई दुर्घटना नहीं हुई, इसलिए सवेरे फिर सभी दूकानें खुल गईं। एक दिन और इसी प्रकार दूकाने बन्द हो गईं। २७ अगस्त-के बारह बजे मैं छु-शिङ्-शर (जिस व्यापारी कोठामें मैं रहता था) के कोठेपर बैठा था। मैंने देखा, दक्षिणसे दूकानें बन्द होती आ रही हैं, सड़कपर अपनी दूकानें लगाकर बैठे नर-नारी अपनी विक्रेय वस्तुओंको जल्दी-जल्दी समेटकर गिरते-पड़ते घरोंके भीतर भाग रहे हैं। कोई किसीकी कुछ कह भी नहीं रहा था, जो एकको करता देखता है, उसीकी नकल वह भी करता था। जरा सी देरमें किसी सरकारी

आदमीसे मालूम हुआ कि पल्टन शर्वाको पकड़ने नेपाली दूतावासमें गई है। नेपाली कहने लगे, अब लूट शुरू होगी। भोटवासियोंकी भाँति नेपाली सौदागर भी बौद्ध हैं,[1] और एक ही तरहकी तांत्रिक पूजापर विश्वास रखते हैं। लामों और मठोंपर भी वैसी ही श्रद्धा रखते हैं। इसी प्रकार हर-एक नेपालीके अनेक भोटिया घनिष्ठ मित्र हैं, और उनसे भय नहीं सहायताकी ही सभावना है। लेकिन लूटके वक्त वे भलेमानुस तो स्वयं अपनी आगको देखेंगे, लूटनेवाले तो दूसरे ही आवारे गुण्डे होंगे।

उस दिन हमें सारी रात फिक्रमें बितानेकी आवश्यकता नहीं हुई। शामसे पूर्व ही सूचना मिली, और इस सूचनाके फैलानेमें राजकर्म-चारियोंने भी सहायता की कि शर्वा पकड़ लिया गया है; राजदूतने अपने आप ही उसे सरकारके हवाले कर दिया; सौदागरोंको डरना नहीं चाहिये; कोई लूट-पाट नहीं होने पायेगी। दूसरे दिन दूकानोंके खुलनेपर सभीके मु हमें नेपाली राजदूतके लिए प्रशंसाके ही शब्द थे। मालूम हुआ, राजदूतने शर्वाको हवाले ही नहीं किया, साथ ही सशस्त्र रुकावट भी नहीं डाली। इसमे शक नही कि यदि राजदूत डट जाता तो शर्वाका ले जाना उतना आसान नही था। दूतावासमें केवल २५, ३० सैनिकोंके होनेपर भी बन्दूक और गोला-बारूद इतना था कि वे दो-तीन सौ नेपाली प्रजाजनोंको मुकाबलेके लिए तैयारकर सकते थे; दूतावास भी शहरके भीतर था, जिसपर प्रहार करनेके लिए पास-पड़ोस-को भी नुकसान पहुंचाना पड़ता। नेपाली सैनिक हिम्मत निशानेबाजी आदिमें भी भोट सैनिकोंसे बहुत बढे हुए हैं। लेकिन राजदूतके सामने तो सवाल था कि वह एक शर्वाको कुछ समयके लिए बचा रक्खे या हजारों नेपाली-प्रजाके जान-मालको बातकी-बातमे बरबाद होनेसे

१. वे सब गोरखे नहीं हैं, नेपालके पुराने निवासी नेवार हैं जिनकी भाषा आदिका सम्बन्ध भोटसे ही अधिक है।

बचावे। राजदूतका वह निर्णय यथार्थमें बहुत प्रशंसनीय था। जरा-सी भूलमें हजारों प्राणोंका बुरी तरहसे खात्मा था।

इधर कई बार बाजारके बन्द हो जानेसे सिर्फ ल्हासामें ही तहलका नहीं मच गया था, बल्कि यह खबर उड़ उड़कर दूर तक फैल रही थी। सब जगह पुलिस और पल्टनका प्रबन्ध तो है नहीं, इसलिए लोगोंमें व्यवस्थाके प्रति सन्देह उत्पन्न हो सकता था, और तब उपद्रव रोकना मुश्किल होता। २६ जुलाईको नगरके अधिकारीने भोट और नेपाल दोनोंकी प्रजाको जमाकर एक लेकचर दिया, कहा—कोई झगड़ा नहीं होगा, सरकार इसके लिए तैयार है; यदि फिर दूकानें बन्दकी गईं तो बन्द करने वालों और अफ़वाह फैलाने वालोंको कड़ी सज़ा दी जायगी। इस धमकीके कारण या क्या, उसके बाद सचमुच ही बाजार नहीं बन्द हुआ। शर्बाके बारेमें मालूम हुआ कि उसपर बेतोंकी मार पड़ी। कहते हैं, उसे दो सौ बेत लगाये गये। जब तक वह होशमें था, एक बार भी उसके मुँहसे दीनताके शब्द नहीं निकले। बेतकी चोटसे मास तक उड़ गया, और प्रधान नाड़ियोंमेंसे कुछ कट गईं। इन्हीं घावोंके मारे १७ सितम्बरको शर्बा मर गया।

ऊपर कहे कारणोंसे नेपाल और भोटमें पहलेसे ही कुछ सैनिक तैयारियाँ हो रही थीं। शर्बाको दूतावाससे जबर्दस्ती पकड़कर ले जानेपर तो अब युद्ध सामने खड़ा दिखाई देने लगा। तिब्बतमें न प्रेस है, और न अखबार। वहाँ अखबारोंका काम उड़ती खबरें देती हैं। इङ्गलैण्डके अखबारोंके अनुभवसे मैं कह सकता हूँ कि विलायती अखबारोंकी अफ़वाहोंकी अपेक्षा ये ल्हासाकी अफवाहें अधिक विश्वसनीय थीं। २१ अगस्तको खबर उड़ी कि नेपाल और तिब्बतमें सुलह करानेके लिए शिकिमसे ब्रिटिश रेजीडेन्ट आ रहे हैं। दूसरे दिन खबर उड़ी कि दलाई लामाने उन्हें आनेकी इजाज़त नहीं दी। नेपालमें कैसी तैयारी हो रही थी, इसके बारेमें ठीक तो नहीं कहा जा सकता, किन्तु २ नवम्बरको दर्जीकी तलाश करते वक्त हमें पता लगा कि

ल्हासामें उपलब्ध सभी जीन कपड़ोंको सरकारने खरीद लिया है और ल्हासाके दर्जी तम्बू बनानेमें लगे हुए हैं। यह भी अफवाह उडी कि तिब्बतकी सहायताके लिए चीन और रूससे भारी मदद आनेवाली है। नेपालके बारेमें मालूम हुआ कि धनकुटा, कुती, केरोङ् आदि जिन चार रास्तोंसे तिब्बतमें प्रवेश किया जाता है, नेपाल सरकार ने उनको सैनिक कामके लिए दुरुस्त ही नहीं कर लिया है, बल्कि सैनिकोंके खानेके लिए पाँच लाखका गेहूँ भी भारतसे खरीदा जा चुका है चारों रास्तोंपर चढाई करनेके साथ तार लगा देनेके लिए खंभे और तार भी तैयारकर लिए गये हैं; सीमाके पास कुछ पल्टनें भी तैनातकर दी गई हैं। ल्हासाके बारेमें मत पूछिए। रोज दस बजे पल्टन शहरकी सड़कसे मार्च करती हुई निकलती थी। सिपाहियोंके युद्ध कौशलके बारेमें मालूम हुआ कि यद्यपि योरपीय युद्धमें अंगरेजी सेनाकी निकाली हुई बन्दूकें उन्हें मिली हैं, तो भी बन्दूक दागते वक्त वे मुँह दूसरी ओर कर लेते हैं। हाँ, सैनिक सरगर्मीका प्रभाव जहाँ एक ओर छोटे-छोटे बच्चोंपर पड़ा था, और वे सड़कोंपर 'राइट-लेफ्ट' करते फिरते थे, वहाँ शहरमें इक्के-दुक्के निकलते सैनिक भी बे-मौके ही राइट-लेफ्ट कर रहे थे। भोटके सैनिकोंमें राइट-लेफ्टके प्रचारका कारण यह था कि उनके प्रोफेसरोंने ग्यांचीमें दो-एक मास रहकर वहाँके अँग्रेजी पल्टनके हवल्दारोंसे सारे युद्धशास्त्रको सीख डाला था।

अब कलकत्ते और नेपालसे आनेवाले तारों और चिट्ठियोंमें नेपाल' सौदागरोंको छोड़कर चले आनेकी बातें आने लगीं। २० सितम्बरको छुशिङ्-शरके स्वामीके बड़े लड़के साहु त्रिरत्नमान ल्हासा छोड़कर चल दिये। उन्होंने अपने छोटे भाई और दूसरे आदमियोंको कह दिया कि अमुक संकेतका तार मिलते ही दूकान छोड़कर चले आना। दूकानके भीतरके लाखोंके मालकी परवा मत करना। हाँ, यह कहना भूल गया कि ल्हासामें भोट सरकार ने तार लगवाया है।

जाड़ोंमें तिब्बत और मंगोलियाके बीचके प्रदेश कङ्शूके मुसलमान व्यापारी खच्चर और दूसरा माल बेचने आते हैं। २४ सितम्बरको पता लगा कि उनके लाये सैकड़ों खच्चरोंको कोई दूसरा आदमी खरीद नहीं पाया, सभी सरकार ने खरीद लिये। ३ अक्टूबरको सुना कि फौजमे भर्तीके खयालसे ल्हासाके निवासियोंकी गणना हो रही है।

अब दोनों सरकारोंमें तार द्वारा बातचीत शुरू हुई। ६ अक्टूबर-को साहु त्रिरत्नमानको कलकत्तेसे अपने भाईका तार आया कि छोड़कर चले आओ। यद्यपि ज्ञानमान साहु जानेके लिये तैयार नहीं हुए, तो भी स्थितिकी भीषणता स्पष्ट हो रही थी। कुछ पल्टने नेपाल-सीमाकी ओर भेज दी गई थीं। जागीरदार अपनी-अपनी जागीरोंके अनुसार रगरूट भेजते जा रहे थे। यहाँ यह जान लेना चाहिए कि तिब्बतकी प्रायः सभी कृषि-योग्य भूमि छोटे-बड़े जागीरदारोंमें बँटी हुई है (इन जागीरदारोंमें कितने ही बड़े-बड़े मठ भी शामिल हैं); लड़ाईके वक्त ये अपनी हैसियतके अनुसार सिपाही देते हैं। १९०४ की अंग्रेजोंके साथकी लड़ाईके वक्त तक तो हथियार और गोला-बारूद भी यही देते थे, किन्तु अब यह बात समझमें आ गई है कि इन हथियारोंसे लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती। अस्तु इन रगरूटोंको ही नहीं, बल्कि पल्टनके बहुतसे जवानोंको देखकर पुराण-वर्णित महादेव बाबा की पल्टन याद आती है, कहीं एक ६० वर्षका बूढ़ा कन्धेपर बन्दूक रखकर चल रहा है तो कहीं १५ वर्षका कच्चा छोकड़ा। वर्दीको लिये कोई अपना सफेद लम्बा चोगा और घरू जूता पहने था तो कोई फटे चोगेके साथ ल्हासाके किसी मुसलमान गुदड़ीवालेके यहाँके चौगुने दामपर खरीदे पुराने अँगरेजी फौजी जूते-को ऊपरसे डटाये था। किसी ने तो ल्हासाके उस कठोर जाड़ेके दिनोंमें कलिम्पोङ् या ल्हासाके किसी कबाड़ियेके यहाँसे खरीदी पुरानी अंगरेजी खाकी सूती वर्दी लगाई थी। सारांश यह कि—

जस दूलह तस बनी बराता ;
कौतुक होहि बहुत मग जाता ।

४ नवम्बरको मालूम हुआ, कई पल्टनें सीमापर भेज दी गई हैं। दस दस सिपाहियोंके लिए एक-एक तम्बू और चाय पकानेका ताँबेका एक बड़ा बर्तन खरीदा जा चुका है। एक भोटिया अफ़सर ने बातचीतके वक्त कहा – ल्हासामें सैनिकोंकी बाढ सी आ गई है; वे उकता रहे हैं; कह रहे हैं कि हम क्यों नही मैदानमें भेज दिये जाते। मैंने कहा– इनकी वीरता प्रशसनीय है, मौत इनके लिये नववधू है। कहने लगे– खाक है, वे युद्धके लिए थोड़े ही उतावले हैं ? यहाँ वेचारोंको खाने-पीने, रहने आदि सभीकी तकलीफ़ है; कुछ तो सोचते हैं, वहाँ जानेपर रसद तो अधिक हो जायगी; दूसरे सोच रहे हैं ल्हासासे चार दिन दूर जाकर बन्दूक गोली गट्ठा लेकर नौ-दो-ग्यारह होनेकी; भाग जानेपर कौन किसको पकड सकता है ? न पुलिसका इन्तिज़ाम है, न गाँव गाँव हुलिया आदिका कोई रजिस्टर है, पकड़नेकी बात ता तब आयगी जब वे अपने घरपर जायँ; अन्यथा पूर्वीय तिब्बतका सैनिक पश्चिममे भाग जाय तो कौन पहचान सकता है ?

मैं वेतहाशा हंस पड़ा, जब २० नवम्बरको भदन्त आनन्दकी सिहलसे भेजी चिट्ठीमें पढ़ा कि तिब्बतकी परिस्थितिको सुनकर मेरे श्रद्धेय उपाध्याय श्रीधर्मानन्द महास्थविर उनसे पूछ रहे थे कि क्या तिब्बतसे मेरे लानेके लिए हवाई जहाज भेजा जा सकता है ? मैंने अपने मित्रोंसे कहा, होगा तो अच्छा, यदि ल्हासामें हवाई जहाज आ जाय। जिन लोगोंको रेल समझानेके लिए दौड़ता हुआ मकान बतलाना पड़ता है, उनके लिए हवाई जहाज़ तो जादूकी बात ही मालूम होगी।

भोट-सरकार अपनी तारलाइनकी मरम्मत आदिके लिए भारत-सरकारके डाक-विभागके अफ़सरको ले लिया करती है। इसी कामके लिए उक्त विभागके एक ऐंग्लो-इंडियन अफ़सर श्री रोज़मेयर उस समय

ल्हासामें आये हुए थे। वे दो-बार मुझसे मिलने आये; उन्होंने कहा अंगरेज़ी सरकार अपने दोनों मित्रोंमें लड़ाई नहीं होने देगी। बात तो युक्तियुक्त सी मालूम होती थी, किन्तु घटनायें विरुद्ध घट रही थीं। नेपाल-सरकार अपने प्रति किये गये वर्तावपर जी-जानसे असन्तुष्ट थी, और भोट-सरकारके अधिकारी चीन और रूसकी मददका स्वप्न देख रहे थे। एक अफसर ने जब रूससे सहायता पहुँचनेकी बात कही तब मैंने कहा कि रूससे तो आप लोगोंका डाक और तारका सम्बन्ध भी नहीं है. जितने महीनोंमें आपकी चिट्ठी मास्को पहुँचेगी, उतनेमें तो नेपाल सारे तिब्बतमें दौड़ जायगा।

यद्यपि घटनायें, तैयारी सभी किसी दूसरी ही बातकी खबर दे रही थीं, तो भी 'सन्धि हो गई'की खबरें हर सप्ताह उड़ जाया करती थीं। मालूम होता है, जब किसीका मन चारों ओर निराशासे घिर जाता था तब 'स्वान्तः सुखाय' ये खबरे स्वयं अन्तःकरणमें उत्पन्न हो जाती थीं। २१ नवम्बरके नेपाल (वीरगञ्ज)से भेजे एक तारमें था—नेपालका सम्बन्ध सुन्दर है; डरना नहीं चाहिए, पूर्ववत् काम करो। बातकी बातमें इस तारकी बात सारे नेपाली मण्डलमें फैल गई, डूबतोंको तिनकेका सहारा मिला। दस दिन तक लोग अब दूसरे भावमें हो गये। किन्तु पहली दिसम्बरको फिर हवाका रुख पलटा। वस्तुतः उस समय सवत्सरोंकी रुद्रवीसी विष्णुबीसीकी तरह रुसाही चल रही थी। एक सप्ताह 'सन्धि हो गई'की चर्चा रहती थी, फिर दूसरे सप्ताह 'लड़ाई नहीं टलेगी'का तूमार बँधता था।

इसी बीचमें नेपालके महामंत्री महाराज चन्द्रशम्सेरका २५ नवम्बरको स्वर्गवास हो गया। ल्हासाके नेपालियोंको इसकी खबर एक सप्ताह बाद २ दिसम्बरको मिली। भोट-सरकार जहाँ नेपाली सेनासे लड़नेके लिए अपनी सेना तैयारकर रही थी, वहाँ भोटके मन्त्र तन्त्रवेत्ता चुप बैठनेवाले नहीं थे। उनके पुरश्चरण पर पुरश्चरण हो रहे थे। नेपालके महामन्त्रीकी मृत्यु सुनकर हल्ला हो गया—देखा,

लामोंका मन्त्रबल ! महासमरके दिनोंमें जैसे भारतीय स्टेशनोंपर खोंचेवालोंके सामान सैनिक लूट लेते थे, वैसी ही बातें यहाँ भी शुरू हुईं। २५ दिसम्बरको एक सैनिक ल्हासाके एक भोजनालयमें भोजन करके निकलने लगा तब मालिक ने पैसा माँगनेकी ढिठाई की। फिर क्या था ? जिसने राष्ट्रके ऊपर अपनी जानको न्योछावरकर दिया है वह ऐसी गुस्ताखीको बर्दाश्तकर सकता है ? वहीं उसने माँगनेवालेके पेटमें छुरी भोंक दी।

१८ जनवरी १९३०को सुना कि चीनके राष्ट्रपतिका पत्र लेकर कोई दूत आया है, जिसका स्वागत भोट सरकार ने ५०० सैनिक तथा बालनृत्यके साथ वैसे ही किया, जैसे किसी वक्त चीन-सम्राटके पत्रका हुआ करता था। यह भी सुननेमें आया कि पत्रमें चीन और भोटके हज़ार वर्षके पुराने सम्बन्धको दिखलाते हुए फिरसे पूर्ववत् सम्बन्ध स्थापित करनेके लिए कहा गया है, और इस मतलबके लिए कुछ प्रतिनिधि नानकिनको बुलाये गये हैं।

एक हफ्ते बाद एक भोटिया कुमारी चीनसे सहायताका सन्देश लेकर पहुँची। यह युवती स्वयं तिब्बती थी, पर शायद चीनके कुओ-मिंटाग (प्रजातन्त्र) दलकी सदस्या थी। अपनी मोहनिद्राको छोड़ देनेपर तिब्बती भी क्या कुछ बन सकते हैं, इसका वह नमूना थी।

चीनकी इस सतर्कताके कारण अब ब्रिटिश सरकारके लिए भी शीघ्र कुछ करना जरूरी हो गया। बाहरी दुनियाको पता लगे बिना यदि नेपाल तिब्बतीको घर दबाता तो दूसरी बात थी, पर अब चीन और दूसरे राष्ट्र नेपालको अंगरेज़ोंका हथियार कहकर दखल देते तो अवस्था जटिल हो जाती। अब ढीलका काम न था। ७ फरवरीको मालूम हुआ कि दोनों सरकारोंमें सुलह करानेके लिए ब्रिटिश सरकारकी ओरसे सरदार-बहादुर लेन्दन्ला[1] आ रहे हैं। ५ महीने

---

१. लेदन्-ला दार्जिलिंग जिलेमें उत्पन्न सिक्मी भोटिया हैं, इस-

लगातार लड़ाई और सुलहके बारी-बारीसे दौर चल रहे थे। ल्हासाके नेपालियोंको सुलहका सबसे पक्का प्रमाण तब मिल गया जब ११ फरवरीको उन्होंने देखा कि ल्हासासे बाहर जानेके सभी रास्तोंपर सैनिक पहरा लगा दिया गया है, और सख्त हुक्म हो गया है कि कोई नेपाली-प्रजा बाहर न जाने पाये। अब तक जो सुलहकी अफवाह उड़ाने-में आगे रहा करते थे, वे सिरपर हाथ रखकर अफ़सोस करने लगे। अब तो 'भइ गति साँप छुछूंदर केरी'। जो तारों और चिट्ठियोंमें लगा-तार बुलावेकी बात सुनकर यह कहते आ रहे थे कि जल्दीकी जरूरत नहीं, वह वक्त आयेगा तब चल देंगे, उन्होंने देखा कि अब वे ल्हासामें कैद हैं। पीछे मालूम हुआ कि ग्याची, शीगर्चीके नेपालियोंके साथ भी वैसा ही किया गया है। पहले सैनिक बन्दूक लिए शहरके भीतरसे कूच करते थे, आज वे तोप लेकर निकले, यह सुलह-का दूसरा पक्का प्रमाण मिला। भोट-अफसर कहते थे, अब तो चीन-का दूत आ गया, अब भोट अकेला थोड़े ही है? आज ही यह भी सुना गया कि सरदार-बहादुर लेदनूला ल्हासासे दो दिनके रास्तेपर छुशुरमें पहुँच गये हैं। लेकिन अब सन्धिकी आशा लोगोंके मनमें बहुत क्षीण हो गई थी। कोई-कोई तो कह रहे थे कि श्री ले-दनूलासे महागुरु पहलेसे ही नाराज हैं, अब तो निश्चय ही सन्धिकी आशा बहुत दूर है। कोई-कोई कह रहे थे, महागुरुने सरदार-बहादुरसे मिलनेसे इन्कारकर दिया, वे छुशुरसे लौट गये।

१६ फरवरीको सरदार बहादुर ल्हासा पहुँच गये। उनके पहुँचनेसे किसीके हृदयमे आशाकी एक हल्की-सी किरण भी नहीं सञ्चरित हुई। नेपाली-प्रजा सभी कुछ भाग्यपर छोड़कर बैठ गई थी। सुनाई दिया कि नये महाराज भीम शम्सेर जङ्गबहादुर राणा ने फाल्गुन पूर्णिमा

लिए वे ब्रिटिश-प्रजा हैं। वे बङ्गाल पुलिसमें नौकर थे—पहले-पहल सारनमें दारोगा हुए थे।

-सकका अल्टिमेटम दे दिया है। शामको मालूम हुआ कि सरदार-बहादुरने पूरे तीन घंटे भोटराज दलाई लामासे एकान्तमें बातकी है, फिर इसके बाद मन्त्रियोंसे। इसके बाद कितनी ही बार महागुरु और सरदार बहादुरके वार्तालापकी खबर उड़ती रही, किन्तु सन्धिकी सम्भावना नहीं थी। १ मार्च या माघ प्रतिपद्को उस साल भोट नव-वर्ष आरम्भ हुआ, किन्तु चारों ओर निराशा ही निराशा छाई हुई थी। ११ मार्चको सुना कि सरदार बहादुर सफल-प्रयत्न हुए। भोट-सरकार ने सन्धि प्रस्ताव स्वीकारकर लिया और सन्धिपत्र नेपाल सरकारके पास भेजा गया है। किन्तु १६ मार्चको खबर मिली कि सरदार-बहादुर हताश होकर लौट रहे हैं! वस्तुतः वह समय ऐसा ही था, जिसमें नहीं और हाँमें बहुत कम अन्तर था। १७ मार्चको सरदार-बहादुरके लौटनेकी बातका खडन हुआ। १८ मार्चको मैंने अपनी डायरीमें लिखा—युद्धकी सम्भावना ही अधिक है, किन्तु प्रामाणियोंका विश्वास है कि सन्धि हो जायगी। १६ मार्चको एक नेपाली व्यापारीको कलकत्तासे चिट्ठी मिली कि सब कुछ छोड़कर चले आओ। २२ मार्चके मध्याह्नको सरकारी सूचना मिली कि सुलह हो गई, उस समय नेपाली प्रजाकी खुशीकी बात न पूछो। जैसे उन हजारों प्राणियों ने नया जन्म पाया हो रास्ता ३० मार्चको खुला।

तिब्बतमे जो सात मास तक युद्धके बादल छाये हुए थे और युद्धका होना निश्चित-सा था उनके शात करनेका श्रेय एकमात्र सरदार-बहादुर ले-दन्-ला का है। वस्तुतः जब वे ल्हासा पहुँचे तब बीमारी अधिकारसे बाहर हो चुकी थी, त्रिदोष लग चुका था। किसीको आशा न थी कि सरदार बहादुर सफल होंगे, किन्तु सरदार-बहादुर कई कारणोंसे शातिदूत होनेके योग्य थे। एक तो वे स्वयं भोट जाति और धर्मके थे, दूसरे भोटकी राजनीतिका उन्हें रत्ती-रत्ती ज्ञान था तीसरे बहुत ही व्यवहार कुशल और पैनी समझ रखते थे, चौथे उनमें अद्भुत धैर्य था। यदि वे न गये होते तो पीछे चाहे जो होता,

भोट-सरकार ल्हासाकी जनतामें खड़ी होकर माफी माँगना तथा अपराधी अफसरोंको दंड देना आदि नेपालकी शर्तों को न मानती। सरदार बहादुर ने धैर्य-पूर्वक समझाते-बुझाते दो प्रभावशाली पुरुषोंको छोड़ बाकी सभीको अपनी ओर कर लिया। पाठकोंको मेरे इस वर्णनसे यह न समझना चाहिये कि मैं इन खबरोंके जमा करनेके पीछे विशेष प्रयत्नशील था। औरोंकी भाँति मैं भी प्राणोंकी बाजी लगा चुका था, इसलिये उस सम्बन्धमें आसपास जो बातें होती रहती थीं उनको कानके भीतर न आने देना मेरे लिए वैसे भी सम्भव न था, लेकिन वहाँ तो अन्धोंमें काने राजाकी मसलके अनुसार लोग मेरी राय पूछने आया करते थे। निस्सन्देह सरदार बहादुरके प्रयत्नसे हजारों नेपाली प्रजाजनोंकी जानें बची। कौन जानता है, यदि नेपालकी तिब्बतसे लड़ाई होती तो संसारकी अन्य बड़ी शक्तियाँ नेपालको ब्रिटिश सरकारका हथियार न समझतीं, और चीनके बाद किसी औरके भी आ धमकनेका अवसर न मिलता? सरदार-बहादुर ने जो काम किया वही यदि किसी अंगरेज़ अफ़सर ने किया होता तो उसे सरका खिताब तो उसी वक्त मिल जाता, अन्य पारितोषिक आगे-पीछे मिलता ही। किन्तु सरदार-बहादुरके कामकी जितनी क़द्र होनी चाहिए, उतनी नहीं हुई।

छठीं मंजिल

ल्हासामें

१. भोटिया साहित्यका अध्ययन

१७ जुलाई १९२९को मैं ल्हासा पहुँचा था, और २४ अप्रैल १९-३० ई०को ल्हासासे बिदा हुआ। इसमें दो प्रधान घटनाओं—(१) ल्हासाका पहुँचना, और (२) तिब्बतमें युद्धके बादल—के बारेमें मैं

लिख चुका हूँ। इस रहस्यमयी नगरीके इतने दिनोंके निवासपर कई अध्याय लिखे जा सकते हैं किन्तु मैं पाठकों और अपनी लेखनी दोनोंको अधिक कष्ट नहीं देना चाहता; इसलिए अपनी डायरीसे संक्षेपमें ही कुछ लिखूँगा।

जब महागुरु दलाई लामासे ल्हासामें रहनेकी मुझे आज्ञा मिल गई, तब मैं अपने पढने-लिखनेके काममें लग गया। उस वक्त, जैसा कि मैं पहले लिख चुका हूँ मेरा प्रोग्राम लम्बा चौड़ा था। मैं तिब्बतमें ३ वर्ष रहकर वहाँसे चीन और जापानकी ओर जानेका इरादा रखता था। तिब्बतमें प्रवेशसे पूर्व मैंने पुस्तकसे थोड़ीसी तिब्बती या भोट भाषा पढी थी, रास्तेमें सिर्फ़ भोट-भाषा द्वारा ही मैं अपने भावोंको प्रकट करनेके लिए बाध्य था, इससे मुझे बोल-चालकी भाषा सीखनेमें सहायता मिली लेकिन मेरा अधिक काम तो साहित्यिक भाषासे था जिसमें अनुवादित प्राचीन भारतीय साहित्यके अनेक अनमोल रत्न सुरक्षित हैं। मैंने निश्चय किया कि पहले स्वय ही इन ग्रन्थोको देखूँ जो सस्कृत और भोट भाषा दोनोमें मौजूद हैं मेरे पास बोधिचर्यावतार-की सस्कृत प्रति मोजूद थी। मै एक दिन बाजारमें गया। देखा एक जगह कितने ही आदमी पन्नेकी पुस्तकोंकी ढेर लिये बैठे हैं। ये पर-वा या छापेवाले थे। छापेका आविष्कार पहले-पहल चीनमें हुआ। वह मुहरोंकी नकलपर था। किसी नामको उलटे अक्षरोंमें खोदनेकी जगह उन्होंने उसी तरह पुस्तककी पुस्तक लकड़ीके फलकोंपर खोदनी शुरूकी। सातवी सदोसे ही, जब कि भोट-सम्राट् स्रोङ्-चन्-गम्-पो ने चीन-राजकुमारीसे व्याह किया, चीन और तिब्बतका घनिष्ठ सम्बन्ध शुरू हुआ; और वह अब तक है। भोट ने वेष-भूषा, खान पान, आदिकी बहुत सी चीजे चीनसे सीखी। वस्तुत. तिब्बत आधिभौतिक बातोंमें चीनका उतना ही ऋणी है, जितना आध्यात्मिक बातोंमें भारतका। भोटमें छापनेकी विद्या चीनसे कब आई, यह निश्चयसे तो नहीं कहा जा सकता। हाँ, प्रायः बीस लाख श्लोकों या १६, १७

महाभारतोंके बराबरके कन जुर (=ब्कड्-ऽग्युर=बुद्ध-वचन-अनुवाद) और तन-जुर (=स्तन्-ऽग्युर=शास्त्र अनुवाद) नामक दो महान् संग्रह (जिनमें हजार दो हजार श्लोकोंके बराबरके ग्रन्थोंको छोड़ बाकी सभी भारतीय साहित्यके अनुवाद हैं) पाँचवें दलाई लामा सुमतिसागर (१६१६-१६८१ ई०)के समयमें काष्ठ फलकोंपर खोदे गये। सम्भव है, उससे पूर्व भी छोटी बड़ी कितनी ही पुस्तकोंका मुद्रण-फलक बनाया गया हो। आजकल तो प्रायः सभी मठोंमें ऐसे मुद्रण-फलक रहते हैं। ल्हासाके उक्त पर-बा (=छापने वाले) अपना कागज-स्याही ले जाकर वहाँसे छाप लेते हैं। उन्हें इसके लिए मठको कुछ नाम मात्रका शुल्क देना पड़ता है। छापनेवाले ही पुस्तक विक्रेता भी हैं। जो-खङ् (=ल्हासाके प्राचीनतम और प्रधान मन्दिर)के उत्तरी फाटकके बाहर आये बीसों पुस्तक विक्रेता पुस्तकें लिये बैठे दिखेंगे।

बोधिचर्यावतारकी भोटिया प्रतिके खरीद लानेसे पूर्व ही मुझे यह ख्याल हो गया था कि पढ़ते वक्त संस्कृत भोट शब्दोंका संग्रह करता चलूँ, आगे चलकर भोट-संस्कृत कोष बनानेमें इससे सहायता मिलेगी। १३ अगस्तसे मैंने यह काम शुरू किया। कई महीनोंके परिश्रमसे मैंने बोधिचर्यावतार, स्रग्धरास्तोत्र, ललितविस्तर, सद्धर्मपुण्डरीक, करुणा पुण्डरीक, अमरकोष, व्युत्पत्ति अष्टसाहस्रिका, प्रज्ञापारमिता ग्रन्थोंको देख डाला। इनमेंसे कुछ पुस्तकें मेरे पास पहुँच गई थी, और कुछकी हस्तलिखित संस्कृत प्रतियाँ छु शिङ् शाके मंदिरसे मिलीं। अभी मुझे सूत्र, विनय, तन्त्र, न्याय, व्याकरण, कोष, वैद्यक, ज्योतिष, काव्यके पचासके करीब ग्रन्थों और सैकड़ों छोटे निबन्धोंको देखना था। मैं अपने कोषके लिए कमसे कम ५० हजार शब्दोंको जमा करना चाहता था, लेकिन पीछे मुझे अपना मत परिवर्तनकर समयसे पूर्व ही भारत लौटनेका निश्चय करना पड़ा। उस समय मैंने उन शब्दोंको भोट अकारादि क्रमसे जमा करा लिया। इसमें सब

मिलाकर १५ हज़ार शब्द हैं। आज तकके छपे तिब्बती-अंग्रेजी कोषोंमें किसीमें इतने शब्द नहीं आये हैं।

जब मैं ल्हासा पहुँचा था, तो १३० रुपयेके करीब मेरे पास रह गये थे। यद्यपि छु-शिङ्-शा-कोठीमे रहते, ८, १० रुपये मासिक शारीरिक निर्वाहके लिए काफ़ी थे, तो भी वहाँ एक तो मुझे पुस्तकोंकी ज़रूरत थी, दूसरे मैं शीघ्र दूसरे एकान्त स्थानमें जाना चाहता था, जहाँ खर्च भी बढ़ जाता। मेरे मित्रों ने विशेषकर भिक्षु आनन्द कौसल्यायन और आचार्य नरेन्द्रदेव ने, नवबरके आरम्भ तक २६४) भेज दिये थे तो भी स्थायी प्रबन्ध तब-तक न हुआ, जब-तक पुस्तकें लेकर लौट आने की बातपर लङ्कासे रुपये नहीं आ गये।

शब्दोंके जमा करनेके साथ मैंने क-ग्युर तन्-ग्युरकी छान बीन भी करनी शुरू की। ल्हासा नगरके भीतर मुरुमठ अपनी कर्मनिष्ठता-के लिए बहुत प्रसिद्ध है। यह चोङ्-ख-पाकी गद्दीपर बैठनेवाले ठि-रिन्-पो-छेके आधीन है। वहाँ हस्तलिखित तन्-ग्युर ग्रन्थ है। मैंने उसके देखनेके लिए कहा। इजाजत मिल गई। मै दो तीन दिन वहाँ गया भी, किन्तु एक तो भीतर शालामें बहुत अँधेरा था, दूसरे आधा अक्टूबर जाते-जाते सर्दी खासी होने लगी थी। मैंने पुस्तकोंको अपने स्थानपर ले जानेको कहा, उसकी भी अनुमति मिल गई। यह संग्रह तीन-चार सौ वर्ष पहले लिखा गया था। मालूम होता है इधर चालीस-पचास वर्षसे किसी ने इसे देखा भी नहीं, क्योंकि पुस्तकोंके वेष्ठनोंपर एक एक अंगुल मोटी धूलकी तह जमी हुई थी। मैंने पहले चाहा कि कं-ग्युरकी भाँति इसेभी क्रमसे देखूँ। लेकिन इसके २३५ वेष्ठनोंमें कोई कहीं पड़ा था, कोई कहीं। नीचे ढेर लगाकर सबको क्रमसे लगाने-का स्थान भी ठीक न था; इसलिए मै एक ओरसे ही १५, २० पोथियाँ मँगाने लगा। अब मैंने अपनी बैठक साहुकी बैठकसे पश्चिमवाले कोठेमे कर ली थी। यहाँ सवेरे ही धूप आजाती थी, इसलिए मकान कुछ गर्म भी था। सर्दीकी रफ़्तार देख मै एक दिन ल्हासाके गुदड़ी-

उन्हें घरके भीतर रख लेते थे। सर्दीके मारे पानी घरके भीतर भी जम जाया करता था। एक दिन मैं लिख रहा था, देखा स्याही बोर-बोरकर लिखने पर भी कलम बार बार लिखनेसे रुक जाती है। मैं अपने लेखमें इतना तन्मय था कि मुझे यह ख्याल ही न रहा कि स्याही कलमकी नोकपर जम रही है। मैं कलमकी नोकपर स्याहीकी जमी बूँदको कुछ दूसरा ही समझकर झटक रहा था। कुछ देर बाद मुझे अपनी गलती मालूम हुई, फिर मैंने फौंटेन-पेन इस्तेमाल करना शुरू किया, तब फिर कोई दिक्कत नहीं आई।

‡ २. तिब्बतका राजनैतिक अखाड़ा

ल्हासा पहुँचनेपर जब मैंने अपनेको भारतीय प्रकटकर दिया, तो भला इसकी खबर अंग्रेजी गुप्तचरोंको क्यों न मिलती! मेरा पत्र-व्यवहार तो खुल्लम्-खुल्ला हो रहा था। मैंने देखा मेरे सभी पत्र डाकखानेसे देर करके आते हैं। मेरे मित्रोंने कुछ आदमियोंके नाम भी बतलाये जो अंग्रेजी गुप्तचरका काम करते हैं। एक रायसाहेब तो—नाम याद नहीं - खास इसीलिए खुलेतौरसे ल्हासामें रहा करते थे। अपने स्वतंत्र विचार रखते हुए भी वहाँ किसी राजनीतिक कार्रवाईमें दखल देना मैं अपने लिए अनाधिकार चेष्टा समझता था, मेरा काम तो शुद्ध सांस्कृतिक था। लेकिन सरकार भला कब भूलनेवाली थी? २७ अक्तूबर को रोजमेयर साहेब मिलनेके लिए आये। ये गन्तोक्-ग्याची लाइनके तार विभागके निरीक्षक हैं। उस साल भोट सर्कारको भी अपनी ग्यांची-ल्हासाकी तार लाइनके खम्भोंको बदलवाना था, इसलिये इन्हें बृटिश सर्कारसे कुछ दिनके लिए उधार लिया था। मैंने ल्हासा आते वक्त नगाचेके पास इन्हें घोडे पर जाते देखा था, लेकिन उस वक्त मुझे विशेष ख्याल न आया। मैं तो आते ही समझ गया कि मुलाकातमें ज़रूर कुछ और भी बात है। तो भी यह मैं कहूँगा कि रोजमेयर महाशय मुझे बड़े ही सज्जन प्रतीत हुए। उन्होंने 'क्या काम कर रहे

हैं' आदि पूछकर फिर दूसरी बात शुरू की। उनसे सबसे बड़ा फ़ायदा मुझे यह हुआ कि उन्होंने अभी हालमें छपी, मिस्टर पर्सिवल लेण्डन्‌की नेपाल नामक पुस्तकके दोनों भाग मेरे पास भेज दिये। मैंने उन्हें बड़े चावसे पढा। यह पुस्तक नेपालपर बहुत कुछ प्रमाणिक तो है ही, साथ ही उसमें नेपाल और तिब्बतके सम्बन्धपर भी काफ़ी रोशनी डाली है, जिसकी उस वक्त मुझे बड़ी आवश्यकता थी। ल्हासा छोड़नेके पहले रोजमेयर महाशय एक बार (१७ नवंबर को) और मेरे पास आये। नेपाल-तिब्बत युद्धके बारेमें उन्होंने कहा, ये दोनों ही देश अंग्रेज सर्कारके मित्र हैं, वह इनमें भला कैसे युद्ध होने देगी। यह बात कितने ही अंशों में ठीक थी। लेकिन तिब्बतकी राजधानी ल्हासा वह अखाड़ा है, जहाँ पर अंग्रेजी, चीनी, और रूसी राजनीतियाँ एक दूसरेसे मिलती हैं। ल्हासाके से रा, डे-पुङ् आदि मठोंमें रूसी इलाकेके सैकड़ों मगोल वैसे ही रहते हैं, जैसे दार्जिलिङ् आदि अंग्रेजी इलाकोंके सैकड़ों आदमी। मैं यह नहीं कहता कि ये सब लोग वहाँ राजनीतिक कार्यके लिए रहते हैं तो भी इस तरह उन सर्कारोंको अपने आदमियों-को छिपे तौरपर रखनेका पूरा मौका मिल जाता है। मेरे समयमें एक रूसी इलाकेका मंगोल बडे ठाट-बाटसे रहा करता था। उसके बारेमें मालूम हुआ कि वह लाल (बोलशेविक) नहीं सफेद है, और उसका सम्बन्ध चीनसे है।

जिस समय महासमरके आरम्भ होनेसे पूर्व भोटने चीनको अपने यहाँसे निकाल भगाया, उस समय अंग्रेजोंका तिब्बतपर बहुत प्रभाव था। दलाई लामा उससे पहले भागकर भारत आये थे, और अंग्रेजी सर्कार ने उनकी बड़ी सहायता की थी, जिसके लिए वे बड़े ही कृतज्ञ थे। तबसे प्रायः १९१४ ई० तक तिब्बत अंग्रेजी प्रभावमें रहा। चीनको निकाल देनेपर भी भोट सर्कार और उनके मित्र जानते थे कि यह भागना सदाके लिए नहीं है। चीन जिस वक्त भी इधर ध्यान देगा, उसे रोकनेके लिए भोट सर्कारके पास ताकत नहीं है। इसके

लिए पुलीस और फ़ौजको मजबूत करनेकी स्कीम बनाई गई। सर्दार-बहादुर ले-दन्-ला, जो उस समय दार्जिलिङ्में पुलीसके अफ़सर थे, खास तौरपर पुलिसके प्रबन्धके लिए भेजे गये। चीनी अम्बान्के रहनेके स्थान या-मीमें उनका डेरा पड़ा। उससे पहले ल्हासामें पुलीसका कोई खास प्रबन्ध न था, सर्दार बहादुर ने वर्दी कवायद सबका सूत्रपात किया। इन्होंने शहरके कुछ स्थानोंपर पहरा देनेवाले पुलीसके सिपाहियोंके खड़े होनेके लकड़ीके वैसे ही बक्स भी बनवाये जैसे भारतके शहरोंमें मिलेंगे। मेरे ल्हासामें रहते वक्त भी कुछ बक्स मौजूद थे। पुलीसके लिये तो कोई दिक्कत नहीं पड़ी। लेकिन पलटन-का सवाल दूसरा ही था। तिब्बतके इतने बड़े मुल्कके लिए जिसकी सीमा एक ओर चीनसे मिलती है, तो दूसरी ओर काश्मीरसे, एक ओर चीनी तुर्किस्तान और मंगोलियासे, तो दूसरी ओर बर्मा और नेपालसे, ३०, ४० हजार पलटन तो जरूर चाहिए। तिब्बतके पुराने तरीकेके मुताबिक पल्टनके सिपाहियोंके एकत्रित करनेका काम जागीरदारोंका था। ऐसो मेलेकी जमातसे भला चीनकी शिक्षित सेनाका मुकाबला किया जा सकता है? लेकिन सेनाको सुशिक्षित और सुसंग-ठित करनेके लिए रुपयेकी आवश्यकता है। प्रश्न उठा रुपया कहाँ से आवे? सारा मुल्क तो छोटी-बड़ी जागीरोंमें बटा हुआ है, जिनमें अधिक भाग वहाँके बड़े-बड़े मठोंके हाथ में है। मठोंसे रुपया मांगा गया, तो उन्होंने अपना खर्च पेशकर कहा, हमें तो अपने धार्मिक पर्व त्योहार और भिक्षुओंके खर्चके लिए ही यह काफी नहीं है। जब कुछ और जोर दिया गया तो उन्होंने समझा कि यह सब कुछ अंग्रेज राजदूत करवा रहा है। फिर क्या था पलड़ा पलट गया। अंगरेज़ी प्रभाव उल्टा पड़ने लगा। सर चार्ल्स बेलको सालभर ल्हासामें रहकर निराश लौटना पड़ा। उस सारे प्रयत्नका फल इतना रहा कि कुछ सिपाहियों ने राइट-लेफ्ट करना सीख लिया। बृटिश सरकारसे भोट-सेनाको कितने ही हजार लड़ाईके वक्त की निकाली बन्दूकें मिलीं

जिनका दाम अभी तक शायद चुकाया नहीं जा सका है। टशील्हुन्पोके मठपर जब सर्कारकी ओरसे रुपयोंका तकाजा हुआ, तो टशी लामा (=पण्-छेन्-रिन्पो छे) ने उचित तौरसे अपनी परिस्थितिको समझाया, जिसका परिणाम हुआ भोट-सरकार और टशी-लामामें मनमुटावका बढ़ना, और अन्तमें टशीलामाको भोट छोड़ चीन भागना पड़ा; जहाँसे अब भी वे तिब्बत लौट नहीं सके।

सेना-सुधारकी स्कीम तो इस तरह असफल ही नहीं हुई बल्कि उसके कारण अँगरेजी सरकारके प्रति भोट-देशमें प्रतिक्रिया शुरू हो गई। सर्दार-बहादुरके पुलीसके सुधारमें कम दिक्कत हुई। लेकिन जब दूसरी ओर प्रतिक्रिया शुरू हुई तो उसका असर उनके विभाग पर भी पड़ा। उन्होंने सफ़ाई और फ़ुर्तीका ख्याल करके पुलीसके बाल कटवा दिये थे। ल्हासामें अखबार तो हैं नहीं, जिनके द्वारा जनता अपने भावोंको प्रकट कर सके। किन्तु कोई गुमनाम व्यक्ति उठकर उन भावोंको छन्दोबद्ध कर देता है। चन्द ही दिनोंमें एक दूसरेको सुनकर सारा शहर उस गीतको गाने लगता है, और लड़के तो इसमें खास हिस्सा लेते हैं, और कुछ मासोंमें वह तिब्बतके एक छोरसे दूसरे छोर तक फैल जाता है। वहाँ यह गीत महीनों तक गाया जाता है। ल्हासामें शो-गङ्वंश बहुत ही धनी और प्रतिष्ठित है। वर्तमान गृहपति ल्हासा सर्कारका एक दे-पोन् (=जेनरल) था। घरमें सुन्दरी स्त्री और लड़कोंके रहते भी उसने एक रंडी रख ली। स्त्री कहाँ सहन कर सकती थी? उसने दे-पोन्को घर और घर की मिल्कियतसे अलग कर दिया। अदालतसे उन्हें सत्तू-मक्खन और थोड़ेसे रुपये गुजारेके लिए मंजूर हुए। इतना होनेपर भी शो-गङ् दे-पोन ने रंडीको न छोड़ा। कहाँ पहले वह राजसी ठाटमें ल्हासाके बीचों-बीच एक बड़े महलमें रहता था, और कहाँ अब उसे एक छोटे से मकानमें गरीबीसे गुजारा करना पड़ता था! यह घटना किसीको बड़ी ही आकर्षक मालूम हुई। उसने तुकबन्दी करके बाज़ारमें फेंक दी दो-

तीन दिनमें ल्हासाके सारे लड़के शे-मङ् (सुर्-खङ) दे-पोन् की क्लु (=गीत)के बडे रागसे गाने लगे। दे-पोन्को कितने ही दिनों तक घरसे बाहर निकलनेकी हिम्मत न पड़ी। जब मैं ल्हासा पहुँचा— यह गीत पुरानी हो चुकी थी; तो भो अभी कितने ही लड़कोंको याद थी। सर्दार-बहादुर ले दन्-लाकी पुलीसके बाल कटवानेपर भी किसीने गीत बना डाला। मुझे इसके तीन ही पद याद हैं—

ले-दन् लामा म रे। पु-लिस डावा म रे।
था मी गोम्वा म-रे। ट-शर... ...।

लेदन्[1] लामा नहीं हैं। पुलिस भिक्षु नहीं है।
थामी (पुलीस का हेडक्वार्टर) मठ नहीं है।
बाल क्यों कटवाये।

तिब्बतमें भिक्षु ही सिर मुँड़ाते हैं। बाकी लोग मध्यकालीन युरोपकी भाँति लम्बी चोटी रखते हैं।

३. तिब्बती विद्यापीठ

ल्हासामें डाकखाना और तारघर दोनों हैं! दोनों एक ही मकानमें हैं। जहाँ यह मकान है, वहाँ कुछ ही वर्ष पूर्व एक भारी मठ था। यह स्तन-द्गे-ग्लिङ्का मठ ल्हासाके उन चार (बाकी तीन, कुन् ल्दे-ग्लिङ्, छे-मो-ग्लिङ्, छे-म्छोग्-ग्लिङ्) मठोंमेंसे था, जिनके महन्त दलाई-लामाकी नाबालिगीके वक्त भोट देशका शासन करते हैं। जब चीन और तिब्बत की लड़ाई हुई थी, उस समय यहाँके महन्तका चीनियोंके साथ सम्बन्ध पाया गया था, इसीपर इस मठकी ईंटसे ईंट बजवा दी गई। सारे मठका अब नाम, व पता नहीं है। उसके महन्तको भी मृत्यु दण्ड मिला था। एक दिन तारघरकी ओर गये। पता लगा, पास राजकीय वैद्य रहते हैं। जाकर वैद्यजीको देखा। ये भी भिक्षु हैं।

---

१. असल नाम लेदन् है; ला माने साहेब।

वैद्यकके अतिरिक्त ज्योतिष भी जानते हैं, और प्रति वर्ष भोट भाषामें एक पञ्चाग निकालते हैं। अब भी नये, वर्षके पंचागको वे लकड़ीकी पट्टियोंपर खुदवा रहे थे। उन्होंने वैद्यकके अतिरिक्त सारस्वत भी पढ़ा था। अब भी प्रायः सारे सूत्र उनको कठस्थ थे लेकिन सस्कृत भाषाका ज्ञान बिलकुल नहीं था। ऐसे एक आदमीको और भी मैंने देखा था, जिसको चान्द्र व्याकरणके सूत्र कठाग्र थे। सन्धि नियमोंको तो वह दनादन पट्टीपर लिख और मिटाकर दिखा देता था, किन्तु भाषाका ज्ञान नहीं। यही वैद्यराज ल्हासाके आयुर्वेदिक विद्यालयके भी अध्यक्ष हैं। यह विद्यालय लहासा शहरकी सबसे ऊची पहाड़ीपर बना हुआ है।

१५ सितम्बरको मालूम हुआ, आजसे महीनेभरके लिये पतग-बाजीका समय है। हमारे भारतकी तरह यहाँ भी खेलोंके अलग-अलग समय नियत हैं। नेपाली लोग इसमें बहुत दिलचस्पी लेते हैं। सम्भवतः इस खेलको भी नेपाली ही लाये हैं। ३० सितम्बर को पतगके सूत्रके पीछे एक ढाबा (= साधु और पुलीसमें झगड़ा हो गया। पुलीसके सिपाही ने एक पत्थर उठाकर मारा, और वह ढाबा वहीं ढेर हो गया।

डे पुङ् मठको हम पहले ही देख आये थे, १२ अक्तूबर को से रा जानेका निश्चय हुआ। एक मंगोल विद्वान् गे शे स्तन्-दर् साथ थे। से-रा ल्हासासे उत्तर तरफ प्रायः तीन मीलपर है। शहरसे बाहर ही, थोड़ेसे खेत पड़ते हैं फिर सफाचट ऊँचा-नीचा मैदान। खेतोंकी फसल कट चुकी थी। खलिहानोंका काम अब भी जारी था। आगकी अँगीठियोंपर मक्खन वाली चाय तैय्यार थी। याक या चँवरी बैलोंके द्वारा दाँव चलानेका काम लिया जाता था। भोट देशवासी बडे ही जिन्दादिल होते हैं। चाहे बेगारका पत्थर ढोना हो, चाहे खेतीका काम हो, चाहे पहाड़ोंके डाँड़ोंमें भेडे चराना हो, सभी जगह उनकी तान आपको सुनाई पडेगी।

खेतोंका सिलसिला अभी समाप्त नहीं हुआ था कि एक बडे हातेमें कुल मकान दिखाई पड़े। मालूम हुआ चीनी अधिकारियोंके रहते वक्त यह मकान बड़ा आबाद था, यहाँ पर चीनी बौद्ध भिक्षु रहा करते थे। आजकल कोई यहाँ नहीं रहता। सूखे रेतीले मैदानको पारकर हम पहाड़की जड़में पहुँचे। सामने से-राका विहार था। डे पुङ्की तरह यह भी ५, ६ हज़ारकी बस्तीका एक शहर सा है। डे-पुङ्को महान् चोङ्-खपाके शिष्य जम्-यङ् ने १४१५ ई०में बनाया था। चोङ्-खपाके दूसरे शिष्य शाक्य ये शे ने १४१८ ई०में से राको स्थापित किया। टशी ल्हुन्पो मठको भी उनके तीसरे शिष्य और प्रथम दलाई-लामा गें दुन-ग्यं छो ने १४४६ ई०में बनाया। छात्र-संख्यामें सेरा डे-पुङ् से दूसरे नंबरपर है। साधुओंकी संख्या साढ़े पाँच हजारसे ज्यादा है। तिब्बतके इन सभी प्रधान मठोंमें कानून कायदे एकसे ही हैं विद्यार्थी भी अपने अपने देशके छात्रावासमें रहते हैं। यहाँ पाँच अध्यक्ष (=म्खन्-पो) हैं, किन्तु ड-छङ (=ग्र्व-छङ् = विद्यालय खंड) तीन ही हैं, जिनके नाम (=ग्यें ब्येस्-म्खस् मङ्) और म्ये (=स्मद्-थोस ब्सम्-ग्लिङ्) और ङग्-पा हैं। ङग्-पामें विशेषकर तन्त्रकी पढाई होता है। से-रामें ३४ खम्-सन हैं। इन खम्-सनोंको हम आक्सफोर्ड और कैम्ब्रिजके कालेजोंसे तुलनाकर सकते हैं। ग्येमें खम्-सनोंकी संख्या २२ हैं, और म्येमें १२। ङग्-पाकी शाला बहुत विशाल है, किन्तु इसमें कोई खम्-सन् नहीं है।

म्ये ड छङ् के खम्स्-छन्

१ हो। ग्दोङ्।
मङ्गोल छात्रोंके लिए।

२- ब्सम्-ब्लो (=सम्-लो,
बुर्येत् मङ्गोल छात्रोंके लिए)

३—ब्य-ग्रल् (= ज-डल्)

४— क्रो-वो (=टो बो)

५—ब्रम्-जि (=डग्-जि)

६— छु-वा वो

७—ल्हो पा

८—स्गोम् स्दे

९—ला

१०—ल्दन् मा

११—गु गे (म्ङ-गी) गुगे अर्थात्

सरोवर पार्श्ववर्ती प्रदेश के छात्रोंके लिये। मङ्गोल छात्रों के लिए।	१४—स्तग-भा (ग्डारी)
	१५—स्थि ति मि-म्छन्-ग्चङ्-पा
	१६—ग्यल् व्येद (=ग्यले-चे)
१२—स्पे थुब (ग्डारी) लदाखवाले छात्रोंके लिए	१७—ए-पा
	१८—ग्जल्-पा
१३—सड्-स्-द्कर (ग्डारी) जट्-स्-कर (कश्मीर राज्य) वालोंके लिए।	१९—द्वग्स् पो
	२०—चे स-घड्(—चे-थङ्)
	२१—स्पोम ऽबोर्
ङ री प्रान्तके, नान-	२२—गुड्-रू

म्ये ड-छट्-में निम्न बारह खम्स-छन् हैं—

१ अम् दो-ग्शुट्-पा	७—मर-स्जुट्
२—स्पा-म् ऽबोर	८—अम्दो-अ-र
३—रोङ पो	९—थोबो
४—छु-धोर्	१०—तं-ओन्
५—छु-वा	११—नि-ञग्
६—कोट्-पा	१२—स्पो गुड्

डे पुट् (=ऽब्रस्-स्पुङ स् =धान्यकटक)में ३९ खम्स् छन् हैं, जो र्गो मङ् और ब्शो ग्घल्-ग्लिङ् दो ड-छटमें इस प्रकार बँटे हैं —

ल्हो ग्सल्-ग्लिङ् (=लो स-लिङ)में—

१—कोङ्-पो
२—फो-खङ्
३—छ-ववो
४—क्रो-पो
५—स्पोम्-ऽबोर्
६—मि-अग्
७—ल्दन्-मा
८—ग्लिङ्-पा
९—ग्चङ्-पा
१०—द्बुस-स्तोद्
११—रोङ्-पो-शर् (पूर्वी रोङ्-पो)
१२—रोङ-पो-शब् (पश्चिमी रोङ्-पो)
१३—गो-पो
१४—अग-री
१५—ल्हो-पा (=दाक्षिणात्य
१६—स्पे थुब् (ङ री)
१७—ग्यल् पो
१८—अङ् पो
१९—फर्-वा
२०—स्दिङ्-खा
२१—छुल्-खङ
२२—चे-थङ्
२३—म्ङऽ रिस् (=ङ री)
२४—गूगे
२५—ग्यें

खन्-छन्में छात्र रहते भी हैं, और वहीं पढते भी हैं; इस प्रकार ये कालेज और बोर्डिङ् दोनों हैं। निम्न श्रेणीके अध्यापकों को गे-ग्ये न् (=लेक्चरर्) और ऊंची श्रेणीके अध्यापकोंको गे-शे (=प्रोफ़ेसर) कहते हैं वहीं कहीं चारदीवारीसे घिरे छोटे छोटे बीरीके बाग हैं, जिनमें छात्र पाठको रटते तथा समय समय पर धर्मकीर्तिके प्रमाणवातिक और न्यायबिन्दुकीपक्तियोंपर शास्त्रार्थ भी करते हैं। स्मरण रखना चाहिये; कि यद्यपि ये विहार नालंदा और विक्रमशिलाके उजाड़ होनेके दो सौ वर्ष बाद बने हैं, तो भी इनकी बनावट उन्हींके ढांचेपर है। विक्रमशिला महाविहारमें पढनेके लिए भोटके छात्र कई शताब्दियों तक आते रहे। सम्-येका विहार स्वय उडन्तपुरी विहारके नमूनेपर बना था। इस प्रकार उक्त विहार नालन्दा-विक्रमशिलाके कई बातोंमें जीवित नमूने हैं। आज भी अध्यापक पढ़ते वक्त वसुबन्धु, दिङ्-नाग और धर्मकीर्ति सम्बन्धी अनेक कथाओंको कहते हैं, जिन्हे उन्होंने भारतीय विश्वविद्यालयोकी

परम्परासे पाया है। अफसोस यही है कि अब छात्रोंमें आधी संख्या निकम्मे लोगोंकी है, जो किसी प्रकार दिन काटते हैं। बाकीकी भी पढ़ाई अपनी मौजपर है। छात्रको दाखिल होते ही ड-छुड में अपना नाम लिखाना तो पड़ता है, और नियत समय उसके सम्मेलनोंमें सम्मिलित हो चायपानी आदि भी करना पड़ताहै, तो भी अध्ययनकी ओर ध्यान नहीं दिया जाता। इसमें शक नहीं कि कुछ अध्यापक तथा छात्र उत्साही हैं, किन्तु वे अपवाद हैं। ड छुड्का अध्यक्ष खन् पो होता है। पहले खन्-पो अपनी योग्यताके कारण चुने जाते थे, किन्तु इधर कुछ वर्षोंसे इसका खयाल नहीं रक्खा जाता। मै जिस वक्त ल्हासामें था, उस वक्त से-राके एक खन् पोकी जगह खाली थी। कितने ही लोग उम्मेदवार थे। से-राका सबसे बड़ा विद्वान् न्यायशास्त्रमे से रा डे पुड् ही नहीं बल्कि सारे तिब्बत और मंगोलिया-में अपना सानी नहीं रखता। एक मंगोल गे-शेको उसके छात्रों ने उम्मेदवार होनेके लिए कहा। उम्मेदवारोंको एक दूसरेके साथ शास्त्रार्थ करना होता है। शास्त्रार्थमें वही विजयी रहा। लेकिन अन्तिम निर्णय दलाईलामाके हाथमें है। वहाँ महागुरुके मुसाहिबोंकी सिफ़ारिश चाहिए जिसके लिए रुपयोंकी आवश्यकता होती है। उस विद्वान्ने अपने छात्रों को कह दिया, जहाँ तक उचित था उतना मैंने कर दिया, मै रिश्वत देकर खन्-पो नहीं बनूँगा। यद्यपि अन्तिम परिणाम मेरे सामने नहीं प्रकट हुआ था, तो भी लोगोंके कहनेसे मालूम होता था कि खन्-पो कोई दूसरा ही पैसा खर्च करने वाला बनेगा। मै स्वयं स्नद् ड-छुड्के खन्-पोके पास एक दिन गया था; उनको देखनेसे भी मालूम होता था कि खन्पो के चुनावमें योग्यताका खयाल नहीं रक्खा जा रहा है।

सारा ढाँचा सुन्दर सुदीर्घ इतिहास और कितनी ही सजीवताकी बातें इन विहारोंमें अब भी मौजूद हैं। यदि इनकी त्रुटियोंको दूर कर दिया जाय और अध्ययन अध्यापनको नियमित तथा विस्तृत कर

दिया जाय, तो निश्चय ही ये राष्ट्रकी सेवा आधुनिक विश्वविद्यालयोंसे कम न करेंगे। यहांके हर एक ड छुड् और खम् छुन् तकमें बड़ी-बड़ी जागीरें लगी हुई हैं। आज कलके अधिकाश खन्-पो व्यापार करके रुपया कमाना अपना कर्तव्य समझते हैं। राजनीतिमें भी इन मठोंका बड़ा हाथ है, इसलिये राजनीतिक मामलोंमें परामर्श आदिके लिये भी इनकी बड़ी पूछ है। डे-पुङ्की भांति से-रामें भी बडे बड़े देवालय हैं जिनमें सोने-चांदीके मनो भारी दीपक अखंड जला करते हैं। देवताओंके आभूषणों और सोने-चांदीके स्तूपोंमे आगे मोता, मूंगा, फ़ीरोज़ा, मणि आदि जडे हुए हैं। यहां पढाये जाने वाले पांच मूल ग्रन्थों—(१) विनयकारिका, (२) अभिनमयालंकार, (३) अभिधर्मकोश, (४) माध्यमिककारिका और (५) प्रमाण-वार्तिका– पर बनी टीकाओंका छापाखाना भी है।

१३ अक्टूबरको जब मैं अभी से-रामें ही था मुझे मालूम हुआ कि रे डिङ् मठका अवतारी लामा आजकल यहीं पढ रहा है। रे-डिङ् वह मठ है जिसे अतिशाके प्रमुख शिष्य डोम्-तोन-पा ने अपने गुरुके मरनेके बाद सन १०५७ ई०मे स्थापित किया था। पहले मुझसे लोगो ने कहा था कि वहां भारतसे लाई संस्कृत पुस्तकोंका वडा भंडार है: किन्तु अधिक पूछ ताछ करनेपर पता लगा कि पासके पहाड़ीके कुछ विशेष आकारको देखकर लोगों ने उसे पथराई पुस्तक राशि समझी थी। खैर मै रेडिङ्के लामाके पास गया। तिब्बतमें अवतारी लामोंको शिक्षा-दीक्षा भारतीय राजाओंके कुमारोंके ही ढङ्ग पर शक्तिके अनुसार बडे ठाट-बाटसे होती है। उनके साथ नौकर चाकर रहते हैं। अपने अध्यापकोंके साथ भी वे राजकुमारोंकी तरह ही वर्ताव करते हैं। और इसीलिए बहुत कम उनमें विद्वान हो पाते है। लामाकी आयु १८, १६ वर्षकी थी। बातचीतमें समझदार मालूम होता था। पुस्तकोंके बारेमें पूछनेपर उसने कहा, अधिक पुस्तकें तो नहीं है, किन्तु (हाथसे बताकर) एक हाथ लम्बा और एक

बालिश्त मोटा ताडपत्रकी पुस्तकोंका एक बस्ता है, जो अतिशाके हाथ की चीज है, और डोम्-तोन्-पाके साथ रे-डिङ् पहुंचा है, मैं डेढ वर्ष बाद अपनी पढाई समाप्तकर अपने मठको लौटूँगा, उस समय यदि आप मेरे साथ चलें तो मैं दिखलाऊँगा। यह बात अधिक प्रामाणिक मालूम हुई। मेरा इरादा जानेका था, किन्तु डेढ वर्षसे पूर्व ही मुझे लौट आना पड़ा। यदि यह वही बस्ता है, तो निस्सन्देह इसमें अतिशाके बोधगया, सम्-ये आदिमें बनाये कुछ हिन्दीके गीत भी होंगे।

२४ नवम्बरको भोटिया दसवें मासकी नवमी तिथि थी। आज हीके दिन से-राके संस्थापक जम्-यङ्की मृत्यु हुई थी। आज सारे शहरमें तथा आस-पासकी पहाड़ी कुटीरोंमें हज़ारों दीपक जल रहे थे। दूसरे दिन स्वयं महान् चोङ्-ख-पाका मृत्यु दिवस था। आज तो सचमुच दीवाली थी। शहरकी दीपमालिकाकी छटा सुन्दर तो थी ही, किन्तु पासकी पहाड़ियोंपरके छोटे-बड़े मठोंकी दीपशोभा तो अद्भुत थी। महान् सुधारकका यह सन्मान योग्य ही है। आज दीपशोभा देखनेके लिये सड़कपर भीड़ थी। राजमंत्री लोग भी देखनेके लिए आये थे। यह सब होते हुए भी एक बात खटकती थी, वह यह कि रातको अकेली दुकेली स्त्रियोंकी सुरक्षा न थी। सम्भव है, लड़ाईके कारण जमा हुए हजारों सैनिकोंके कारण यह दुरवस्था हो।

दिसम्बरके मध्यमें बदलकर एक नये नेपाली डीठा (=द्रष्टा न्यायाधीश) आये। यह अंग्रेजी भी जानते थे। एक दिन मिलनेके लिये आये, और कहा मेरे लड़केको संस्कृत पढा दीजिये। मैंने सप्ताहमें दो दिनका समय दिया। लड़का होशियार था। पुस्तक तो हमारे पास थी नहीं। पाठ लिखकर पढाया करते थे। इसी वक्त एक और विद्यार्थी मिला। यह चीनी था। शुद्ध चीनी अब ल्हासामें कहाँ हैं ? इसके पिता चीनी हैं। अपने यहाँ दूसरे अर्ध-चीनी लड़कोंको पढाते हैं, तथा चीनी भाषाका यदि कोई पत्र सर्कारके पास आता है तो

उसका अनुवादकर दिया करते हैं। ये लोग भोटिया लोगोंसे अलग समझे जाते हैं। वे मुझे चीनी भाषा पढाते थे, और मैं उन्हें अंग्रेजी पढाया करता था।

तिब्बतके लोगोंको अख़बार पढनेको नहीं मिलते, किन्तु जबानी अख़बार हर सप्ताह ही किसी न किसी ऐसी घटनाकी ख़बर फैलाते हैं, जिसमें लोग बड़ी दिलचस्पी लेते हैं। १६ जनवरीको मालूम हुआ कि एक चिटुङ '(=भिक्षु अफ़सर) और उसकी रखैल क छी-लम्मर पकड़कर लाई गई हैं। कायदा यह है कि जब कोई दलाई-लामा मरता है, तो पोतलामें एक मकानमें उसके लिए एक बड़ा चाँदी सोनेका स्तूप बनाया जाता है जिसमे उसको जिन्दगी भरमें जितना मणि-मुक्ताकी भेंट चढ़ी होती है, उसे गाड़ देते हैं, और उसके बहुमूल्य प्याले आदि भी उसीमें रख दिये जाते हैं। हर तीसरे वर्ष भिक्षु अफ़सरों[1] मेंसे एक इस स्तूप-गृहका अध्यक्ष बनाया जाता है। उक्त चि-टुङ तीन वर्ष पूर्व सातवे दलाईलामाके स्तूपगारका अध्यक्ष बनाया गया था। पाँचवें दलाईलामा सुमतिसागर (१६१६—८२ई०)को १६४१ई०में भोटका राज्य मिला था। तबसे वर्तमान तेरहवें दलाईलामा मुनिशासनसागर (.=थुब-ब्स्तन्-र्ग्य-म्छो, जन्म १८७४ ई०) तक आठ और दलाईलामा हुये, किन्तु इनमें सप्तम दलाईलामा भद्रकल्पसागर (स्कल्-ब्सङ्-र्ग्य-म्छो, जन्म १७०८ ई०) ही पूर्ण-रूपेण विरक्त साधु हुआ। इसके चित्रमें भी हाथमें शासनका चिन्ह चक्र न देकर पुस्तक दी गई है। चीन और तिब्बत दोनों हीमें इसका बहुत सन्मान किया जाता था। प्रासादको छोड़कर वह पर्वतों पर, और वहाँ भी राजसेवकोंके बिना रहा करता था। जीवन भरमें जितनी भेंट इसे चढी थी, और जिसमें बहुत सी बहुमूल्य चीज़ें थीं,

---

१ तिब्बतमें हर सर्कारी पदके लिए दो अफ़सर होते हैं, एक भिक्षु और दूसरा गृहस्थ।

वह सब इसके स्तूप-गृहमें रक्खी गई थीं। पिछले तीन वर्षोंमें उक्त चि-टुङ् अध्यक्ष धीरे-धीरे उन चीजोंको बेचता रहा। ल्हासामें दार्जिलिंगकी चार पाँच सुन्दरी भोटिया लड़कियाँ गई हैं। ये एक तरहकी वेश्यायें हैं। ल्हासा वालोंने इनके नामके साथ लम्मर (=नम्बर)-का खिताब जोड़ दिया है। इस चिटुङ्की रखैल कं-छी (नेपाली भाषामें कांछी=छोटी) लम्मरभी इनमेंसे एक थी। इन दोनोंका सम्बन्ध लोगोंको मालूम था। लोगों ने कंछी-लम्मरको पच्चीस हजार-का मोतियोंका शिरोभूषण भी पहनते देखा, तो भी चिटुङ् पर ऊपर-के अधिकारियोंका ध्यान नहीं गया। कुछ सप्ताह पूर्व जब चिटुङ्-को बदलीका समय नजदीक आनेवाला था, उसे जान बचानेकी पड़ी। वह और कंछी लम्मर घोड़ेपर चढ़ ल्हासासे भाग निकले। वैसे यदि वे अकलसे काम लेते, और चीन की ओरके रास्तेपर जानेकी जगह दार्जिलिंगका रास्ता पकड़ते, तो दस ही दिनमें तिब्बतकी सीमाके बाहर चले गये होते। ल्हासामें उनकी खोज भी तीन सप्ताह बाद हुई। लेकिन मूर्खों ने चीनका रास्ता लिया। सो भी सप्ताह दो सप्ताह ल्हासा और दूसरी जगहके प्याले वाले यारोंकी मेहमानी करते रहे। जब खबर मिली कि सर्कार खोजकर रही है, तो ल्हासासे पूर्व और २, ३ दिनकी दूरीपर किसी निर्जन पर्वतमें घुस गये। दो एक दिन तो किसी तरह बिताया; जब भूखके मारे रहा न गया, तो गाँवमें आये और वहीं पकड़ लिये गये। ल्हासा आनेपर स्त्री पुरुष दोनोंपर बिना गिने पहले तो बेतोंकी मार पड़ी। अब उन्होंने नाम बतलाने शुरू किये। बहुत-सा माल तो उनके दोस्त दो-एक नेपाली सौदागरोंके हाथ लगा, और वह कभी कलकत्ता पहुँचकर शायद समुद्र पार पेरिस भी पहुँच चुका था। एक बडे-बड़े मोतियोंकी मालाकी बड़ी तारीफ़ हो रही थी। उक्त सौदागर पहले ही ल्हासा छोड़कर नेपाल चले गये थे। कुछ छोटी-छोटी चीजें उसने कुछ भोट-निवासी दोस्तोंको भी दी थीं। वे बिचारे पिस गये। पचास रुपयेके मालके लिये उनकी सारी सम्पत्ति पर मुहर

लग गई। चि-ढुङ् और कछी-लम्मर भी ऐसी वैसी मिट्टीके नहीं बने थे। उन्होंने अपने नज़दीकी दोस्तोंको बहुत बचाना चाहा। किन्तु मारके सामने भूत भी भागता है। यह मार और पूँछ-ताछ बराबर जारी रही। अप्रैलके आरम्भमें जो नाम बतलाये, उनमें एक बेचारे मोतीरत्नका भी था। ४ अप्रैलको ३ बजे शामको हम छु-शिङ् शाके कोठेपर बैठे थे, देखा 'हटो' 'हटो'के घोषमें घोड़ोंपर चढे कुछ अफसर आ रहे हैं। इनमें महागुरुके सर्वोच्च अफसर दे-निर् छेन्मो और ता लामाके अतिरिक्त नेपालके राजदूत भी थे। सवारी मोतीरत्नके दूकानपर खड़ी हुई। चि ढुङ् ने यहाँ एक बहुमूल्य प्याला देनेकी बात कही थी। उसने स्वयं रखनेकी जगह दिखलाई। तलाशीमें प्याला मिल गया। मालूम हुआ भागने पर वे दोनों एक-दो रात यहाँ ही एक बड़े सन्दूकके भीतर रहे थे। मोतीरत्न पकड़कर नेपाली हवालातमें गये। इनकी और ल्हासाके प्रधान थानेके पुलिस-अफसरकी एक ही स्त्री थी। परिणाम यह हुआ कि वह अफ़सर और उसकी स्त्री भी पकड़कर जेल पहुँचाई गई। मेरे रहते-रहते अभी इस मामले की तहकीक़ात भी पूरी नहीं हुई थी।

मेरी आर्थिक समस्या

दिसम्बरके अन्त तक मैं अपने रहने या जानेके बारेमें कुछ निश्चय न कर सका था। उससे पहले भी लङ्कासे चिट्ठी आ चुकी थी कि पुस्तकोंके लिए रुपया भेजते हैं, पुस्तकें खरीदकर इधर चले आओ। पहले तो मैंने स्वीकार न किया था, किन्तु जब चार महीनोंमें भी किसी विहारमें रहनेका इन्तजाम न हो सका, नेपाल-तिब्बत युद्धकी आशङ्का बढ़ती ही जा रही थी, और उधर रहनेके लिये व्ययका भी कोई प्रबन्ध न हो सका, तब मैंने पुस्तक खरीदकर लंका चले आनेकी स्वीकृति दे दी। नगर भी प्रजद है। जब निराशाकी ओर झुकता हूँ, तो निराशा ही निराशा: जब आशाकी ओर तो उधर भी उतनी ही नाना-

में। स्वीकृति-पत्रके भेजनेके कुछ दिनों बाद भदन्त आनन्दने लिखाकि आपका पहला लेख[1] लङ्कामें सिंहल भाषाके प्रसिद्ध दैनिक पत्र दिन-मिन[2]ने छाप दिया; वह अभी आपको प्रति लेख १५) देगा, पीछे और बढ़ा देगा। मैं अब आसानीसे प्रति सप्ताह एक लेख लिख सकता था, और यों आर्थिक कठिनाईका प्रश्न हल हो जाता था। सप्ताह ही बाद लकासे चिट्ठी आई, हम रुपया शीघ्र भेज रहे हैं। अब तो अपने लिखे अनुसार मुझे लौटनेके लिये तैयार होना ज़रूरी ठहरा। १६ फरवरीको आचार्य नरेन्द्रदेवने लिखा—काशी-विद्यापीठ ने आपके खर्चके लिये ५०) मासिक तथा पुस्तकोंके खरीदनेके लिये १५००) मञ्जूर किया है, आप वहाँ रहकर अपना काम करते जाँय। मेरी इच्छा ल्हासामें रहनेकी बहुत थी, और उसके लिए दो दो प्रबन्ध हो गये थे। काश! कि ये बातें तीन सप्ताह पूर्व हुई होतीं। फिर तो मैं तीन वर्षसे पूर्व कहाँ लौटने वाला था? किन्तु अब ता लिख चुका था। अभी मैं इस श्रेय और प्रेयके झगड़ेमें पड़ा ही था कि चार दिन बाद २३ फरवरीको लङ्कासे तार आया कि २०००) तारसे खुशिङ्-शाकी कलकत्ता शाखाको भेज दिये।

लङ्काको पत्र लिख दिया कि अब पुस्तकोंकी खरीद शुरू कर दी है। जैसे ही कामके ग्रन्थ जमा हो जायेंगे, यहाँसे चल दूँगा तिब्बती टकेका दाम गिरता जा रहा था। इससे मुझे चीजें सस्ती पड़ रही थीं। नई-पुरानी छपी लिखी सभी तरहकी पुस्तकें मैं ले रहा था। धीरे-धीरे पुस्तक खरीदनेकी बात और जगहों तक फैलने लगी। फिर दिन पर-दिन अधिक पुस्तकें आने लगीं। उनके साथ कुछ चित्रपट भी आये। मेरे मनमें चित्रपट खरीदनेकी इच्छा न थी, न मैं उनकी जानकारी ही रखता था, किन्तु दो एक सुन्दर चित्रोंको लेकर जब अगुली, केश,

---

१ यह लेख अब इसी ग्रन्थ में अन्यत्र छपा है।

२ शब्दार्थ—दिनमणि, सूर्य।

वस्त्रोंके मोड़ आदिको गौरसे देखने लगा, तो उन्होंने मुझे आकृष्ट करना शुरू किया। इस प्रकार मैंने चित्रपटोंका संग्रह भी शुरू किया। अब चित्रों और पुस्तकोंका और-और जगहोंसे पता आने लगा। एक दिन मुझे तेरह चित्रपटोंका पता लगा। मैंने जाकर देखा। मुझे वे सुन्दर मालूम हुये। मालिक ने एक एक दोजे (= २५)) दाम कहा। मुझे तो दाम ज्यादा नहीं मालूम हुआ, तो भी मैंने अपने नेपाली दोस्तोंसे पूछा। उन्होने कहा दाम ज्यादा है ठहरिये, कम हो जायगा। मुझे डर लगा कोई दूसरा न ले जाय। इसलिये तीन चार दिन ही वाद मैं जाकर उन चित्रपटोंको ले आया। ये चित्रपट एक अवतारी लामाको अपने पुराने मठसे मिले थे। औरत रख लेनेपर उसे मठसे निकाल दिया गया। अब वह ल्हासामें रहने लगा था, और खर्चके लिये चीजें वेच रहा था। उस समय न मुझे उन चित्रपटोंका समय मालूम था, न उनका वास्तविक मूल्य। इन तेरह चित्रपटोंमें एक ही अनैतिहासिक है, जोकि अवलोकितेश्वर वोधिसत्वका है। लन्दन और पेरिसमें कलाज्ञों ने उसके सौदर्न्यकी वड़ी तारीफ़की है। वाकी सभी ऐतिहासिक पुरुषोंके हैं, जिनमें ल्हासा मन्दिरके साथ प्रथम सम्राट स्रोङ-व्चन्-साम वो (६१८—६८ ई०) टिश्रोङ ल्दे व्चन (८०२-४५ ई०) डोम्-तोन् पा (१००३-६४ ई० अतिशाका शिष्य), येतोपा १०२७-११०४ ई० चोङ-ख पा (१३५६-१४१८ ई०) गें-दुन-डुब प्रथम दलाईलामा (—१४७३ ई०), गे-दुन ग्यं छो द्वितीय दलाईलामा (१४७४-१५४१ ई०, सो-नम् ग्यं-छो तृतीय दलाईलामा (१५४—८७ ई०), योन्-तन् ग्य-छो, चतुर्थ दलाईलामा (१५८८—१६१५ ई०), लोव्-सङ-ग्य छो, पञ्चम दलाईलामा (१६१६-८१ ई०), छङ-यङ ग्यं-छो, षष्ठ दलाईलामा (१६८२ -१७०४ ई०) और कल् सङ् ग्यं-छो, सप्तम दलाईलामा (जन्म १७०७ ई०)के चित्र हैं। एक चित्रपटकी पीठपर कुछ लेख है जिससे ज्ञात होता है कि ये चित्रपट सातवें दलाईलामाके वक्तमें वने थे। चित्रोंके नीचे १८वीं सदीका

रूसो मखमली कम्-ख्याव लगा है। पाँच ही छः दिन बाद उन कम्-ख्वाबके टुकड़ों हीके लिए कुलका तीन चौथाई दाम देनेके लिये एक नेपाली सौदागर तैयार थे! लन्दन और पेरिसमें तो मालूम हुआ कि इन तेरह चित्रोंका दाम पचीसों हजार रुपये होंगे। विलायतमें मोल लेनेके लिए लोगों ने पूछ-ताछकी, किन्तु मैंने कह दिया कि ये बेचनेके लिये नहीं हैं। मैंने डेढ़ सौके करीब चित्रपट संग्रह किये थे, जिनमें तीन या चार तो अपने मित्र प्रोफ़ेसर ओतो[1]के मारबुर्ग-धार्मिक संग्रहालयके लिये दे दिए, दो-तीन और दूसरे मित्रोंको, जिनसे मैंने पहले ही वादा कर लिया था। बाकी प्रायः १४० चित्रपट पटना म्युजियमको दे दिये, जहाँ वे सुरक्षित हैं। किताबोंमें मैंने खम् (पूर्वी तिब्बत) मङ्गोलिया, और साइबीरिया तकमें छपी और लिखी पुस्तकोंका संग्रह किया। कुछ मूर्तियाँ और पूजाभाँड भी लिये। ल्हासामें स्तन-ग्युर तो नहीं मिल सका। किन्तु कं-ग्युरकी दो-तीन छपी प्रतियाँ थीं। एकको मैंने पसन्द किया। दाम उन्होंने साढ़े सत्रह दोर्जे कहा। दाम तो अधिक न था, किन्तु मैं हस्तलिखित या खम्के देर्गी मठके छापेके सुन्दर कं-ग्युरकी खोजमें था। दो सप्ताह बाद सम्-येसे लौटकर मैंने उतने ही दोर्जेमें उसे खरीदा, किन्तु अब तिब्बती टकेका दाम और गिर गया था, इससे मुझे प्रति रुपये प्रायः सवा दो टङ्केका नफा रहा।

फर्वरी मार्चमें कभी-कभी थोड़ी-थोड़ी बर्फ भी पड़ी, किन्तु वह कुछ ही घंटोंमें गल गई। हाँ सर्दी अधिक होती जाती थी।

---

१. रुदोल्फ़ ओतो, मारबुर्ग विद्यापीठ जर्मनीमें संस्कृतके अध्यापक।

सातवीं मंजिल

नव-वर्ष उत्सव

‡ १. चौबीस दिनका राज-परिवर्तन

पाँचवें दलाईलामाको १६४१ ई०के करीब तिब्बतका राज्य मंगोल-राज गुशी खान्से मिला था। उससे पूर्व पञ्चम दलाईलामा डेपु-ङ् विहारके एक ङ-छ्ङ्के खन्-पो (= अध्यक्ष पंडित) थे। पाँचवें दलाई-लामा ने अपने मठकी प्रतिष्ठा बढ़ानेके लिए प्रतिवर्ष नव वर्ष आरम्भ होनेके साथ २४ दिन ल्हासामें डे-पुङके भिक्षुओंका राज्य होनेका नियम किया। तबसे आज-तक वह क्रम जारी है। शासनके लिए दो अध्यक्ष, एक व्याख्याता तथा अन्य आदमी चुने जाते हैं। २४ दिनके लिए सर्कारी पुलीस, अदालत आदि सभी अधिकार ल्हासासे उठ जाता है। नेपाली दूकानदारोंको छोड़ बाकी सबको कुछ पैसे देकर दूकानका लाइसेन्स लेना पड़ता है। ज़रा भी भूल होनेपर मार पड़ती है, और जुर्माना होता है। लोगों ने कहा कि लामा राज्यमें जेल इस-लिए नहीं होती कि उससे उनको फ़ायदा नहीं। अधिकारियोंका पद भी तो बड़ी-बड़ी भेंटोंके बाद मिलता है।

अधिमास एक ही समय न पड़नेसे भोटका चान्द्र-वर्ष और भारतका चान्द्र-वर्ष एक ही साथ आरम्भ नहीं होता; इस साल वर्षारम्भ एक मार्चको था। इस वर्ष ६वाँ (या शूकर) मास दो था। डे-पुङ् मठ जिनको शासक चुनता है, वे पहले दलाई लामाके पास जाते हैं, वहाँसे उन्हें चौबीस दिन ल्हासापर शासन करनेका हुकुम मिलता है। २ मार्चको देखा सारी सड़कें खूब साफ ही नहीं हैं बल्कि अपने-अपने मकानोंके सामने लोगों ने सफेद मिट्टी से धारियाँ या चौके पूर रक्खे

हैं। उसी दिन घोड़ोंपर सवार ल्हासाके दोनों अस्थायी शासक दल-बलके साथ पहुँच गये। हमारे रहनेकी जगहसे थोड़ा सा पूरब हटकर ल्हासाके नागरिक बुलाये गये थे। वहीं शासकों ने २४ दिनके नये शासनकी घोषणा की। फिर जो खङ् (ल्हासाके मध्यमें अ त पुरातन बुद्धमन्दिर)में चले गये। अधिकारी चुनते वक्त कदका ख्याल किया जाता है क्या? दोनों ही शासक बड़े लम्बे चौड़े थे। ऊपरसे उन्हें और लम्बा चौड़ा जाहिर करनेके लिए पोशाकके नीचे कन्धे पर दो इञ्च मोटी कपड़ोंकी तह रक्खी हुई थी। साथ उनके दो शरीर-रक्षक या प्यादे एक हाथमें साढे चार हाथ लम्बी लाठी और दूसरे हाथमें ढाई हाथ लम्बा डंडा लिये चल रहे थे। लाठी डंडेको मामूली लाठी डंडे मत समझिये। बीरी या सफेदेकी प्रायः ३।। इञ्च व्यासकी एक मोटी शाखा होको डंडे लाठीके रूपमें परिणतकर दिया गया था। शासकोंके आगे-आगे कुछ आदमी फा क्यु क्ये? पी क्ये मा शमो (परे हटो रे-टोपी उतार रक्खो रे!) कहते चिल्लाते जा रहे थे। जरा भी किसीसे भूल हुई कि उसकी पीठ और सिरपर दोनों बाप-बेटे दुख भजन बेतहासा पड़ने लगे।

आज दलाई लामाके प्रासाद पोतलामें तमाशा भी था। हम लोग भी गये। देखा बड़ी भीड़ है। चाय-रोटी तथा दूसरी चीजोंकी पचासों दूकाने भी लगी हैं। समतल भूमि तो है नहीं कि दर्शक सम भूमिपर बैठे, कोई गलियोंमें बैठा था, कोई सीढीकी भाँति ऊपर नीचे बनी मकानोंकी छतोंपर बैठा था। स्वयं महागुरु भी दूरबीन लिये अपनी बैठककी खिड़कीपर बैठे थे। पहले एक आदमी पोतलाके शिखरसे नीचेकी सड़क तक ताने गये हजारों फीट लम्बे रस्सेपर उतरता था। अब कुछ वर्षोंसे उस तमाशेको छोड़ दिया गया है। उसकी जगहपर अब एक २०, २५ हाथ लम्बा खम्भा गाड़ा जाता है, और एक आदमी उसीके ऊपर चढकर, कलाबाजी करता है।

लौटते वक्त देखा डे-पुङ मठके हजारों भिक्षु चींटीकी पाँतीकी

तरह एकके पीछे एक अपना कुल सामान पीठपर लादे चले आ रहे हैं। डे-पुङसे ल्हासा आनेका रास्ता पोतलाके सामने हीसे गुजरता है। मालूम हुआ, अब ये लोग चौबीस दिन तक ल्हासा हीमें मुकाम करेंगे। ल्हासामें सफ़ाईके अतिरिक्त एक और इन्तिजाम किया गया था। चूँकि नव वर्षके कारण ४०-५० हजार नये आदमी आ जाते हैं, और इस प्रकार ल्हासाकी जनसंख्या दूनी हो जाती है, इतने आदमियोंको पानीकी कमी न हो, इसलिए नहरका पानी शहरके सभी गड्ढोंमे डाल दिया जाता है। इस प्रकार पासके गढ़ोंमे पानी भरा रहनेसे कुँओंका पानी सूखता नहीं। ल्हासाके कुएँ क्या हैं; पाँच छः हाथ गहरे चौकोर हौज हैं, जिनसे हाथसे ही पानी निकाला जा सकता है। वैसे इन कुओंका पानी अच्छा होता है। किन्तु नहरका पानी तो उन गड्ढोंमें डाला जाता है जो सालभर तक पेशाब-खानों और पाय-खानोंका काम देते रहे, और जिनमें अबभी कहीं-कहीं कुत्तों गदहों और बिल्लियोंकी अधसडी लाशें पड़ी होती हैं। पिछली सुधारकी आँधीमें पुलीसकी तरह नगरकी सफ़ाईपर भी ध्यान दिया गया था, और अब भी तबके बने पाखाने मौजूद हैं, किन्तु कभी न साफ़ होनेवाले और न मरम्मत किये जानेवाले इन पाखानोंमें किसकी हिम्मत है जो जाय? अस्तु, जहाँ इन गढ़ोंमें भरे पानीके कारण यह फायदा है कि ल्हासामें पानी की कमी नहीं रहती, वहाँ इनके द्वारा सारे शहरकी जमी गन्दगी-का माजून बनकर भी कुओंमें उतर आता है। और इसका फल जुकाम और सिर दर्दके रूपमें अक्सर देखनेमें आता है। इस समय ल्हासामें डे-पुङ से रा, गन् दन्, टशी-ल्हुन्पो और भोट देशके दूसरे मठोंसे २० हजारके करीब तो भिक्षु ही जमा हो जाते हैं। इनके लिए दिनमें तीन बार चाय बाँटी जाती है। उत्सवके समय हर कुएसे पानी भरनेवाले टेक्सके रूपमें एक चौथाई पानी जो खङ् में भेजते हैं। जहाँ विशालकाय देगोंमें चाय उबलती रहती है। लोग मुँह बाँधे (जिसमें मुँहकी भाप चायमें न चली जाय) चाँदी या पीतलके हत्थे लगे बड़े

बर्तनोंमें मक्खन वाली चाय लिये तैय्यार रहते हैं। समय आते ही भिक्षु-संघको चाय परसने लग जाते हैं।

२. तेरह-सौ वर्षका पुराना मन्दिर

पहली मार्चको मैं जो-खड् में गया। जो-खड् का शब्दार्थ है स्वामि-घर। स्वामीसे मतलब चन्दनकी उस पुरातन बुद्ध मूर्तिसे है, जो भारतसे मध्य एशिया होते चीन पहुँची थी, और जब ल्हासाके संस्थापक सम्राट सोड्-न्चंन स्गम्-बोने चीनपर विजय प्राप्तकर ६४१ ई०में चीन राजकुमारीसे व्याह किया, तो राजकुमारीने पितासे दहेजके रूपमें इसे पाया, और इस प्रकार यह मूर्ति ल्हासा पहुँची। इस मूर्तिके प्रवेशके साथ तिब्बतमें बौद्धधर्मका प्रवेश हुआ। सम्राट्ने ल्हासा नगरके केन्द्रमें एक जलाशयको पटवाकर, वहीं अपने महल और राजकीय कार्यालयके साथ एक मन्दिर बनवाया; उसीमें यह मूर्ति स्थापित है। १३सौ वर्षका पुराना मन्दिर और मूर्ति लोगोंके ऊपर कितना प्रभाव रखती है, इसे आप इतने हीसे जान सकते हैं कि आधुनिक दुष्प्रभावसे प्रभावित ल्हासाके व्यापारी या दूसरे लोग बात-बातमें चाहे त्रि-रत्न (=कोन् ग्छोग् ग्सुम) की कसम खा लेंगे, किन्तु जो वोकी कसम नहीं खायेंगे। खानेपर उसे जरूर पूरा करेंगे। जो-खड्के उत्तरी फाटकके बाहर एक सूखासा अति पुरातन बीरोका वृक्ष है लोग कहते हैं, यह मन्दिरके बननेके समयका है। इसी फाटकपर एक दीवारपर जो-खड् के भीतरके सभी छोटे-बड़े मन्दिरोंकी सूची सुन्दर अक्षरोंमें लिखकर रक्खी हुई है। तिब्बतके कितने ही पुराने और प्रतिष्ठित मठ-मन्दिरोंमें आपको ऐसी सूचियाँ फाटकोंपर मिलेंगी। भारतके भी तीर्थोंमें यदि ऐसी सूचियाँ लिखकर या छपकर टंगी रहतीं, तो यात्रियोंको कितना फ़ायदा होता? परिक्रमा और मन्दिरोंकी दीवारों पर अनेक प्रकारके सुन्दर चित्र बने हुए हैं। कहीं स्सम-ये या दूसरे पुराने मठोंके चित्र हैं। कहीं सुवर्ण वर्णाङ्कित बुद्ध अपने पूर्व जन्ममें सैकड़ों प्रकारके महान त्यागोंको कर रहे हैं। कहीं

भगवान् बुद्धके अन्तिम जीवनकी घटनाएँ अंकित हैं। कहीं भारत और तिब्बतके अशोक स्रोङ-ब्चन-साम्‌ बो आदिकी किसी घटनाको अंकित किया गया है। सभी दृश्य बड़े ही सुन्दर हैं। भीतर यद्यपि मूर्तियोंके बहुत पुरानी होनेसे, उनपर प्लस्तरकी एक खुदरी-सी मटमैले रंगकी मोटी तह जमी हुई है, तो भी उनके अंग-प्रत्यङ्गका मान, उनकी मुख-मुद्रा, रेखाओंकी लचक सभी बड़ी सुन्दर हैं। बड़े बड़े सोने चाँदीके दीपक मक्खनसे भरे अखंड जल रहे थे। पहले सबसे बड़ा चार-सौ तोलेका चाँदीका दीपक एक नेपाली व्यापारीका दिया था। गत वर्ष भूटानके राजा ने आठ-सौ तोलोका दीपक चढ़ाया है। बहुमूल्य पत्थर और धातुएँ जहाँ-तहाँ जड़ी हुई हैं। भगवान् बुद्धकी प्रधान मूर्तिके अतिरिक्त और भी चन्दन या काष्ठकी मूर्तियाँ पासके छोटे देवालयोंमें रक्खी हैं। कई पुराने भोट-सम्राटोंकी मूर्तिया भी हैं। प्रधान मन्दिरके सामनेकी ओर दूसरे तलपर अपनी दोनों रानियों (चीन और नेपालकी राजकुमारियों)के साथ सम्राट स्रोङ ब्चन साम्-ग्पोकी मूर्ति है। मन्दिरके पत्थर-पत्थर, दरो-दीवारसे ही नहीं, बल्कि वायुसे भी १३०० वर्षके इतिहासकी गंध आती है।

बाहर निकलकर देखा, एक महतीशालामें ऊँचे ऊनी आसनोंपर बैठे तीन-चार सौ भिक्षु खर-स्वरसे सूत्रपाठकर रहे हैं। उनके वस्त्र बहुत मैले और पुराने हैं। हर एकके सामने लोहेका भिक्षापात्र रक्खा हुआ है। मालूम हुआ, ये ल्हासा के सबसे कर्मनिष्ठ भिक्षु हैं, जो म्यु-रू और र-मो छेके विहारोंमें रहते हैं।

चार मार्चको फो-रं-का लामाका म्यु-रू (मु-रू) मठमें धर्मोपदेश होनेवाला था। लोग जौक-दर-जौक जारहे थे। फो-र-का लामा विद्वान भी है, और सारे तिब्बतमें धर्मका अति सुन्दर व्याख्याता है। लोग कह रहे थे, यथार्थमें थम्स्-चद्-म्ख्येन्-पा (=सर्वज्ञ) तो यह है। एक ओर कहाँ फो-रं-का लामाका मनोहर शिक्षाप्रद उपदेश, और दूसरी ओर नव-वर्षके सरकारी उपदेशकको

भी उपदेश करते देखा। बेचारे ने भेंट घाँटके भरोसे पर तो २४ दिन-के लिए इस पदको पाया था। देखा, धर्मासन की ओर जाते वक्त दस पाँच स्त्री-पुरुष, हाथ रखनेके लिए अपना शिर उनके सामने कर देते हैं। व्यासगद्दीपर बैठ जानेपर २० २५ आदमी खड़े हो जाते हैं। धर्मकथिक जी, व्याख्यान देते रहते हैं, और लोग आते जाते रहते हैं। एक दिन शामको जब उनका उपदेश हो रहा था, तो हम भी कौतूहलवश उधर चले गये। सुना तो हजरत फ़र्मा रहे हैं—डाकिनी माई अद्भुत शक्ति वाली हैं, उनको हाथ जोड़ना चाहिए, और पूजा करनी चाहिए, वज्रयोगिनी माई बड़ी प्रभावशालिनी हैं, उनकी पूजा और नमस्कार करना चाहिए। सब यही धर्मोपदेश था।

३. महागुरु दलाई लामाके दर्शन

२ मार्चको तो सारा बाजार बन्द था। ३ मार्चको नेपाली दूकानें खुल गईं। दूसरोंको अभी पैसा देकर नये शासकोंसे लाइसेन्स लेना था। ५ मार्चको शहरमें बड़ी तैयारी हो रही थी। लोग सड़कोंको खूब साफकर रहे थे, और सजा रहे थे। मालूम हुआ, कल महागुरुकी सवारी आयगी। सवारी सात बजे सबेरे ही आनेवाली थी। लोग पहले हीसे जा-जाकर सड़कके दोनों ओर खड़े हो गये थे। हम भीसवारी देखने गये। सड़कपर बड़ा पहरा था। सड़कके इस पार वाले लोग उस पार जाने नहीं पाते थे। पहले घोड़ोंपर सवार हो मन्त्रियोंके नौकर लाल छत्राकार टोपी लगाये निकले। फिर मन्त्री लोग। फिर चि-टुङ् (=भिक्षु अफसर), फिर कूटा (=गृहस्थ-अफ़सर) फिर सेनापति नागरिकके वेषमें। फिर छ्-रू मंत्री सेनापतिके वेषमें। फिर दो फौजी जर्नैल (=स्दे-दूपोन , फिर सरदार बहादुर ले-दन्-ला सैनिक अफ़सरके वेष में। फिर महागुरु दलाई लामा चारो ओरसे रेशमी पर्दोंसे ढकी एक वर्गाकार पालकीमें पधारे। साथमें बहुतसे सैनिक थे, जिनमें कुछ नेपाली सिपाहियोंके वेषमें थे, कुछ मगोल सैनिकवेषमें, और कुछों

चीनी वेषमें। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि प्रायः सभी लोग घोड़ोंपर सवार थे।

* * * *

अब तो मैंने लङ्काको लौटना निचयकर लिया था। पुस्तके बराबर जमाकर रहा था। किन्तु अभी तक रास्तोंपर सैनिकोंका पहरा था। कोई नेपाली लौट नहीं सकता था। मैं भी तो वहां नेपाली समझा जाता था। बीच-बीचमें खबर उड़ती कि सर्दार बहादुर नेपाल और भोटमें सुलह करानेमें सफल नहीं हुए। वे निराश हो लौटना चाहते हैं। ७ मार्चको मैं ङ-री रिन्पो-छेके पास गया। उनसे चार बातोंके लिए दलाई लामासे निवेदन करनेके लिये कहा—(१) सम्-ये जानेकी छुट्टी; (२) पोतलामें जिन पुस्तकोंकी छपाई महागुरुकी आज्ञाके बिना नहीं हो सकती, उनकी आज्ञा[1]; (३ ग्तेर्-गीके छापेका एक स्कन्-ऽग्युर और स्तन-ऽग्युर प्रदान करना, (४) भारत लौटनेके लिए एक अनुज्ञापत्र प्रदान करना। उन्होंने कहा पहली दोनों बातें आसान मालूम होती हैं; लेकिन पिछली दोनों बातोंको मैं अभी सम्भव नहीं समझता।

९ मार्चको प्रातः तीन अगुल वर्फ पड़ी हुई थी। १० तारीखको सवेरे तो पर्वत मैदान सड़क आँगन मकानोंकी छत सभीपर वर्फकी सफेद चादर बिछी हुई थी। सवेरे ही लोग छतोंपरसे बर्फको हटाने लगे। दो अगुल मोटी मिट्टीकी छत, बर्फके गले पानीको कैसे थाम

---

१. उस समय महाविद्वान बु-स्तोन्की २८वेष्टनोंवाली ग्रन्थावलीको नहीं प्राप्त कर सका था, किन्तु पीछे लिखनेपर महागुरुके प्राइवेट सेक्रेटरी और तिब्बतमें महागुरुके बाद सबसे अधिक प्रभावशाली व्यक्ति कुशो कुम्-भे-ला ने पुस्तकोंको सुन्दर कागजपर छपवा तथा पीले कपड़ेमें बंधवाकर कम्-ख़ावकी सूचीके साथ प्रदान किया।

सकती है ! नव-वर्षके शासकोंके डरसे लोग और भी परेशान थे। सड़कपर भी बर्फ़ पड़ी रहनेपर दंड होता था, दस बजे तक सभी बर्फ़ हटाकर कहीं अलग कोने आदिमें डाल दी गई। ल्हासामें बर्फ़ पड़ती ही कम है, जो पड़ती भी है, वह दोपहरसे पहले ही गल जाती है। हाँ पास वाले पर्वतों परकी कई दिन तक रहती है। नव-वर्ष शासन और साधारण शासनमें कितना फ़र्क होता है इसकी मिसाल लीजिये। शासन समाप्त होनेपर २५ मार्चको दोपहर तक रुईके फाहे जैसी हिम-वर्षा होती रही। १७ अंगुल बर्फ़ पड़ गई। लोग कह रहे थे, खैरियत हुई जो शासन बदल गया, नहीं तो आज सारी बर्फ़को हटानेमें जान निकल जाती। उस दिन लोगोंने सिर्फ़ छतोंपरकी बर्फ़को सड़कों और गलियोंमें गिरा दिया।

४. भोटिया शास्त्रार्थ

नव-वर्षके समय शास्त्रार्थ भी होता रहता है। १० मार्चको जो-खङ्‌में शास्त्रार्थ देखने गये। छतपरसे हम देख रहे थे, नीचे आँगनमें पण्डित और उनकी शिष्य-मण्डली बैठी हुई थी। दो वृद्ध मध्यस्थ ऊँचे आसनपर बैठे थे। प्रश्नकर्त्ता अपने आसनसे उठा। पहले उसने दोनों वृद्धोंकी वन्दनाकर उनसे प्रश्न करनेकी आज्ञा ली। फिर उसने धर्मकीर्तिके प्रमाणवार्तिकके सम्बन्धमें प्रश्न करना शुरू किये। प्रश्नका ढङ्ग विचित्र था; कभी वह आगे बढ़ता था, कभी पीछे हटता था। एक-एक प्रश्नकोटिपर एक हाथकी हथेलीको दूसरे हाथकी हथेलीपर पटकता था। मालाको दोनों हाथोंमें लेकर धनुषसे बाण छोड़नेका नाट्य करता था। उसके पक्षवाले विद्यार्थी और पण्डित बड़े प्रसन्न मनसे उसकी सारी दलीलें सुन रहे थे। इस सारे समयमें उत्तर पक्षी छात्र छात्रोंकी विचित्र टोपी लगाये अपने आसनपर शान्त स्तब्ध बैठा रहा। फिर उसने उसी तरह मध्यस्थोंको प्रणामकर उत्तर देना शुरू किया। उसने पूर्व पक्षीके प्रश्नोंकी धज्जियाँ उड़ा दीं। फिर उसने

पूर्व पक्षीके पक्षपर अपने प्रतिद्वन्दीकी भाँति ही आक्रमण शुरू किया। शास्त्रार्थमें काशीके कई पण्डितोंकी शिष्यमण्डलीकी सी उद्दण्डता नामको भी न होती थी। जब मैंने अपने एक मित्र नैयायिकसे पूछा, क्यों जी, यह हाथ पीटना और मालाको धनुषसे वाण छोड़नेकी तरह करना क्यों, तो उत्तर मिला—यह भोटकी चीज थोड़े ही है, यह तो नालन्दा और विक्रमशिलासे आई है; आप ही लोग इसके जिम्मेवार हैं। मैंने कहा, नालन्दा विक्रमशिलामें इस नाट्यमुद्रासे शास्त्रार्थ तभी हो सकता था, यदि उस समय भारतमें सर्वत्र इस तरह शास्त्रार्थकी प्रणाली होती, और ऐसी प्रणाली होती, उसका कुछ अवशेष काशी और मिथिलाकी पण्डित-मण्डलीमें आज भी जरूर पाया जाता; लेकिन वहाँ तो यह ढङ्ग नहीं है। फिर एक दूसरे मित्र ने कहा शायद जे-रिन्पो-छे = चोङ्-ख-पा) ने चलाया हो।

१२ मार्चको लोग ल्हासाकी पंचक्रोशी कर रहे थे। हमने भी कहा, देखना चाहिये। इस पंचक्रोचीमें नगरके अतिरिक्त पोतला प्रासाद, महागुरुका उद्यान-गृह नोर्बू लिङ् का तथा और भी कितनी ही इमारतें और वाग आ जाते हैं। सारी परिक्रमा प्रायः पाँच मीलकी होगी सवेरे ही निकले। सर्दी थी किन्तु मैं तो सर्दी-प्रूफ़ हो चुका था। देखा बहुतसे लोग परिक्रमा कर रहे हैं। कुछ लोग दडवत्से भूमि को नापते हुए परिक्रमाकर रहे हैं; इनमें एक नेपाली व्यापारी भी थे! इतनी परिक्रमा क्या चीज है? हमने तो ल्हाससे २॥ मासके रास्तेपर उत्तर तरफ अम्दू प्रदेशसे आये एक भिक्षुको देखा, जो दण्डवत् करते हुए तीन वर्षमें ल्हासा पहुँचा था!

उस दिन परिक्रमा समाप्तकर मैं र मो-छेके मन्दिरमें गया। यह भी जो खङ् के साथ बना था। यहाँ पत्थरपर भी कुछ कारीगरीकी हुई है। आमतौरसे तिब्बतकी सभी मूर्तियाँ मिट्टी और प्लस्तर की ही बनती हैं। बुद्धकी प्रतिमाको मुकुट पहनाया गया है। लोगोंने बतलाया बुद्धकी मूर्तिको मुकुट पहनानेका सुधार या कुधार, महान्

सुधारक चोङ-ख-पा ने किया था। दूसरे सम्प्रदायवाले कभी बुद्ध-प्रतिमाको मुकुट नहीं पहनाते। उस समय भी उन्होंने विरोध किया था। वस्तुतः यह सुधार तो चोङ्-ख-पाकी गल्ती थी। बुद्ध भिक्षु थे, और वे भिक्षुओंके सारे नियमोंको पालन करते थे, उन्होंने भिक्षुओं-के लिए आभूषण धारण आदि को मना किया है किन्तु यह रिवाज भी भारत-नेपालमें शताब्दियों पूर्व चल चुका था।

‡ ५. मक्खनकी मूर्तियाँ

१४ मार्चको सवेरे हीसे नई तैयारी दिखाई पड़ने लगी। चारों ओर परिक्रमाकी सड़कमें खम्भे गाड़े जा रहे थे, फिर दीपकोंको रखनेके लिए आड़ी लकड़ियाँ रक्खी जा रही थीं। पर्दोंसे घेरकर लोग स्तम्भों-को सजानेमें लगे हुए थे। दिन भर क्या होता रहा, इसका पता सूर्यास्तसे थोड़ा पूर्व मालूम हुआ जब कि पर्दे उठा दिये गये। देखा, स्तम्भोंपर सुन्दर विमान बना हुआ है। रंग विरंगे कपड़े पत्तियोंसे सुसज्जित दो-महले मकानसे बने हैं, जिनके गवाक्षों और खिड़कियोंपर मक्खनकी बनी सुन्दर मूर्तियाँ रक्खी हुई हैं। सारी परिक्रमाकी सड़क इन्हीं झाँकियोंसे सजी है। तिब्बतमें कला जितनी सार्वजनीन है, और उसका औसत मान जितना ऊँचा है, उतना जब युरोपमें भी नहीं है, तो भारतका क्या कहना? हाँ, उसके देखनेसे अनुमान हो सकता है कि किसी समय भारतमें इससे भी अच्छा कलाका प्रचार रहा होगा, किन्तु बुरा हो ख्याली ईश्वरकी उस भक्तिका जिसने उसे कलाके उस शिखरसे ज़मीनपर दे पटका। ये झाँकियाँ डे-पुङ् से रा आदि मठों, स्वयं महागुरु, उनके मन्त्रियों और प्रधान कर्मचारियों और धनियों की ओरसे बनाई जाती हैं। बड़ी नोक-झोंक रहती है, यद्यपि कोई पारितोषिक नहीं है। थे-मुन् मंत्री की झाँकियाँ हमारे सामने थीं। वैसे महागुरु भी आया करते थे, किन्तु अबकी बार वे नहीं आये। रातको सैकड़ों चिराग जला दिये गये। सैनिक एक बार मार्च करके

लौट गये। फिर क्षणिक शासक मशालोंकी रोशनीमें आकर अपनी झाँकीके सामने खड़े हुए। ये मुन्. मंत्रीके मस्तिष्कमें उस वक्त कुछ विकार हो गया था, किन्तु दूसरे दो गृहस्थ और एक भिक्षु मंत्री आये। रमो छे विहारके लामोंकी झाँकी इस साल सर्वोत्तम थी। लोग सब जाकर उसकी तारीफ़ कर रहे थे। सड़क आदमियोंसे ठसा-ठस भरी थी। क्षणिक सर्कारके सिपाही (डे-पुङ के भिक्षु) बेंत मार-मारकर लोगोंको हटा रहे थे। लोग तिनकेका मसाल जलाए चल रहे थे। कहते हैं, पंचम दलाईलामा—जिन्हें पहले-पहल भोटका राज्य मिला—का यह स्वप्न है। बारह बजे रात तक खूब भीड़ रही; फिर सवेरे तक लोग नाचते गाते रहे। इस उत्सवको पंचदशी तिथि-की पूजा कहते हैं। मक्खनकी मूर्तियोंके बारेमें कहावत मशहूर है—

"क्र-शिस् ट्दे-लेगस फुन्-ग्सुम् छोगस्।
र्तन-दु ब्दे-वर थोब्-पर् शो ग्स"

आदि मंगल गाथाओंसे एक दूसरेके लिये मंगल कामना कर रहे थे। दोपहरके बाद न पूछो। पीना और पिलाना, नाचना और गाना—बस यही चारों ओर। किन्तु यह सब होते हुए भी आज संयम था। आज हमारे सत्तर वर्षके बूढ़े अखू (चचा) भी छोकरियोंके बीचमें कृष्ण-कन्हैयाकी तरह रासकर रहे थे। एक ओरसे हाथ पकड़े पाँच सात स्त्रियाँ, दूसरी ओर उसी तरह पुरुष होते थे। दोनों पातियोंके एक-एक सिरे परके दो व्यक्ति हाथ मिलाये रहते थे किन्तु दूसरा सिरा खुला रहता था। गानेके साथ पैरोंसे ताल देते, अपने चन्द्राकार घेरेको घटाते-बढ़ाते, मंडली एक दूसरेकी ओर बढ़ती, कभी पास आ जाती थी, और कभी पीछे हटती दूर हो जाती थी। नेपाली सौदागरों ने आज भोटवासी इष्ट-मित्रोंके पास मिठाइयाँ भेजीं।

इधर युद्धकी आशंका चरम सीमापर पहुँच चुकी थी। १६ मार्च को कलकत्तेसे चिट्ठी आई, जिसमें किसी नेपाली सौदागरके संबंधी ने लिखा कि माल-असबाब छोड़कर जल्दी चले आओ। लेकिन जानेके लिए रास्ता खुला हो तब न ? मुझे कुछ ऐतिहासिक व्यक्तियों और सिद्धोंके सादे चित्र बनवाने थे। पता लगा एक तरुण राज-चित्रकार पासमें ही रहता है। गये। देखा हाथ उसका बहुत अच्छा है। किन्तु भोटकी चित्रकला विधि-विधानोंकी जकड़नके कारण सजीव नहीं है। प्रतिभाको स्वच्छन्द रीतिसे विकसित होनेका मौका नहीं मिलता। तरुणकी उम्र २२, २३ वर्षसे ज्यादा न होगी, और इतनी ही आयुमें वह राजकीय पाँच प्रधान चित्रकारोंमें गिना जाता है। शहरमें और भी बहुतसे चित्रकार हैं। उन्हें टैक्सके रूपमें रंग, कपड़ा और चित्रणकी और सामग्री राजकीय चित्रकारोंको देनी पड़ती है। पाँच राजकीय चित्रकारोंमें दो बूढ़े तो तत्वावधान (निरीक्षण)का ही काम करते हैं। बाकी तीनमें हर एकको तीसरे वर्ष बारी आती है, और

उक्त सामग्रीसे उन्हें हर साल चौबीस चित्र महागुरुको देने पड़ते हैं। इनको सरकारकी ओरसे जागीरें मिली हुई हैं। भिक्षु चित्रकारोंको यह परतन्त्रता नहीं है।

२३ मार्चको सत्रहवीं शताब्दीकी सेनाका प्रदर्शन हुआ। सड़कके रास्तेसे जिरह-वख्तर पहने, पर लगी टोपियाँ दिये, तथा धनुष और बाणोंका तर्कस पीठपर बाँधे, पहले घुड़सवार निकले। फिर पैदल सिपाही विचित्र पोशाकमें। इनके पास पुरानी पलीतेवाली बन्दूकें थीं, जिनसे वे थोड़े-थोड़े समयपर खाली फ़ायर करते जाते। देशी बारूदके धुएँसे सारा शहर महक उठा था। धनुर्धर, और खड्गधारी सिपहियोंके बाद कुछ लोग राजाकी पोशाकमें निकले। कहते हैं, भोटके छोटे छोटे राजाओंको परास्तकर आज हीके दिन १६४१ ई०में मङ्गोल सर्दार गु-शी-खानने भोटका राज्य पचम दलाईलामाको प्रदान किया था।

२४ मार्च क्षणिक शासनका अन्तिम दिन था। आज बडे भोर सड़कसे मैत्रेयकी रथयात्रा निकली। आगे-आगे शख-झाँझ लिये, और छात्रोंकी टोपी दिये भिक्षु चल रहे थे। फिर पीले वस्त्र पहने ढोल आदि बजाने वाले, फिर चार पहियेके रथपर आरूढ़ मैत्रेयकी सुन्दर प्रतिमा। पीछे-पीछे दो हाथी चल रहे थे। ये हाथी बचपन हीमें भारतसे लाये गये थे। इतनी सर्द जगहमें रहना उनके लिए मुश्किल जरूर है, तो भी उनकी अच्छी देखभाल रक्खी जाती है। आज कुश्तीका तमाशा भी था। यद्यपि महागुरु जलूसके साथ आकर उसी दिन लौट गये थे, किन्तु यह लौटना निजी था। आज उनका सार्वजनिक तौरसे लौटना हुआ।

इस प्रकार नव-वर्षका उत्सव समाप्त हुआ।

———

आठवीं मंजिल

ब्सम्-यस् (=सम्-ये)को यात्रा

१. मङ्गोल भिक्षुके साथ

यद्यपि २२ मार्चको ही नेपाल और तिब्बतमें सुलह होजानेकी खबर आ गई थी, और इस प्रकार नव-वर्षोत्सवके समाप्त होनेसे पूर्व लोगोंके दिलसे युद्धका भय चला गया था, तो भी रास्ता ३० मार्चको खुला। सुलहकी खबर आनेपर विश्वास था ही कि अब रास्ता खुल जायेगा। इसलिए मैं अपनी स्तकोंको जमा करनेमें लग गया। मङ्गोल भिक्षु धर्मकीर्ति हमारे काममें बड़ा मददकर रहे थे। वे अक्सर मेरे ही पास रहते थे। ६-७ वर्षसे सेरामें न्याय पढ़ रहे थे। शरीरसे बहुत ही मज़बूत थे, जैसे कि आम तौरसे मङ्गोल देखे जाते हैं। पढ़नेमें भी होशियार थे, उन्होंने मेरे साथ लङ्का जानेके लिए कहा था। मैने स्वीकारकर लिया था। सलाह ठहरी कि रास्ता खुलते ही सम् येके लिए चल पड़ें। २ अप्रैलको धर्मकीर्तिके साथ जाकर मैं उन बहुमूल्य तेरह चित्रपटोंको ले आया, जिनके बारेमें अन्यत्र लिख चुका हूँ।

आचार्य शान्तरक्षितके प्रसंगमें लिख चुका हूँ, कि सम्-ये ही प्रथम बौद्ध विहार था, जिसकी नींव सम्राट् ठि-स्रोङ्-दे-चनकी सहायता-से उक्त आचार्य ने ८२३ ई० (जल शश) वर्षमें डाली थी। इसके दर्शनकी उत्कंठा स्वाभाविक ही थी। ल्हासासे सम् ये जानेके दो रास्ते हैं, एक तो ल्हासा वाली नदी (द्बुस् ग्चु = उइ़्छु)[1] द्वारा चमड़ेकी नाव-

---

१. उ इ माने मध्यदेश, छु माने पानी—मध्य देशका पानी।

पर चाङ-छु (चाङ सूपो=ब्रह्मपुत्र) तक, फिर उसके द्वारा सम्-येसे ३, ४ मीलके फासिले तक; और फिर पैदल। दूसरा रास्ता स्थलका था जिससे चार दिनकी जगह दो-ढाई दिनमें ही जाया जा सकता था। धर्मकीर्ति और हमारी सलाह ठहरी कि जाया जाय जलमार्गसे और लौटा जाय स्थलमार्ग से।

नदीकी धारमें

ल्हासासे रोज रोज तो क्वा (=चमड़ीकी नाव) जाती नहीं। पता लगा ५ अप्रैलको एक नाव जा रही है। बुलाया तो सवेरे ही, किन्तु हम दोनों नौ बजे नावके घाटपर पहुँचे। यह देखकर चित्त प्रसन्न हुआ कि चमडा लकडीके ढाँचेपर तान ही नहीं दिया गया है, बल्कि नाव पानीपर तैयार रक्खी हुई है। सामान थोड़ासा तो साथमें था ही। जाकर घाटपर बैठे। ल्हासा या तिब्बत ठंडा ज़रूर है, लेकिन बदरफट धूप वहाँकी भी उतनी ही असह्य होती है, जितनी अपने यहाँ की। क्वा एक ही नहीं थी, वहाँ तो सात-आठ क्वा खड़ी थीं, जिनमें ५, ६ तो मालके लिये थीं। यद्यपि हमारी नावकी सवारी पूरी थी, उसमें दो हम और एक वृद्धा स्त्री और एक तेइस-साला युवक कुल चार जीवोंकी पूरी सवारी थी, तो भी मल्लाह अकेला थोडा ही जानेवाला था। धीरे-धीरे १० बजा, ग्यारह बजा, बारह बजा। छाया भी न थी। बड़ी परेशानी मालूम होती थी। अन्तमें किसी प्रकार दो बजेके करीब क्वा राम-राम करके रवाना हुई। चढ़ाव-की ओर तो तिब्बतमें नाव चलाई नहीं जाती। वहाँ तो मल्लाह सुखाकर नावके चमड़े और लकड़ीके ढाँचेके अलग दो गट्ठे बाँध देते हैं, फिर गदहेपर रख देते हैं; दो तीन दिन ऊपरकी ओर चलकर नावको फिर तय्यार कर लेते हैं और पानीके सहारे नीचे जाकर फिर वैसा ही करते हैं। कोई-कोई ढाँचेको सुखाकर वैसे ही सिरपर रखकर ले चलते हैं; और साथ ही भेड़पर रसद रख लेते हैं।

बैठते ही एक दिक्कत यह मालूम हुई कि हमारी सहयात्रिणी बुढ़ियाके (जो पचास वर्षसे कमकी न होगी, सारे शरीरमें फुंसियाँ ही फुंसियाँ थीं। खैर एक ओर बैठ गए। धूपसे बचनेके लिये कम्बल ऊपर ले लिया। पहले दिन तो हमने समझा कि वह युवक बुढ़ियाका पुत्र होगा। सौभाग्यसे मैंने वैसा कुछ कहा नहीं। दूसरे दिन मैं भिक्षु धर्मकीर्तिसे यह कह ही रहा था कि उन्होंने मना करते हुए चुपकेसे कहा, भोट देशमें पैसे वाली विधवायें अक्सर गभरू जवानोंसे शादी करती हैं, और कभी पतिके छोटे भाई भी तो होते हैं। खैर, हमारी नाव बहावके साथ नीचेकी ओर जा रही थी। कहीं-कहीं पत्थर नावके पेंदेसे टकराते भी थे। चमड़ेकी नाव बनानेमें हल्का होनेके अतिरिक्त पत्थरोंसे बचाव भी कारण होगा। एक नावका घाट पारकर १॥, २ घटे बाद हम उस मोड़पर पहुँच गये, जहाँके बाद पोतलाका दर्शन फिर नहीं होता। हमारी साथ वाली नावमें लदाखके शकर मठके भिक्षु थुब्-तन् छे रिङ्ग थे। लदाखमें मेरे जानेको वे जानते थे, और ल्हासामें भी मेरे पास मिलने आये थे। चार बजेसे हवा तेज हो गई। नदीके तट कुछ ऊँचे थे, इसलिए उतनी मालूम नहीं होती थी। रातको हम मन्-डो गाँवमें पहुँचे। हवाकी तेज़ीका कुछ न पूछिये। उसके कारण सर्दी भी बढ गई थी। चार-पाँच घरोंका गाँव था। लोगों ने मालिकोंको बुलाया। रहनेके लिए एक छोटी-सी जगह मिल गई। हमारी तो हिलने डोलनेकी इच्छा न थी, किसी दाता ने लाकर दो प्याले सादो चाय दे दिये। किसी तरह रात गुजर गई।

दूसरे दिन सूर्योदयसे पहले नाव चल पड़ी। नदीका वेग वैसे ही काफ़ी था। मल्लाहको सिर्फ़ बहुत उथली जगहसे नावको बचाना पड़ता था। अब इधर वृक्षोंपर नये पत्ते आते भी देखे। ल्हासामें अभी पत्ते नहीं निकले थे। ब्रह्मपुत्रकी भाँति इस नदीकी उपत्यका भी काफ़ी चौड़ी है। शामको हमारी नाव छु-शरके पास पहुँची। आज भी लदाखी नौकारोही साथ रहे। रोटी और कुछ और खानेकी चीजें

हम अपने साथ लाये थे, सिर्फ चायकी जरूरत होती थी, जो कि साथियोंके चूल्हेपर बन जाती थी। आज हवा न थी गाँवसे दूर नदी-के किनारे ही सोना हुआ। सवेरे फिर तड़के उठे। और थोड़ी देरमें ब्रह्मपुत्रमें पहुंच गये। चाय पीनेकी सलाह कुङ्-गा-जोङ्मे ठहरी। नदीकी दाहिनी तरफ़ तटके पास हो एक छोटी टेकरीपर यह एक मठ है। पहले जब तिब्बत छोटे-छोटे राज्योंमे बँटा हुआ था, तो यहाँ भी एक राजा रहता था। अब सिर्फ एक छोटा-सा गाँव था। अबकी हमने साथमें फोटो केमरा लिया था। अभी बिल्कुल नौसिखिये थे। दस बारह फ़िल्म खराब किये। कुछका तो कोई फोटो आया ही नहीं। कुङ्-गा-जोङ्का फोटो कुछ ठीक उतरा था। अस्तु चाय पीकर हम फिर रवाना हुए। मध्यान्हमें क-ने-नुमूसा गाँवमें पहुंचे। यह ब्रह्मपुत्रके बायें किनारेपर पास ही है। गाँवमें ब्रह्मपुत्रकी सैकड़ों मछलियाँ सूख रहीं थी। हमारे साथीकी सलाह हुई, देखा जाय कैसी लगती हैं। ऐसे मछलियाँ हाथ भर बड़ी थी, और वज़नमें सेर सेर दो-दो-सेरकी थी। देखनेमे रोहू मछलीकी तरह जान पड़ती थी। लेकिन जब उबालकर आई, देखा तो काँटा ही काटा! बड़े काँटे तो किसी तरह अलग किये जा सकते हैं, किन्तु वहा तो अनगिनत बाल जैसे पतले किन्तु बहुत ही तेज़ काँटे थे। शायद यहाँ सर्द मुल्ककी नदियोंमें ये काटे मछलियोंके लिए उपयोगी होगे। यह आशाकर बैठे थे कि थोड़ी देरमे यहासे आगे चलेंगे; किन्तु मालूम हुआ कि बुढियाके खाविन्दपर देवता आता है। उसकी इधर काफ़ी यजमानी है। दोनों पति-पत्नी तो नावके आते ही गावमें चले गये थे, रह गये थे हम दोनों वहाँ नावकी रखवालीके लिए। रातके वक्त हम भी गाँवमें सोने गये। कुत्तोंकी कुछ न पूछिये। दूसरे दिन हम नाव पर आये। प्रतीक्षाकर रहे थे कि अब नाव चलती है, किन्तु सारे गाँवके भूतोंकी वहाँ खबरदारी करनी थी। छुट्टी मिले तब तो। बारह बजे दोनों स्त्री पुरुष गाँवके पन्द्रह बीस स्त्री पुरुषोंके आगे नावपर आये। साथमें

बहुत चढावा था जिसमें खाने पीनेकी चीजें से लेकर रस्सी और जूतेके तल्ले तक थे। तिब्बतमें जो देवताओंकी बात बतलावे, वही देवताकी भाँति पूजा जाता है।

नाव दोपहरको चली। अबकी हमारे साथ एक और नाव भी थी। उसपर कोई सौदागर साधु अपना माल लेकर जा रहा था। तीसरे पहर हम नदीकी बाईं ओर दोर्जे-ङक मठके नीचे पहुँचे। यह तिब्बतके सबसे प्राचीन सम्प्रदाय निङ्-मा पाका मठ है। और मठोंकी तरह एक टेकरीपर बनाया गया है। एक सौके करीब साधु रहते हैं। इनका रहन-सहन अयोध्या हनुमानगढीके नागों जैसा है। निङ् मा पा सम्प्रदायमें मिन्-डो-लिङ मठके बाद यह दूसरे नम्बरका प्रभावशाली मठ है।

३ भोटमें भारतका पहाड़

पाँच बजे हम फिर रवाना हुए। ब्रह्मपुत्रकी धार उतनी तेज नहीं है। उपत्यका भी बहुत चौड़ी है। जहाँ-तहाँ गाँव और बगीचे भी दिखाई देते थे। शामको हम एक ऐसे पहाड़के पास पहुँचे, जो पथरीला था। लोगों ने बड़ी सजीदगीसे बतलाया कि यह तिब्बतका पहाड़ नहीं है, इसे पवित्र समझकर भारतसे यहाँ लाया गया है। बाईं ओर तीन छोटी बड़ी शिलायें पानीके भीतर थीं। इनके बारेमें बतलाया गया कि ये सा नम् फुन, सुम् माता-पिता-पुत्र तीन व्यक्ति हैं। भारत देशसे ये खास तौरपर यहाँ आये हैं। आखिर हम अब सम् येके पास भी तो पहुँच रहे थे, जिसे भारतके ही पंडित ने भारतीय ढङ्गपर बनवाया था। मेरे और धर्मकीर्तिके पास एक एक तमंचा भी था, इसलिए हमारे साथी डाकुओंसे निर्भय थे। रातको नौ-बजे हम ब्रह्मपुत्रके बीचमें पड़ी एक विशाल शिलाके पास उतरे। इसे डक् छेन् (= महाशिला) कहते हैं। तिब्बतके मठोंमें उत्सवके समय किसी ऊँची दीवार या स्थानपर विशाल चित्रपट टाँगा जाता है। टशीलहन्पोके मठके ऊपरी हिस्सेपर

तो इसके लिये एक बड़ी दीवार बनाई गई है। साथियों ने बतलाया कि जिस वक्त सम्-येका विहार बनवाया जाता था, उस समय वहां भी चित्रपट टाँगनेकी दीवारको ज़रूरत महसूस हुई; उसीके लिए यह महाशिला भारतसे यहाँ लाई गई। शिला ब्रह्मपुत्रके बीचके एक टापूमें है। ऊँचाई प्रायः १५० फुट होगा। आकार त्रिकोणका है। पूर्व ओर जिधरको ब्रह्मपुत्र वहती है, शिला प्रायः लम्बाकार खड़ी है। जून-जुलाईमें टापू जलमग्न हो जाता है, सिर्फ शिला पानीके ऊपर दूरसे दिखाई पड़ती है।

सवेरे चलकर जम्-लिङ् गाँव के पास किनारेपर उतरे। यहाँ थोड़ा आगे हटकर नालेमें नेपालके बौधा स्तूपकी भाँति एक स्तूप है। ब्रह्मपुत्र की उपत्यका काफ़ी गर्म है। इसमें अखरोटके बड़े-बड़े दरख़्त होते हैं। कोशिश करें तो कितनी ही तरहके फल भी हो सकते हैं। लेकिन सनातनधर्म छोड़ना हर जगह ही मुश्किल होता है। जम् लिङ्से उठकर हम कुछ ही देरमें बायें तटपर नाव वालोंके गाँवपर पहुँच गये। नाववाले ने पहले तो कहा, कि सम्-येके लिए हम कोई आदमी देंगे। लेकिन वहाँ जानेपर देखा कि टालमटोल हो रहा है। तब हम दोनों ने सोचा कि सम्-येसे तीन मीलपर यहाँ ठहरनेसे कोई फायदा नहीं।

४. ल्होखा प्रदेशमें

ब्रह्मपुत्रमें आनेके साथ ही हम तिब्बतके उइ-युल[1] (=मध्य देश)का पारकर ल्हो खा[2] प्रदेशमें चले आये थे। लोग कहते हैं। छु-शरके पाससे जहाँ त्रिवेणी है, उत्तर ओर उइ-छु नदीकी ओर उइ-युल है; ब्रह्मपुत्र ऊपरकी ओर पश्चिम दिशामें चाङ्(टशीलामा-

१. युल याने देश।
२ ल्होखा याने दक्खिन।

का) प्रदेश है; और ब्रह्मपुत्रके नीचेकी ओर पूर्व में ल्हो-खा प्रदेश है। तीनों प्रदेशोंकी स्त्रियोंके शिरोभूषणमें फ़र्क है। ल्हासावाली मूँगे आदिसे जड़े त्रिकोणाकार आभूषणको नकली बालोंके साथ शिरमें लगाती हैं; चाङ-मो (=चाङकी स्त्रियाँ) एक छोटेसे धनुषको ही शिरपर बाँध लेती हैं; किन्तु ल्हो-खा वाली कनटोपके कान ढँकनेवाले हिस्सेको उलटकर आगेकी ओर निकले दो सींग बनाकर पहनती हैं। कानोंके आभूषणमें भी फ़र्क है। सो अब हम ल्हो-खा प्रदेशमें थे। वर्तमान दलाईलामा (जो अब गत हो गये हैं) और टशी-लामा दोनों ही इसी प्रदेशमें जन्मे हैं।

कुछ चाय पानी करके हम दोनों सम्-येकी ओर चल पड़े। बाईं ओर पहाड़के किनारे-किनारे रास्ता था। आगे चलकर पत्थरम काटकर बने, ३.४ हाथ ऊचे स्तूप दिखलाई पड़े. ये स्तूप दक्षिण भारतकी पहाड़ी गुफाओंमें उत्कीर्ण स्तूपोंकी भाँति छोटी कुर्सीके और सादे थे। पहले तो मैंने समझा ये मिट्टीके बने होंगे। इनका आकार ही बतला रहा था, ये पुरानी चीज हैं। कई स्तूपोंको पारकर हमारा रास्ता बाईं ओर मुड़ा। दो घंटा चलनेके बाद हमें सम्-येका विहार दिखाई पड़ा। समतल भूमिमें चहारदीवारियोंसे घिरा यह विहार वस्तुत. ही भोटके विहारोंसे न मिलकर भारतके विहारोंसे मिलता है। विहारके चारों ओर बहुतसे निष्फल वृक्षोंके बाग भी हैं।

५. सम्-ये विहारमें

हम लोग जब पश्चिम द्वार से भीतर घुसे, तो परिक्रमामें चीनी काली ऐनक लगाये एक भिक्षु मिले। ये शिकमके रहनेवाले हैं। और इन्हें लोग उरग्ये न्-कुशो नामसे जानते हैं। उन्होंने बड़े प्रेमसे थोड़ी बातचीत की, फिर अपने आदमीको हमारे रहनेका इन्तजाम करनेके लिए हमारे साथ भेज दिया। उस दिन तो हमने जाकर सिर्फ़ आराम किया।

भोट देशीय ग्रन्थोंमे लिखा है, कि सम्-येको आचार्य शान्त-रक्षित ने उडन्तपुरी विहारके नमूनेपर बनवाया। महाराज धर्मपाल ने उडन्तपुरी विहारको बनवाया था, जिन्होंने कि ७६१-८०१ई० तक शासन किया था। सम्‌येके बनवाने वाले सम्राट् ठि-स्रोङ दे-चन् ७३०-८५ ई० तक भोटके शासक रहे, और सम्‌ये ७५१-६० ई०में बना। वर्तमान विहारकी सभी इमारतें पहले हीकी नहीं हैं। हाँ भीतर चारों कोनेपर चार सुन्दर स्तूप—जो मिट्टीकी पकी ईंटोंसे बनाये गये हैं, और जिनके शिखरपर अब भी वैसा ही छत्र विराजमान है। जैसा कि पुरातन स्तूपोंमें देखा जाता है—जरूर ८वीं शताब्दीके मध्यके हैं। पासमें चाँद-सूर्यवाले कितने ही मिट्टीके वज्रयानी स्तूप भी हैं। सबके बीचमे ग्चुग्-लग-खङ् या विहार है। एक बार आगसे यहाँकी प्रायः सभी इमारतें जल गई थीं। फिर ग्यारहवीं बारहवीं सदोमें र-लोच व ने इसे फिर बनवाया। विहार प्रायः चौकोर है, और चारों ओर ५, ६ हाथ ऊँची दीवारसे घिरा है। चहारदीवारीमे चारों दिशाओंमें चार फाटक हैं। बीचों-बीच मुख्य विहार है, जिसके चारों ओर परिक्रमामें दो तल्ले मकान भिक्षुओंके रहनेके लिए हैं। फिर इस इमारतसे थोडासा हटकर चारों कोनोंपर वही नीले, श्वेत आदिचार स्तूप हैं। इसके बाहर और चारदीवारीके पास चारों ओर छोटे-छोटे आँगनवाले ग्लिङ् या द्वीप हैं। इन द्वीपोंकी संख्या एक दर्जनसे अधिक है।

६. शान्तरक्षितकी हड्डियां

मुख्य विहार प्रायः सारा ही लकड़ीका बना है; इसमें तीन तल हैं। निचले तलपर प्रधान मूर्ति बुद्धकी है। बाहर बगलमें एक दाँतवाली वृद्ध मूर्ति आचार्य शान्तरक्षितकी है। पासमें उनके भोट देशीय भिक्षु शिष्य वैरोचन की मूर्ति है, और दूसरी ओर गृहस्थ शिष्य सम्राट ठिस्रोङ् दे-चन् (=खि-स्रोङ्-ल्दे-ब्चन्) की।

१०० वर्षकी आयुमें (७८०ई०के करीब) जब आचार्य ने शरीर छोड़ा तो पासकी पूर्व वाली पहाड़ीपर एक स्तूपमें उनका शरीर बिना जलाये रख दिया गया। उस पहाड़ीपरसे वे साढे दश शताब्दियों तक अपने रोपे इस बिरवेको देखते रहे। कोई तीस चालीस वर्ष हुए जब वह जीर्ण स्तूप गिर गया; और उसके आचार्यकी लम्बी विशाल खोपड़ी तथा और हड्डियाँ गिर पड़ीं। लोगों ने लेकर अब उन्हें भगवान् बुद्धकी मूर्तिके सामने काँचसे मढे गौखेमें रख दिया है। जिस वक्त मैं उस खोपड़ीके सामने खड़ा था, उस समयको मेरी अवस्था मत पूछिये। यदि मैं सिर्फ इतना ही जानता होता कि यह उस महा-पुरुषकी खोपड़ी है जिसने भारतके धर्मराज्यको हिमालय पार दृढ किया, तो भी वह मेरे चित्तको किन-किन भावोंमें सराबोर करनेके लिए काफ़ी होता। किन्तु अब तो आचार्यके महान् दार्शनिक ग्रन्थ तत्वसग्रहके बडोदासे छपकर निकल जानेपर सारा संसार उनका लोहा मानता है। अपने समयके सारे ही भारतीय दर्शनोंकी इन्होंने पाच हजार श्लोकोंमें गम्भीर आलोचना की है। बौद्ध दार्शनिक त्रिमूर्ति—दिङ् नाग, धर्मकीर्ति और शान्तरक्षितमें ये शामिल हैं। कभी खयाल आता, इसी खोपड़ीसे तत्वसग्रह जैसा ग्रन्थरत्न निकला था। कभी ख्याल आता, अहो! इतना बड़ा-विद्वान् ७५ वर्षकी आयुमें दुर्गम हिमालयको पारकर यहा धर्मका झडा लहराने आया। ऐसे विद्वान्के लिए क्या भारतमें कम सम्मान करनेवाले लोग थे? कभी अपने आजकलके भार-तीय विद्वानोंकी ओर ख्याल जाता जो कि चालीस वर्षके बाद ही अपनेको वृद्ध समझ हाथ पैर छोड देते हैं। सचमुच उस खोपड़ीके सामने खडे हुए मन करता था कि इसे जैसे हो तैसे भारत ले चलूँ और लोगोंको तत्वसग्रहके साथ इस खोपड़ीको दिखाऊं—देखो, ये वे शान्त-रक्षित हैं जो सिर्फ ख्याली दार्शनिक ही नहीं थे, बल्कि ७५ वर्ष की उम्रमें धर्मविजय करनेके लिए हिमालय पार गये थे; वहींसे मैं इन्हें लाया हूँ! उस समय मेरा हृदय द्रवीभूत हो रहा था। देर तक

निस्तब्ध उस खोपड़ीके सामने खड़ा हुए देख उन लोगों ने क्या समझा होगा !

७. विहारका कुप्रबन्ध

दूसरे तलपर अमितायुःकी मूर्ति थी। तीसरा तल खाली थी। दिखानेवाले भिक्षु ने बतलाया, देखिये इस छतके बीचमें कोई खम्भा नहीं है। वहाँसे उतरकर हम द्वीपों (=ग्लिङ्)को देखने चले। पहले जम्बूद्वीपमें गये। यहा अवलोकितेश्वर मूर्ति है। पास ही नेतुङ्-चुन्-मो (रानी)की चंदनकी मूर्ति है, जिसने सम्भवतः इस द्वीपको बनवाया था। फिर ग्यँ-गर-ग्लिङ (=भारतद्वीप) में गये। यहीं वे भारतीय पंडित रहा करते थे, जिन्होंने भोटवाली शिष्यो और सहायकों-की मददसे अपार ग्रन्थराशिको संस्कृतसे भोट-भाषामें तर्जुमा किया था, और जिनकी इस कृतिसे ही हजारों ग्रन्थ—जो दानव मानवों और क्रूर कालके अत्याचारसे भारतमें नष्ट हो गये—आज भा भोट भाषामें मौजूद हैं। १०४७ ई० (अग्नि-शूकर वर्ष)में जब आचार्य दीप-कर श्रीज्ञान सम्-ये आये, तो यहाँ संस्कृत पुस्तकागारको देखकर वे दङ्ग रह गये। उन्होंने कहा, यहाँ तो कितने ही ऐसे ग्रन्थ भी हैं; जो हमारे भारतीय विश्वविद्यालयोंमें भी दुर्लभ हैं। अफसोस ! प्रमादकी आग ने उस रत्नभाडारको स्वाहाकर दिया। आजकल मुख्य विहार की तो कुछ रक्षा आदिका ख्याल रखा जाता है; किन्तु इन द्वीपोंको जिनमें सैकड़ों वर्षों तक भारतीय और भोट देशीय पंडित रहकर साहित्यिक और धार्मिक कृत्य करते रहे, मूर्ख जड़ भिक्षुओंके हाथमें दे दिया गया है। हर द्वीप ऐसे किसी भिक्षु की निजी जायदाद है। किसी-किसीमें तो वह अपनी रखैलोंके साथ भी रहता है। कितने हीके मकान और दीवारें रुण्डमुण्ड हैं। माना कि यह विहार निग्-मा-पा सम्प्रदायके हाथमें है, और उनके भिक्षु तिब्बतमें सबसे ज्यादा गये गुजरे हैं, और सम्प्रदाय ख्याल करके सुधारक दगे-लुग् सम्प्रदाय वाले राज्यशक्ति

रहनेपर भी हस्तक्षेप नहीं करना चाहते, किन्तु यहाँ तो सवाल है, भोट देशके सर्व पुरातन मठको, उसकी मर्यादाके अनुसार सुरक्षित रखने-का। निग्-मा वालोंको कहना चाहिए, कि उसकी उचित देखभाल करें, नहीं तो हमें हस्तक्षेप करना पडेगा। इतना कहने पर ही सब ठीक हो जायगा।

यहाँ एक भिक्षु ने हमें पद्म-क-थड् (=पद्म सभवके जीवन चरित)-की एक पुरानी हस्तलिखित पुस्तक दी। पचीस पुराने चित्रपट भी लिये। भोटमें बडेसे बड़ा सिक्का भी ताँबेका है। ल्हासा हम पैसोंका बोझ साथ नहीं ले चल सकते थे। हमने पासके गाँवके एक प्रतिष्ठित आदमीको पत्र लिखवा दिया किन्तु वह तब हमें मिला जब हम सम-येसे कई मील आगे चले गये थे। अन्यथा और भी कितनी ही पुस्तकें मूर्तियाँ और चित्र मिलते।

८. चंगेज खानके वंशज

उग्येन् कुशों ने घोड़ोंका इन्तजाम करवा दिया। ११ अप्रैलको दस बजे हम सम्-ये -आचार्य शातरक्षितकी कृति—को प्रणामकर विदा हुये। ४, ५ मील जानेपर हङ्-गो चङ् गङ्के वे आदमी मिले। उन्होंने कहा लौट चले, जो खर्च चाहिए हम देते हैं। लेकिन अब हमें लौटना पसन्द नहीं आया। अब हम ऊपरकी ओर जा रहे थे। रास्ता अच्छा है। दो ढाई घंटा चलनेके बाद रास्तेपर हमें अकेला एक कोठरीका मकान मिला। यह वही स्थान है जहाँ पर सम्-ये बनाने वाले सम्राट् ठि-स्रोङ्-ल्दे-ब्चन् पैदा हुए थे। आगे एक बडा गाँव मिला जो कि अब अधिकाश उजड़ा हुआ है। फिर आगे हङ्-गो-चङ गङ् गाँव। रात यहीं रहे। इधर कई सप्ताहसे स्नान नहीं किया था। पासमें बहता नाला देख साबुनसे खूब स्नान किया, सवेरे वहासे उन्होंने दो घोडे अगले मुकामके लिये दे दिये, और एक पत्र अपने दोस्तको लिख दिया कि आगेके लिए हम घोडे दे देंगे। यद्यपि पत्रोंके

मोलका हमें पहले भी तजर्बा हो चुका था, तो भी बाज वक्त विश्वास करना ही पड़ता है। चढाई बहुत कड़ी न थी। एक आखिरी गाँव पड़ा। आगे छोटी-छोटी झाड़ियोंका जंगल सा मिला। तिब्बतमें वस्तुतः यह आश्चर्यकी चीज़ है। जोतके इस ओर बर्फ़ बहुत कम ही मिला। तो भी १८ हजार फुटकी ऊँचाईपर सर्दीका अधिक होना जरूरी ही ठहरा। हाँ उतराईमें बर्फ़ खासी मिली। एक जगह देखा एक मरणासन्न गदहा रास्तेकी बर्फ़पर दम तोड़ रहा है, पासमें उसकी मालकिन स्त्री रो रही है। बेचारी जब तक वह मर न जाय, तब तक उसे अकेला छोड़कर जानेका साहस नहीं करती थी। रास्तेमें यहां भी दाहिनी ओर एक मठका ध्वंसावशेष देखा। लोगों ने बतलाया यह सोग पो-ज़ो-कर (=गुशीखानवाली) मगोल सेनाका काम है, जिसने भोट देशको विजयकर दलाईलामाको प्रदान किया। रास्तेमें एक जगह चाय पानकर ७ बजे शाम तक हम फिर उइ-छु (ल्हासावाली नदी)के किनारे दे छेन जोङ् में पहुँच गये। यह गाव मंगोलिया और चीनके व्यापारिक मार्गपर बसा है। बीचमें एक छ्ुट पहाड़ीपर एक मठ और सरकारी जोङ् (=किला या कचहरी) हैं। रहनेके लिए तो स्थान ठीक मिल गया, किन्तु सवारीके घोडेके लिए दिक्कत होने लगी। किसी तरह मेरे लिए घोडेका प्रबध हुआ। धर्मकीतिको पैदल चलना पडा।

यहाँसे ग-दन् (द्गऽ ल्दन्) मठ एक दिनका रास्ता है। इस मठका प्रसिद्ध सुधारक चाङ् ख पा ने पन्द्रहवीं सदीके आरभमें अपना पीठस्थान बनाया था। उनका देहान्त भी यहीं १४१६ ई०में हुआ था। तिब्बतका सुधार पन्थी पीली टोपीवाला सम्प्रदाय (जिसके अनुयायी टशीलामा और दलाईलामा भी हैं) इसी मठके नामपर गदन्-पा कहा जाता है। गदन्का दर्शन भी हमारे इस प्रोग्राममें था।

११ अप्रैलको धर्मकीर्ति पैदल और मै घोडेपर रवाना हुए। हमने अपनी सारी चीज़ें बोरेमें बन्दकर लाहकी मुहर दे वहीं रख दी। रास्ता साधारण-सा था। दोनों ओर वही नंगी मिट्टी-पत्थरकी पहा-

ड़ियाँ, चौड़ी किन्तु अधिकांश हरीतिमाशून्य उपत्यका। आज चैत्रकी पूर्णिमा थी। गदन्में उत्सव था, इसलिए बहुतसे लोग जा रहे थे। गदन्के पास पहुँचनेपर पहाड़की चढ़ाई शुरू हुई। मठ एक पहाड़की रीढके पास बसा हुआ है। से-रा डेपुङ् आदिमें इतनी चढ़ाई नहीं है। विहारके पास पानीका झरना भी नहीं है, इसलिए दूरसे घोड़ों और खच्चरोंपर पानी लादकर लाया जाता है। धर्मकीर्तिके परिचित एक मंगोल भिक्षु थे, उन्हींके यहाँ जाकर ठहरे। पहले हम उस मंदिरमें गये, जिसमें एक स्तूपके भीतर चोङ्-ख-पाका शरीर रक्खा है। ऊपर मंगोल सर्दारका चढाया शामियाना है। साथी ने बतलाया इस जगह जे-रिन्पोछे का शिर है। फिर उस स्थानपर गये जहाँ महान् सुधारक रहा करता था। वह काठका आसन अब भी मौजूद है, जिस-पर बैठ उसने अनेक विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ लिखे। एक बक्सको दिखला-कर बतलाया, कि इसके भीतर चोङ्-खके हाथकी लिखी सभी पुस्तकें बन्द हैं। मंदिरमें यहाँ भी सोने चाँदीकी भरमार है। नीचे उतर-कर हम १८८ खम्भोंवाले उपोसथागारमें पहुँचे जहाँ भिक्षु धार्मिक-कृत्यके लिए एकत्रित होते हैं। यहाँ चोङ्-ख-पाका सिंहासन रखा है। तब विशेष पूजाका समय था। रंग-बिरंगे सत्तूके चूर्णसे बेल बूटाको हुई कई मनोरम वेदिकायें थीं। एक जगह हवन वेदिका भी सजी हुई थी। एक सुचित्रित शालामें सिंहासनपर पुरुष-प्रमाण वर्तमान दलाईलामाकी मूर्ति थी। आजकल इस मठमें तीन हजार भिक्षु रहते हैं। एक ठ-छुङ् और तीन खन्-पो हैं। बाकी कायदे यहाँके भी से-रा डेपुङ् जैसे हैं। हम जिन मंगोल भिक्षुकी कोठरी में ठहरे थे, वे गु-शी खान्के वंशज हैं, इसलिए लोग अधिक आदर करते हैं। लोगों ने बतलाया कि पहले यहाँ बहुत मंगोल भिक्षु रहा करते थे किन्तु अब इधर कम हो गये हैं। कारण, आजकलका मंगोलियाका परिवर्तन ही होगा।

‡९. एक गरीबकी कुटिया

१४ अप्रैलको घंटाभर दिन चढ़े हमने गंदनसे प्रस्थान किया। दोपहर तक दे-छेन् जोङ् लौट आये। अबकी धर्मकीतिका परिचित एक मङ्गोल तथा उसकी संगिनी एक खम्-देश-वासिनी रास्तेमें मिल गई। सलाह ठहरी कि यहाँसे ल्हासा तक क्वामें चला जाय। दो साङ (प्रायः १२ आने) किराया ठीक हुआ। सवेरे जल्दी ही चल पड़ेंगे, यह ख्यालकर हम लोग शाम हीको मल्लाहकी जीर्ण-शीर्ण कुटियामें चले गये। सवेरे देखते हैं कि मल्लाह टालमटोल कर रहा है। कभी कहता है, और आदमी आयेंगे। कभी कहता, सवारी तो पूरी हुई नहीं. चलें कैसे? हमने २॥ साङ् और बढ़ाये तब दिन चढ़नेपर नाव ने प्रस्थान किया, हाँ; एक बात भूल गये। हमने जितने गरीबोंके घर तिब्बतमें देखे थे, उनमें सबसे गरीब यह कुटिया थी। किन्तु इसमें भी दो-तीन चित्रपट और तीन-चार मिट्टीकी सुन्दर मूर्तियाँ रक्खी हुई थीं; और वे हमारे यहाँके कितने ही धनी मंदिरोंमें रक्खी जयपुरकी भद्दी मूर्तियोंसे कई गुना सुन्दर थीं।

नावकी यात्रा सभी जगह आराम और आनन्दकी चीज़ है। हम लोग आस-पासके गाँवोंकी शोभा देखते रहे जा रहे थे। दो घंटा चलनेके बाद दाहिनी तरफ दूरसे हमें हेर्-बाका पहाड़ दिखलाई पड़ा। यहाँ कितने ही समय तक आचार्य दीपंकर श्रीज्ञान रहे थे। नदीके बायें किनारेके रास्तेसे गं दन् मेलेके यात्रियोंको भीड़ लौटती देखी। ल्हासाके बहुत पहले हीसे नदीके दाहिने किनारेपर बाँध बाँधा गया है, जिसमें नदीको धार ल्हासाकी ओर न बहके। दोपहरको हम ल्हासा पहुँच गये।

‡ १०. वापिस ल्हासामें

५ अप्रैलको हमने ल्हासा छोड़ा था, और १५ अप्रैलको कुल

दस-ग्यारह दिनमें, हम लौट आये, तो भी हमें ऋतुपरिवर्तन बहुत स्पष्ट मालूम होता था। हमने ल्हासाको जाड़ेमें छोड़ा था, और पाया गर्मीमें। एक और परिवर्तन देखा कि जहाँ जाते वक्त रुपयेका १३½ टंका था, वहाँ आज १५½ टंका देनेपर भी रुपया नहीं मिलता था। हमारे लिए अच्छा हुआ। १७॥ दोर्जे (१ दोर्जे =५० साङ्, १ साङ् =१० शोगङ्, १॥ शोगङ् = १ टंका) में पहले हमें एक आदमी ने कन्ग्युर् देनेको कहा था, और उतने ही पर अब हम उसे लाये।

१६ अप्रैलको दूसरा छोटा उत्सव शुरू हुआ। अब तो हम अपनी चीजें समेटने बाँधनेमें लगे थे। चित्रपटों और कुछ पुस्तकों-को भीतर मोमजामोंके साथ लकड़ीके बक्सोंमें बन्दकर ऊपरसे टाट और फिर ताजा याकका चमड़ा लगाया गया। यह सावधानी बड़ी लाभदायक हुई, नहीं तो दार्जिलिङ्गके पहाड़ोंकी वर्षा, फिर बंगालकी वर्षा, फिर लङ्काकी वर्षा—इन तीन वर्षाओंमें पुस्तकें खराब हो जातीं। कुछ पुस्तकें पहले ही खच्चरोंपर ग्याचीको भेज दी गई थीं। स्तन्-ग्युर् बहुत खोजनेपर भी ल्हासामें नहीं मिल सका। अब उसके लिए स्नर्-थङ् के छापाखानेमें हमारा जाना आवश्यक ठहरा।

नवीं मंजिल

ग्रंथोंकी तलाशमें

१. फिर टशी-ल्हुन्पोको

पहले मैं किरायेके खच्चर ढूँढ रहा था। किन्तु वक्तपर किराये-वाले नहीं मिला करते। फिर ख्याल आया किरायेकी सवारीमें निश्चय नहीं रहता, और सब मिलाकर खर्च भी ज्यादा बैठ जायगा, इसलिए

अपने और धर्मकीर्तिके लिए दो खच्चर ही खरीद लेना चाहिये। दोस्तों ने बतलाया कि कलिम्-पोङ्में दाम निकल आयेगा। यह सोच मैंने साढ़े आठ और साढ़े पाँच दोजे में दो खचरियाँ खरीदीं। २२ अप्रैलको साढ़े नौ बजे ल्हासासे बिदा हुए। सवा नौ मास तक एक साथ रहनेके कारण छुशिङ्-शाके स्वामी ज्ञानमान् साहुसे, उनके सहकारी गुभाजू धीरेन्द्र वज्र, और महिला साहुसे तथा दूसरे पुरुषोंसे बड़ी ही घनिष्ठता हो गई थी। इनके कारण ल्हासा भी घर जैसा हो गया था। ऐसे बन्धुओंके बिछुड़नेके बारेमें गोसाई जी ने ठीक लिखा है—

बिछुडत एक प्राण हर लेई।

वे शहरके बाहर तक पहुंचाने आये। फिर हम दोनोंकी सवारी पोतला-के सामने निकली। किसी वक्त यह पोतला चाँद-खिलौना जैसा मालूम होता था, पर आज कई महीनोंके दर्शनसे उसका महत्त्व मानो खो गया था।

हम दोनों ने खाने-पीने, ओढ़ने बिछौनेके अतिरिक्त अनेक गोलियोंका एक-एक पिस्तौल भी साथ ले लिया था। धर्मकीर्ति ने जहाँ चमडेके केसमें लिपटी अपनी रिवाल्वरको बाहर करके बाँध रक्खा था, वहाँ कार्तूसोंकी मालाको भी ऊपरसे जनेऊकी तरह लटका लिया था। मैंने तो अपने पिस्तौल हीको बाहरकी ओर लटका रक्खा था। हम लोग अब अकेले जा रहे थे, और तिब्बतमें डाकुओंका बड़ा खतरा रहता है, इसके लिए यह इन्तजाम जरूरी था। निश्चय किया था कि आज स्ञे थङ्में रहेंगे, और फिर उस तारा मन्दिरको देखेंगे, जिसमें हमारे दीपंकर श्रीज्ञानने शरीर छोड़ा था। दोपहर तक हम स्ञे-थङ् पहुँच गये, और डेरा उसी मकानमें डाला जिसमें जाते वक्त रहे थे। बेचारी घरमालकिन पहचान न सकी, यद्यपि उसको याद था कि एक लदाखी भिखमगोंके कपड़ेमें इसी रास्तेसे गया था।

चाय-पानके बाद कुछ विश्रामकर मैंने तारा मन्दिर (स्ग्रोल मा-

ल्ह-खट्) जानेके लिए कहा। पूछनेपर मालूम हुआ, कोई दूर नहीं है। फिर मैंने खच्चरपर चलनेकी ज़रूरत नहीं समझी। धर्मकीर्ति खच्चरोंकी देखभालके लिए रह गये, मेरे साथ एक ल्होखाकी लड़की पथप्रदर्शिका कर दी गई। गाँवसे निकलनेपर एक दूसरा टोला पार किया। यहाँसे तारा मन्दिर दूर नहीं मालूम होता था, लेकिन उसका कारण तो तिब्बतकी स्वच्छ हवाकी भ्रमकारिता थी। स्थान दो मीलसे कम नहीं होगा। अन्य प्राचीन महत्वपूर्ण स्थानोंकी भाँति यह स्थान भी उपेक्षित है। मकान जीर्ण-शीर्ण हैं। भीतर तारा देवालय है। बाहर बड़े मोटे-मोटे लाल चन्दनके खम्भे लगे हैं, उनकी खुर्दरी शकल ही बता रही थी कि वे आठ नौ-सौ वर्षसे कम पुराने नहीं हैं। वहा सारी ही मंडली लड़कोंकी थी। पुजारी साधु भी लड़का, और उसके आस-पास दूसरे भी सभी लड़के मैंने दो चार आनेके पैसे बाँट दिये। फिर क्या था, बड़े उत्साहसे हर एक चीज दिखलाई जाने लगी। हमने बड़े लड़कोंको बता दिया कि हम आचार्य दीपंकर श्रीज्ञानकी जन्मभूमिके हैं। मन्दिरके भीतर दीपंकरकी इष्ट २१ तारा देवियोंकी सुन्दर मूर्तियाँ हैं। उसी मन्दिरमें बाईं ओर एक कोनेमें एक लोहेके पिंजरेमें, महागुरु दलाईलामाकी मुद्राके भीतर बन्द, दीपंकरका भिक्षापात्र, दंड और ताँबेका लोटा रक्खा है। भीतर ही कुछ चाँदीके सिक्के और अनाज भी रक्खे हैं। मन्दिरके भीतर पीछेकी ओर तीन पीतलके स्तूप हैं, जिनमेंसे एकमें दीपंकरका पात्र, दूसरेमें सिद्ध कारापाका हृदय, और तीसरेमें दीपंकरके शिष्य डोम्-तोन्का वस्त्र रक्खा हुआ बतलाया जाता है। बाईं ओर अमितायुषके मन्दिरके बाहर दो जीर्ण छोटे-छोटे पुराने स्तूप हैं। सब देख रहा था। किन्तु उधर शाम होनेका भी ख्याल था, इसलिए थोड़ी देर बाद वहाँसे लौट पड़ा।

२५ अप्रैलको सवेरे हम लोगोंने ञे-थङसे प्रस्थान किया। खच्चर अपने थे, और मजबूत भी थे, इसलिए निश्चय किया गया

कि चार पाँच दिनमें ग्याची पहुँच जायँ। इधर लालरंगी ऊनके गुच्छोंवाले याक हल जोत रहे थे। यहाँ खेती अभी बोई ही जा रही थी, किन्तु जब हम दोपहरको छु-शर् पहुँचे, तो वहाँ खेतोंमें बीज जम भी चुके थे। इधर वृक्षोंके पत्ते भी खूब बड़े-बड़े थे। अब जाते वक्तकी तरह भिखमंगोंके वेषमें थोड़े ही थे। गर्मीसे बचावके लिए हमने एक फेल्टकी हैट भी लेली थी। और लम्बे पोस्तीनवाले चोगे पर हैट धारण की थी। छु-शर्में रास्तेपर सबसे अच्छे कमरेमें जाकर ठहरे। घरवाले हर तरह खातिरके लिये तैयार थे। धर्मकीर्ति खच्चरोंके खिलाने पिलानेका पूरा ध्यान रखते थे। इरादा तो किया था यहा चाय पान करके आगे चल देंगे। लेकिन जहां बैठ गये, बैठ गये। गृह स्वामिनी एक अर्ध चीनीकी स्त्री थीं। बहुत दिनोंसे पति न आया, न उसने कुछ खबर ही दी। बेचारीको पता लगा था कि वह कलिम्पोङ् में है। आँखोंमें आँसू भरकर मुझसे कहा, यदि पता लगे तो मुझे सूचित करेंगे।

ल्हासामें एक व्यापारी ने मुझसे कहा था, कि हमने कग्युर छापकर लानेके लिए अपने आदमी भेजे हैं। वह आ रहा है। उसकी बातपर हमने दो सप्ताह प्रतीक्षा की। और कितनी प्रतीक्षा करते। आज उन कंग्युरोंसे लदे खच्चर यहाँ मिले। उक्त व्यापारीको सालके साल कंग्युरकी एक दो प्रति छापकर महागुरुको देनी पड़ती है। छापते वक्त वह दो-तीन और छपवा लेता है। उसके लिए न उसे विशेष महसूल देना होता है, न ढुलाईका किराया देना पड़ता है। लेकिन मैंने ऐसे पूजाके कंग्युरोंका पोतलामें देखा था। जिन्हे मैं तो मुफ्त भी लेनेके लिए तैयार नहीं था। बिल्कुल बेगार काटी जाती है। कागज सबसे रद्दी चुना जाता है, फिर स्याही भी वैसी ही इस्तेमाल होती है, छापनेमें भी वही ला-परवाही, दस पंक्तियोंमें एक पंक्ति भी पूरी तरह नहीं पढी जा सकती।

दूसरे दिन चाय पीकर सवेरे हम दोनों चल पड़े। ब्रह्मपुत्र पार

करनेका घाट बहुत दूर नहीं था। अब धार न उतनी बड़ी थी, न उतनी तेज़। नावपर चढ़ते-चढाते तीन और सवार पहुँच गये। नदी पार-कर अब हम पाँचों सवार एक साथ चलने लगे। यदि हमीं दोनों रहते तो इतनी जल्दी न चल सकते। हमारे वे तीन साथी जल्दी जाना चाहते थे। रास्तेमें हमने दो जगह चाय पी। फिर खम्‌बो ला चढना शुरू किया। बर्फ़का कहीं नाम न था। लासे एक मील नीचे एक मरियल घोड़ा देखा। हमारे साथियों ने कोशिश की कि घोडेको जोत पार करा उस तरफके किसी गाँवमें रख दें। बड़ी मेहनतसे वे उसे एक फर्लाङ्ग ऊपर तक ले आ पाये। घोडे ने आगे चलनेसे इन्कारकर दिया। साथियो ने यह कहकर छोड़ दिया कि यहाँ पास पानी भी तो नहो है, यह कैसे जियेगा। लादनेवाले जब अपने घोड़ोको अति दुर्बल देखते हैं तब ऐसे ही छोड़ जाते हैं। खम्‌-बा लासे हमें एक ओर ब्रह्मपुत्रकी पतली धार दिखलाई पड़ती थी, और दूसरी ओर न-ग-वे की विशाल झील। खम्बा लाके आगे सीधी उतराई उतरनी थी। खच्चरोंको हमने छोड़ दिया, और पैदल उतरने लगे। आज नीचे हम-लुङ् गाँवमे डेरा रहा। हमारे तीन अन्य साथी सौदागर थे। उनके हर जगह परिचित थे।

२७ अप्रैलको हम सवेरे चले, तो बड़े ज़ोरसे सीधी हवा हमारी ओरको बह रही थी। अब हम झीलके किनारेसे चल रहे थे। यह झील ऐसे ही तेरह हजार फ़ुटसे ऊपर है; दूसरे इस तेज़ हवा ने सर्दीको और बढ़ा दिया था। रास्तेमें पानीके बहनेकी नालियाँ जमी हुई थीं। झीलके भी किनारेपर कुछ बर्फ़ जमी हुई थी। सर्दीके कारण या अपनी मौजसे हमारी घड़ी भी जेबमें बन्द हो गई थी। दूसरे गाँवमें जाकर हम लोगों ने भोजन आदिसे निवृत्त हो कुछ घन्टे विश्राम किया। फिर रवाना हुए। हवा काहेको कम होनेवाली थी? सबसे ज्यादा तकलीफ थी जो सामनेसे उड़-उडकर छोटी ककड़ियाँ मुँहपर पड रही थीं। खम्‌बा ला पार करते समय तो हमने वेसलिन लगाकर हाथ

अँग्रेजी ट्रेड एजटके रहनेकी जगहपर गये। लोग इसे किला कहते हैं। क्योंकि किले हीकी तरह यह मज़बूत है। सुना है, दो दीवारें, जो बाहरसे मिट्टीकी सी दिखाई पड़ती हैं, वे पत्थर और मोटी फ़ौलाद-से बनी हैं। अंग्रेजी डाकखाना इसी किलेके भीतर है। सुना है दो-चार मशीनगनें भी हैं। यों तो सिपाही १००के करीब ही रहते हैं। किन्तु जब दलाईलामाकी अंग्रेज सर्कारसे बड़ी घनिष्ठता थी, तभी उनसे कई सौ एकड़ खेतीकी जमीन ले ली गई थी, जिसमें खेती करनेके लिए सैकड़ों पुराने पल्टनिया गोर्खा सिपाही हैं। इस प्रकार अंग्रेज सर्कार ने खतरेका पूरा इन्तिजामकर रक्खा है। पुरानी एजन्सी जोङ्‌वाले किलेके पास थी, जिससे कभी मौका आनेपर जोङ्‌के तोप-के गोलेका शिकार होना पड़ता। इसलिए अब एजन्सी दूर बनाई गई है। यदि मैं गल्ती नहीं करता तो छतपर कपडे फैलानेकी डोरीकी जगह वहाँ रेडियोका तार भी फैला हुआ था। कहनेको ग्याची का अंग्रेज़ पदाधिकारी व्यापार-दूत या ट्रेड एजट कहा जाता है, किन्तु किसी भारतीयको वहाँ जाकर व्यापार करनेकी इजाजत नहीं है। फ़ौजी सिपाहियोंके रसद-पानीका ठेका किसी मारवाडी सज्जनको है। उनके कारपरदाज दो एक ग्याचीमें रहते हैं, किन्तु उन्हें भी तिब्बतके साथ व्यापार करनेका अधिकार नहीं है। इस प्रकार ग्याची-के अंग्रेजी एजन्टको ही ट्रेड एजन्टकी शकलमें पोलिटिकल एजन्ट समझना चाहिए। सन्धिके अनुसार सर्कार पोलिटिकल एजन्ट तिब्बत-के भीतर नहीं रख सकती, इसलिए उसे ट्रेड-एजन्टका नाम दे रक्खा है। हाँ, ग्याचीकी व्यापार-एजन्सीका खर्च यदि भारतके ऊपर है, तो भारतियोंको हक है कि वे सर्कारको इस बातके लिए मजबूर करें कि वह उन्हें तिब्बतमें व्यापार करने की इजाज़त दे। ग्याचीकी व्यापार एजन्सीमें एजन्ट और सहायक एजन्टके अतिरिक्त एक डाक्टर भी—ये तीनों सदाही अंग्रेज—रहते हैं।

यहाँ एक अंग्रेज़ी डाकखाना और तारघर भी है। डाक हर दूसरे दिन आती है।

३. फिर शी-गर्चीमें

१ मईको हम दोनोंने टशी-ल्हुन्पोके लिए प्रस्थान किया। कुछ बादल था; तो भी हम चलनेसे बाज न आये। रास्तेमें कुहरे ने घेर लिया, और बर्फ भी पड़ने लगी। रास्ता कोई सड़क तो था नहीं। खेतोंमें भटक गये। हाँ, दिशाका हमने कुछ थोड़ा ख्याल रक्खा। दाहिनी ओर हम नदीके पार जा ही नहीं सकते थे। और बाईं ओर पर्वत पंक्ति थी। इसलिए हम रास्तेसे बहुत दूर भटक नहीं सकते थे। आखिर हम एक गाँवमें पहुँचे। अब तो हम कु-शो (बडे आदमी) थे, भिखमंगे थोड़े ही थे, जो ठहरनेके लिए मकान मिलनेमें दिक्कत होती। एक बड़ेसे मकानमें जाकर उतरे। चायके अलावा कुछ उबले अडे भी मिले। भोजन करके थोड़ा विश्राम किया। फिर घरके नौकरोंको छङ्-गिङ् (=इनाम) दे रवाना हुए। तीन बजे कुछ बर्फ पड़ी, और हवा तेज़ हो गई, जिस पाचा गाँवसे ग्यांची पहुंचनेमें पिछली बार हमें तीन दिन लगे थे, आज एक ही दिनमें उसे भी पार-कर तो-सा गाँवमें जाकर ठहरे।

२ मईको तड़के ही रवाना हुए। पिछली बार इधरसे जाते वक्त फसलकी सिंचाई हो रही थी। हरे-भरे खेत दूर तक फैले हुए थे। इस वक्त लोग बोनेके लिए अपने खेतोंको जोतकर तैयार कर रहे थे। दो घंटा दिन चढ़ते-चढ़ते पतले कुहरोंकी चादर ओढ़े टशी-ल्हुन्पोका महाविहार दिखाई पड़ा। रास्तेमे ठहरकर एक जगह हमने चाय पी। एक बजे शी-गर्चा पहुँच गये।

४. स्तन्-ग्युर छापेकी तलाश

हमारे पुराने परिचित ढाक्बा साहु तो दुकान बन्दकर उस वक्त

नेपाल चले गये थे, किन्तु साहु मणिरत्न मिले। उन्होंने एक मकानमें हमारे रहनेका बन्दोबस्त कर दिया। पहले तो हमें उस खम्‌बा सौदागर-से भेंट करनी थी, जिसके मालिकने छुशिङ्‌-शाके साहुके कहनेपर हमें आवश्यक पैसोंके लिए चिट्ठी लिखी थी। कुछ पूछ-ताछके बाद उसका पता मिल गया। जाकर उसे चिट्ठी दी। पैसा देनेमें उसने कुछ हिचकिचाहट दिखलाई। उस दिन तो हमने ज़ोर न दिया लेकिन हम सोचमें जरूर पड़ गये। यदि कहीं उसने पैसा न दिया, तो ग्याची जाकर ल्हासा रुपयोंके लिए तार देना पड़ेगा।

दूसरे दिन फिर सवेरे उसने कुछ उत्तर नहीं दिया। हमारा सब काम बन्द था। हमें स्नर्‌-थङ्‌से स्तन्‌-ग्युर छपवाना था, और टशी-ल्हुन्पोसे सारे पुराने टशीलामोंकी ग्रन्थावली तथा दूसरी पुस्तकें लेनी थीं। दोपहर बाद हमने साहु माणिरत्नसे कहा, जाकर हाँ या नहीं में उत्तर लाइये। उनसे भी वह गोल-माल करने लगा। उन्होंने कहा—इस खतपर तुम्हारे मालिककी मुहर है या नहीं। उत्तर मिला—मुहर तो मालिक हीकी है; किन्तु इतनी भारी रकम देनेमें हिचकिचाहट होती है; अच्छा हम पैसा देंगे। कनौर (रामपुर-बुशहर)के रघुवर और भिक्षु सेनम् छेरिङ् भी मिल गये। उन्होंने हमारे काममें हाथ बँटाया। उस दिन जाकर हमने टशी ल्हुन्पोसे २२८ साङ् (२॥ साङ्=१ रुपया) में पहलेके छः टशीलामोंकी ग्रन्थावली तथा दूसरे ग्रन्थ खरीदे। दूसरे दिन ६३६ साङ्में कागज और स्याही खरीदी। पता लगानेपर मालूम हुआ कि पाँच छः दिनमें सारा स्तन्-ग्युर छापा जा सकता है। हमें बड़ी प्रसन्नता हुई, कि एक हफ्तेमें छुट्टी हो जायगी।

एक दिन हम दोनों स्नर्-थङ् गये। स्नर्-थङ् यहाँसे छः सात मील है। विहार पुराने तिब्बती विहारोंकी भाँति बराबर जमीनपर है, और एक आठ-दस हाथ ऊँची तथा ३, ४ हाथ चौड़ी चहारदीवारीसे घिरा है। अभी हमें फिर आना था इसलिए हमने छपाई आदिकी ही बातचीतकी। छापाखानेका अधिकारी दूसरा है, किन्तु वह बेचारा

उतना होशियार नहीं है, इसलिए उस अधिकारपर भी वहाँके न्याया-धीश ने अपना कब्जा जमाया था। ३०० साङ् छपाईकी मजदूरी तै हुई। हम लौट आये, और दूसरे दिन कागज़ स्याही भेज दी गई। वादा था कि सप्ताहमें पुस्तक छपकर मिल जायगी। साहु मणिरत्नकी भोटिया स्त्रीका भाई भी वहीं भिक्षु था। उसके बीचमें पड़नेसे आशा कर बैठे थे कि पुस्तक जरूर वक्तपर मिल जायगी! किन्तु पाँच-छः दिन बाद जब आदमी भेजा तो मालूम हुआ, अभी काम शुरू ही नहीं हुआ।

८ मईको मैं और धर्मकीर्ति स्नर्-थङ् गये। बहानाबाजी होने लगी। खैर, किसी प्रकार काम शुरू हुआ। अब हम यही डट गये।

स्नर्-थङ् (उच्चारण नर्-थङ्) विहार यद्यपि आजकल टशी-ल्हुन्पो (स्थापना १४४७ ई०)के आधीन है और इस प्रकार द्गे-लुग्-पा विहार है, किन्तु इसकी स्थापना ११५३ ई०मे लामा ग्तुम्-स्तोन् द्वारा हुई थी। द्गे-लुग्स-सुधारके वक्त यहाके भिक्षुओने सुधारवादको स्वीकार किया, और इस प्रकार यह विहार द्गे लुग्पा बन गया। ग्या-रहवीं-बारहवीं शताब्दीकी कितनी ही चदन और पीतलकी मूर्तियाँ यहाँ पर मौजूद हैं। भारतीय मूर्तियोकी विशेष पहिचान हैं,मूर्तिके आसनमें लगे मोटे-मोटे पीतलके छल्ले जिनमें बाँस डालकर उन्हे भारतसे यहाँ लाया गया। थुब्-बङ् और खम्-सुम् मंदिरमें कितनी ही पुरानी मूर्तियां हैं। बाहर आगनके चारो ओर बने ओसारेमे पतली पत्थरकी पट्टियोपर उत्कीर्ण ८४ सिद्धोमेंसे कितनो हीकी मूर्तियाँ हैं। पञ्चम दलाईलामा (१६१७-८२ ई०)के अमात्य मि-वङ्ने इस विहारकी विशेष उन्नतिकी थी। मि-वङ द्वारा स्वर्णाक्षरोमें लिखवाया क-ग्युर ग्रन्थ-संग्रह यहाँ मौजूद है। सस्कृत और भारतीय भाषाओंसे जितने ग्रन्थ भोट-भाषामें अनूदित हुए थे, पहले वे एक सग्रहमें जमा न थे। महापडित (बु-स्तोन) रिन्-छेन् ग्रुब (१२९०—१३६४ ई०) ने इन पुस्तकोंको दो सग्रहोमे जमा किया। इनमें बुद्ध वचन समझे जानेवाले ग्रन्थोंके

संग्रहको कंग्युर (=ब्कऽ-ऽग्युर) कहा जाता है, और बाकी दर्शन, काव्य, टीका, तन्त्र आदि ग्रन्थोंके सग्रहको स्तन्ग्युर, ब्रु-स्तोनके बाद बहुत थोड़ीसी और पुस्तकें जोड़ी गई हैं, जिनको कि पञ्चम दलाईलामाके अनुवादकों और लामा तारानाथ (ज म १५७५ ई०) ने अनुवाद किया। मि-वङ् ने इन दोनों बृहत् संग्रहोंको लकड़ीके तख्तों पर खुदवाकर छापने योग्य बना दिया। यह तख्ते इसी स्नर्-थङ् में हैं। इन्हींसे हमें अपने लिए स्तन्-ऽग्युर छपवाना था। आज कल टशील्हुन्पोमें टशीलामा (= पण्छेन् रिन्-पो-छे)के न रहने-से जैसे खुलेआम मद्यपान और अत्याचार होने लगा है; वैसे ही यहाँ भी है। अधिकारी छः मासके लिए टशील्हुन्पोसे ही भेजे जाते हैं। बिना काफ़ी भेंट-रिश्वत दिये किसीको यह दर्जा नहीं मिलता।

५. गन्-ती महाराजा

उस वक्त भारतमें महात्मा गान्धीका सत्याग्रह जोरोंपर था। इसकी खबर हिमालय पार इस अखबारोंसे परेकी दुनियामें भी पहुँच गई थी। ११ मईको एक भिक्षु कहने लगा—जानते हैं, गन्-ती महाराजा लोबोन रिन्पोछे (=भोट देशमें सर्वत्र पूजित एक घोर तान्त्रिक लामा, जिसकी ऐतिहासिकता सन्देहास्पद है)का अवतार है। हमने कहा—लोबन रिन्पोछे तो समुन्दरका समुन्दर शराब पी जाता था, और औरतोंके बारेमें भी बहुत स्वच्छन्द था गन्-ती महा-राजा तो इन दोनों बातोंमें उससे उल्टा हैं। कहने वालेको अपने ख्याल पर थोड़ा शक तो जरूर हुआ, फिर बोल उठा—दूसरे अव-तारमें लोबेन-रिन-पो छे की यही मर्जी होगी। आज वैशाख सुदी चतुर्दशी थी। बहुतसे घी के दीपक जलाये गये थे। आज मेला था। बहुतसे लोग दर्शनार्थ आये थे। लोग ऊँचे प्राकार पर चढ़कर परिक्रमा करते थे। मुख्य द्वार पूर्वकी ओर है। तीन चार दिन रहकर देखा कि हमारे रहनेपर भी कामकी वही दशा है।

मौजसे छपाईकी जाती है। इस पर १२ मईको मैं शी-गर्चीं लौट आया। खच्चर तो अपने पास थे ही आनेमें दो घंटा ही लगा। रघुबर और धर्मकीर्तिको स्नर्-थङ् में छोड़ दिया।

ल्हासामें नेपालियोंके लिए रास्ता कबका खुल गया था, किन्तु अभी तक यहाँ ल्हासासे हुक्म नहीं पहुँचा था। दूसरेके ही नुकसानकी बातमें सर्कार इतनी आलसी नहीं है, बल्कि अपने नुक्सानमें भी उसकी यही हालत है। भोटिया सिक्केका दाम गिर जानेसे जहाँ ल्हासामें डाकखानेका टिकट एक ख-गङ् (= ½ शो गङ्, से १ शोंगङ् (= ⅔ टका = ¹⁄₁₀ साङ्)हो गया था, वहाँ अभी वही पुरानी ही दर चल रही थी। लड़ाईकी तैयारीका प्रभाव अब भी यहाँ बाकी था। अब भी छोटे लड़के सिपाहियोंको तरह राइट् लेफ्ट करते थे। सुना, आजकल सिपाहियों की अवस्थावाले जवानोंका नाम लिख-कर उनके हाथोंमें पैसा बाधा जा रहा है। शायद अब चीनसे युद्धके लिए यह तैयारी हो रही थी। यहाँ तो सिपाहियों ने ल्हासासे भी ज्यादा अत्यचार किये थे; ल्हासामें केन्द्रीय सर्कारके पास रहनेसे कुछ तो डर रहता था। नेपाली सौदागरोंकी दुकाने प्राय: घरोंके भीतर हैं। रक्षाके लिए उन्हें ऐसा करना पड़ता है। पत्थर फेंके जानेके डर-से वे अपनी खिड़कियोंमें काच भी नहीं लगाते। ग्याची और यहाका हाट ६॥ बजे सवेरेसे १॥ बजे तक रहता है। और इस चार घंटेके लिए भी हाट वाली दूकानदारिनें अगीठीपर चाय रखकर लाती हैं। ठाट जो ठहरा। कपड़े-लत्ते से लेकर घास-भूसा तक सभी चीजे हाटमें बिकती हैं।

६. अनमोल चित्रों और ग्रन्थोंकी प्राप्ति

टशी-ल्हुन्पो मे ङग्पा शर्-चे, किल-खङ् और थुसा-ग्लिङ् चार ङ-छुङ् (विभाग) हैं। खेन्पो भी चार ही हैं। किसी समय भिक्षुओंकी संख्या ३८०० थी, किन्तु टशी-लामाके चीन चले जानेसे

अब न उतने भिक्षु हैं, और न वैसी व्यवस्था, हाला कि जहाँ तक खाने-पीनेका सम्बन्ध है, यहाँके निवासी से-रा डे-पुङ्से अच्छी हालतमें हैं।

एक खम्-जन् (=विद्यालय)का प्रधान भागकर टशी ल्हामाके पास चला गया, उसपर सर्कार का भी कुछ रुपया बाकी था। सर्कार ने खम्-जन् पर जुर्माना कर दिया। इस वक्त लोग उसकी चीजें बेंच रहे थे। हमें पता लगा कि चीजोंमें चित्रपट भी हैं। पहुँच गये। वहाँ पर हमें तीन चित्रपटमाला पसन्द आईं। एकमें ग्यारह और बारह चित्रपट थे, जिनका विषय अधिकाश भारतीय और भोट-देशीय आचार्य थे, दूसरी मालामें ८ चित्र एक साथ जुटे हुए थे। ये सभी रेशमी कपड़ेपर थे और इनमें नागार्जुन, असंग, वसुबन्धु, दिङ्नाग, धर्मकीर्ति आदि भारतीय दार्शनिक चित्रित थे। तीसरी मालामें भगवान् बुद्ध और उनके बादकी शिष्य परम्पराके कितने ही स्थविरोंके चित्र थे। हम पहली दोनों मालाओंको ही खरीद सके, क्योंकि खम्‌वा सौदागर ने कह दिया था, जितना पैसा लेना हो एक ही बार ले लीजिये; और हमने जो पैसा लिया था, उसमें औरके लिए गुञ्जा-इश न थी।

१६ मईको एक अनमोल चीज़ हाथ लगी। पासके मठके एक लामा ने सुना कि भारतका एक लामा आया हुआ है। उसके पास ताड़पत्रकी एक पुस्तक थी। उसने अपने आदमीके साथ उस पुस्तक-को इस शब्दके साथ हमारे पास भेजा कि यह क्या पुस्तक है इसकी हमें खबर दें, और पुस्तक अपने पास रक्खें, क्योंकि हम तो पढना ही नहीं जानते। मैंने कुटिल[1] अक्षरोंको देखते ही समझ लिया कि यह

---

१. नागरीसे ठीक पहले हमारे अक्षरोंका जो रूप प्रचलित था, वह अक्षरोंके चक्करदार होनेसे कुटिल कहलाता है। सातवींसे दसवीं शताब्दी ई० तक सारे भारतमें कुटिल लिपियाँ प्रचलित थीं।

दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दीसे इधरकी पुस्तक नहीं हो सकती। नाम वज्रडाकतंत्र देखनेसे ख्याल आया कि यह तो कंन्ग्युरमें अनुवादित है। किन्तु उस समय मेरे पास सूची न थी। मैंने उनसे कह दिया कि मेरे ख्यालमें यह कंन्ग्युरमें अनुवादित है; यदि अनुवादित न होगी तो मैं पीछे नाम आदि लिखूँगा। पीछे देखनेसे मालूम हुआ कि उक्त ग्रन्थ कन्ग्युरके तन्त्र विभागमें अनुवादित है। और अनुवाद भी ग्यारहवीं शतब्दीके मध्यमें वैशालीके कायस्थ पंडित गंगाधर ने उसी श-लु मठके एक भिक्षु की सहायतासे किया था जहाँके लामा ने उसे अब मेरे पास भेजा।

पिछली बार १९२६ ई०में लदाख गया था, तो वहाँ मुझे टशील्हुन्पोके पास किसी मठके एक तरुण लामा मिले थे। उनके पास भी एक ताड़पत्र पर लिखी पुस्तक थी। पूछनेपर उन्होंने बतलाया था कि उनके मठमे बहुत सी पुरानी ताड़पत्रकी पुस्तकें हैं। उन्होने अपने मठका नाम डोर् बतलाया था। मैंने बहुतेरा खोजा, किन्तु किसी ने डोर्का पता नहीं बतलाया, पीछे समझा, जिस ताड़पत्रको मैंने अपनी आँखोंसे देखा, उससे तो इनकार नहीं कर सकता, किन्तु पचासों ताड़पत्रकी पुस्तकें होनेकी बात ठीक नहीं जँचती। अबकी बार (१९३१ ई०) जब दूसरी बार मैं लदाख पहुँचा, तो मालूम हुआ, उस डोर मठका दूसरा नाम एव गाम्बा है। उसके संस्थापक स-स्क्य पण-छेन (१११५-१२५१ ई०) थे; और वह स्नर्-थङ्से ऊपर कोई आधे ही दिनके रास्तेपर है। अब मुझे पुस्तकोंके होनेपर विश्वास है। मेरी समझमें स-स्क्य और एव इन्हीं दोनों मठोंमें, जो कि दोनों ही सक्य-पा सम्प्रदाय के अनुयायी हैं, वे संस्कृतके पुराने हस्त लिखित ग्रन्थ हैं, जिन्हें भारतीय पंडित ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दीमें भारत से ले गये। स-स्क्यके बारेमें यह भी सुननेमें आया कि वहाँ ऐसे भी कुछ ग्रन्थ हैं जिसका भोट भाषामें अनुवाद नहीं हो सका। हिन्दी के आदि कबि और सन्तमतके प्रवर्तक चौरासी सिद्धोंके भी बहुतसे ग्रन्थ इसी मठमें तर्जुमा हुए थे।

मुझे बड़ा अफसोस होता है कि मैं इन दोनों मठोंमें नहीं जा सका।

१५ मई का स्तन्-ग्युर छपकर आ गया। बीचमें एक बार और जाना पड़ा था। ल्हासामें जैसे पुस्तकोंको बाँधा था, वैसे ही यहाँ भी किया। हाँ यहाँ मोमजामा नहीं मिल सका। बोरी और याक् के चमड़ेपर ही सब्र करना पड़ा। चमड़ेके मामलेमें मुसलमान कसाई ठगने भी लगा था, उसने याक्के बड़े चमड़ेकी जगह जो (गाय और याककी दोगली नसल) का चमड़ा भेज दिया। हमने उसे लौटा दिया। उसने समझा परदेसी हैं, झख मारकर लेंगे; चमड़े को हमारे द्वारपर पटककर रोब दिखलाकर दाम माँगने लगा। हमने दाम देनेसे इन्कार कर दिया। गुस्सा मुझे वर्ष छः महीने बाद ही आया करता है; और वह तभी जब कोई धोखा देकर मूर्ख बनाना चाहता है, या आत्म-सन्मानके विरुद्ध बात कर बैठता है। उस दिन भी गुस्सा आ गया। खैर लोग उसे पकड़ कर ले गये। पीछे उसकी अकल ठिकाने आई। डरने लगा कहीं मामला जोङ्-पोन्के पास गया तो लेनेके देने पड़ेंगे।

हमने पुस्तकोंको अच्छी तरह बाँध २० अप्रैलको गदहोंपर लाद फ-री-जोङ्के लिए रवाना कर दिया। यहाँसे बिना ग्या ची गये भी फ-रीका एक सीधा रास्ता है।

दसवीं मंज़िल

वापसी

१. भोटकी सीमाको

२१ मईको मैं और धर्मकीर्ति सवेरे सात बजे चल पड़े। श-लु विहार रास्तेसे दो-ढाई मील दाहिनी ओर हटकर है। १० बजे हम

शन्-बु विहारमें पहुँचे। यह भी भारतीय विहारोंके ढङ्गके पुराने भोट-देशीय विहारोंकी तरह समतल भूमिपर बना है। चारों तरफ़ चहर-दीवारी है। पंडित बु-स्तोन् रिन्-छेन्-ग्रुब (रिन्-छेन्-ड्रुब् १२६०-१३६४ ई०, जिनके मुकाबलेका भोट देशमें दूसरा कोई न भूतो न भविष्यति) यहींके थे। यहाँ बु-स्तोन् पण्डितकी संग्रहकी हुई कंन्ग्युर् और स्तन्-ग्युर्की मूल हस्त-लिखित प्रति भी है; जिसको देखकर मि-वङ् नेरनर्-थङका छापा बनवाया। सात आठ सौ वर्ष पुरानी मूर्तियों, पुस्तकों तथा अन्य चीज़ोंकी यहाँ भरमार है। भारतसे लाई पीतल और चन्दनकी मूर्तियाँ भी कितनी ही हैं! एक बुद्ध-मूर्ति बर्मी ढंगसे चीवर पहने खड़ी थी; जिसमें कि चीवर वस्त्रका एक छोर बायें हाथकी हथेलीमें रहता है। भिक्षु ने पूछा, यह हाथमें लकड़ी है क्या? मैंने समझाया, आज भी बर्मामें इस तरह चीवर पहननेका रवाज है, यहाँ कई हस्तलिखित कंग्युर् और स्तन्-ग्युर हैं। कुछ तो बहुत ही सुन्दर और पुराने हैं। मि-वङ्के छापेके पहले-पहल छपे कंन्ग्युर और स्तन-ग्युरकी भी प्रति यहाँ मौजूद है। मन्दिरोंके दर्शन और कुछ चाय पानके बाद मेहरबान लामासे हमने विदाई ली; और बारह बजे बाद वहाँसे चल दिये। अब फिर वही देखा रास्ता नापना था। उस रात हम एक गाँवमें ठहरे; और २२ मईको ११ बजे दिनको ग्याची पहुँच गये।

कहाँ एक सप्ताहमें टशी-ल्हुन्पोसे लौट आनेवाले थे, और कहाँ बाइस दिन लग गये। मैंने ल्हासासे चलते वक्त भदन्त आनन्दको तार दिया था। पत्रमें भी लिख दिया था कि अमुक दिन भारत पहुँच जायेंगे। इधर २२ दिन लग गये, और मैंने उनको सूचना भी नहीं भेजी। उन्होंने कलकत्ता पत्र लिखकर पूछा। कलकत्तावालों ने बतलाया ल्हासासे चलनेके अलावा हमें कुछ नहीं मालूम। लंका जाकर अबकी मुझे भिक्षु बनना था। जिस परम्परामें मुझे भिक्षु बनना था, उसमें

सालमें एक ही बार संघ किसीको भिक्षु बनाकर अपनेमें सम्मिलित करता है। इसलिए भी तरद्दुद हो रहा था।

ग्याची पहुँचकर हमारी एक खच्चरीको कड़ी बीमारी हो गई। हम तो डर गये। किन्तु भोटमें हरएक खच्चरवाला वैद्य भी होता है। एक खच्चरवाले ने आकर दवाकी, खचरी अच्छी हो गई। तो भी हम २३ मईको साढे बारह बजेसे पूर्व रवाना न हो सके।

ग्याचीसे भारतकी सीमा तककी सड़कपर अँग्रेज सर्कारकी भी देख-रेख रहती है। जगह-जगह पुल भी हैं। बीच-बीचमें ठहरनेके लिए डाक-बँगले हैं; जहाँसे फोन भी किया जा सकता है। यहाँभी हमें जहाँ तहाँ पत्थरके उजडे मकान दिखाई पडे, जिनके उजड़नेका कारण लोगों ने मगोल युद्ध बतलाया। १२ मील चलकर रातको हमने चंदा गाँवमें मुकाम किया। सारा गाँव पत्थरके ढेर जैसा है। कोई अच्छा मकान नहीं। लोग भी ज्यादा गरीब मालूम होते हैं। २४ मईको फिर चले। अब हम नदीके साथ-साथ ऊपरको ओर चढ रहे थे। पहाड़ वृक्ष शून्य। उनमें कितने रङ्गवाले पत्थर-मिट्टी दिखाई पड़ते थे। स्तरोंका निरीक्षण भी कम कौतूहलप्रद न था। करोड़ों वर्ष पूर्व समुद्रके अन्तस्तलमें जा मिट्टी एकके ऊपर एक तहपर-तह जमती थी, परवर्ती भूचालों ने समुद्रके उस पेटेको उठाकर मीलों ऊपर ही नहीं रख दिया है, बल्कि उन स्तरों को भी कितना बिगाड़ दिया है। कहीं-कहीं कुछ स्तर तो अब भी नीचेकी ओर झुके हैं, किन्तु कहीं तो वे बिल्कुल आड़ खडे हो गये हैं। दस लाख वर्ष पहले यदि हम इस राह सफर करते होते तो इतनी चढाई न पड़ती, और शायद कुछ आराम रहता, किन्तु तब हम मनुष्यकी शकलमें ही कहाँ होते? इस ओर इसी प्रकारके विचार मेरे मनमें उत्पन्न हो रहे थे। बीच बीचमें धर्मकीर्तिसे बौद्धधर्म और दर्शनपर वार्तालाप होने लगता था। धर्म-कीर्तिको सबसे ज्यादा जिस बातको मैं समझाना चाहता था वह थी, जूठका परहेज। मैंने इसे समझानेमें बड़ी दिक्कत महसूसकी। फिर एक

बार कहा—देखो, तुम ऐसा समझो कि हरएक आदमीके मुँहमें ऐसा हलाहल विष भरा है, जिसका थोड़ा परिमाण भी यदि दूसरेके मुँहमें चला जाय तो वह मर जायगा; यह समझते हुए जब कभी तुम्हारा हाथ मुँहमें जावे तो तभी उसे धो डालो, आदि।

२८ मई को ३०, ३१ मील चलकर सन्दा गांवमें ठहरे। यहाँ घर सुन्दर थे। एक अच्छे घरके कोठेपर डेरा लगा।

यहाँसे आगे अब गाँव कम होने लगे। रास्तेमें कला नामका गाँव मिला, जो किसी समय बड़ा गाँव था; किन्तु अब कितने ही लोग घर छोड़कर चले गये हैं। परती पड़ गये खेतोंकी मेंड़ें भी बतला रही थीं कि किसी समय यहाँ अधिक जन रहते थे। आगे एक प्राकृतिक सरोवर मिला। सर्दीकी वृद्धिसे पता लग रहा था कि हम लोग ऊपर उठ रहे हैं। ग्याचोसे चौसठवें मीलके पत्थर परसे हमें हिमालय मामाके हिमाच्छादित धवल शिखरोंका दर्शन हुआ। मालूम होने लगा, अब भारतमाता समीप हैं। तो भी अब तो गाँवमें फल-रहित वृक्षोंका भी अभाव हो गया था, हाँ, आँखोंको तृप्त करनेके लिए आगे एक विशाल सरोवर दिखाई पड़ा। दक्खिन ओर उस पारकी हिमाच्छादित चोटियोंके सिवाय और तरफके सब पहाड़ बावने दिखाई पड़ते थे। अब सर्दी भी अधिक थी, और कुछ हवा भी तेज होने लगी थी। आकाश मेघाच्छादित था। हम महासरको बायें रखकर चल रहे थे कहीं भी हरियाली प्रत्यक्ष नहीं थी; तो भी कहीं-कहीं भेड़ों रेवड़ोंको चरते देख अनुमान होता था कि वहाँ घास ज़रूर होगी। सत्तरवें मीलके पत्थरके पास दोजिङ् गाँव है। इसके कुछ पहले हीसे सूखी दलदलवाली भूमि मिलती है।

२. तिब्बती विवाह-संस्था

दोर्जिङ् गाँवमें जिस घरमें ठहरे, उसमें दो बहनें थीं; किन्तु उनका पति एक था। भोटमें सभी भाइयोंकी एक पत्नी, यह आम

बात है; किन्तु यहाँ हमने कई बहनोंका एक पति देखा। मालूम हुआ पुरुष हो या स्त्री जो भी अपने पिताका घर छोड़ दूसरे घर जायगा, पितृ-गृह वियोगके पारितोषिक स्वरूप उसे यह अतिरिक्त हक मिलेगा; जो पिताके घर हीमें है, उसे कुदरतन इस हकसे महरूम रहना चाहिए। चूंकि ये दोनों बहिनें अपुत्रक पिताकी बेटियाँ होनेसे घर छोड़ नहीं सकतीं, इसलिए इन्हें बाहरसे पति लानेकी जरूरत पड़ी; और घर छोड़कर आनेके कारण उसे दो भार्यायें मिलीं। इनके लिए भार्या (=पोषणीय) शब्द उपयुक्त नहीं लगता, पत्नी (=पालक,शब्द ही यहाँ उपयुक्त मालूम होता है। उक्त प्रश्नका अधिक वैज्ञानिक समाधान इस प्रकार समझिये—तिब्बत एक पहाड़ी प्रदेश है; और ऊपरसे सूखा और सर्दीका मारा है। वहाँ जीवनकी सामग्री इतनी इफ़रातसे नहीं मिल सकती कि चाहे जितने नये मुँह देशमें आने दिये जाँय। इसलिए जो सन्ततिनिग्रहका प्रश्न सभ्य दुनियाके सामने आज आया है, वह वहाँ सहस्राब्दी पूर्व ही उठ खड़ा हुआ। भूख और भोजन-ऐसी समस्या नहीं है जिसके समझनेके लिए गंगेशकी तत्वचिन्तामणि पढ़नेकी आवश्यकता हो। लोगों ने प्रश्नको गम्भीरता पूर्वक सोचा और इस दायित्वके साथ कि इस आफ़तमें पड़ना और बचना हमारे ही हाथमें है, उन्होंने दरदस्तानके दरदों और बालतिस्तानके बल्तियोंकी तरह यह नहीं कहा कि सन्तान पैदा करनेके लिए तो हम, खाने पीनेके लिए खुदा खबर लेंगे। कहा, भाई चाहे जो कहो, एक घरसे दो घर न होने दो, जिसमें हरएक घरके खेत उतनेके उतने ही रहें। भेड़, याक् (=चवरी,में भी वही बात रहे। अभी उस वक्त तक उन सीधे साधे लोगोंमें दाल भातमें मूसलचन्दकी तरह खुदा नहीं पैदा हुआ था। अभी वे अपने कर्तृत्वको समझते थे परिणामतः सबने इस सिद्धान्तको मान लिया कि एक घरका दो न होने देना चाहिए। जब बौद्ध धर्म-प्रचारक यहाँ पहुँचे तो उन्होंने इस रसमको देखा। अपने यहाँकी रसमसे उल्टी तथा स्वदेशियोंके ख्यालमें घृणास्पद होने मात्रसे उन्होंने

इसे नरकका रास्ता कहना नहीं शुरू कर दिया। उन्होंने ठंडे दिमागसे—और इस मुल्कमें होनेसे गर्म दिलसे—इस पर विचार किया। फिर भूखे भजन न होंय गोपालाका भी उन्हें ख्याल आया, और अपनं सुधारकी आँधीको दबाकर उन्होंने इस प्रथाकी लाभदायकताको स्वीकार किया। हाँ, इस बातके मनवानेमें उनका ईश्वरसे मुनकिर होना भी सहायक हुआ। अन्यथा वे भी कहते—खुदाके काममें इन्सानको दख़ल देनेका क्या हक़?—क्या जिन पेट दिये तिन अन्न न दैहै? हाँ, तो चार पुत्र एक घरमें रहनेसे जैसे एक ही पत्नी आने पर घर-फूटन या घर-बाँटन रुक सकता है, वैसे ही सिर्फ लड़कियोंके रहने पर घर-जमाईके लिए भी वही नियम लागू रखना पड़ेगा। इस प्रकार दो-निङ्की इन दो बहनो ने सम्मिलित पति करके एक घरको दो होनेसे बचा लिया।

३. फन्री-ज़ोङ्

खेत यहाँ नाम-मात्र हैं। लोग अधिकतर भेड़ों और चँवरियों पर गुज़ारा करते हैं। यहाँ छोटी-छोटी बकरियाँ भी होती हैं, किन्तु लोग इन्हें कम पालते हैं। कारण? एक तो इनमें कामकी ऊन नहीं होती; दूसरे इनका माँस बिना चर्बीका और पतला होता है। हमने तो बड़ी बहनको बकरीका सूखा माँस कुत्तेको खिलाते देखा।

२६ मईको फिर तड्के रवाना हुए। थोड़ा चलने पर महासरोवरका अन्त हो गया। अब विशाल मैदान था। दूर बायेवाले पर्वत ही हिमाच्छादित थे, बाकी नंगे मादर-जाद। रास्तेमें चलते देखा कि भोटिया बटोहियों या चरवाहों ने पत्थर मार-मारकर तारके खम्भों परकी चीनी मिट्टीकी टोपियाँ तोड डाली हैं। आखिर पत्थर हाथके नीचे हो, और दिल निशानाबाजी करना चाहे तो आदमी कैसे रुके? दूसरेके पीठ पर थे, इसलिए हमे चलनेमें दिक्कत क्यो थी? साढ़े आठ बजे हम धुना गांवमें पहुँचे। यहाँ मकानोंकी दीवारें चार हाथसे

अधिक ऊंची मुश्किलसे ही होगी। दीवारें भी घास जमे मिट्टीके चकत्तोंसे बनी थीं। शायद यहाँ पानी कुछ अधिक बरसता होगा। जिससे घास हिफाजत करती है; अथवा आस-पास वैसी मिट्टी इफरात-से है. इसलिए वैसा करते हैं। यहांका प्रत्येक घर, कलिम्पोङ से ल्हासा माल है ढोनेवाले खच्चरोंके लिए सराय है। जानवरके लिए घास और आदमीके लिए चाय पानी तथा विश्राम-स्थान देना इनका काम है। चलते वक्त चीजके दामके अतिरिक्त कुछ आप छड-रिन् देते चलिये। सचमुच, भारतमें अनेक जगहोंकी भाँति, यदि यहाँ पैसा लेकर चीज देना बुरा समझा जाये, तब तो मुसाफिर बेचारेकी बिना मागी मौत है। हमें यहाँ सिर्फ चाय पानी करना था।

आगे एक लम्बा मैदान मिला, जिसे हमें बीचसे चीरकर चलना था। यहाँ खाली आँखोंसे भी कुछ छोटी छोटी घासें दिखाई पड़ती थीं, भेड़ें चर रही थीं। बाईं ओर छोटे-छोटे हिमशिखरोंसे घिरा एक उत्तुङ्ग हिमशिखर था। मनमें आता था यदि उस पर जाकर थोड़ी देर बैठनेको मिलता। वहाँसे भोट और भारत दोनोंपर नजर डाल सकता।

डाक ढोनेवालेके घरसे आगे बढकर हमने एक छोटी धारको पार किया। फिर कुछ देर चलनेपर एक सूखी खाल मिली, जिसके किनारे-किनारे हम दाहिनी ओर समकोणपर मुड़ गये। घंटेके करीब ऊपरकी ओर चले होंगे, फिर उतराई शुरू हो गई। दिल ने रोम-रोमसे आशीर्वाद दिया—कि हो तो ऐसा हो जिसमें पेटका पानी भी न हिले। एक तो ऊँचाई भी काफी थी। दूसरे सूर्यदेव बादलोंमें छिपे हुये थे, इसलिए सर्दीका अपेक्षाकृत अधिक होना स्वाभाविक ही था। उतराई सह्य थी अब पर्वतोंका रंग भी बदला, किन्तु अभी वृक्षों वनस्पतियोंका नाम न था। हाँ, घास अब कुछ अधिक बढती जाती थी। भेड़ोंके अतिरिक्त काली-काली चमरियाँ भी अधिक चरती दिखाई देती थीं। जनशून्य

प्रदेशसे निकलकर अब फ-री (= फग-री-वराह गिरि)की बस्ती दिखलाई पड़ी। ३॥ बजे हम अन्तमें फ-रीमें पहुँच ही गये।

यहाँ भी छु-शिङ्-शाकी एक शाखा है। आजकल गुभाजू वीरेन्द्रवज्र यहाँ पर थे। गर्मा-गर्म स्वागत हुआ। घरोंपर देखनेपर देखनेपरमालूम हुआ कि सभीका फर्श बाहरी धरातलसे नीचा है। मकान वैसे खराब नहीं हैं। लकड़ी आधे दिनके रास्तेपर होनेसे मकानोंमें लकड़ीका इस्तेमाल खूब किया गया है। फ-री नाम बाजारके बगलवाली उस छोटी टेकरीके कारण पडा है जिसका आकार वराहके समान है। इस पर अब भी एक इमारत है। पहले वहाँपर एक ज़ोङ् (किला था; १६०४की अंग्रेजी लडाईमें वह तोड़ दिया गया। यहाँपर अंग्रेजी तारघर और डाकखाना है। बाईं ओरका पहाड़ पारकर आधे ही दिनमें भूटानमें पहुँचा जा सकता है। रोज भूटानी लोग, मूली, चिउड़ा, साग सब्जी तथा मौसमी फल लेकर यहाँ पहुँचते हैं। और सिरके दो टुकड़ेकर देनेवाली छतोंके अँधेरे मकानमें हाट इनकी लगती है। हाट-बाज़ार करके फिर लौट जाते हैं। दूकानदारोंमें सात-आठ नेपाली भी हैं। घर सब मिलाकर दो-सौके करीब होंगे। यहीं पहले-पहले पहियेवाली गाड़ीके दर्शन हुए। ये आस-पाससे मिट्टी ढोनेके काममें लाई जाती हैं। यहाँ आकर देखा हमारी पुस्तकोंकी अधिकाश गाँठें पहुँच गई हैं। फ-रीमें डाक रोज आती है, और आदमियोंकी पीठपर आती है। यहाँसे ग्याची तक हर दूसरे दिन दो घोड़े डाल ले जाते हैं।

सोलह-सोलह रुपयेपर सत्रह खच्चर यहाँसे कलिम्पोङ् तकके लिए किराये किये। अपने खच्चरोंको बेच देनेका ख्याल हुआ। एक आदमी दोनो खच्चरोंका २७०) देता था। किन्तु हमने समझा शायद कुछ और मिले। इसी ख्यालमें धर्मकीर्तिको खच्चरवालोंके साथ आगे भेज दिया। अब आगे सुरक्षित प्रदेश था। हमने दोनों पिस्तौल यह कहकर गुभाजूके हवाले किये कि उन्हें ल्हासा पहुँचा दिया जाये।

खच्चरोंको २७०) पर नहीं दिया, किन्तु कलिम्पोङमें बिना बेचे

ही उन्हें छोड़ जाना पड़ा, पीछे २४०) रुपया ही मिला। नये व्यापारी जो ठहरे। ख्याल किया था, यदि यहाँसे खच्चरोंको खाली ले चला जाय, तो आराम मिलनेसे वहाँ तक खूब मोटी हो जायेंगी, और ग्राहक झटसे चढ़ जायेंगे। इसी ख्यालसे अपने चढ़नेके लिए एक खच्चर किरायाका किया।

फ-री उपत्यकामें घासकी हरियाली दिखाई पड़ती है। और यहाँ पानी भी काफ़ी बरसता है, किन्तु सर्दीके मारे बोये गेहूँ-जौमें दाना नहीं पड़ता। लोग इन बिना दानोंके गेहूँ जौको ही सुखाकर रखते हैं, और खच्चरवालोंको बहुत महगा बेंचते हैं।

४. डो-मो दून

२६ मईको हम रवाना हुए। फरीमें छु-शिङ-शाकी शाखाके अभी अवकाश प्राप्त कर्मचारी कां-छा अब हमारे साथ हुए। ये छु-शिङ-शाके मालिक साहु धर्ममानके खास भानजे हैं। उस वक्त आयु १८, १९से ज़्यादा न रही होगी। फ-री दूकानका सारा काम इनको सौंप दिया गया था। तिब्बतमें शराब और औरतमें कोई आदमी उजड़ नहीं सकता, क्योंकि शराब बहुत सस्ती है, वैसी ही स्त्रियाँ भी उतनी लोभिन नहीं हैं। किन्तु, एक अल्पवयस्क नातजर्बाकार लड़केको पैसा कौड़ी देकर भेड़ियोंकी माँदपर बकरी बच्चेकी तरह ऐसी जगह बठा दिया जाय जहाँ तिब्बत नेपाल और भूटान तीन राज्योंके धूर्तों-का अखाड़ा हो, तो फिर क्यों न तबाही आवे? नेपाली सौदागर औघड़दानी हैं। हिसाब किताब वर्षों बाद कभी हो जाया करता है। जब कांछाका हिसाब देखा गया तो हजारोंका नुकसान। इल्जाम लगाया गया कि औरत और जूएमें सब बर्बादकर दिया; किन्तु कांछा-की भोटियानी स्त्री ने जो आयुमें ड्योढ़ी नहीं तो एक तिहाई बड़ी तो ज़रूर होगी—कसम, खाकर कहा कि मेरा तो इनपर मन आ गया है,

मैं तो इन्हें अपने पाससे खिलाया करती थी। उसकी बात माननेको सबका ही दिल करता; किन्तु उसके विरुद्ध सिर्फ एक ही दलील थी; वह यह कि अन्य नेपाली पुरुषोंकी भोटियानी स्त्रियोंकी भाँति वह विवाहितकलत्र न होकर वेश्या जैसी थी। जो हो सभी कह रहे थे और वह स्त्री भी कहती थी, पैसा जुएमें गया। लोग नाराज़ हो रहे थे। हमने कहा—कसूर तुम्हारा है। तुमने ऐसी कच्ची उम्रके लड़केको बिगड़नेका सारा सामान मुहय्याकर ऐसे अरक्षित स्थानमें उसे उसकी एक ज़िन्दगी बर्बाद करनेका प्रबन्ध कर दिया। और यदि कसूर ही है, तो मामाके धनको भानजे ने उड़ाया, क्या हुआ?

पहले घंटे डेढ़ घंटे तक कुछ समतल और कुछ उतराईमें चलते रहे। विशेषता थी, सिर्फ पानीके झरने और धाराये अधिक तथा हरी घासे भी कुछ अधिक। फिर उतराईकी रफ़्तार अधिक होने लगी, और उसके साथ वनस्पति-दुनिया भी बढ़ने लगी। अब तारके खम्भे लोहेकी जगह लकड़ीके थे। तीन घंटा चलनेके बाद हम वनस्पति-राज्यमें पहुँच गये। मालूम हुआ एक दूसरे लोकमें आ गये। पूरे वर्ष दिन बाहर हरे-भरे जंगल और उसके निवासी नाना-वर्णके पक्षियोंको देखकर चित्त आनन्दोल्लसित हो उठा। अब देवदारके वृक्ष पहले छोटे फिर बड़े-बड़े आने लगे। घरोंकी छतें भी यहाँ देवदारकी पट्टियोंसे छाई थीं। लोगोंको देखनेसे मालूम हुआ कि हम दूसरी जातिके लोगोंमें आ गये। ये लोग शरीर और कपड़ोंसे साफ़ सुथरे थे। जंगलकी हरियाली और सुगंधका आनन्द लेते शामको हम कलिङ्-खा गाँवमें पहुँचे।

५ पहाड़ी जातियोंका सौंदर्य

गाँवमें सौसे अधिक घर हैं। देवदारकी लकड़ियोंको बेदर्दीसे प्रयोग किया गया है। छत, फर्श, कड़ियाँ, किवाड़ ही नहीं, दीवारों तकमें लकड़ी भर दी गई है। घरमें चौबीस घण्टे चूल्हेके नीचे आग जलती रहती

है। हम लोग अपने खच्चरवालेके घरमें ही ठहरे। गाँवके सभी मकानोंकी तरह यह भी दोतल्ला था। छतें भी ऊँची थीं। नीचे वाला हिस्सा पशुओं-के लिए सुरक्षित था ऊपर वाला मनुष्योंके लिये। ऊपर बाहरकी ओर एक खुली दालान सी थी, पीछे दो कमरे—एकमें रसोई घर जिसमें सामान भी था, दूसरे कमरेमें देवता-स्थान तथा भण्डार था। तिब्बतसे तुलना करनेपर तो यहाँकी सफ़ाई अवर्णनीय थी। वैसे भी लोग साफ थे। यहाँकी स्त्रियोंकी जातीय पोशाक गढवाली और कनौरकी स्त्रियोंकी भाँति साड़ी है। मुँह भी उनका अधिक आर्याकासा है; चेहरा उतना भारी भरकम नहीं, न नाकें ही उतनी चिपटी है। रग गुलाबी। हिमा-लयमें तीन स्थानोंपर सौन्दर्यकी देवीका वरदान है—एक रामपुर बुशहर राज्यमें सतलजके ऊपरी भागमें किनारोंका देश (किनौर)[1], दूसरा काठमाडवसे चार-पाँच दिनके रास्तेपर उत्तर तरफ यल्मो लोगों का देश; तीसरा यही डो-मो प्रदेश (जिसे अंग्रेजीमें चुम्बी उपत्यका लिखनेका बहुत रवाज चल पड़ा है)। इन तीन जगहोंपर प्रकृति देवीने भी अपने धनको दिल खोलकर लुटाया है। यद्यपि यल्मोमें कमसे कम पहाड़के निचले भागके सौन्दर्यको नवागत लोगों ने नष्ट कर दिया है, तो भी ऊपरी हिस्सेमें, जहाँ यल्मा लोग रहते हैं, वैसी ही देवदारोंकी काली घटा रहती है। मैं सौन्दर्यका पारखी तो नहीं हूँ, तो भी मैं अव्वल नम्बर किनारीको, दूसरा नम्बर डोमोवासिनीको और तीसरा नम्बर यल्मो विहारिणीको दूँगा; लेकिन यह आँख नाक मुखकी रेखाओं के ख्यालसे। रग लेनेपर यल्मो विहारिणी प्रथम, डोमो-वासिनी द्वितीय और किन्नरी तृतीय होंगी। इन तीन जगहोंमें क्यों इतना सौन्दर्य है, इसपर विचार करनेपर मुझे ख्याल आया, कि आर्य और मगोल

---

१. प्राचीन किन्नर देश आधुनिक कनौरके स्थान पर था, यह बात पहले पहल भारतभूमि और उसके निवासीमें सिद्धकी गई थी। -राहुल जी ने उसे स्वीकारकर लिया है।

रुधिरका संमिश्रण भी इसमें खास हाथ रखता है। आर्य रुधिरके ख्यालसे किन्नरी प्रथम, डोमो-वासिनी द्वितीय और यल्मो-विहारिणी तृतीय निकलेगी। किन्नरोमें तो मैं अस्सी फीसदी आर्य रुधिर ही माननेको तैयार हूँ, चाहे उसकी भाषा इसके विरुद्ध जबर्दस्त गवाही देती हो। किन्नरी और डोमो विहारिणीकी एक तरहकी ऊनी साड़ियाँ भी विशेष महत्व रखती हैं। हाँ डो-मोके पुरुषोंके चेहरेमें वे विशेषतायें उतने परिमाणमें नहीं मिलेंगी जितनी उनकी स्त्रियोंमें।

डो-मो उपत्यका बड़ी ही मनोहर है। खच्चरवालोंके आग्रहसे हम एक दिन और वहीं रह गये। डो मो निवासी खेती करते हैं, किन्तु खच्चर लादना उनका प्रधान व्यवसाय है। यहाँ लोग आलू आदि तरकारियां वोनेके भी शौकीन हैं।

६. डो-मो दूनके केन्द्रमें

३० मईको चाय पानके बाद चला। यहाँ हमें अब भारतीय छोटे कौव्वे दिखाई पड़े, तिब्बतमें तो कौवे क्या हैं, ड्योढ़ी दूनी चीजहैं हैं। यहाँके घरोंमें कोयलें घर बनाकर वैसे ही रहती हैं, जैसे अपने यहां गौरैया। नदीकी वाईं ओरसे हमारा रास्ता था। रास्ता सुन्दर था। एक घण्टे चलनेके वाद हम स्यासिमा पहुँचे। यहां अंग्रेजी कोठी, डाक, तारघर, कुछ सैनिक तथा कछ दूकाने हैं। वाज़ार भारतके पहाड़ी बाज़ार जैसा मालूम होता है। १६०४ ई०की लड़ाईके बाद कई वर्षों तक हर्जानेमें अंग्रेज़ सरकारने डो-मो उपत्यकापर अपना अधिकार कर लिया था। उस वक्त यही स्या-सियामा शासन केन्द्र था। पीछे चीन ने हर्जानेका रुपया दे दिया, और तीन चार वर्षके वाद डो-मो फिर तिब्बतको मिल गया। शङ्का तो थी, कि कहीं भारतीयको इधरसे आते देख अग्रेज़ी अधिकारी कोई आपत्ति न खड़ी करें किन्तु ग्यांचीसे फ-री तक हम भोटिया लिवासमें थे, और अब

नेपाली फुन्दनदार काली टोपी, वैसा ही पायजामा और कोट पहिने जा रहा था।

आगेका छेमा गाँव भी सुन्दर बड़े बड़े मकानों वाला, तथा वनस्पति सम्पत्तिसे परिपूर्ण था। रिन्-छेन्-गङ भारी गाँव है। हाँ, इन सभी गाँवोंमें हमसे दो-दो टंका खच्चरोंकी चढाईका लिया जाता था। रिन्-छेन-गङ् में धर्मकीर्ति मिल गये। मैंने कहा भले मिले, अब साथ ही चलो। यहाँसे रास्ता दाहिनेको चढने लगा। आगे एक पत्थरकी टूटी किलाबन्दीमेंसे निकले। पानी बरस रहा था। वर्ष भर तक हम कड़ी वर्षासे सुरक्षित स्थानमें थे, इसलिए यह भी एक नई-सी चीज़ मालूम हुई। आज देवदारके घने जङ्गलोंके बीच ग्यु-थङ्की सरायमें निवास हुआ। सरायकी मालकिन एक बुढिया थी। लकड़ीकी इफरात है ही; खूब बड़ी सराय बनाई गई है, जिसमें सौसे डेढ सौ घोड़ोंके साथ आदमी ठहर सकते हैं खच्चरवाले अपने घोडेके लिए चारा साथ लाये थे।

७. एक देववाहिनी

हम लोगोंके लिए एक साफ कोठरी दी गई। उसके बीचमें आग जलानेका स्थान भी था। चाय पीनेके बाद हम लोग गप करने लगे। उसी वक्त दो स्त्री-पुरुष आ गये। सरायवाली ने बड़े सम्मानसे हमारी कोठरीके एक खाली आसनपर जगह दी। इससे जान पडा, कि ये कोई विशेष व्यक्ति हैं। जब तक दिन रहा तब तक उस दम्पतीने चाय पान आदिमें बिताया। हमारे पूछनेपर उन्होंने यह भी बतलाया कि कलिम्पोङ्में वे डो मो गे-शे लामाके दर्शनार्थ गये थे और मकान फ-रीके पास है। सूर्यास्तके करीब स्त्री अँगडाई लेने लगी। पुरुष कभी हाथ पकडकर खडे होनेसे रोकता, कभी देवता की मूर्ति वाले डब्बेको उसके सिरपर रखता, और कभी हाथ जोड़कर बिनती करता—आज क्षमा करें। मालूम हुआ, स्त्री देववाहिनी है। देवता इस वक्त आना

चाहता है। पुरुष भी शायद ऊपरी मनसे ही हमें दिखानेके लिए वैसा कह रहा था। कुछ ही मिनटोंमें स्त्री रुषको झटककर उठ खड़ी हुई, और सरायवालीकी कोठरीकी ओर गई। देखा—उस कोठरीमें सामने पाँच-सात घीके चिराग जला दिये गये हैं। पीछे एक मोटे गद्देवाले आसनपर विचित्र ढङ्गका कपड़ा और आभूषण पहने वह स्त्री बैठी है। सामने कई और पीतलके बर्तनोंमें छाँङ् (=कच्ची शराब) रक्खी हुई हैं। खच्चरवाले देवताका आगमन सुन भीतर बाहर जमा हो गये हैं। पुरुष ने एक डंडा लगा दोनों ओर चमड़ेसे मढ़ा भोटिया बाजा अपने हाथमें पकड़ा। स्त्री ने धनुही जैसी लकड़ीसे उसे बजाना शुरू किया। साक्षात् सरस्वती उसकी जीभपर आ बैठी। पद्य छोड़ गद्यमें कोई बात ही उसके मुँहसे नहीं निकलती थी। शायद भोट भाषामें दीर्घ ह्रस्वका झगड़ा न होनेसे भी यह आसानी थी। पहले पद्यमे (देवता ने) अपना परिचय दिया। खच्चरवालोंकी कुछ स्त्रियाँ भी अपने गाँवोंसे घास लेकर यहाँ आई थीं; वे भी जमा हो गई थीं।

अब लोगों ने अपने-अपने दुख देवताके सामने रखने शुरू किये। प्रश्नकर्ताको एक दो आना पैसा सामने रखकर हाथ जोड़ सवाल करना होता था। जो सवाल करनेकी शक्ति नहीं रखते थे, वे आनरेरी वकील रख लेते थे, जिनकी संख्या वहाँ काफी थी। देववाहिनी बीच-बीचमें प्यालेसे उठाकर छङ्ग पीती जाती थी। किसी ने पूछा—हम बहुत होशियार रहते हैं, तब भी हमारी खचरीकी पीठ लग जाती है; इसका क्या उपाय है?

देववाहिनी ने कहा—

हाँ, हाँ, मैं यह जानू हूँ। खचर रोग पिछाणूँ हूँ॥
रस्ते में एक काला खेत। वहाँ है बसता भारी प्रेत॥
उसकी ही यह करिणी है। पर खचरी नहिं मरणी है॥
पाव छङ्ग एक अड चढ़ाव। खचरीका है यही बचाव॥

उस दिन सारी सराय भरी रही। तीस चालीस आदमीसे कम वहाँ नहीं रहे होंगे। करीब-करीब सबके ही घरमें कोई न कोई दुःख था। किसीकी स्त्रीकी टागमें पत्थरसे चोट आ गई थी—वह भी भूत हीका फेर था। किसीके लड़केकी आखे आई थीं—यह चुडैलका फरेब। किसीके घरका एक खम्मा टेढ़ा हो गया था—यह काले पिशाचका काम। किसीके लड़का नहीं था—दो भूतनियों ने नाजायज दखल दिया है। देर तक हम भी भूतलीला देख रहे थे। इस बीचमें देववाहिनीके सामने दो ढाई रुपयेके पैसे जमा हो गये। हमने कांछा-को पट्टी पढाई। कहा दो आना पैसा जायेगा, जाने दो। तुम भी हाथ जोड़कर एक ऐसा प्रश्न करो। कांछा ने पैसे रक्खे, और वकील द्वारा अपनी अर्ज सुनाई—घरसे चिट्ठी आई है, मेरा लड़का बहुत बीमार है, कैसा होगा?

हा, हा, लड़का है बीमार। मैंने भी है किया विचार॥
देशके देवता हैं नाराज। तो भी चिन्ताका नहि काज॥
नगरदेव है सदा सहाय। और देवको लेय मनाय॥
जाकर पूजा सबकी कर। मगल होगा तेरे घर॥

कॉछा ने पासवालोंको चुपकेसे बतलाया, मेरा तो ब्याह भी नहीं हुआ है। पर दो एक आदमीका विश्वास न भी हो, तो उसका क्या बिगड़ने वाला है? उसने इतनी भीड़को इकट्ठे देख मूँडनेकी सोची; और रात में २॥, ३ रुपया आँखके अन्धोंको जेबसे निकाल लिया।

८. शिकम राज्यमें

दूसरे दिन (१ जून) को हम ऊपर चढने लगे। चढाई कड़ी थी। ऊपरसे वर्षा भी हो रही थी। ऊँचाईके कारण थोड़ी थोड़ी देरपर खच्चर दम लेनेके लिए रुक जाते थे। चढाईका रास्ता कहीं-कहीं सर्पकी भाँति था। जे-लप्-लाके ऊपर जाकर कुछ बर्फ थी। यही भोट

और शिकम अर्थात् अंग्रेज़ी राज्यकी सीमा है। एक जूनको आखिर हम ब्रिटिश साम्राज्यकी छत्रछायामें पहुँच गये।

उतराई शुरू हुई। दो तीन मील उतरनेपर कु-पुकका डाकबङ्गला है। यहाँ दो तीन चाय-रोटीकी दूकानें हैं। मालूम हुआ, अब यहाँसे कलिम्पोङ् तक ऐसा ही रहेगा। हर जगह गोर्खा लोगोंकी चाय रोटी-की दूकानें और टिकान मिलेगी, घास तो बहुत थी, किन्तु अभी वृक्षों-की मेखला नीचे थी। पानी बरस रहा था। आज यहीं रहनेका निश्चय हुआ।

२ जूनको कुछ चलनेपर तु-के-ला मिला, और फिर आगे ङे-ला। ये वस्तुतः ला नहीं लाके बच्चे थे। जिनके लिए कोई विशेष चढाई नहीं। चढनी पड़ती। ङे-ल़ासे तो कड़ी उतराई शुरू हो गई। बीच बीचमें चाय पीते हम पैदल ही उतर रहे थे। ३॥ बजेके करीब फदम्-चेङ् गाँवमें पहुँचे। यहाँसे नीचे देवदारका अभाव है। अब गर्मी काफ़ी मालूम होने लगी। पानीकी मोरीपर जाकर हमने साबुन लगाकर स्नान किया। यहाँसे पूछनेपर हम अब अपनेको मधेसिया (युक्तप्रान्त-विहारका निवासी) कहने लगे। रातको यहीं रहे।

३ जूनको भी फिर उतरने लगे। सारा पहाड नीचेसे ऊपर तक विशालकाय हरे वृक्षोंसे ढँका था। कहीं-कहीं जङ्गली केला भी दिखाई पड़ता था। पक्षियोंके कलरव भी मनोहर लग रहे थे। बीच-बीचमें गाँव और खेती थी। गाँव वाले सभी गोर्खा हैं, जो कि नेपाल छोड़-कर इधर आ बसे हैं। नौ बजे हम कुछ घरोंके गाँवोंमें पहुँचे। सभी घरोंमें दूकान थी। यहाँ मक्खियोंके दर्शन हुए; और दस बीस हज़ार नहीं अनगिनत। शिकमकी सीमामें घुसते ही मीठी दूधवाली चाय मिलने लगी थी। हम तो तिब्बतकी मक्खनवाली नमकीन चायके भक्त हो गये थे। यहाँ मक्खियोंकी इतनी भरमार देख हमारी हिम्मत चाय पीनेकी न हुई। रोटी आदिका जलपानकर फिर चले। दोपहरके वक्त हम रा-ङ्लिट्-ह्रु गट्-पहुँचे। यहाँ तक बराबर उतराई रही। यहाँ कई अच्छी

दुकानें थीं, जिनमेंसे दो-एक छपराके दुकानदारोंकी थीं। बहुत दिन बाद परिचित भोजपुरीका मधुर स्वर कानोंमें पड़ा। मुझे वहाँ ठहरना मंजूर न था, इसलिए परिचय नहीं दिया। मेरे वस्त्रसे तो बेचारे नेपाली समझते रहे होंगे। यहाँ लोहेके पुलसे नदी पारकर फिर कड़ी चढ़ाई शुरू हुई। अब हम बड़े-बड़े चम्पाके जंगलमें जा रहे थे। जिधर देखिये उधर ही हरित वसना पर्वतमाला। सभी पहाड़ोंपर गोर्खा कृषकोंकी कुटियाँ बिखरी हुई थीं। खेती मक्काकी ज्यादा थी। दो बजेसे पूर्व ही हम डुम्-पे-फङ् या दो-लम्-चेङ् पड़ावपर पहुँच गये। आज यहीं विश्राम करना था। एक शिकमी सज्जनसे भेंट हुई। उनसे शिकमके बारेमें कुछ पूछा-पाछा। मालूम हुआ कि शिकम राज्यमें शिकमियोंकी संख्या दस-पन्द्रह हज़ारसे ज्यादा नहीं है, बाकी सब नई बस्ती गोर्खा लोगोंकी है।

४ जूनको फिर कड़ी उतराई उतरनी पड़ी। नीचे पहुँचनेसे थोडा ऊपर भीम लक्ष्मी कन्याविद्यालयका साइनबोर्ड देखा, और फिर थोड़ा उतरकर एक पुल। यही शिकम राज्य और दार्जिलिंग जिलेकी सीमा है।

९. कलिम्पोङ्को

फिर चढ़ाई शुरू हुई। आगे पे-दोङ् बाजार मिला। यहाँ ईसाई मिशनका एक विद्यालय है। बाजार नीचे जैसा खूब बड़ा है।

कल हमने भाड़ेवाले खच्चरकी पीठ कटी देखी। अब हमारी हिम्मत चढनेकी न हुई। अपनी खचरीको लिया, किन्तु नाल टूट जानेसे वह भी लँगड़ा रही थी। बाज़ारमें नाल लगाने वाला न मिला। लाचार, पैदल ही चलना पड़ा। इस बाजारसे आगे लकडी ढोनेवाली गाड़ियाँ भी सड़कपर चलती देखीं। एक छोटी पहाडी रीढ़ पारकर, दोपहर बाद अल्-गर्-हा बाजारमें पहुँचे। यहाँ छपरावालोंकी बहुत-

सी दूकाने हैं। मेरे साथी सब पीछे रह गये थे, इसलिए पानी पीना और थोड़ा विश्राम करना था। एक दूकानदारसे भोजपुरीमें पानी पीनेको माँगा। उन्होंने तो मुझे समझा था नेपाली। फिर क्या पूछते हैं। बड़े आग्रहसे दूध डालकर चाय बनवा लाये। एक मुँहसे दूसरे मुँह होती कई छपरावासियोंके कानमें बात पहुँच गई। शीतलपुरके मिश्रजीने सुना, तो वे दौड़े आये। उनका आग्रह हुआ कि भोजन किया जाय। उनसे यह भी मालूम हुआ कि उनकी मिश्राइनजी हमारे परसा[1] हीकी लड़की हैं। आज किसी पूजाके उपलक्षमें घरमें पूआ-पूड़ी बनी थी। उस आग्रहको भला कौन टाल सकता था? भोजन करना पड़ा। मिश्रजीकी कपड़े, सिमेंट और आटा दाल आदिकी दूकान है। मालूम हुआ जैसे दार्जिलिंग जिलेकी खेती गोर्खा लोगोंके हाथमें है, वैसे ही मारवाड़ियोंकी बड़ी दूकानें छोड़ बाकी दूकानें छपरावालोंके हाथमें हैं। रहनेका भी आग्रह हुआ, लेकिन उसके लिए तो मेरे उज्रको उन्होंने स्वीकार कर लिया।

नाल लगवानेका प्रबन्ध यहाँ भी न हो सका। इसलिए खच्चरीको हाथसे पकड़े मैं वहाँसे चला। कुछ दूर तक कुछ आदमी पहुँचानेके लिए आये।

सड़क अच्छी थी। आस-पास खेतोंमें मक्का लहलहा रहा था। बारहवें मीलके पत्थरसे सड़क मोटरकी हो गई। जगह-जगह बँगले और गृहोद्यान भी दिखाई पड़ने लगे। कलिम्पोङ् शहर भी नज़दीक आने लगा। सूर्यास्तके समय कलिम्पोङ् पहुँच गये। रास्तेपर बौद्ध सभाका कार्यालय मिल गया। श्रीधर्मादित्य धर्माचार्य[2] उस वक्त वहीं ठहरे हुए थे। वहीं हमारा डेरा भी पड़ गया।

---

१ सारन ज़िलेमें एकमा कस्बेके पास एक गाँव, जहाँके मठमें लेखक कुछ दिन रहे थे।

२ नेपालके एक बौद्ध विद्वान्; जन्मसे नेवार; कलकत्तेके नेपाली

दूसरे दिन अपनी पहुँचका तार लंका भेज दिया। पुस्तकोंके भेजनेका प्रबन्ध छु शिङ्-शाके एजन्ट और गुह्यकोठी[1] के मालिक भाजुरत्न साहुके जिम्मे था। हाँ, कुछ चित्रपटोंको अच्छी तरह नहीं पेक किया गया था। उन्हें निकालकर हमने एक नये लकड़ीके बक्समें बंद करवाया और अपने साथ रेलपर ले जाना तै किया। धर्मकीर्ति इधर हरियाली देखकर बड़े प्रसन्न हुए थे, किन्तु अब गर्मी उन्हें परेशान करने लगी। कहने लगे, आगे जानेपर हमारे लिए मुश्किल होगा। आखिर जूनका मास तो हम लोगोंके लिए भी असह्य है (कलिम्पोङ्का नहीं) किन्तु वे तो ध्रुवकक्षके पासके रहनेवाले थे। तो भी मैंने समझाया।

१०. कलिम्पोङ्से लंका

यहाँसे सिलीगुड़ी स्टेशन तक जानेके लिए टक्सी की गई। ६ जूनको तीन बजे हम लोग रवाना हुए। उतराई ही उतराई थी। उतराईके साथ गर्मी बढ़ती जा रही थी। तिस्ता नदीका पुल पार होते-होते धर्मकीर्तिको कै होनी शुरू हुई और बराबर होती ही रही। पहाड़ उतरकर हम सम भूमिपर आये। यहाँके गाँवोंकी आबादी सारी बंगाली मुसल्मानोंकी है। दृश्य भी बहुत कुछ बंगालसा है। धर्मकीर्तिको बहुत कै हुई। गर्मी थी ही, ऊपरसे मोटरकी तेज सवारी, जब कि बिचारोंको घोड़ागाड़ीकी सवारीका भी अभ्यास नहीं था।

शामको जब सिलीगुडी स्टेशनपर पहुँचे, तो धर्मकीर्तिका शरीर शिथिल हो गया। मैंने समझ लिया, रेल और भारतकी जूनकी गर्मीको

(=नेवार) भाषा-साहित्य-मंडलके संचालक।

१ कलिम्पोङ्की एक व्यापारी कोठीका नाम। भाजुरत्न नेवार नाम है। तान्त्रिक वज्रयानके अनुयायियोंके लिये गुह्य शब्दमें बड़ा आकर्षण है।

बेचारेपर लादना अनिष्टकर होगा। मैंने उसी टैक्सीवालेको कहा कि इन्हें लौटाकर कलिम्पोङ् पहुँचा दो। इस प्रकार खिन्न चित्तसे एक सहृदय मित्रको अकस्मात् छोड़ना पड़ा।

रातकी गाड़ीसे कांछा और मै कलकत्ताके लिए रवाना हुए। सवेरे कलकत्ता पहुँचे। हरीसनरोडपर छु शिङ्-शाकी दूकानमें ठहरे। लंकासे तीन हज़ार रुपये ल्हासामें पहुँच गये थे। अभी चार सौ रुपये और आये थे। मुझे लका जानेसे पूर्व पटना और बनारसमें कुछ मित्रोंसे मिलना था। उस समय सत्याग्रहका देशमें खूब जोर था। कलकत्तेमें भी मैंने लाठीप्रहार देखा। १० जूनको पटना पहुँचा। ब्रजकिशोर बाबू स्वराज्य-आश्रममें मिले। वहीं पता लगा, कि बीहपुरमें राजेन्द्र बाबूपर लाठी प्रहार हुआ, पटनामें प्रोफ़ेसर जयचन्द्रजीके यहाँ ठहरे। १२,१३को बनारसमें रहा। भदन्त आनन्दके बाद इस यात्रामें मेरी सब सहायतासे अधिक सहायता आचार्य नरेन्द्रदेवजीने की थी। उनसे मिलना और कृतज्ञता प्रकट करना मेरे लिए ज़रूरी था।

१५ जूनको कलकत्ता लौट आया। भारतमें इन पुस्तकोंके रखनेका कोई वैसा उपयुक्त स्थान भी मेरा परिचित न था; और अभी मुझे लंका जाना था। इसलिए पुस्तकोंके भेजनेका काम मैंने छु-शिङ्-शाकी कलकत्ता शाखाको दिया। सिंधिया-नेवीगेशन्* कम्पनीके लंकामें एजन्ट श्री नानावतीने कम्पनीके जहाज द्वारा पुस्तकोंके मुफ़्त भेजनेका प्रबंध कर दिया था। इस प्रकार इस ओरसे निश्चिन्त हो १६ जूनको मैं लकाके लिए रवाना हुआ। २० जूनको लंका पहुँचा।

मेरे और भदन्त आनन्दके उपाध्याय त्रिपिटकवागीश्वराचार्य श्रीधर्मानन्द नायक महास्थविरने २२ जून मेरी श्रामणेर प्रव्रज्याका

---

* १९३३में मेरी पुस्तकें चित्रपट और सारा सामान भेजनेमें भ सिंधिया कम्पनीने वैसी ही उदारता दिखलाई। अब उक्त सारा संग्रह पटना म्युज़ियममे रक्खा हुआ है।

दिन निश्चित किया। प्रव्रज्या लेनेके कुछ ही मिनटों पूर्व गुरुजनोंकी ओरसे नाम परिवर्तनका प्रस्ताव आया। उससे पहले न मैंने कुछ सोचा था, और न उस समय बहुत बात करनेका अवसर था अब तक मैं रामोदार साधुके नामसे पुकारा जाता था। मैंने झट रामोदारके रासे राहुल बना दिया, और साधुके साको अपने गोत्र सांकृत्यसे मिला सांकृत्यायन जोड दिया। इस प्रकार उसी दिन भिक्षुके पीले वस्त्रोंके साथ राहुल सांकृत्यायन नाम मिला।

१८ जूनको संघने भिक्षु बनाना स्वीकार किया था। तदनुसार उस दिन काडी नगरमें संघके सन्मुख उपस्थित किया गया; और मेरी उपसम्पदा (भिक्षु बननेकी क्रिया) पूर्ण हुई।

इस प्रकार लंकासे शुरू हो लंका हीमें मेरी यह यात्रा समाप्त हुई।

———

परिशिष्ट

तिब्बतमें बौद्ध धर्मसे सम्बद्ध कुछ

नाम और तिथियाँ

स्रोङ्-गचन्-स्गम्-पो	(जन्म)	६१७	— ई०
स्रोङ्-गचन्-स्गम्-पो	(शासन-काल)	६३०-६९८	ई०
भोटमें बौद्ध धर्मका प्रवेश		६४०	ई०
सम्राट् मङ्-स्रोङ्-मङ्-ब्चन्	(शासन-काल)	६९८-७१२	ई०
दुर्-स्रोङ्-मङ्-ब्चन्	(शासन-काल)	७१२-३०	ई०
स्ल्दे-ग्चुग्-ब्र्तन	(शासन-काल)	७३०-८०२	ई०
स्रोङ्-ब्दे-ब्चन्	(शासन-काल)	८०२-४५	ई०
सम् ये विहार, रचनाका आरंभ और समाप्ति		८२३-३५	ई०
(मगधेश्वर महाराजधर्मपाल,	शासन-काल)	७६९-८०९	ई०
मु-नि-ब्चन्-पो	(शासन-काल)	८४५-४६	ई०
आचार्य शान्तरक्षितका प्रसिद्ध भोटदेशीय कुल-पुत्रोंको भिक्षु बनाना		८१७	ई०
शान्त रक्षितकी मृत्यु		८४०	ई०
ल्दे-ब्चन्-पो	(शासन-काल)	८४७-७७	ई०
रल्-प-चन्	(शासन-काल)	८७७-९०१	ई०
दर्-म-उ-दम्-ब्चन्	(शासन-काल)	९०१-२	ई०

रिन् छेन्-बूस.ङ.पो ९५८-१०५५ ई०

दीपंकर श्रीज्ञान ९८२-१०५४ ई०

ये-शेस्-ऽोद् १००० ई०

सोमनाथ काश्मीरी (तिब्बतमें) १०२७ ई०

श-लु मठ (स्थापित) १०४० ई०

ग्यल्ब्-बूऽि-ऽब्युङ-ग.नस. १००३-१०६४ ई०

नारोपा (मृत्यु) १०४० ई०

मि-ला-रस.-प १०४०-११२३ ई०

ब.चोन्-ऽग्रुस.-सेङ.-गे (मृत्यु) १०४१ ई०

ब्यङ्-छुब्-ऽो द् १०४२ ई०

द्कोन्-ग्र्यल् १०७३ ई०

छोस. क्यि-ब्लो-ग्रोस १०७७ ई०

(स-स.-क्य) कुन्-द्ग ऽ-स्न्यिङ.-पो १०९२-११५८ ई०

फ-दम्-प-सङ.स.-ग्र्यस. (मृत्यु) १११८ ई०

शाक्य श्रीभद्र (काश्मीरी) ११२७-१२२५ ई०

(स-स.क्य) ग्रग.स.-प-ग्र्यल्-मृछन् ११४७-१२१६ ई०

स.न र्-थङ. (स्थापित) ११५३ ई०

(स-स.क्य) कुन्-द्ग ऽ-ग्र्यल्-मृछन् ११८२-१२५१ ई०

(स-स.क्य) ऽ फ ग्स.प १२३४-८० ई०

(बु-स.तोन्) रिन्-छेन्-ग्रु ब् १२९०-१३६४ ई०

चोङ.-ख-प (जन्म) १३५७ ई०

(चोङ्-ख-प) ब्लो-ब्सङ्-ग्रग्स्-प—

(कार्य-काल) १३५७-१४१९ ई०

पंडित वनरत्न १३८४-१४६८ ई०

(र्ग्यल्-व) द्गे-ऽदुन्-ग्रुब् (प्रथम दलाईलामा) १३९१-१४७४ ई०

डे-पुङ् महाविहारकी स्थापना १४१६ ई०

से-रऽ महाविहारकी स्थापना १४१९ ई०

(र्ग्यल्-व) द्गे-ऽदुन्-र्ग्य-म्छो १४७५-१५४२ ई०

टशील्हुन्पो महाविहारकी स्थापना १४४७ ई०

(र्ग्यल्-व) ब्सोद्-नम्स्-र्ग्य-म्छो १५४३-१५८८ ई०

(तारानाथ) कुन्-दगऽ-स्ञिङ्-पो (जन्म) १५७५ ई०

(र्ग्यल्-व) योन्-तन्-र्ग्य-म्छो १५८९-१६१६ ई०

(र्ग्यल्-व) ब्लो-ब्सङ्-र्ग्य-म्छो—

(चौथा दलाईलामा) १६१७-१६८२ ई०

(र्ग्यल्-व) स्कल्-ब्सङ्-र्ग्य-म्छो (जन्म) १७०८ ई०

(र्ग्यल्-व) थुब्-ब्स्तन्-र्ग्य-म्छो (जन्म) १८७६ ई०

मृत्यु—१७ दि० १९३३ ई०

—— ——